वर्ष 46, अंक 1-2 जनवरी-अप्रैल 2023

गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

—12वां विश्व हिंदी सम्मेलन विशेषांक—

जयंती स्मरण

स्वामी विवेकानंद

12 जनवरी 1863

जितना बड़ा
संघर्ष होगा,
जीत
उतनी ही
शानदार होगी।

ISSN : 0971-1430

गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

वर्ष 46 अंक 1-2 जनवरी - अप्रैल 2023 (विशेषांक)

प्रकाशक

कुमार तुहिन

महानिदेशक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

संपादक

डॉ. आशीष कंधवे

प्रकाशन सामग्री भेजने का पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,

नई दिल्ली-110002

ई-मेल : pohindi.iccr@nic.in

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध
http://www.iccr.gov.in/Publication/Gagananchal
पर क्लिक करें।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक	:	₹ 500
		यू.एस $ 100
त्रैवार्षिक	:	₹ 1200
		यू.एस. $ 250

उपर्युक्त सदस्यता शुल्क का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रण : स्पेस 4 बिजनेस सोल्यूशन्स प्रा. लि. दिल्ली

आज़ादी का अमृत महोत्सव

—12वां विश्व हिंदी सम्मेलन विशेषांक—

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुमति दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद की नीति को प्रकट नहीं करते। प्रकाशित चित्रों की मौलिकता आदि तथ्यों की जिम्मेदारी संबंधित प्रेषकों की है, परिषद की नहीं।

हिंदी कुंभ

गगनांचल

वर्ष 46 अंक 1-2 जनवरी - अप्रैल 2023 (विशेषांक)

अनुक्रम

संदेश 05

प्रकाशकीय 09
कुमार तुहिन

संपादकीय

एकात्म संस्कृति की अवधारणा और विश्व 10
डॉ. आशीष कंधवे

हिंदी: विश्व की सांस्कृतिक विरासत 14
डॉ. विनय सहस्रबुद्धे

सतरूपा-सतरंगी देशांतरी हिंदी 16
प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित

हिंदी के अंतरराष्ट्रीय आयाम और चुनौतियाँ 22
प्रो. गिरीश्वर मिश्र

संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी क्यों और कैसे? 28
प्रो. करुणाशंकर उपाध्याय

दक्षिण भारत में बढ़ता हिंदी का प्रभाव 32
डॉ. योगेंद्र कुमार शर्मा 'अरुण'

हिंदी, विश्व की सबसे बड़ी भाषा - तथ्य एवं आंकड़े 36
डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल

फीजी में हिंदी अखबार शांतिदूत के 85 साल 49
डॉ. जवाहर कर्नावट

इंटरनेट पर हिंदी में सामग्री: वर्तमान एवं भविष्य की रूपरेखा 51
डॉ. सुजीत कुमार

आत्मनिर्भर भारत और हिंदी 54
प्रो. भारती गोरे

हिंदी का विकास एवं विस्तार 57
डॉ. सोनम डहेरिया

मॉरीशस में हिंदी: गंभीर चुनौतियों के घेरे में 62
रामदेव धुरंधर

कैनेडा में हिंदी 65
डॉ. शैलजा सक्सेना

आस्ट्रेलिया में हिंदी शिक्षण 68
डॉ. रेखा राजवंशी

श्रीलंका में हिंदी 71
डॉ. एल.एम. रिद्मा निशादिनी लंसकार

चीन में हिंदी शिक्षण की दशा एवं दिशा 74
डॉ. विवेक मणि त्रिपाठी

नीदरलैंड में हिंदी 77
विश्वास दुबे

ग्रेट ब्रिटेन में हिंदी 79
प्रो. कृष्ण कुमार

—12वां विश्व हिंदी सम्मेलन विशेषांक—

संस्कृति कुंभ प्रवासी कुंभ

गगनांचल

वर्ष 46 अंक 1-2 जनवरी - अप्रैल 2023 (विशेषांक)

अनुक्रम

गांधी और वंदेमातरम्: अमर पवित्र राष्ट्रगीत 84
डॉ. कमल किशोर गोयनका

इतिहास लेखन की सांस्कृतिक अवधारणा 90
प्रो. उदय प्रताप सिंह

भारतीय संस्कृति का लोकधर्म 94
प्रो. उमापति दीक्षित

भारतीयता के वैश्विक प्रसार में योग दर्शन 97
डॉ. मृदुल कीर्ति

भारतीय संविधान भारतीय जीवन दर्शन का ग्रंथ है 100
डॉ. सौरभ मालवीय

हिंदी प्रदेश की रामलीला परंपरा 102
डॉ. अवंतिका सिंह

भारत में सांस्कृतिक विषयों पर एनिमेटेड फिल्में 104
डॉ. गुंजन अग्रवाल

स्वामी विवेकानंद का विश्व-बोध 108
नन्दकुमार झा

प्राचीन भारतीय सिक्कों की कलात्मक प्रगति 112
डॉ. मीना सिंह

फीजी की लोक संस्कृति 116
डॉ. ऐश्वर्या झा

प्रवासी साहित्य: संघर्ष, संस्कृति और यथार्थ बोध 120
सुश्री कोमल

प्रवासी भारतीय साहित्य: बदलता परिदृश्य 125
प्रो. संतोष चौबे

गिरमिटिया साहित्य में भारतबोध 131
डॉ. अंशु यादव

फीजी के प्रमुख हिंदी रचनाकार 134
सुश्री ममता गोयनका

फीजी में हिंदी और हिंदुस्तानी:
भाषा और संस्कृति के उभरते आयाम 137
डॉ. कमल किशोर मिश्र

फीजी में भारतीय समुदाय: इतिहास, संस्कृति एवं पहचान 142
डॉ. मुन्नालाल गुप्ता

फीजी का सिरताज हिंदी 147
डॉ. बलजीत कुमार श्रीवास्तव

तुलसी का देश है फीजी 152
डॉ. राकेश पाण्डेय

साहित्य की मुख्य धारा और प्रवासी साहित्य का अंतर्द्वंद्व 154
डॉ. अनुपम श्रीवास्तव

प्रवासी हिंदी साहित्य के बदलते प्रतिमान 159
डॉ. प्रियदर्शिनी दुबे

—12वां विश्व हिंदी सम्मेलन विशेषांक—

साहित्य कुंभ

गगनांचल

वर्ष 46 अंक 1-2 जनवरी - अप्रैल 2023 (विशेषांक)

अनुक्रम

सीता के जाने के बाद की राम कथा 164
प्रो. खेमसिंह डहेरिया

भारतीय ज्ञान-परंपरा, विश्वकल्याण और हिंदी कविता 167
प्रो. वशिष्ठ अनूप

हिंदी साहित्य का सिनेमा में रूपांतरण 172
प्रो. कुमुद शर्मा

सूरीनामी हिंदुस्तानी साहित्य में भारतीय संस्कृति का प्रभुत्व 178
प्रो. पुष्पिता अवस्थी

हिंदी पत्रकारिता की बदलती भाषा और विश्व 180
डॉ. रमेश कुमार बर्णवाल

विज्ञान साहित्य के हिंदी अनुवाद से रोजगार का सुनहरा भविष्य 185
डॉ. शुभ्रता मिश्रा

महाकवि जयशंकर प्रसाद की वैश्विक चेतना 187
डॉ. अशोक कुमार ज्योति

वैश्विक संस्कृति की भाषा: हिंदी 192
डॉ. कृष्ण बिहारी पाठक

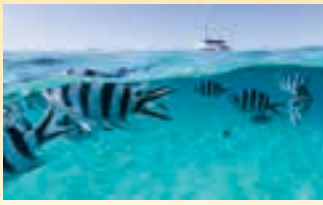

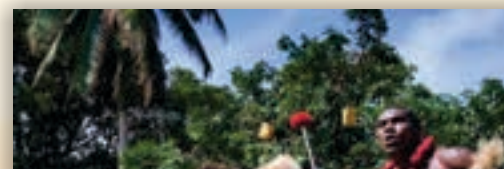

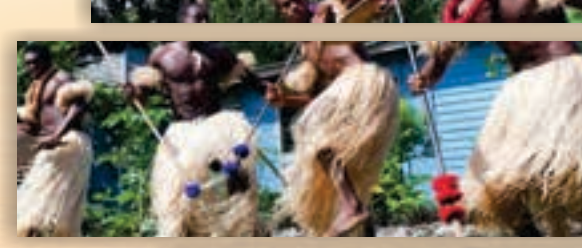

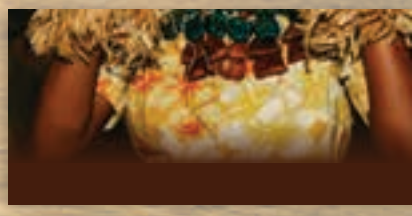

प्रधान मंत्री
भारत

सत्यमेव जयते

आज़ादी का अमृत महोत्सव

Prime Minister of India

संदेश

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा हिन्दी द्विमासिक पत्रिका 'गगनांचल' के 12वें विश्व हिन्दी सम्मेलन विशेषांक के प्रकाशन के बारे में जानकर प्रसन्नता हुई।

हमारा देश अनेक भाषाओं व संस्कृतियों की जननी है और इस समृद्ध विरासत पर हमें गर्व है। विविधता से भरे हमारे देश को एकता के सूत्र में पिरोने में हिन्दी ने बड़ी भूमिका निभाई है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान देशवासियों के बीच देश प्रेम की अलख जगाने में हिन्दी साहित्य का योगदान उल्लेखनीय है। हिन्दी साहित्य के पुरोधा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने 'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल' के भाव से हिन्दी को भारत की स्वतंत्रता से जोड़ते हुए इसे हर उन्नति का आधार कहा था।

हिन्दी की सरलता, सहजता और समृद्ध साहित्य इसे जन-जन के मन में बसाने का कार्य करता है। सूचना प्रौद्योगिकी और तकनीक के क्षेत्र में हिन्दी का बढ़ता उपयोग और युवाओं में इसकी लोकप्रियता एक उज्ज्वल भविष्य की तस्वीर प्रस्तुत करती है। यह देखना सुखद है कि विश्व के विभिन्न देशों में हिन्दी भाषा सीखने वाले लोगों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है।

आजादी के अमृतकाल में देश विकास के पथ पर तेज गति से अग्रसर है। ऐसे में, एक भव्य व विकसित भारत के निर्माण में लोगों के बीच आपसी संवाद व समन्वय स्थापित करने में हिन्दी बड़ी भूमिका निभाएगी।

मुझे विश्वास है कि 'गगनांचल' के 12वें विश्व हिन्दी सम्मेलन विशेषांक में हिन्दी से जुड़े विभिन्न आयामों पर पाठकों के लिए उपयोगी जानकारी होगी और यह युवाओं को इस भाषा को सीखने के लिए प्रेरित करने की दिशा में उपयोगी होगी।

'गगनांचल' पत्रिका से जुड़े सभी लोगों, हिन्दी प्रेमियों व पाठकों को भावी प्रयासों के लिए हार्दिक शुभकामनाएं।

(नरेन्द्र मोदी)

नई दिल्ली
पौष 29, शक संवत् 1944
19 जनवरी, 2023

विदेश मंत्री
भारत

सत्यमेव जयते

आज़ादी का अमृत महोत्सव

Minister of External Affairs
India

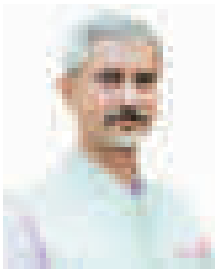

शुभकामना संदेश

अत्यंत हर्ष और गौरव का विषय है कि विश्व हिंदी सम्मेलन अपनी गौरवपूर्ण सांस्कृतिक यात्रा के ग्यारह पड़ाव पूर्ण करते हुए आगामी 15 से 17 फरवरी 2023 तक फीजी में आयोजित होने जा रहा है।

हिंदी आज विचार-व्यवहार और संस्कार, तकनीकी-प्रौद्योगिकी और मानविकी, संवाद-सद्भाव, व्यापार-व्यवहार के साथ परंपरा और प्रयोग की भाषा के रूप में विद्यमान है।

मुझे विश्वास है कि 'हिंदी – पारंपरिक ज्ञान से कृत्रिम मेधा तक' विषय पर केंद्रित यह सम्मेलन हिंदी के विविध आयामों को विश्वपटल पर सामने लाने की दृष्टि से अत्यंत ही सार्थक सिद्ध होगा।

विश्व भर से हिंदी परिवार के विद्वतजन और भाषाप्रेमी हिंदी को ज्ञान-विज्ञान के विविध अनुशासनों की भाषा के रूप में प्रोत्साहित एवं प्रसारित करने के लिए विचार-विमर्श करेंगे।

समकालीन परिप्रेक्ष्य में हिंदी की प्रासंगिकता एवं भविष्य के विश्व के लिए अपार संभावनाओं की भाषा के रूप में हिंदी के विविध पक्षों पर वैचारिक आदान-प्रदान इस आयोजन को सार्थकता प्रदान करेगा।

मेरी ओर से विश्व हिंदी सम्मेलन की सफलता के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ।

(सु. जयशंकर)
विदेश मंत्री

172, South Block, New Delhi-110011 Tel: 91-11-23011127, 23011165 Fax: 91-11-23011463
E-mail: diream@mea.gov.in

वी. मुरलीधरन
V. Muraleedharan

सत्यमेव जयते

विदेश राज्य मंत्री एवं
संसदीय कार्य राज्य मंत्री
Minister of State for External Affairs &
Minister of State for Parliamentary Affairs
Government of India

आज़ादी का अमृत महोत्सव

संदेश

विश्व हिंदी सम्मेलन हिंदी भाषा और साहित्य के माध्यम से मानव संस्कृति और जीवन मूल्यों के प्रतिष्ठापन का उत्सव है। इस बार यह उत्सव हिंदी के व्यापक स्वरूप को सामने लाने के ध्येय से 'हिंदी–पारंपरिक ज्ञान से कृत्रिम मेधा तक' विषय पर केंद्रित है, यह अत्यंत ही सार्थक है।

फीजी में 15 से 17 फरवरी 2023 तक आयोजित होने वाले विश्व हिंदी सम्मेलन में विश्व के कोने–कोने में महकती हिंदी के सर्वसमर्थ स्वरूप को अधिक समुन्नत और विश्वस्तरीय बनाने के लिए विश्वभर के हिंदी विद्वान और हिंदी अनुरागी विचार–विमर्श करेंगे। यह सुखद और आशापरक है। हिंदी अब विश्व भाषा की ओर अग्रसर है। हिंदी ने एक नए और समरसतापूर्ण विश्व का निर्माण कर दिया है। हिंदी की यही समरसता हमें विश्व में विशेष बनाती है।

साहित्य, संस्कृति और भाषा तीनों स्तरों पर हम आज केंद्र में हैं। हम विज्ञान और चिकित्सा में भी नये प्रतिमान गढ़ रहे हैं। आने वाला काल हिंदी का है।

हिंदी सर्वसमावेशी और प्रगतिशील प्रकृति के चलते ज्ञान–विज्ञान के विविध अनुशासनों की सर्वप्रिय और सर्वोपयुक्त भाषा के रूप में गतिमान है।

हिंदी आत्मोन्नति के साथ विश्वोन्नति की भी पाथेय बने।

विश्व हिंदी सम्मेलन की अनंत शुभकामनाओं के साथ...।

(वी. मुरलीधरन)
विदेश राज्य मंत्री

Office: South Block, New Delhi-110011. Tel.: 91-11-23011141, 23014070, 23794337 Fax: 011-23011425

विनय सहस्रबुद्धे
अध्यक्ष
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

संदेश

मुझे हार्दिक प्रसन्नता है कि विश्व हिंदी सम्मेलन के रूप में हिंदी को प्रोत्साहित करने वाले एक और महोत्सव के हम साक्षी होंगे।

आगामी 15-17 फरवरी 2023 तक फीजी में आयोजित होने वाला विश्व हिंदी सम्मेलन विद्वानों के वैचारिक मंथन के माध्यम से वैश्विक पटल पर हिंदी भाषा के सामर्थ्य और संभावनाओं को रेखांकित करने वाला सिद्ध हो, ऐसी मेरी कामना है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी भाषा की प्रतिष्ठा और प्रचार-प्रसार हेतु आयोजित होने वाले इस सम्मेलन ने हिंदी को एक प्रभावशाली भाषा बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यही कारण है कि आज वैश्वीकरण के दौर में, पूरे विश्व-स्तर पर हिंदी एक प्रभावपूर्ण एवं लोकप्रिय भाषा बनकर उभरी है। इसी क्रम में आगामी सम्मेलन भी साहित्य, सिनेमा, विज्ञान एवं तकनीकी आदि विविध क्षेत्रों और ज्ञान अनुशासनों में हिंदी को अंतरराष्ट्रीय महत्त्व और स्वीकृति दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

इस अवसर पर गगनांचल के विश्व हिंदी सम्मेलन विशेषांक का प्रकाशन स्वागत-योग्य है। विषय-केंद्रित सुरुचिपूर्ण सामग्री के साथ यह अंक बहुपठनीय एवं संग्रहणीय सिद्ध होगा।

हिंदी अपने संपूर्ण वैभव और विस्तार के साथ इसी तरह खिलती रहे, महकती रहे।

हार्दिक शुभकामनाएं !!

(विनय सहस्रबुद्धे)
अध्यक्ष

प्रकाशकीय

कुमार तुहिन
महानिदेशक

गगनांचल का यह अंक 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन पर केंद्रित है। विश्व हिंदी सम्मेलन हिंदी भाषा और साहित्य का महोत्सव है। हिंदी केवल एक भाषा नहीं, एक समृद्ध और वैविध्यमयी संस्कृति की प्रतिनिधि है, जो न केवल पूरे भारत को एक सूत्र में बांधे रखने का काम करती है, बल्कि साहित्य, सिनेमा और मीडिया के विभिन्न रूपों के माध्यम से इसका एक अंतरराष्ट्रीय महत्त्व भी स्थापित हुआ है। हिंदी का विस्तार केवल भारत ही नहीं, अपितु विश्व के प्राय: सभी देशों में कमोवेश हो चुका है। विश्व भर में भारतीयों के निवास और प्रवास के कारण हिंदी का स्वरूप विश्वव्यापी हो चुका है। यह गौरव विश्व की गिनी-चुनी भाषाओं को ही प्राप्त है।

विश्व हिंदी सम्मेलन किसी भाषा को केंद्र में रखकर किया जाने वाला अपनी तरह का अनूठा अंतरराष्ट्रीय अनुष्ठान है, जिसका आयोजन हर तीन वर्ष में किया जाता है। पहली बार इसका आयोजन जनवरी 1975 में नागपुर में किया गया था। अब तक ऐसे 11 आयोजन हो चुके हैं और अब हम 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन करने जा रहे हैं। यह आयोजन अब तक की उपलब्धियों पर विचार करने और आगे की दिशा निर्धारित करने का अवसर भी है। इस अवसर पर विश्व भर के हिंदी कर्मियों, विद्वानों, कवियों, लेखकों और विशिष्ट राजनायिकों का समागम होने वाला है। यह भारतीय सीमा से बाहर हिंदी की वैश्विक स्थिति को अनुभव करने का क्षण होगा।

12वें विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन फीजी में हो रहा है। फीजी में ब्रिटिश औपनिवेशिक काल में भारतीयों को गिरमिटिया मजदूर के रूप में ले जाया गया था। लेकिन स्वतंत्र और रिपब्लिक देश फीजी में आज भारतीयों की बहुत सम्मानजनक और गरिमामयी स्थिति है। इसका प्रमाण इसी बात से मिलता है कि फीजी के शीर्ष पद को एक भारतीय सुशोभित कर चुके हैं। फीजी में भारतीयों, विशेष रूप से उत्तर भारतीयों के जाने के साथ -साथ वहाँ हिंदी का प्रसार होना एक ऐतिहासिक घटना है। वहाँ भाषिक मिश्रण की प्रक्रिया में हिंदी का अपना एक स्वरूप निर्मित हुआ है। ऐसा कई अन्य देशों में भी हुआ है। गगनांचल के इस अंक में फीजी में हिंदी के प्रसार और इसके महत्त्व पर विशेष सामग्री दी गई है। यह अंक विश्व हिंदी सम्मेलन विशेषांक होने के कारण इसमें हिंदी की वैश्विक स्थिति, इसके बदलते और विकसित होते स्वरूप, विश्व में भारतीय सनातन संस्कृति से जुड़े तत्त्वों के प्रति बढ़ते आकर्षण और विभिन्न देशों में हिंदी के अध्ययन -अध्यापन तथा साहित्य सृजन के विविध आयामों पर लेख प्रस्तुत किए गए हैं, जो निश्चित रूप से हिंदी के वैश्विक परिदृश्य के प्रति जागरूकता बढ़ाने में सहायक सिद्ध होंगे। ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है।

इस अवसर पर मैं भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के अध्यक्ष श्री विनय सहस्रबुद्धे के प्रति उनके मार्गदर्शन और सहयोग के लिए कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। मैं गगनांचल के संपादक डॉ. आशीष कंधवे को साधुवाद देता हूँ और इस विशेषांक में अपने लेखन के माध्यम से योगदान देने वाले सभी विद्वान लेखकों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। हमारे सामने 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन को सफल बनाने का दायित्त्व है। अत: मैं इस आयोजन से संबंधित सभी महानुभावों को हिंदी के इस महोत्सव की सफलता के लिए अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ देता हूँ।
इति शुभम्!

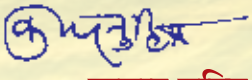

कुमार तुहिन
महानिदेशक

संपादकीय

डॉ. आशीष कंधवे
संपादक

एकात्म संस्कृति की अवधारणा और विश्व

स्मृति अपने अनुकूल स्वस्थ आकांक्षा को ही जन्म देती है और यदि लोक व राष्ट्र में स्मृति अनुरुप संकल्प शक्ति जागृत हो जाए तो यही आकांक्षाएँ परम पुरुषार्थ में परिणत हो जाया करती हैं। **राष्ट्र जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में श्रेष्ठ पुरुषार्थ की प्रेरणा सभी को प्राप्त हो तथा इनके समवेत उद्यमों से भारत माता का 'परम वैभव' पुनः प्रतिष्ठापित हो और यह राष्ट्र वैश्विक सदाशयता व उत्कर्ष का मार्गदर्शक बने।** **''श्रेयांसि बहुविघ्नानि''** (अच्छे कार्य में विघ्न बहुत आते हैं) के सिद्धांतानुसार इसकी परिपूर्णता के पूर्व भी अनेक बाधाएँ उत्पन्न हुईं, **''यत्रा मतिर्विद्यते पूतबन्धनी''** (ऋग्वेद-5-44/9) अर्थात् सद्बुद्धि से किया गया कार्य अंततः सफलता ही दिलाता है।

किसी भी समस्या के समाधान के लिए समस्या को उसकी समग्रता में जानना और अनुभव करना पड़ता है। उसकी जड़ तक जाना पड़ता है। फिर चाहे वह समस्या राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक विषयों से हटकर भाषाई, सांस्कृतिक और साहित्य की क्यों न हों। इन्हें केवल एक सिद्धान्त खड़ा करके कभी सुलझाया नहीं जा सकता, उससे समस्या और अधिक उलझ जाती है। यदि शान्त और निष्पक्ष मन से समस्या का समाधान खोजें तो समस्या में ही समाधान के संकेत छुपे होते हैं। आज भारत बहुत तेजी से बदल रहा है। सन् 2014 के बाद देश में आई नई सरकार ने और राजनीतिक व्यवस्था ने भारत की अस्मिता को जगाने का, भाषा के महत्त्व को समझाने का और संस्कृति के साथ समाज को जोड़ देने का बेजोड़ प्रयत्न किया है। हम बिना संकोच के कह सकते हैं कि भारत अपने ही प्रकाश से प्रकाशित है और अपनी ही ज्ञान संपदा से विभूषित। भारतीय संस्कृति की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि भारतीयों की शाश्वत चेतना है। हम प्राचीन और नवीन के संतुलन के साथ स्वयं को सदैव आधुनिक रखते हैं। कहीं न कहीं भारतीय संस्कृति में शिवत्व का आदर्श है और इसमें ही सर्वकल्याण की भाव तथा सर्वमंगल की भावना निहित है। जहाँ भी संकीर्णता है, स्वार्थ है, आसक्ति है, अहंकार है वहाँ शिव नहीं है और जो अशिव है वही अशुभ है, त्याज्य है। भारत के संदर्भ में संस्कृति का शिवत्वविहीन होना अमांगलिक है। सांस्कृतिक उत्कर्ष के बिना एक भारत श्रेष्ठ भारत की परिकल्पना नहीं की जा सकती। सौभाग्य की बात यह है कि वर्तमान में हमारे देश के पास ऐसा नेतृत्व है जो एक भारत श्रेष्ठ भारत की परिकल्पना को सिद्ध कर रहा है । यही भारत के एकात्म सांस्कृतिकवाद की अवधारणा भी है।

पौराणिक स्मृतियों से युक्त रहने में किसी भी प्रकार का दोष नहीं है परंतु अभिनव के स्वीकार के लिए कभी-कभी हमें पौराणिक स्मृतियों को विस्मृत करना होता है। कई बार अभिनव और अपरिचित ऊर्जा का प्रवाह होता है जो हमें नई चेतना के साथ जोड़ता है और समाज को सुदृढ़, विचारवान और प्रज्ञावान बनाता है।

विचारों से मुक्त होते ही स्वयं की अन्तः सत्ता में शक्ति का संचार प्रारम्भ हो जाता है। जब विचारों की शक्ति जागृत होती है तो अन्तःहृदय आलोक से आलोकित हो जाता है। जहाँ आलोक है, वहाँ आनंद है। जहाँ दिव्य दृष्टि है, वहाँ का मार्ग निष्कंटक होता है। वैचारिक शक्ति के जागरण से मनःस्थिति में क्रांति पैदा हो जाती है, जीवन की समस्याएँ धीरे-धीरे विवेक के द्वारा समाप्त हो जाती हैं और जीवन एक संगीतमय प्रवाह बन जाता है। इसी संगीतमय प्रवाह को जब हम अंकित करते हैं तो समाज उसे साहित्य के रूप में स्वीकार करता है और जिस शब्दावली का प्रयोग करते हैं वह भाषा है और साहित्य की आत्मा भी।

वैचारिक धारा और धैर्य, पौराणिक विचारों के प्रभाव से मुक्त होते ही अप्रभावी होने लगते हैं। केवल पौराणिक विचारों से काम चलाने की वृत्ति को अपनाने से सिद्धि के लक्ष्य तक पहुँचना संभव नहीं है। वैचारिक क्षमता तभी सशक्त हो सकती है जब हमारा

मस्तिष्क पौराणिकता और आधुनिकता का संगम बने। परिवर्तन की धारा आधुनिक सभ्यता का निर्माण करने में लगी है। किन्तु हमारे सिद्धान्त केवल पौराणिकता पर आधारित होंगे तो विकसित व्यवस्था का निर्माण कठिन हो जायेगा। स्वामी विवेकानंद इसी परिकल्पना के कारण वैश्विक नायक के रूप में उभरते हैं जिन्होंने यह सिद्ध कर दिया था कि भारत पौराणिकता में आधुनिकता का अद्‌भुत संगम वाला राष्ट्र है और यह सदैव आधुनिक से उत्तर आधुनिक की ओर अग्रसर रहने वाला राष्ट्र के रूप में जाना जाएगा।

वस्तुत: जिसे इन दिनों कल्चर कहा जाता है उसे ही घुमा-फिरा कर सिविलाइजेशन भी कह दिया जाता है। सभ्यता और संस्कृति को एक बताते हुए किसी समाज के सभी प्रमुख क्रिया रूपों को उसकी सभ्यता भी और संस्कृति भी बता दिया जाता है। यहाँ स्वयं सभ्यता शब्द को लेकर भी यही अंतर है। हमारे यहाँ 'सभ्य' शब्द का अर्थ ही है ऐसा व्यक्ति जो विद्वानों की सभा में बैठने के योग्य हो वही सभ्य होता है। भारतीय शास्त्रों में सभा उसे कहते हैं, जहाँ प्रज्ञातेज से विकसित मानव समूह मंत्रणा करते हों (सह भान्ति यस्यां सा सभा)। प्रज्ञातेज सामान्यत: ज्ञानवृद्ध पुरुषों में अनुभवजनित परिपक्वता से ही विद्यमान होती है, अतएव महाभारत (सभा पर्व 89/65) में यह कहा गया है कि-

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः। वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम् ।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति। न तत्सत्यं यच्छलेनानुविद्धम्।।

अर्थात् जिस सभा में वृद्धजन (अनुभवी जन) नहीं, जिसमें सत्य नहीं, वह धर्म नहीं और जो कपट से पूर्ण हो, वह सत्य नहीं। यही नहीं बल्कि महाभारत के उद्योग पर्व में वर्णित प्रज्ञादर्शन में अन्न उत्पादन द्वारा जन का पोषण करने वाले कृषकों के महती कर्म को महत्त्व देते हुए उन्हें राजसभा में बैठने का स्वाभाविक अधिकारी माना गया। उद्योगपर्व (36. 31) में यह स्पष्ट किया गया है कि वह व्यक्ति सभा में बैठने का अधिकारी नहीं है जो कृषि के लिए खेत में बीज नहीं डालता हो (न न: समितिं गच्छेत् यश्च नो निर्वपेत् कृषिम्)। अत: ऐसे सभ्य लोक समूहों के आचरण-व्यवहार, नियमोपनियम, विधि-विधान, उत्पादन-पोषण के भाव को ही सभ्यता कहते हैं। इस संदर्भ में अगर हम संस्कृति के पर्याय को देखें तो संस्कृति इन सभ्यताओं के महासागर से उभरता, प्रज्ञा के मंथन के द्वारा समरसता व पोषण के भाव से परिपूर्ण एक अमृत कलश है। संस्कृति ही वह अमृत कलश है जो सभ्यताओं के महासागर के मंथन से निकलता है अर्थात् सभी सभ्यताओं के सार और सार्वभौम निकष रूप में जो सार्वभौम यम और नियम हैं, जो सार्वभौम प्रतिमान हैं, उन्हें ही भारतीय परंपरा में संस्कृति कहा जाएगा। अत: निर्विवाद रूप से सार्वभौमिक स्वरूप रखने के उपरांत भी संस्कृति का आशय स्पष्ट रूप से भारतीय संस्कृति को ही प्रतिबिंबित करता है।

संस्कृति के शिवत्व और समाज को संस्कारवान करने के लिए निश्चित रूप से भाषा की आवश्यकता होती है। आज हम लोग वैश्विक ग्राम के रूप में बदल चुके हैं। भौगोलिक सीमाएं राष्ट्रों के बीच उपस्थित है परंतु सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषाई चेतना अब सीमाओं से परे जाकर विस्तार पा रही हैं। सूचना क्रांति के इस महाविस्फोट काल में जरूरी गैर जरूरी सूचनाओं से संपृक्त होते हुए हम नए प्रकार के विश्व का निर्माण कर रहे हैं। विश्व के इस नवनिर्माण में भाषा के योगदान को नकारा नहीं जा सकता। भाषा और संस्कृति के इसी उत्कर्ष की चर्चा करने के लिए हम 15 से 17 फरवरी 2023 को विश्व हिंदी सभा आहूत करने जा रहे हैं। इस सभा में वैश्विक संस्कृति के निर्माण में हिंदी के योगदान से लेकर अनेक सामाजिक सांस्कृतिक विषयों पर चर्चा होगी।

भाषा समय और समाज, वर्तमान और भविष्य, करुणा और वेदना, संघर्ष और शक्ति, विमर्श और विकृति, परिमार्जन और परिवर्तन, आविष्कार और विश्वास तथा जय और पराजय को अपने साथ लेकर चलती है। ऐसे समय में जब भारत अपनी स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव मना रहा है, यह मंथन का विषय है कि इन 75 वर्षों में भाषा, संस्कृति और साहित्य के स्तर पर हम कितने वैश्विक हुए और कितने भारतीय बने रहे।

सृष्टि की संरचना से संबंधित किसी भी तरह की बोधगम्य अनुभूति या अभिव्यक्ति की निष्पन्नता का आधार अर्थ-जनित शब्द या उसके समुच्चय से बनी बोली अथवा भाषा में होता है। इस अर्थ जनित भाषा अथवा बोलियों का स्वरूप ध्वनि, वर्ण, पद, वाक्य के माध्यम से निखरता है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि ध्वनि ही भाषा अथवा बोलियों का उद्‌गम-बिंदु सिद्ध होती है । अगर हम परंपरागत सोच से बाहर निकलकर नए परिप्रेक्ष्य में भाषा के संदर्भ में विमर्श करें तो हम पाते हैं कि आधुनिक भाषाविदों की भी मान्यता है कि आरम्भिक अवस्था में भाषाओं के शब्द अपेक्षाकृत लम्बे व उच्चारण की दृष्टि से अधिक क्लिष्ट रहे थे। भाषाविद् जे. वेडियस का यह मानना था कि एट्रुस्कुन (इटली की मृत भाषा से स्वरूप में आई प्राचीन लैटिन व कोइने (यूरोप की एक और मृत भाषा) भले ही अपने स्रोत की तुलना में साधारण रही हों, फिर भी अंग्रेजी, फ्रेंच आदि लचकदार व कोमल आधुनिक भाषाओं की तुलना में अधिक प्रभावशाली एवं समृद्ध रही थी। इसी कड़ी में सर विलियम जोन्स की भी यही मान्यता रही कि ग्रीक, लैटिन आदि उत्कृष्ट भाषाओं की तुलना में संस्कृत अपनी प्राचीनता के साथ-साथ अधिक परिष्कृत, पूर्ण तथा आश्चर्यजनक बनावट वाली भाषा ही सिद्ध होती है। इस प्रकार भाषाविदों का यह आकलन सिद्ध करता है कि जिस किसी भाषा को भी अनेक उत्तरवर्ती भाषाओं का मूल माना जाएगा, उसे परवर्तियों की तुलना में अत्यन्त समृद्ध ही माना जाएगा; इस प्रकार से पूर्ववर्ती क्रम पर पायी जाने वाली अतिम मूल समृद्धतम भाषा ही सिद्ध होगी। यह निष्कर्ष विकासमत के सर्वथा विपरीत है। यही कारण रहा कि पाश्चात्य भाषाविद 'लीईशर को लिखना पड़ा कि भाषा के इतिहास की चट्टान पर डार्विन का विकासवादी मत चकनाचूर होकर बिखर जाता है। इसी आशंका से भयभीत होकर ला सोसिएते लेगिस्टीक नामक भाषा विज्ञान को विश्वस्तरीय समिति ने अपने अधिनियम (सेक्शन-2) में स्पष्ट रूप से 'भाषा उत्पत्ति' संबंधित विषयों पर विचार करने पर ही प्रतिबंध लगा दिया है।

आज के संदर्भ में इस आधे-अधूरे तथ्यों के अनुमानित आधारों पर विश्व की प्रचलित लगभग तीन हजार भाषाओं और बोलियों को उनकी स्वरूप- समानता की पृष्ठभूमि पर भाषाविद् मुख्यत: इन्हें दस से अट्ठारह पारस्परिकता समूहों में विभाजित करते हैं।

इस तरह भौगोलिक, जलवायवीय व सामाजिक परस्परताओं के आधार पर विस्तारित भाषाओं की विभिन्नताएँ तो एक प्रकार से पत्तों व टहनियों के संबंधों तक को ही उजागर करती हैं, जबकि डाल आदि के क्रम से ये टहनियाँ अन्तत: एक पुष्ट तने से भी जुड़ी होती हैं, जो प्रकारान्तर में अपने अदृश्य (भूगर्भीय) स्त्रोतों द्वारा ही अस्तित्व में आ पाती हैं। भाषायी वटवृक्ष का यह आधुनिक स्वरूप अपनी आरंभिक अवस्था में इसी तरह से पनपता रहा, परन्तु समय के प्रवाह के साथ-साथ इसकी शाखाओं से प्रस्फुटित हुई कुछ जटाओं (स्थानिक सूत्रों) के सघन घेरे ने शनै:-शनै: मूल तने को ही चारों ओर से ढँक लिया। इस प्रगाढ़ता के कारण प्राय: स्थानिक सूत्रों (यानी जटाओं) को ही भ्रमवश भाषारूपी वृक्ष का मूल आधार मान लिया जाता है।

कतिपय भाषाविदों द्वारा विश्व को विभिन्न भाषायी परिवारों में विभाजित करने की मानसिकताओं के पीछे कुछ इसी तरह की मृग मरीचिकाओं का ही प्रभाव काम कर रहा है, जबकि इनका मूलस्रोत निर्विवाद रूप से लौकिक सौरी से ही जुड़ा हुआ है। 'द स्टोरी ऑफ सिविलाइजेशन' में विल ड्यूरैंट विश्व की सभी भाषाओं का विश्लेषण करने के उपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि चूंकि संस्कृत (वैदिक भाषा यानी सौरी) के गुणविशेष संसार भर की सभी भाषाओं में मिलते हैं, अत: यही सभी भाषाओं की जननी सिद्ध होती है। इसी तरह थॉमस मॉरिस भी अपनी पुस्तक 'इण्डियन एन्टीक्वीटिस' के खण्ड चार में प्रसिद्ध भाषाविद् हॉलहॅड का हवाला देते हुए स्पष्ट रूप से वैदिकभाषा को ही पृथ्वी की मूलभाषा घोषित करते हैं। लौकिक सौरी के मूलस्रोत के कारण ही विश्व की प्राय: सभी भाषाओं में इसके शब्द लगभग उन्हीं आशयों के साथ प्रतिष्ठित हैं।

उदाहरण के लिए लौकिक सौरी के 'असुरमेधा' अवेस्ता में 'अहुरमज्दा', 'नास्ति नाभूत्' फारसी में 'नेस्तनाबूद' 'हर्म्य' व 'जाल्म: 'अरबी में 'हरम' व 'जालिम', 'पथ' व 'स्वेद' अँग्रेजी में 'पाथ' व 'स्वेट', 'श्वान' यूनानी में 'क्वान', 'आदि' मिस्र की भाषा में 'आत' 'कुल' अमेरिका की मयभाषा में 'कुलु', 'ध्यान' स्वाहिली में 'धानी' व 'सिंह' के लिए 'सिम्बा', 'शतम्' लैटिन में 'सेन्दुम', 'स्थान' चीनी भाषा में 'तान' 'युयुत्सु' जापानी में 'जुजुत्सु' 'ईरा' हिब्रु में 'एरेछ' - जर्मन में 'एदं', 'मेरू' तुर्को में 'मेरूख', 'अम्ब' सिरियन में 'आमोष सिथियन में 'अम्माल' सामोपडिव में 'अम्म' आदि-आदि जैसे इन भाषाओं में आए जाने वाले अनेक शब्द इनके अकाट्य प्रमाण हैं। संस्कृत भाषा अपनी उत्पत्ति से लेकर आज तक अपनी निरंतरता को बनाए रखती है यह किसी चमत्कार से कम नहीं है। विश्व की अन्य कोई भाषा इस प्रकार की निरंतरता बनाए रखने में सफल नहीं हो पाई। यही कारण है कि से सृष्टि की उत्पत्ति की भाषा के रूप में स्वीकार किया जाता है।

विश्व हिंदी सम्मेलन की चर्चा आते ही हिंदी साहित्य में प्रवास की प्रक्रिया पर चर्चा से आरंभ होती है। इसका वैचारिक प्रारम्भ, सम्भवत:, भारत के लघुकथा के प्रवर्तक मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'यही मेरी जन्मभूमि है' से 1908 में हुआ था। इसके बाद आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी एवं तोताराम सनाढ्य ने 1913 से ही प्रवास की त्रासदी एवं समस्याओं पर समय पर अपने विचारों को व्यक्त किया है। किंतु संगठित रूप से भारत में इस पर कई दशकों तक किसी ने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। इन प्रवासी भारतीयों के पास वेदना सहते हुए कलम उठाने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं था जिसका परिणाम है अभिमन्यु अनत का "लाल पसीना"। अगर वे प्रवासी न होते तो विश्व साहित्य-समाज को ऐसी अनुपम कृति न मिलती। यह प्रवासी सोच, अनुभव एवं दृष्टि का ही प्रतिफल है कि हिंदी जगत को ऐसा अनूठा उपन्यास मिला। प्रवासी रचनाओं में कई विशेषताएं हैं जिनके कारण वे अपनी पहचान बनाती हैं और भविष्य बना सकती हैं, यदि अनुकूल वातावरण में प्रोत्साहन की धरती पर उनको ठीक से संवारा, संभाला और प्रस्तुत किया जाए। यही प्रयास भारत के कुछ चिंतनशील समाज सेवियों, साहित्यकारों, सम्पादकों एवं प्रकाशकों के साथ भारत सरकार ने भी पिछले कुछ दशकों में किए हैं। मेरे विचार से 'देर आए दुरुस्त आए' वाली बात सार्थक हो रही है। इन सबके बीच कुछ ऐसे संकुचित विचारों वाले तथाकथित चिंतक भी हैं, जो प्रवासियों की रचनाओं और उनके मंतव्यों को सतही दोयम दर्जे का कह कर उनकी अवहेलना करते हैं। वे भाषाविज्ञान के मूल सिद्धांतों से विचारधारा को काट लेते हैं। भाषा-शैली चेतनामय है, जड़ नहीं। देश, काल, परिवेश, अनुभव और स्थानीय सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था का मानवीय व्यक्तित्व में प्रवेश होना स्वाभाविक ही नहीं प्राकृतिक भी है। ऐसे रचनाकारों की भाषा-शैली को प्रभावित करता है और करना भी चाहिए। वस्तुत: रचनाओं का भावभूमि के आधार पर आंकलन होना चाहिए, न कि वाह्य सुंदरता, भाषा-शैली पर ही। समय बदल रहा है जिससे जीवन मूल्यों एवं वाड्मय के मापदंड एवं मानदंड तेजी से बदले हैं।

विश्व हिंदी सम्मेलन के इस महाअभियान में प्रवासी साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका है जिसके कारण हिंदी साहित्य आज भौगोलिक सीमाओं को लांघकर वैश्विक साहित्य का रूप धारण कर चुका है। प्रवासी साहित्य हिंदी साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। एक लम्बे अरसे से हिंदी पट्टी के आलोचक प्रवासी साहित्य के प्रति उदासीन बने रहे, किन्तु लम्बी जद्दोजहद और प्रवासी साहित्य की रचनात्मकता, प्रतिबद्धता उनकी संवेदना एवं दु:ख दर्द का एहसास हुआ। विगत कुछ दशकों से प्रवासी साहित्य को लेकर हिंदी जगत में प्रशंसा मिली तथा उनके लेखन को भी गम्भीरता से लिया जाने लगा है। अब प्रवासी लेखन को लेकर हिंदी जगत में सक्रियता दिखाई देती है।

12वें विश्व हिंदी सम्मेलन की सफलता के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ।

डॉ. आशीष कंधवे
मोबाइल : +91-9811184393
ई-मेल : editor.gagananchal@gmail.com

हिंदी कुंभ

गगनांचल
साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

वर्ष 46 अंक 1-2 जनवरी - अप्रैल 2023
12वां विश्व हिंदी सम्मेलन विशेषांक

गिरमिट के समय

दीन दुखी मजदूरों को ले कर था जिस वक्त जहाज सिधारा
चीख पड़े नर-नारी, लगी बहने नयनों से विदा-जल-धारा
भारत देश रहा छूट अब मिलेगा इन्हें कहीं और सहारा
फीजी में आये तो बोल उठे सब आज से यह देश हमारा।

गिरमिट शर्त के नीचे उन्हें करना जो पड़ा वह काम कड़ा था
मंगल था लहराने लगा जहाँ जंगल ही सब ओर खड़ा था
जीवन घातक कोठरी में करना हर निवास पड़ा था
मौत से जूझ गए ये बहादुर साहस खूब जोश बड़ा था

कोई रामायण बाँच रहा कोई लेकर सत्यनरायण आया।
खूब किया उसका सम्मान कोई अनजान जो आँगन आया।
गिरमिटवालों के साथ था मौसम रंग जमा लिया जो मन आया
खून बहाये तो फागुन आया जो आँसू बहाये तो सावन आया।

खून-पसीना बहाकर भी ये सभी दुख-दर्द को भूल गए थे
एक दवा थी कि लेकर ये निज भारत भूमि की धूल गए थे
किंतु कभी अपमान हुआ तो ये धर्म ही के अनुकूल गए थे
माँ-बहनों की बचाने को इज्जत सैकड़ों फाँसी पे झूल गए थे।

-पं. कमला प्रसाद मिश्र (फीजी)

हिंदी: विश्व की सांस्कृतिक विरासत

डॉ. विनय सहस्रबुद्धे

"हिंदी एक विश्वभाषा है। इस मत की पुष्टि डॉ. ओदोलेन स्मेकल (चेक गणराज्य) के मत की ओर दृष्टिगत करने से हो जाती है। वे कहते हैं - "निस्संदेह हिंदी पूर्ण विकसित भाषा है, जो न केवल अंतरराष्ट्रीय रंगमंच पर प्रवेश कर सकती है, अपितु इसमें उसे मान्यता मिलनी चाहिए। यह तब संभव होगा, जब हिंदी को अधिकाधिक व्यवहार में लाया जाएगा, जब हिंदी अपने देश में लोकाचार और देशाचार की भाषा बन जाएगी। यह ऐतिहासिक घटना कब होगी ? यह हम भारतवासियों पर निर्भर है।"

आज हिंदी भाषा के संदर्भ में हम सबको चिंतन करना चाहिए कि सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों के अलावा प्रयोजनपरक संदर्भ में यह किस स्तर तक समायोजित और उपयोगिता में है। हिंदी हो या फिर कोई और भाषा, अंतरराष्ट्रीय संदर्भ में उसका प्रयोजनमूलक होना अत्यंत आवश्यक है।"

भाषा संवाद स्थापित करने का एक सशक्त माध्यम होती है। इसके माध्यम से मनुष्य अपने भावों को अभिव्यक्त कर पाता है। सम्पूर्ण मानव-जगत की यही विशेषता है, जो उसे अन्य प्राणियों से अलग करती है। भाषा एक संस्कृति है, जिसके भीतर भावनाएँ, विचार और सदियों से चली आ रही जीवन-पद्धति के तत्व समाहित होते हैं। परम्पराओं और संस्कृतियों को जोड़े रखने की एक कड़ी है भाषा। यह किसी भी समाज की संस्कृति की संवाहक होती है।

बात जब हिंदी भाषा की होती है, तो हम देखते हैं कि कैसे स्वदेशी, स्वभाषा एवं स्वभूषा का सम्यक् परिचय एवं लोगों को गौरवान्वित करने वाली यह भाषा, भारतवर्ष की प्रथम संपर्क भाषा के रूप में निरंतर गतिमान है। अगर हम हिंदी भाषा के विकास-यात्रा का उल्लेख करें, तो यह कहना गलत नहीं होगा कि गत सौ वर्षों में हिंदी का एक भाषा के रूप में बहुत विकास हुआ है और दिन-प्रतिदिन इसमें और वृद्धि हो रही है। हिंदी भाषा का इतिहास लगभग एक हजार वर्ष पुराना माना गया है। संस्कृत भारतवर्ष की सबसे पुरातन भाषा है, जिसे आर्य भाषा या देवभाषा के नाम से भी जाना जाता है। ऐसा माना जाता है कि हिंदी इसी आर्य भाषा की उत्तराधिकारिणी है। हम इसे ऐसे भी कह सकते हैं कि हिंदी का जन्म संस्कृत के ही कोख से हुआ है।

ऐसा माना गया है कि हिंदी भाषा से कई आधुनिक भारतीय भाषाओं और उपभाषाओं का उद्भव हुआ है, जिसमें शौरसेनी (पश्चिमी हिंदी, राजस्थानी और गुजराती), पैशाची (लंहदा, पंजाबी), ब्राचड़ (सिन्धी), खस (पहाड़ी), महाराष्ट्री (मराठी), मगधी (बिहारी, बांग्ला, उड़िया और असमिया) और अर्ध मगधी (पूर्वी हिंदी) शामिल है।

हम जानते हैं कि विश्व भाषा, उस प्रत्येक भाषा को कहा जा सकता है जिसका इस्तेमाल करने वाले अकाधिक देशों में बसे हुए हों और उसे बोलने-समझने वालों का विस्तृत भौगोलिक विस्तार हो। आज भारत के बाहर म्यांमार, श्रीलंका, इंडोनेशिया, मलेशिया, कंबोडिया, त्रिनिदाद और टोबैगो, गयाना, कनाडा, इंग्लैंड और संयुक्त राज्य अमेरिका आदि विभिन्न देशों में न केवल हिंदी भाषी प्रचुर संख्या में हैं बल्कि इस भाषा का अध्ययन-अध्यापन भी हो रहा है। विश्व के लगभग 180 विश्वविद्यालयों और शैक्षणिक संस्थानों में हिंदी का शिक्षण एवं प्रशिक्षण चल रहा है।

निश्चित तौर पर, विश्व की सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषाओं में से हिंदी एक प्रमुख भाषा है। उपयोग अर्थात, बोलने, समझने और प्रयोग की दृष्टि से देखें तो हिंदी ही ऐसी भाषा है, जिसे विश्व-स्तर पर प्रथम भाषा के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

मुझे यह बताते हुये अत्यंत हर्ष हो रहा है कि भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद ने भी हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु अनेकों कदम उठाए हैं,जिनमें विश्व के अनेकों विश्वविद्यालयों में हिंदी चेयर की स्थापना, विदेश स्थित भारतीय सांस्कृतिक केन्द्रों में हिंदी का पठन-पाठन प्रमुख है। हिंदी सीखने के बाद विदेशी नागरिक अपने देश में अनुवादक, आशु-अनुवादक,

अध्यापक इत्यादि पदों पर नियुक्त हो रहे हैं और हिंदी के प्रचार-प्रसार में अपनी महती भूमिका निभा रहे हैं।

जहां एक ओर तकनीक और प्रौद्योगिकी के विकास के साथ हिंदी का वैश्वीकरण हो रहा है, वहीं दूसरी ओर प्रवासी भारतीयों के लेखन के कारण भावनात्मक संबंधों में भी वृद्धि हो रही है। हिंदी भाषा के कारण ही भारत के साथ प्रवासियों के रिश्ते प्रगाढ़ हुए हैं, जिससे विश्व में हिंदी की लोकप्रियता में भी वृद्धि हुई है। हिंदी भाषा के प्रति सरोकार बढ़ा है। हम आने वाले समय में हिंदी भाषा और इसके साहित्य के प्रति जागरूकता को भारतीय सीमाओं के पार और मजबूत होते हुए देखने वाले हैं।

समय की मांग है कि विश्व-स्तर पर सम्मेलनों, गोष्ठियों एवं पठन-पाठन के माध्यम से हिंदी को और बढ़ावा दिया जाए, जिससे हिंदी भाषा की महत्ता से वैश्विक समुदाय और बेहतर तरीके से परिचित हो सके और इसके साथ ही हिंदी साहित्य वैश्विक साहित्य में अपनी उपस्थिति को और मजबूत कर सके। आज के समय में इंटरनेट के मदद से हिंदी भाषा और भी स्वीकार्य और लोकप्रिय हो रही है। इंटरनेट के माध्यम से हिंदी पत्रकारिता एवं साहित्य विश्व भर में प्रसारित हो रहे हैं।

आज के परिदृश्य में, प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी के नेतृत्व में भारत सरकार हिंदी को सुदृढ़ करने हेतु अनेकों कदम उठा रही है। हिंदी की धरोहर को मजबूत बनाए रखने के लिए हमें लोगों में हिंदी के प्रति संवेदनशीलता पैदा करनी होगी। साथ ही साथ, कुछ महत्त्वपूर्ण नीति-निर्माण भी करने होंगे ताकि इसका विरूपण न हो सके, और हम आने वाली पीढ़ी को हिंदी के उसके मूल स्वरूप में सौंप सकें।

एक तरफ जहां भारत सरकार दशकों से हिंदी को एक अन्य भाषा-शैली के रूप में स्थापित कर रही है, वहीं दूसरी तरफ अन्य राज्यों की मातृभाषाओं पर भी विशेष बल दे रही है। एक माता जैसे अपने शिशु का लालन-पालन करती है, उसी प्रकार से हमारी मातृभाषा भी संस्कृति का लालन-पालन करती है। मातृभाषा किसी व्यक्ति, समाज, संस्कृति या राष्ट्र की पहचान होती है। भारतवर्ष की सभी मातृभाषाओं का अपना गौरवशाली इतिहास रहा है, और भारतीयता की जड़ों को मजबूत करने में इन भाषाओं का महान योगदान रहा है। ऐसे में हिंदी को लेकर भी हमें किसी पूर्वाग्रह के बिना यह समझना चाहिए कि हिंदी का किसी स्थानीय भाषा से कोई संघर्ष नहीं है। हिंदी भारत की राजभाषा है और सभी भारतीय भाषाओं की सखी है। हिंदी भाषा की महत्ता को गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर ने बड़े सटीक तरीके से प्रस्तुत करते हुए कहा था कि "भारतीय भाषाएं नदियां हैं और हिंदी महानदी"।

आज के इस "न्यू इंडिया" में विगत 8 वर्षों से हमारे देश के माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जो मूलतः गुजरात प्रदेश से आते हैं, अपने विदेश के दौरों में प्रायः हिंदी में ही भाषण देते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि हमारी मातृभाषा अलग हो सकती है परंतु हिंदी भाषा का स्थान प्रमुख है। राजभाषा के रूप में हिंदी हम भारतीयों को एकात्मकता का भाव सिखाती है। हिंदी भाषा भारत के विभिन्न क्षेत्रों के लोगों को एक साथ लाने में मदद करती है। हिंदी हमें प्रेम, स्नेह, करुणा और ममता सिखाती है। ये परिवार एवं समाज को एक कड़ी में बांधकर रखते हुए आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है। इस दृष्टि से देखें तो हिंदी सिर्फ एक भाषा नहीं बल्कि 'सम्पूर्ण संस्कृति' है।

विश्व में हिंदी के जागरूकता निर्माण में विश्व हिंदी सम्मेलनों की भूमिका स्वागत-योग्य है। हम सब जानते हैं कि विश्व हिंदी सम्मेलन हिंदी भाषा का सबसे बड़ा अन्तर्राष्ट्रीय आयोजन है, जिसमें भारत ही नहीं अपितु विश्व के अनेकों देश शामिल होते हैं। इस सम्मेलन में विश्व-भर से हिंदी विद्वान, साहित्यकार, पत्रकार, भाषाविद तथा हिंदी प्रेमी एकत्रित होते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी भाषा की प्रतिष्ठा और प्रचार-प्रसार हेतु आयोजित होने वाले इस सम्मेलन ने हिंदी को एक प्रभावशाली भाषा बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यही कारण है कि आज वैश्वीकरण के दौर में, पूरे विश्व-स्तर पर हिंदी एक प्रभावपूर्ण एवं लोकप्रिय भाषा बनकर उभरी है। वर्ष 2023 के फरवरी माह में आयोजित होने वाले इस सम्मेलन में एक बार फिर हम सभी इस महाकुंभ के साक्षी बनने वाले हैं।

हिंदी के महान साहित्यकार भारतेंदु हरिश्चंद्र ने ठीक ही कहा है कि-

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।

बिन निज भाषा-ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।।

"निज भाषा उन्नति" के बिना समृद्ध एवं गौरवशाली राष्ट्र की कल्पना संभव नहीं है। हम सभी को अपने हृदय की गहराइयों में इस सीख को गांठ बांध लेना चाहिए और मनसा, वाचा, कर्मणा से हिंदी की सेवा में जुट जाना चाहिए ताकि इस अमूल्य धरोहर का संरक्षण, संवर्धन एवं प्रचार-प्रसार हो सके।

समस्त हिंदी प्रेमियों से मेरा एक विनम्र अनुरोध हैं कि हम, दो हिंदी जानने वाले जब-जब मिलते हैं तो हिंदी में ही बातचीत का आग्रह रखें। अगर हिंदी आसानी से बोलने की क्षमता रखने वाले हिंदी में नहीं बात करेंगे और अंग्रेज़ी में बात करने में अधिक प्रतिष्ठा का अनुभव करेंगे या फिर ऐसा मानेंगे तो हिंदी को हम विश्व-भाषा कैसे बना पायेंगे? हिंदी में गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र, नर्मदा, झेलम, सिंधु, कावेरी, गोदावरी और देश की तमाम नदियां हैं! मगर इन सभी को अगर विशाल विश्व समुदाय - सागर में मिलना है तो आवश्यक है कि हम हिंदी का प्रवाह बहता रखें, उसे बिना किसी रोक टोक बहने दें! मगर हिंदी का प्रवाह तभी अक्षुण्ण रह पाएगा जब हम हिंदी में बातचीत को न्यूनता नहीं मानेंगे।

इसी क्रम में हमें हिंदी को मिलावट से भी बचाना है। हिंदी में बात करते समय जब हम अंग्रेज़ी शब्द उपयोग में लाते हैं तब हम हिंदी का नुक़सान करते हैं! जैसे गंगा को मैली होने से बचाना आवश्यक है उसी तरह हिंदी को भी मिलावट से बचाना ज़रूरी है !!

❋

अध्यक्ष, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद।

सतरूपा-सतरंगी देशांतरी हिंदी

प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित

फ़ीजी में 51 प्रतिशत भारतीय हैं। यहाँ की सत्ता में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। गिरमिट-काल में इन्होंने अत्याचारों को झेलने के लिए कई भजन मण्डलियों का गठन किया था, जिससे रामायण गायन, निरगुन, पद, भजन, कीर्तन, रामलीला, कृष्ण (रास) लीला आदि सांस्कृतिक कार्यक्रम समूचे देश में छा गए। फ़ीजीवासियों ने सनातन धर्म, 'आर्य समाज', गुरुद्वारा कमेटी, 'आँध्र संगम' आदि संस्थाओं के सहयोग से 1916 में भारतीय (हिंदी) पाठशालाएँ स्थापित कीं। कालक्रम में यहाँ 'शांतिदूत', 'फ़ीजी समाचार', 'राजदूत', 'वृद्धि', 'जागृति', 'जय फ़ीजी', 'फ़ीजी संदेश', जैसी श्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिकाएँ शुरू हो गयीं। इनसे स्वतंत्र लेखन को बढ़ावा मिला। नागरिकों की माँग पर फ़ीजी रेडियो से प्रति सप्ताह पचहत्तर घंटे हिंदी कार्यक्रम प्रसारित होने लगे।

'विश्व हिंदी' के सात रूपों को चिह्नित किया गया है। इन सातों रूपों को तीन कोटियों के अंतर्गत बाँटकर देखा जा सकता है-

1. भारतवंशी बहुल राष्ट्रों की हिंदी, जैसे- मॉरीशस की मॉरिशियन हिंदी, फ़ीजी की 'फ़ीजियन' हिंदी, सूरीनाम और ब्रिटिश गुयाना की 'सरनामी' हिंदी, त्रिनीडाड की 'त्रिनी' हिंदी और दक्षिण अफ्रीका (नेटाल) में प्राप्त 'नेटाली' हिंदी।

2. भारत के पड़ोसी देशों की हिंदी, जैसे- नेपाल की 'नेपाली', जो विदेशी न होकर भारत की भी एक मान्यता प्राप्त राजभाषा है। दूसरी है ताजुबेकिस्तान की 'ताज़िकी' हिंदी। पाकिस्तान की राजभाषा उर्दू भी यदि देवनागरी में लिख दी जाए तो वह हिंदी ही होगी।

3. आप्रवासी बहुल राष्ट्रों की हिंदी- योरुप, अमरीका, आस्ट्रेलिया और खाड़ी देशों में भारतीय बहुत बड़ी संख्या में बसे हैं। वहाँ पंजाबी, गुजराती, तमिल, केरली-सभी परस्पर हिंदी बोलते हैं। कई देशों में हिंदी 'वोट बैंक' से जुड़ गयी है। आज संसार के लगभग 140 देशों में हिंदी भाषी विद्यमान हैं, इसलिए इसके विश्वभाषा होने में अब कोई संदेह नहीं रह गया है।

'विश्वभाषा' का दूसरा अर्थ है- वैश्विक चेतना से युक्त भाषा। इस दृष्टि से संस्कृत की पोष्य पुत्री हिंदी का अपना एक सार्वभौम अस्तित्व है। हिंदी डायसपोरा के क्रम में क्रमशः विचारणीय हैं-

1. मॉरीशस की हिंदी- हिंद महासागर से लगभग ढाई हजार मील दूर बसा हुआ यह द्वीप 'लघु भारत' कहा जाता है। यह टापू यों तो बहुवर्गीय समाज है, क्योंकि यहाँ अंग्रेज, फ्रांसीसी, हिंदू, मुसलमान, चीनी, अफ्रीकी कई नस्लों के लोग रहते हैं, फिर भी यह भारतवंशी बहुल राष्ट्र है। यहाँ 69 प्रतिशत भारतीय मूल की आबादी है। कुल आठ लाख की आबादी में लगभग पाँच लाख नागरिक हिंदी भाषी हैं। 1890 ई0 में अंग्रेजों ने यहाँ भारत से 'गिरमिटिया' मजदूरों को ले जाकर बसाया था और उनकी सहायता से फ्रांसीसियों को परास्त करके एकाधिकार स्थापित कर लिया था। उन्होंने भारतीयों को यह प्रलोभन दिया था कि यह 'मारीच' देश है। राम ने अपने बाण से स्वर्ण मृग को मारकर यहीं फेंका था, इसलिए यहाँ पत्थर काटकर सोना निकाला जाएगा। भारत में इस आशय का एक लोकगीत गाया जाता था- 'सोनवा के कारन बलम गइलै मरिच देस।' 1934 में एक करारनामे के तहत अनेक मजदूर 'करवा' जहाज में भरकर यहाँ लाये गये। उनके साथ पहले पशुवत् व्यवहार किया गया। उन्होंने जंगलों-पहाड़ों को काट-काटकर गन्ने की खेती की। इन्हें 'कुली' कहकर पुकारा जाता था। उस यंत्रणा के दौरान अनेक लोग मर मिटे। कुछ लौट आये पर अधिकतर लोग वापसी का संसाधन न होने के कारण वहीं बस गये। वे रामायण, बिरहा, आल्हा

आदि को गा-गाकर समय काटते रहे। धीरे-धीरे उनके अपने संगठन बन गये। 1967 में वहाँ आम चुनाव हुआ। भारतवंशी डॉ. शिवसागर राम गुलाम प्रधानमंत्री हुए। वहाँ के अन्य निवासियों-(हब्सी, चीनी, अंग्रेज, फ्रेंच आदि) की स्पर्धा में अपनी अस्तित्व-रक्षा के लिए यह आवश्यक हो गया कि वे हिंदी के माध्यम से भारतीय संस्कृति का अभियान चलाएँ। उन्होंने त्योहारों के बहाने हिंदी भोजपुरी की कई संस्थाएँ स्थापित कीं। गाँव की 'बैठकों' में हिंदी की पढ़ाई शुरू की। कॉलेजों में हिंदी विभाग खोले गये। रेडियो और टी0वी0 में हिंदी कार्यक्रम प्रसारित होने लगे। देखते-देखते हिंदी फिल्में वहाँ लोकप्रिय हो गयीं। इस समय वहाँ कई हिंदी दैनिक पत्र प्रकाशित हो रहे हैं। हिंदी प्रचारिणी सभा, महात्मा गाँधी संस्थान, आर्य समाज, सनातन धर्म सभा आदि संस्थाएँ हिंदी आयोजनों में तत्पर हैं। अब तक वहाँ दो विश्व हिंदी सम्मेलन और कई रामायण महोत्सव सम्पन्न हो चुके हैं। मॉरीशस के पाँच शहरों में हिंदी का अच्छा बोल-बाला है। वहाँ की राजभाषा यद्यपि अंग्रेजी है, फ्रेंच का भी काफी प्रचलन है, बोलचाल के रूप में वहाँ एक 'क्रियोल' विकसित हो गयी है, फिर भी हिंदी का वर्चस्व सर्वाधिक है।

मॉरीशस की हिंदी मूलतः भोजपुरी पर आधारित है। उदाहरणार्थ एक वाक्य द्रष्टव्य है-'बड़ा खुसी के बात बा कि मॉरीशस से भोजपुरियन भाई लोग अबै तक आपन संस्कृति, धरम, बरत, त्योहार के जिंदा रखले हवन। ''मारिसन हिंदी के कुछ विशिष्ट संज्ञा शब्द हैं- बिफे (गुरुवार), कुसुर (कसूर), ओकाई (उल्टी), पेट झारी (पेचिस), दू दू (दूध), कँवारी (किंवाड़ा), हाली (जल्दी), फाक्तरी (फैक्ट्री), डोल (डलवा), बारी (खेत), कान (केन-गन्ना), बइल (बैल) आदि। 'क्रियोली' के शब्द फ्रेंच और भोजपुरी के मेल से बने हैं। अधिकतर शब्दावली फिल्मों से प्रेरित है। अब तो गाँवों में बसे चीनी लोग भी हिंदी में बात करते हैं। मॉरीशस में लगभग एक हजार लोग हिंदी-शिक्षण से जुड़े हुए हैं। यहाँ की बोलचाल वाली भाषा हिंदी भाषियों के लिए सुगम है, जैसे कुछ वाक्य देखिए-

''हमार कपार बिगरी तो यू सब पोथियन हम चूल्हे में झोंक देअब। हमनी का गुजारा कैस?''

मॉरीशस में हिंदी साहित्य का पुष्कल भाण्डार है। प्रमुख लेखकों में रहे हैं- सोमदत्त बखौरी, ब्रजेन्द्र कुमार भगत 'मधुकर', धुरन्धर वासुदेव विष्णुदयाल, अभिमन्यु अनत आदि। अभिमन्यु के लगभग दो दर्जन उपन्यास, कई काव्य एवं नाटक प्रकाशित हो चुके हैं। भगत जी वहाँ के राष्ट्रीय कवि हैं। मणिलाल डॉक्टर (गुजराती) ने वहाँ गाँधी जी की प्रेरणा से जो आन्दोलन शुरू किया था, उसके अन्तर्गत आज लगभग बीस संस्थाएँ कार्यरत हैं। सम्प्रति विश्वविद्यालय स्तर तक की हिंदी शिक्षा वहाँ सुलभ है।

मॉरीशस का लोक साहित्य भी भोजपुरी के बहुत निकट है। वहाँ किस्सा (लोककथा) बिरहा, बुझउवल, शादी के गीत पर्याप्त मात्रा में प्रचलित हैं। हिन्दू, मुसलमान, मद्रासी, तेलुगु, मराठी ये सब इसी 'क्रियोल' का प्रयोग करते हैं। पत्र-पत्रिकाओं में भी क्रियोल कविताएँ छपती हैं, जैसे-

'घाम के मारल पसीना कोड़े के मारल खून बहय।

सौ ढोये पसिनवा के सौ ढोयें खुनवा मिल के।

असवा को ढोंय ढोंय से गरल होये गनवा।

गनवा से भरल होवे देशवा के खेतवा।

खेतवा से उपजे घर-घर के सोनवा।'

स्पष्ट है कि मॉरीशस की हिंदी का अपना एक विशिष्ट रूप है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी सचिवालय चूँकि मॉरीशस में है, इसलिए उसे विश्व हिंदी का केन्द्र कहा जा सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि भारत के बाद हिंदी का प्रयोग करने वाला संसार का सबसे बड़ा देश है- मॉरीशस। आवश्यकता है कि द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन के प्रस्तावानुसार मोका से हिंदी की मान्यता का अभियान चले, अध्यात्म विज्ञान का समन्वय हो और हम विश्व नागरिक बनें, हिंदी सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अग्रसर हो। इस विश्वव्यापी प्रसार में रामायण की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। अब विश्व पंचायत में इन छोटे-बड़े हिंदी भाषी देशों, विशेष रूप से भारतवंशी राष्ट्रों को नयी विदेशी नीति के अंतर्गत हिंदी संस्कृति से जोड़ना सर्वथा उपयोगी होगा।

2. फ़ीजियन हिंदी:- फ़ीजी में भारतीय 'गिरमिटिया' मजदूरों का आगमन 9 मई 1879 ई0 से शुरू हुआ था। लगभग तिरसठ हजार भारतीय मजदूर वहाँ जाकर बसे। उन्होंने अपने साथ तुलसीकृत रामायण, कबीर भजनावली, आल्हा आदि ग्रन्थों को दैनिक जीवन में स्थापित कर दिया। धीरे-धीरे पूरे देश में इनका प्रचलन हो गया। इस समय हिंदी भारतवंशियों की अस्मिता की प्रतीक है। भारतीय मूल के फ़ीजियन नागरिक भारतीय संस्कृति एवं हिंदी भाषा को बचाने एवं बढ़ाने के लिए हिंदी भाषा के पठन-पाठन की व्यवस्था कर रहे हैं और दैनिक जीवन में हिंदी का भरसक प्रयोग कर रहे हैं। उस देश का एक प्रसिद्ध नारा है-

''उठो, उठो, हो फ़ीजी वालो! अब अपनी आँखें खोलो।

हिंदी ही अपनी भाषा है, हिंदी पढ़ो, लिखो, बोलो।''

इस देश मे हिंदी के अनेक लेखक हुए हैं और कई आज भी सक्रिय हैं, जैसे-

1. कमलाप्रसाद मिश्र 2. विवेकानंद शर्मा 3. मंशी रहमान 4. अमरजीत कँवल 5. जोगिन्द्र सिंह, बलराम, महेन्द्र, विनीता आदि। फ़ीजी इसके कई द्वीप तथा टापू हैं, जिनमें वीतिलेव (सूवा राजधानी) एवं मनुआ लेव प्रमुख हैं। यहीं पुराने गिरमिटियों ने अवधी-भोजपुरी में कई लोकगीतों की रचना की है। जैसे, कुली लाइन कोठरी का सुमिरन मजदूर द्वारा किया गया यह विवरण-

''सब दुख खान सीएसआर की कोठरिया।

याही मँ खाना, याही मँ सोना, याही मँ बहत मोहरिया।''

इन मजदूरों को जो यातनाएँ आरम्भ में झेलनी पड़ी, उनकी एक बानगी इस बिरहा में द्रष्टव्य है, जो झिनकी नामक मजदूरिन से संबद्ध है-

'बिपति झिनकी की को सुनै दइया।

सहेबा है बड़ा पिटैया।'

यहाँ अस्वस्थ हो जाने वाले मजदूर 'सिकन' (सिकमैन) कहलाते थे। घंटी बजने पर वे बर्तन लेकर खाने के लिए घंटों पंक्तिबद्ध रहते थे। उनकी विपत्ति 'आल्हा' की तर्ज पर इस पंक्ति में अंकित है- 'बजै नगाड़ा असपताल मँ सब सिकमनिये होंय तैयार।'

होली, दीवाली, ईद आदि पर्वों पर वहाँ आज भी हिंदी लोकगीतों की गूँज सुनी जा सकती है। वस्तुतः हिंदी वहाँ की जनभाषा है। श्रव्य-दृश्य माध्यमों में इस भाषा के कार्यक्रम निरन्तर प्रसारित होते रहते हैं। इधर हिंदी फिल्मों, सिनेगीतों और संवादों का प्रचलन कई गुना बढ़ गया है। 'फ़ीजियन हिंदी' का व्याकरणिक ढाँचा अवधी, भोजपुरी एवं मानकीकृत खड़ी बोली से अभिन्न है। केवल कुछ शब्द एवं मुहावरे भिन्न हैं।

फ़ीजी में 51 प्रतिशत भारतीय हैं। यहाँ की सत्ता में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। गिरमिट-काल में इन्होंने अत्याचारों को झेलने के लिए कई भजन मण्डलियों का गठन किया था, जिससे रामायण गायन, निरगुन, पद, भजन, कीर्तन, रामलीला, कृष्ण (रास) लीला आदि सांस्कृतिक कार्यक्रम समूचे देश में छा गए। फ़ीजीवासियों ने सनातन धर्म, 'आर्य समाज', गुरुद्वारा कमेटी, 'आँध्र संगम' आदि संस्थाओं के सहयोग से 1916 में भारतीय (हिंदी) पाठशालाएँ स्थापित कीं। कालक्रम में यहाँ 'शांतिदूत', 'फ़ीजी समाचार', 'राजदूत', 'वृद्धि', 'जागृति', 'जय फ़ीजी', 'फ़ीजी संदेश', जैसी श्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिकाएँ शुरू हो गयीं। इनसे स्वतंत्र लेखन को बढ़ावा मिला। नागरिकों की माँग पर फ़ीजी रेडियो से प्रति सप्ताह पचहत्तर घंटे हिंदी कार्यक्रम प्रसारित होने लगे।

यहाँ विगत दशक में हिंदी को अंग्रेजी के साथ राजभाषा की सांविधानिक मान्यता प्राप्त हो गयी है। भारतीय उच्चायोग ने भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र के माध्यम से फ़ीजी के छात्रों को हिंदी के अध्ययन हेतु पत्राचार पाठ्यक्रम, छात्रवृत्ति आदि की जो सुविधा प्रदान की है, उससे हिंदी को बहुत बढ़ावा मिला है। यहाँ 'हिन्दुस्तानी' का प्रचलन अपेक्षाकृत अधिक है। फ़ीजीवासी उर्दू, फारसी बहुला भाषा में पूर्वी अवधी एवं भोजपुरी के अधिकाधिक शब्दों का प्रयोग करते हैं इसे भोजपुरी कहना तर्कसंगत नहीं है। फ़ीजियन हिंदी का व्याकरणिक ढाँचा हिंदी से बहुत पृथक् नहीं है। केवल शब्दार्थ का अन्तर है, जो हिंदी की बोलियों में भी सर्वत्र लक्षित होता है। अस्तु, फ़ीजियन हिंदी का कोई स्वतंत्र अस्तित्व तो मान्य नहीं है। उसे भोजपुरी कहना भी नितांत निराधार होगा। संप्रति फ़ीजियन हिंदी का निजी अस्तित्व उसी रूप में ग्राह्य है, जैसे ब्रिटिश अंग्रेजी से भिन्न अमरीकी अंग्रेजी का।

फ़ीजियन हिंदी का अधिकांश शब्दावली अवधी भोजपुरी से सम्बद्ध हैं, जैसे- कुछ शब्द द्रष्टव्य हैं- केरा (केला), भारा (भाड़ा) पलवार (परिवार), हरदी (हल्दी), निब्बू (नींबू) गटई (गला), चाउर (चावल), खस्सी (बकरा), गोस (गोश्त), बीया (बीज), पहुना (अतिथि), बरखा (वर्षा), संझा (संध्या), गोड़ (पैर), जून (दिन का एक खण्ड अथवा अर्द्ध दिवस), मूड़ (सिर), हर (हल) आदि। कुछ शब्द देशज भी हैं, जैसे- मोतो (माला), बात (भाषा) आदि।

निष्कर्ष यह है कि फीजियन हिंदी का शब्द भाण्डार मानक हिंदी, (अवधी), अंग्रेजी और देशज शब्दों के मेल से बना है। कुछ प्रयोग भिन्न हैं, जैसे- कौन ची (कौन चीज), वस्तिन (वास्ते), संधे (संगे), पतरा (पतला) आदि। कुछ क्रियायें भी अलग दिखायी देती हैं, जैसे- जाये सकेगा (जा सकेगा), आये सको (आ सको)। 'रहा' की जगह 'था' का प्रयोग। जैसे- ऊ गया रहा (वो गया था), ऊ खरीदिस (उसने खरीदा), इत्यादि। यह ज्ञातव्य है कि अंग्रेजी के शब्द फ़ीजी में दिनोंदिन बढ़ते जा रहे हैं। वस्तुतः फ़ीजियन हिंदी बोलचाल की भाषा के रूप में तो काफी लोकप्रिय है, किन्तु कामकाजी भाषा, राजभाषा, संचार भाषा रूप में उसे संघर्ष करना है। इन भाषा में एक मिठास है, जैसे- इस कहरवा लोकगीत की पंक्तियों में देखिए-

'पुरबा चली रे बयरिया गेंदवा गम-गम गमके ना।

हमके माथे की टिकुलिया रतिया चम-चम चमके ना।

हमरे हाथे के कँगनवा रतिया खन-खन खनके ना।

हमरे गोड़े की पयलिया रतिया छम-छम छमके ना।'

ऐसी मिठास न अंग्रेजी में मिल सकती है, न क्रियोली में। इसीलिए वहाँ हिंदी अपरिहार्य बनी हुयी है और इसीलिए उसका भविष्य उज्ज्वल है।

3. सरनामी हिंदी:- सूरीनाम की भाषा को सरनामी या सरनामी हिन्दुस्तानी कहा जाता है। इसमें कई बोलियों का मिश्रण है, मुख्यतः अवधी, भोजपुरी, मगही, उर्दू, का। डच, जवानीज, अंग्रेजी, आदि का। भी प्रभाव है। सूरीनाम में कुछ जन जातियाँ पहले से रह रही थीं, जैसे बुश, नीग्रो, क्रियोल, जावानीज, आदि। 1876 से 1916 ई0 के बीच वहाँ भारतीय गिरमिटिया मजदूर पहुँचे। तब वहाँ डच-शासान था। धीरे-धीरे भारतीयों का बाहुल्य हो गया। इनकी भाष को 'कुली भाषा' नाम दिया गया। कालक्रम में इनकी सरनामी को सरकारी मान्यता प्राप्त हो गयी। यों, सूरीनाम में सोलह मातृभाषायें हैं। डच वहाँ की राष्ट्र भाषा है। सम्प्रति इस देश में अफ्रीकी, चीनी, इण्डोनेशियन तथा भारतीय मूल के नागरिक रह रहे हैं। हाँ, बहुमत भारतीयों का है। ये भारतीय हॉलैण्ड-इंग्लैण्ड समझौते के अंतर्गत आकाठी (एजेन्टों) के माध्यम से 130 वर्षों में भारत से ले जाये गये थे। कुछ सूर्यवंशी रेमेटिक रेड इण्डियन पहले से रह रहे थे। सूरीनाम की आबादी लगभग साढ़े चार लाख है। वहाँ की भाषा में 40 प्रतिशत डच के शब्द हैं। समय-समय पर वहाँ भारतीय मूल के लोग राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति और मंत्री चुने गये। इन भारतवंशियों ने बहुत बड़ी संख्या में साहित्य की रचना की है। वहाँ से हिंदी में समय-समय पर अनेक पत्र-पत्रिकायें निकली हैं और निकल रहीं है। इनकी अपनी कई साहित्यिक संस्थाएँ हैं। आर्य समाज, सनातन धर्म सभा आदि के माध्यम से वहाँ हिंदी की काफी प्रगति हुयी है। गाँवों में भी हिंदी-पाठशालायें चल रही हैं। वहाँ हिंदी साहित्य सम्मेलन, हिंदी प्रचार सभा, राष्ट्र भाषा प्रचार समिति वर्धा आदि संस्थाएँ हिंदी परीक्षायें चलाती हैं। भारत से लगभग 16 हजार मील दूर यह करेबियन देश हिंसक जानवरों से पटा पड़ा था। हाँ, जमीन बहुत उर्वर थी। एटलांटिक सागर के निकट अमीजन, सूरिनाम, नाइकेरी आदि नदियों के मध्य यह देश भारतीयों के खून-पसीने के बल पर कुछ ही दिनों में सरसब्ज हो गया। 'एग्रीमेन्ट' के समाप्त होने पर अनेक भारतीय मजदूर वहीं बस गये। इस समय सूरीनाम में लगभग 170 हिन्दू मन्दिर हैं। रामचरितमानस, हनुमान चालीसा, सत्यनारायण कथा आदि अनेक धार्मिक ग्रंथ हैं, जिनके द्वारा वे हिन्दू संस्कृति को सुरक्षित रखे हुये हैं।

इस देश में सरनामी हिंदी का लेखन दो रूपों में किया जाता है। एक रोमन में, दूसरे-देवनागरी में। सरनामी का एक व्याकरण शुरुआती दौर में बनाया गया था। कुछ व्याकरणिक चिंतन जीत नारायन ने किया। इन्हीं के सहारे विश्वविद्यालयों में सरनामी की पढ़ाई होती है। रेडियो और टी0वी0 द्वारा उसका प्रसारण भी हो रहा है।

सूरीनाम में मानक हिंदी का भी प्रयोग किया जाता है और सरनामी का भी। हिंदी-प्रयोग तो भारत में लिखी जाने वाली हिंदी के समतुल्य है, जबकि सरनामी काफी कुछ भिन्न दिखायी देती है। इसके कुछ प्रयोग द्रष्टव्य हैं-

1. 'ऊ बेटवा जब तक हमार पकावल न खात रहा, ओकर पेट न भरत रहा। जब तक दुई घण्टा बैठके हमके बात न करत रहा तब तक न सूतत रहा, न सूते देत रहा।'

2. 'जो जहाजि बेहाल होइ गवा, मर गवा। फेंक दो पानी में। हमरा मेहरुवा बेमार भवा। लड़कवे खोखत बाटे। वोहि चिरौरि करै वालेन के पूत हम बाटे।'

सरनामी में लिखी गयी कविताओं की भाषा का अपना एक स्वतंत्र रूप है। उदाहरणार्थ- महादेव खुनखुन, मुंशी रहमान, जीत नारायन, सुरजन परोही, आदि की रचनायें द्रष्टव्य हैं-

''नरक-सरग कोई जात नहिं, कोई हँसत के जाई कोई रोव के।''

ज्ञातव्य है कि महादेव जी ने लगभग 150 दोहे रचे हैं। उन्होंने ''हिन्दुस्तानी' हमार महतारी भाषा बा'' का आन्दोलन चलाया और सरनामी को समृद्ध किया।

कवि श्री निवासी के कई सरनामी काव्य प्रकाशित हैं। उन्हें कई पुरस्कार भी प्राप्त हो चुके हैं। कुछ ऐसी ही भूमिका सुरजन परोही की रही है। 'कबीर पंथ' का आशय लेकर उन्होंने कुम्हार-कला को कविता में ढाल दिया है।

सरनामी कविता में मुंशी रहमान का विशिष्ट योगदान रहा है। मुंशी जी ने दोहा-चैपाई शैली में कई रचनायें की हैं। एक उदाहरण-

''है ईश्वर ते बिनती मोरी। कबी पै नेक नजर रहै तोरी।

मैं मतिमंद कहूँ केहि भाँती। कबहुँ न भगत की जीभ अघाती।''

मुंशी जी ने कुण्डलिया, चैताल, उलारा आदि कई छन्दों का प्रयोग किया है। जैसे-

''नहिं भरोस तन कौ तनिक पल भाँजत मिटि जाय।

जस बुल्ला जल पर उठत, छिन मँह जात बिलाय।''

स्पष्ट है कि मुंशी रहमान की सरनामी कविता सही अर्थों में जन कविता है।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण कवि हैं- चन्द्रमोहन रणजीत सिंह। उन्होंने कविता, नाटक अर्थात् गद्य और पद्य दोनों में लेखन किया है। संगीत प्रभाकर, 'चन्द्र मुक्तावली' आदि उनकी चर्चित कृतियाँ हैं। उनकी कविताओं में राष्ट्रीयता का पुट हैं, जैसे- ''दुनिया में एक सितारा, सिरनाम देश हमारा, धरती का सभी दुलारा।'' ज्ञातव्य है कि सूरीनाम

को श्रीराम देश भी कहा जाता है और सूर्यदेश भी। चन्द्रमोहन में कई कविताएँ लिखी हैं एक बवनगी।

तेरी महिमा अगम कहाया, जे सकल जगत में छाया।

अन्यान्य कवियों में उल्लेखनीय हैं-चित्रा गयादीन, पुष्पिता, अवस्थी महारथ सिंह आदि।

सरनामी हिंदी में लोकगीतों का भी भाण्डार है। वहाँ सोहर, 'चटनी' बहुत ही लोकप्रिय हैं। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं-

'चलो तूर लाई राजा मेहनिया के द्वार।

सोने के थारी मा जेवना परोस्यों। जेवना के जेवँइया बसैं गंगा पार।

सोने के गेडुवा मा गंगा जल पानी। गेडुवा के घोटइया बसै गंगा पार।'

तथा- 'नन्द घर बाजै बधइया लाल हम सुनि कै आये।'

स्पष्ट है कि ये लोकगीत भारत से गये हैं और भारतीय संदर्भों के साथ गाये जाते हैं। इनके कारण सूरीनाम में भारतीय संस्कृति न केवल सुरक्षित है, बल्कि सजीव है।

सरनामी की व्याकरणगत विशेषतायें प्रयोगों के माध्यम से ग्राह्य हैं। उनके संज्ञा शब्दों में प्रायः र की जगह ल होता है। जैसे-परिवार की जगह पलवाल। इसमें बहुवचन में न का प्रयोग अधिक पाया जाता है। जैसे- लड़कियों के लिए 'छोड़ियन।' अधिकतर शब्द अवधी से लिये गये हैं। जैसे-नेर (पास), उढ़निया (चुनरी) अज्वा अज्या (आजा-आजी)। सरनामी हिंदी में लिंग भेद प्रायः नहीं मिलता। वचन में भी प्रायः परिवर्तन नहीं किया जाता है। उदाहरणार्थ-'कलम अच्छा नहीं, 'नुकीली नाखून', 'पूरा धरोहर', 'सुन्दर ऋतु सुहाय' आदि प्रयोग देखे जा सकते हैं। डच के कई शब्द इस भाषा में घुस गये हैं। अव्यय शब्दों में भी काफी नयापन दिखाई देता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि सूरीनाम की सरनामी हिंदी एक ओर पूर्वी अवधी के बहुत निकट है और दूसरी ओर उसकी अपनी स्वतंत्र भाषिक प्रकृति भी है। वहाँ औपचारिक रूप से खड़ी बोली हिंदी का प्रचलन भी है और इस सरनामी का भी। निःसंदेह देशान्तरी हिंदी का यह एक विशिष्ट रूप है।

गुयाना की हिंदी:- सूरीनाम में प्रचलित हिंदी से काफी मिलती जुलती है- पड़ोसी देश ब्रिटिश गुयाना की हिंदी। यह देश भी गिरमिटिया प्रधान रहा है, किन्तु पिछले दशकों में उसका बिलायतीकरण ज्यादा हो गया है। संप्रति वहाँ अंग्रेजी का वर्चस्व है। नयी पीढ़ी हिंदी से दिनोंदिन दूर जा रही है। दूसरी ओर इस बीच हॉलैण्ड या नीदरलैण्ड में सूरीनाम निवासी (मूल भारतीय) बहुत बड़ी संख्या में प्रव्रजित हो गए हैं, इसलिए डच के साथ-साथ उस देश में भी हिंदी का यथेष्ट प्रवेश हो गया है। चूँकि वहाँ का राजधानी नगर- 'एम्सटर्डन' यूरोप का प्रवेश द्वार कहा जाता है, इसलिए सम्भावना यह है कि इस केन्द्र से यूरोप महाद्वीप में हिंदी का प्रचार-प्रसार होगा। यह देशान्तरी हिंदी का एक नया क्षितिज है।

4. ताज़िकी हिंदी:- हिंदी भाषा का सम्बन्ध अनेक विदेशी भाषाओं से है। चूँकि हिंदी संस्कृत की उत्तराधिकारिणी है और चूँकि संस्कृत भाषा यूनान, मिश्र, अरब, इटली (रोम) आदि देशों में सांस्कृतिक तथा व्यापारिक स्तर पर हजारों वर्षों से माध्यम भाषा के रूप में प्रयुक्त होती रही है, इसलिये इन भाषाओं के अनेक शब्द संस्कृत में घुल-मिल गये हैं। यह सुविदित है कि वैदिक संस्कृत और 'जिन्दवस्ता' में काफी साम्य है। कुरान में जिस अरबी का प्रयोग हुआ है, उसके बहुत सारे रूप संस्कृत के माध्यम से हिंदी में अभी सुरक्षित हैं। जैसे- संस्कृत का कर्पूर शब्द अरबी में 'काफूर' हो गया है। ताम्बूल का 'तम्बोल' हो गया और 'नीलोत्पल' का 'नीलोफर' हो गया। इसी प्रकार के और कई शब्द हैं, जिनमें न्यूनाधिक अन्तर दिखायी देता है, किन्तु मूल समरूप हैं।

वस्तुतः अरब का जब ईरान तक विस्तार हुआ तो वहाँ की भाषा में अरबी के कई आ गये। दूसरी ओर रूस और अफगानिस्तान के मध्यवर्ती देश ताजिकिस्तान में जो 'ताज़िकी' भाषा प्रयुक्त होती है, उसमें अरबी, फारसी के माध्यम से हिंदी के सैकड़ों शब्द पहुँच गये। इस प्रकार अरबी-फारसी-ताज़िकी की शब्दावली हिंदी से एकाकार हो गयी।

स्पष्ट है कि 'ताजिकी' और हिंदी में अद्भुत साम्य है। ताज़िकी की लिपि रोमन के निकट है और भाषा हिंदी के। वस्तुतः वह अरबी, फारसी बहुला हिन्दुस्तानी का ही एक रूप है। देशान्तरी हिंदी की यह एक विशिष्ट छवि है, जिसे संवर्द्धित और संरक्षित करने की आवश्यकता है।

5. नेटाली हिंदी:- भारत के 'गिरमिटिया' मजदूर एक करारनामे के तहत डेढ़ सौ वर्ष पूर्व दक्षिण अफ्रीका गये। वहाँ नेटाल, केप, फ्री स्टेट, डरबन प्रिटोरिया आदि में उन्हें बसाया गया। नेटाल में वे जो भाषा बोलते थे, उस पर कालक्रम में नेटाली का प्रभाव पड़ा। इन दिनों उसे 'नेटाली हिंदी' कहा जाता है। नेटाल में आर्य समाज ने हिंदी के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। इनमें सर्वाधिक योगदान रहा- स्वामी भवानी दयाल सन्यासी का। पं0 नरदेव वेदालंकार ने वहाँ 1949 में 'हिंदी संघ' की स्थापना की।

इस बीच भारतीय संस्कृति का प्रभाव पड़ा। परिणामस्वरूप नेटाली के स्थान पर मानक हिंदी को अपनाया गया। इस समय भी वहाँ राजकीय विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर हिंदी की पढ़ाई होती

है। दक्षिण अफ्रीका में इस बीच भोजपुरी गीतों का प्रचलन बढ़ा है। इन्हें 'भोजपुरी चटनी' कहा जाता है। विवाह के अवसर पर इन गायकों की बहुत माँग होती है। वे पश्चिमी डिस्को की सुर ताल पर भोजपुरी लोकगीत गाते हैं।

6. त्रिनी हिंदी:- दक्षिण अमेरिका के कैरेबियन समुद्र में दो द्वीपों का एक देश है ट्रिनीडाड टुबैको। 30 मई 1945 को 219 भारतीय मजदूरों को पोर्ट ऑफ स्पेन ले जाया गया। वहाँ लगभग 150 वर्षों से जो भारतीय रह रहे हैं, उनके पूर्वज पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार से गये थे। उनकी भोजपुरी और अवधी भाषा को 'त्रिनी हिंदी' नाम दिया गया। कालक्रम में वहाँ गाँवों में हिंदी पाठशालायें खोली गयीं। यद्यपि वहाँ की मुख्य भाषा अंग्रेजी है, फिर भी बोलचाल में हिंदी बरकरार है। वे मिले-जुले हिंदी शब्द बोलते हैं, जैसे-हॉट (रोटी), तकारी-तलकारी (सब्जी), उरदी (उड़द), छाना (चना), बारा (बड़ा), भेली (गुड़), पिलाऊ (पुलाव), करही (कढ़ी), मुराई (मूली), सुहारी (पूड़ी), झरना (छन्नी), मूड़ी (सिर), उँगरी (उँगली), काड़ा (कड़ा), केरा (केला), नजर (झाड़-फूँक), माई (माता), मराज (महराज), विहान (कल), तिल्लाना (गायन) आदि।

इस देश की संख्या है लगभग 12 लाख, जिसमें 44 प्रतिशत भारतीय हैं। हिंदी कुछ की मातृभाषा है, यों हिन्दुत्व की भाषा है। यहाँ बोलचाल की हिंदी को 'क्रियोल' कहा जाता है। क्रियोलीकृत शब्द हिंदी से कुछ अलग हो जाते हैं, जैसे- मराजिन (महराजिन), कटिया (खाट), सीवाला (शिवालय), बन्डारा (भोज), मूरठी (मूर्ति), ढीलोक (तिलक), कीचरी (खिचड़ी) नीमक (नमक), जण्डी (झण्डी), पन्मासी (पूर्णमासी), महाजिद (मस्जिद), फुआ (बुआ), भिया (भाई), जवाइन (दामाद), भिनोई (बहनोई), पोइया (बाबा), खाली (काकी), बीरा (कंगन), बिलई (बिल्ली), चदर (चादर), खीसा (जेब) आदि।

तात्पर्य यह है कि त्रिनी हिंदी भोजपुरी, अवधी, स्पेनिश के मिश्रण से बनी है। इसमें यत्किंचित् साहित्य भी रचा गया है। कुछ पत्र-पत्रिकायें भी हैं। इसे सुव्यवस्थित करने की आवश्यकता है।

7. रोमा हिंदी:- योरुप में फ्रांस, जर्मनी, चेक के निकटवर्ती क्षेत्रों में सैकड़ों वर्ष पूर्व भारत की कुछ घुमन्तू जातियाँ पहुँची थीं। इनकी बोली में भारतीय आदिवासी बंजरों-नटों की पंजाबी, राजस्थानी, ब्रज, खड़ी बोली और कौरवी (हरियाणवी) का प्रभाव है। रोमा लोग वहाँ यायावर जीवन जीते रहे हैं। ये सब स्वभावतः घुमक्कड़ हैं। इनमें पुरुष वर्ग के लोग कुशल श्रमिक या कलाकार हैं। यूरोपीय देशों में ये सब घूम-घूमकर विभिन्न धातुओं से भाँति-भाँति के बर्तन बनाते हैं या रंग चढ़ाने का काम करते हैं। कुछ घरेलू कुटीर उद्योग और दस्तकारी का कार्य स्त्री कलाकारों द्वारा भी किया-कराया जाता है। इन भारतीय प्रवासी रोमाओं को यूरोप में 'जिप्सी' कहा जाता है। फ्रांस में इन्हें 'बोहेमियन' कहा जाता है। इन्हीं का एक वर्ग युद्ध और मल्ल विद्या से जुड़ गया और उन्हें 'तातार' कहा जाने लगा। अधिकतर रोमा-परिवार जर्मनी के नागरिक थे, इसलिए द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान नाजियों ने योजनाबद्ध रूप से इनका संहार करना शुरू किया, फलतः ये जर्मनी से फ्रांस की ओर चले गये। आज भी रोमा-जिप्सी यूरोप के इन देशों में बिखरे हुए हैं। फ्रांस में प्रतिवर्ष इनका एक मेला होता है, जिसमें लाखों रोमा जिप्सी एकत्र होते हैं। ये सब मूलतः हिन्दू हैं। इनकी अपनी गोत्र-परम्परा है। ये यज्ञ कार्य में आस्था रखते हैं और प्रायः काली देवी की पूजा करते हैं। वर्तमान में ये परस्पर जिस 'रोमानी' का प्रयोग करते हैं, उसमें लगभग पचास प्रतिशत शब्द हिंदी के हैं और लगभग दस-दस प्रतिशत शब्द सिंधी, पंजाबी, जर्मन, फ्रेंच, इटैलिक आदि के हैं। इनके द्वारा प्रयुक्त शब्दों को वर्गीकृत करके देखना समीचीन होगा।

रोमी हिंदी में जब किसी को कहना होता है कि 'तुम मेरे रक्त संबंधी हो- तो बोलता हैं- 'तू मेरा रत्तू।' इस समाज में प्रचलित 'बीयाह' (बिवाह), भुज (भोज), दाखिन (दक्षिण), पिजा (पूजा) आदि शब्द-प्रयोग इस कथन के साक्षी हैं कि रोमाओं का खान-पान, रहन-सहन, षोड़श संस्कार, धार्मिक चर्या बहुत कुछ हिंदी तथा हिन्दुत्व से प्रेरित-प्रभावित है। इधर विदेशी प्रभाववश उनके रंग-ढंग काफी बदल गये हैं।

रोमा-हिंदी भाषी इस यायावर वर्ग में सैकड़ों वर्ष पुराने मुहावरे प्राप्त किये जा सकते हैं। इन समुदायों में प्रयुक्त कुछ लोकोक्तियाँ तो बहुत ही विचित्र हैं, जैसे-सासुरी-हासुरी, जिसका तात्पर्य है- ससुराल में रहना बड़ा हास्यास्पद होता है। प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से ये आर्यरक्त से जुड़े हुए हैं। शरीर से बहुत बलिष्ठ, स्वभाव से मस्त मौला, युद्ध विद्या में पारंगत और विभिन्न हस्त कलाओं में प्रवीण यह प्रवासी भारतीय वर्ग अब वहाँ आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से काफी कुछ आत्मनिर्भर हैं। इनके मध्य प्रचलित हिंदी भाषा मात्र घरेलू व्यवहार यानी बोलचाल तक सिमटी हुई है। यदि इसके शब्दकोष, व्याकरण, पाठ्यक्रम, प्रशिक्षण, लोकसाहित्य-सर्वेक्षण आदि की व्यवस्था कर दी जाए तो एक विशिष्ट कोटि की विदेशी हिंदी के रूप में यह स्थापित हो जाए।

इसी प्रकार हिंदी के उपर्युक्त सभी सातों रूपों को बचाने-बढ़ाने की आवश्यकता है।

❋

साहित्यिकी, डी-54, निराला नगर लखनऊ, पिन-226020 मो, 9451123525

हिंदी के अंतरराष्ट्रीय आयाम और चुनौतियाँ

प्रो. गिरीश्वर मिश्र

"हिंदी का अंतरराष्ट्रीय स्वरूप कई सदर्भों में निर्मित हुआ। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान विदेश-प्रवास का है। प्रवासी भारतीय बड़ी संख्या में आज से डेढ़ दो सौ साल पहले खेतिहर मज़दूर के रूप में अनेक देशों में पहुँचे थे। जब यूरोपीय उपनिवेश पाँव पसार रहा था उसी दौर में प्रवासन आरंभ हुआ था। भारतीय मूल के ये लोग सुदूर देशों में पहुँच कर वहीं के हो गए। आज सूरीनाम, दक्षिण अफ़्रीका, त्रिनिदाद, ब्रिटिश गुयाना, फ़ीजी और मॉरीशस आदि देशों में जो भारतीय हैं उनमें ज़्यादातर के पूर्वज चार पाँच पीढ़ियों पहले भारत से खेतिहर मज़दूर के रूप में गए थे। उनमें ऐसे लोगों की संख्या अधिक थी जिन्हें शर्तबंदी प्रथा के तहत ले जाया गया था। ये वहाँ पर गुलामों का जीवन बिता रहे थे और दुर्दिन में गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरित मानस' और 'हनुमान चालीसा' जैसे हिंदी के ग्रंथों से धैर्य और भरोसा पाते थे।"

बहुभाषा-भाषी भारत देश में जन्मी और पिछले लगभग बारह सौ वर्षों में पली-बढ़ी हिंदी भाषा आज भारत और भारत के बाहर अनेक देशों में भी अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है। आधुनिक काल में भारत में वह जनभाषा, मातृभाषा, सम्पर्क भाषा, व्यापार भाषा, सरकारी काम-काज की भाषा के रूप में विकसित होती हुई देश के जीवन में केंद्रीय भूमिका निभा रही है। उसे भारतीय संविधान द्वारा 'राजभाषा' का दर्जा मिला हुआ है। शाब्दिक और अर्थ-रचना की दृष्टि से हिंदी सहज है और उसकी देवनागरी लिपि भी सुबोध और वैज्ञानिक है। संख्याबल की दृष्टि से देखने पर अंग्रेज़ी और मन्दारिन (चीनी) भाषाओं के बाद विश्व में हिंदी का ही स्थान आता है। दक्षिण एशिया के पड़ोसी देशों में हिंदी वहाँ की सामाजिक सम्प्रेषण-व्यवस्था में शामिल है पर जिन देशों में भारतीय प्रवासी के रूप में बसे हुए हैं जिन्हें हम भारतवंशी कहते हैं, इसका गहन सांस्कृतिक अभिप्राय है। अमेरिका, जापान, आस्ट्रेलिया, कनाडा, फ़्रांस, जापान आदि देशों में हिंदी के अध्ययन में हिंदीभाषी समाज की सांस्कृतिक–साहित्यिक प्रवृत्तियों से परिचय और शास्त्रीय विश्लेषण मुख्य प्रयोजन होता है। इस समय भारत से बाहर सौ से अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा को लेकर अध्ययन और अनुसंधान कार्य भी हो रहा है। भारत के अतिरिक्त अनेक देशों में हिंदी साहित्य-रचना हो रही है जिसमें भारतीय मूल के और विदेशी साहित्यकारों का उल्लेखनीय योगदान होता रहा है। बाहर के देशों में अनेक ग़ैर सरकारी संस्थाएँ हिंदी के उत्थान में जुटी हुई हैं। सर्जनात्मक साहित्य और अकादमिक साहित्य के प्रकाशन के साथ-साथ संचार माध्यमों में बढ़ती उपस्थिति द्वारा हिंदी निरंतर समृद्ध हो रही है। महत्त्वपूर्ण

वैश्वीकरण का परिप्रेक्ष्य

विश्व व्यापार संगठन की व्यवस्था को स्वीकार कर भारत नब्बे के दशक में विश्व अर्थव्यवस्था के साथ जुड़ गया। अब 'विश्व व्यवस्था' और 'विश्व गाँव' मात्र कल्पना का विषय न रह कर आर्थिक उदारीकरण, कारपोरेट अर्थव्यवस्था, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के आगमन और निजीकरण के साथ यथार्थ के हिस्से बन रहे हैं। वैश्वीकरण के कई व्याख्याकार ऐसा अनुमान लगा रहे हैं कि इक्कीसवीं सदी में विश्व-पटल पर एशिया और विशेष रूप से भारत और चीन की प्रमुख भूमिका होने वाली है। उपभोक्ता या ग्राहक की दृष्टि से हिंदीभाषी क्षेत्र की परिधि विस्तृत हो रही है और यह बात अर्थतंत्र में हिंदी की व्यापक भूमिका को सुदृढ़ करती है। विदेशी निवेशकों को व्यापार-वाणिज्य में शामिल करने की स्थिति में प्रभावी संचार व्यवस्था अपेक्षित है और इस दृष्टि से हिंदी की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

हिंदी का वैविध्य

हिंदी की भाषाई विविधता की बात करें तो वह इस अर्थ में बड़ी रोचक लगती है कि देश और विदेश में इसके अनेक रूप मिलते हैं जिनके साथ हिंदी एकल भाषा की जगह एक बड़े भाषा-परिवार का

स्वरूप धारण कर लेती है। वह अनेक बोलियों का समूह और संश्लेष है और इसमें कई भाषाओं का समाहार दिखता है। जहाँ भारत के भीतर हिंदी दक्खिनी, अवधी, हरियाणवी, ब्रज, हिमाचली, भोजपुरी, कुमायूँनी, बघेली, बुंदेली, मैथिली, कन्नौजी और खड़ी बोली आदि अनेक रूपों में मिलती है वहीं फ़ीजी में फ़ीजी बात या फ़ीजी हिंदी, सूरीनाम में सरनामी हिंदी, दक्षिण अफ़्रीका में नेताली और मॉरीशस में भोजपुरी और फ़्रांसीसी भाषा के संसर्ग से विकसित एक नई क़िस्म की हिंदी मिलती है। सांस्कृतिक सम्पर्क द्वारा हिंदी में अन्य भारतीय और विदेशी भाषाओं के शब्द भी शामिल होते रहे हैं। देवनागरी के साथ रोमन लिपि में भी हिंदी लिखी जा रही है। भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी भाषा का स्वरूप भी बदल रहा है और वह लचीली और सर्वग्राही हो रही है।

अंतरराष्ट्रीय क्षितिज पर हिंदी

हिंदी का अंतरराष्ट्रीय स्वरूप कई सदर्भों में निर्मित हुआ। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान विदेश-प्रवास का है। प्रवासी भारतीय बड़ी संख्या में आज से डेढ़ दो सौ साल पहले खेतिहर मज़दूर के रूप में अनेक देशों में पहुँचे थे। जब यूरोपीय उपनिवेश पाँव पसार रहा था उसी दौर में प्रवासन आरंभ हुआ था। भारतीय मूल के ये लोग सुदूर देशों में पहुँच कर वहीं के हो गए। आज सूरीनाम, दक्षिण अफ़्रीका, त्रिनिदाद, ब्रिटिश गुयाना, फ़ीजी और मॉरीशस आदि देशों में जो भारतीय हैं उनमें ज़्यादातर के पूर्वज चार पाँच पीढ़ियों पहले भारत से खेतिहर मज़दूर के रूप में गए थे। उनमें ऐसे लोगों की संख्या अधिक थी जिन्हें शर्तबंदी प्रथा के तहत ले जाया गया था। ये वहाँ पर गुलामों का जीवन बिता रहे थे और दुर्दिन में उनके लिए गोस्वामी तुलसीदास के 'राम चरित मानस' और 'हनुमान चालीसा' जैसे हिंदी के ग्रंथों से धैर्य और भरोसा पाते थे। उनके लिए भोजपुरी एक तरह की सम्पर्क भाषा बन गई थी। वहाँ के विकट जीवन-संघर्ष में उनकी धर्म, भाषा और संस्कृति की ख़ास तरह की चेतना भी विकसित हुई। उल्लेखनीय है कि वर्ष 1913 में मॉरीशस से 'हिंदुस्तानी' अख़बार शुरू हुआ और 1935 में 'दुर्गा' नाम की हस्तलिखित साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रिका शुरू हुई थी जिसने इस कार्य में बड़ी भूमिका निभाई थी। भारत को स्वतंत्रता मिलने के बाद भारतीय नागरिक विदेशों में जा कर मुख्य रूप से उच्च शिक्षा और अच्छी नौकरी के लिए विदेशों में बसने लगे। आज अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, खाड़ी के देश, रूस, और अनेक यूरोपीय देशों में अच्छी संख्या में भारतीय रह रहे हैं।

प्रवासी भारतीय भाषा, धर्म, खान-पान, और रीतिरिवाज आदि कई दृष्टियों से भिन्न हैं परंतु हिंदी उन सबको एक दूसरे के क़रीब लाती है। उन सबकी मूल राष्ट्रीय पहचान के साथ जुड़ कर हिंदी को एक नया गौरव मिलता है। हिंदी के उत्थान से वे लोग स्वयं को भारतीय संस्कृति और परम्परा से जुड़ने का अनुभव पाते हैं। अपनी मिट्टी से दूर प्रवास में भारत उनकी स्मृति में है और वह सघन स्मृति लम्बी भौगोलिक दूरी को पाटती है। इस स्मृति में भारत के प्रति सघन लगाव के साथ संस्कृति की निरंतरता भी बनी हुई है। भाषा इस अनुभूति को सहज आकार देती है। भावनाओं की मौखिक और लिखित अभिव्यक्ति के साथ भाषा के माध्यम से उनकी संवेदनाएँ जीवंत हो उठती हैं। उनके भाषा-प्रयोग और साहित्यसृजन में विशिष्ट स्थानों की अनुभूति और संवेदना की गूँज सुनाई पड़ती है। एक तरह की नई आधुनिक चेतना के साथ प्रवासियों ने हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं में साहित्य रचा है जिसमें सरलता, सहजता के साथ अपनी विषम जीवन दशाओं का ब्योरा और अतीत के संस्पर्श की आकांक्षा व्यक्त होती है। दूसरी ओर यू ट्यूब जैसे उपकरण हिंदी भजन गाने और ग़ज़ल को सर्वजन सुलभ बनाया है। स्थानीय परिस्थितियों और दबावों के बीच प्रवासी भारतीयों के बीच हिंदी के प्रयोग में अनेक चुनौतियाँ और जटिलताएँ अनुभव की जा रही हैं। उदाहरण के लिए मॉरीशस में बोली जाने वाली भोजपुरी में फ़्रेंच और करियोल भाषा के शब्द शामिल हो गए हैं। भारत की खड़ी बोली वाली साहित्यिक हिंदी को यदि मानक रखें तो अन्य देशों में उससे अनेक तरह के विचलन मिलते हैं और सामाजिक – राजनैतिक परिवर्तनों के बीच उनके प्रयोग का अवसर भी सिकुड़ा और संकुचित हुआ है।

आज हिंदी को सीखने और अपनाने के लिए शिक्षार्थियों की रुचियाँ अनेक प्रकार की होती हैं। इनमें पर्यटन, राजनयिक सम्बन्ध, हिंदी साहित्य का अध्ययन, व्यापारिक कार्य कुशलता, अनुवाद, भाषावैज्ञानिक अध्ययन, संस्कृति और सभ्यताविषयक ज्ञानार्जन प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। विगत वर्षों में अनेक देशों के छात्र भारत में आ कर हिंदी का अध्ययन करते रहे हैं। भारत में हिंदी अध्ययन की व्यवस्था कई स्थानों पर की गई है और इस कार्य में भारत की अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद का विशेष योगदान है जो भारत में अध्ययन हेतु छात्रवृत्ति और विदेशों में हिंदी के प्राध्यापकों को उपलब्ध कराती है। केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी और दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली द्वारा विदेशी छात्रों को हिंदी पढ़ाने की विशेष व्यवस्था की गई है।

विश्व हिंदी सम्मेलन की पृष्ठभूमि

स्वतंत्र भारत में देश की अस्मिता के निर्माण धीरे-धीरे यह अनुभव किया जाने लगा कि हिंदी को अंतरराष्ट्रीय मंच पर भी स्वीकृति मिलनी चाहिए। साथ ही यह आकांक्षा भी बलवती हुई कि वह विश्व भाषा बने। इसी परिप्रेक्ष्य में 'विश्व हिंदी सम्मेलन' की परिकल्पना की गई जो वर्ष 1975 में फलीभूत हुई। उस वर्ष नागपुर में प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन आयोजित हुआ था जिसमें मॉरीशस के प्रधान मंत्री सर शिवसागर

रामगुलाम और भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की उपस्थिति में अनेक संकल्प लिए गए। इस अवसर पर पूरी दुनिया से हिंदी बोलने, लिखने, समझने और पढ़ने वाले लोग एकत्र हुए और हिंदी के प्रचार – प्रसार के विभिन्न आयामों पर विचार-विमर्श का अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आरम्भ किया। तब से विश्व हिंदी सम्मेलन के ग्यारह अधिवेशन सम्पन्न हो चुके हैं। वर्ष 2023 में बारहवाँ सम्मेलन फ़रवरी माह में फ़िजी में आयोजित हो रहा है। फ़िजी में भारतीय मूल के लोगों की बहुलता है। यहाँ के हिंदी रचनाकारों की उल्लेखनीय परम्परा है जिसमें कमला प्रसाद मिश्र, विवेकानंद मिश्र, डाक्टर सुब्रमणी, काशी राम कुमुद, बाबू राम शर्मा, रेमैंड पिल्लई, केशवन नायर आदि को बड़े आदर से स्मरण किया जाता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो विश्व हिंदी सम्मेलन का आरम्भ इस प्रयोजन के साथ शुरू हुआ था कि वैश्विक संदर्भ में हिंदी समस्त मानव जाति की सेवा में किस तरह प्रवृत्त हो सकेगी। इस अवसर पर लिए गए कई संकल्प अब पूरे हो चुके हैं और कई पूरा होने को हैं। इनमें उल्लेखनीय हैं विश्व विद्यापीठ की स्थापना और एक विश्व सचिवालय की स्थापना। वर्धा में महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय की स्थापना 1997 में हुई। तब से यह विश्वविद्यालय हिंदी को ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में प्रतिष्ठित करने की दिशा में सक्रिय है। साहित्य, भाषा, अनुवाद, संस्कृति, शिक्षा शास्त्र, प्रबंध विज्ञान, मानविकी और समाज विज्ञान आदि विभिन्न विषयों के अध्यापन के साथ हिंदी के साफ़्टवेयर, कोश निर्माण, और शोधपरक ग्रंथों का प्रकाशन का कार्य किया जा रहा है। विश्व हिंदी सचिवालय मॉरीशस में अपने भवन में स्थापित हो चुका है और वहाँ से अनेक योजनाएँ भी आरम्भ हुई हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ में आधिकारिक भाषा के रूप में स्वीकृति का लक्ष्य अभी भी लम्बित है। सामान्यतया तीन वर्ष के अंतराल पर होने वाला यह हिंदी का महाकुंभ मॉरीशस में तीन बार, भारत में तीन बार, और त्रिनिदाद, इंग्लैंड, सूरीनाम, अमेरिका, दाक्षिण अफ़्रीका में एक-एक बार आयोजित हो चुका है। साथ ही अबू धाबी, डूबी, जापान, आस्ट्रेलिया, और मास्को में क्षेत्रीय सम्मेलन भी हुए हैं। दसवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन भोपाल में 2015 में हुआ था जिसका उद्घाटन प्रधान मंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने किया था। ग्यारहवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन 2018 में मॉरीशस में हुआ था। हिंदी के वैश्विक परिदृश्य और भारतीय संस्कृति पर केंद्रित था। हिंदी के प्रति निष्ठा और सघन अभिरुचि के साथ जुड़ी हुईं विदेश मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज के कुशल नेतृत्व में ये दोनों ही सम्मेलन भाषा और लोक संस्कृति, भाषा प्रौद्योगिकी, हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण, राजनय, संस्कृति-चिंतन, फ़िल्म और संस्कृति, संचार-माध्यम, प्रवासी दुनिया, प्रशासन, विज्ञान, पत्रकारिता, और हिंदी बाल साहित्य जैसे विषयों पर मंथन किया गया। श्रीमती सुषमा स्वराज ने इन दोनों सम्मेलनों की अनुशंसाओं के अनुपालन का भी प्रयास किया और उसके अच्छे परिणाम भी हुए हैं।

भाषाई प्रौद्योगिकी की प्रगति

भाषा-प्रयोग की दृष्टि से देखें तो सूचना प्रौद्योगिकी का विराट विस्तार होने के साथ भाषाओं के मध्य अनुवाद और सम्प्रेषण को बड़ा बल मिला है। भाषा-संवर्धन और संरक्षण के लिए बहुभाषिक कम्प्यूटर और इंटरनेट की सुविधा विस्तृत हुई है। शब्द कोश और विश्व कोश तैयार हो कर डिजिटल रूप में उपलब्ध हो रहे हैं। ई बुक और ई पुस्तकालय सक्रिय हो रहे हैं। फ़ेस बुक, वहाट्सप्प आदि लोकप्रिय माध्यम हो रहे हैं। स्मार्ट फोन के चलन के बाद स्थिति बहुत तेज़ी से बदली है। संचार की दुनिया में हो रहे प्रयोगों और बदलावों विशेष रूप से सिनेमा, धारावाहिक, विज्ञापन और सोशल मीडिया के विविध रूपों ने हिंदी के विस्तार को पंख दिए हैं। हिंदी अनुवाद और संवाद दोनों दृष्टियों से सक्षम भाषा बनने की ओर अग्रसर है। इसका वैश्विक गंतव्य की ओर जाने का मार्ग रोज़गार और डिजिटल संचार में वृद्धि के साथ प्रशस्त हो रहा है। इस क्रम में अंतरभाषायी अनुवाद का बड़ा योगदान होगा। विगत दो दशकों में भाषाई तकनीकी प्रगति में अभूतपूर्व उन्नति हुई है। यूनीकोड नामक टेक्स्ट इनकोडिंग ने अनेक समस्याओं का समाधान कर दिया है। इसकी उपस्थिति ने इ पत्रिकाओं, ई अख़बारों, टी वी और यू ट्यूब आदि के साथ मोबाइल में सब कुछ पहुँचा दिया है। अब मोबाइल गैजेट पर लिखना, पढ़ना ही नहीं बोल कर लिखाना भी सहज हो गया है। कंटेंट और सुविधाओं का विस्तार हुआ है। ब्लाग लिखना, सोशल नेटवर्क, सोशल मेसेज भेजने के प्लेटफार्म औपचारिक अनौपचारिक संवाद सरल हो गया है। यद्यपि मानकीकरण से जुड़ी समस्याएँ बनी हुई हैं और फाँट कनवर्जन की मुश्किल बनी हुई है। तब भी हाथ में मोबाइल हो तो लगता है दुनिया मुट्ठी में है।

भाषा, संस्कृति और देश काल

हिंदी के बहुत से रूप हैं जो उसके प्रकाशित साहित्य में परिलक्षित होते हैं पर उसकी लोक-सत्ता कितनी सुदृढ और सुरक्षित है यह इस बात पर निर्भर करती है कि जीवन के विविध पक्षों में उसका उपयोग कहाँ, कितना, और किन परिणामों के साथ किया जा रहा है। ये प्रश्न सिर्फ हिंदी भाषा से ही नहीं भारत के समाज से और उसकी जीवन यात्रा से और लोकतंत्र की उपलब्धि से भी जुड़े हुए हैं। वह समर्थ हो सके इसके लिए जरूरी है कि हर स्तर पर देश की भाषा का समुचित उपयोग हो। वह एक पीढ़ी से दूसरे तक पहुँचे, ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में आगे बढे, हमारे विभिन्न कार्यों का माध्यम बने, उसका समुचित रूप से दस्तावेजीकरण हो, और सक्रिय रूप से राजकीय समर्थन भी प्राप्त हो। देश में स्वदेशी भाषा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में संचार और संवाद का माध्यम बननी

चाहिए। भारतीय संविधान ने अनुछेद 350 और 351 के तहत हिंदी को भारत संघ की राज भाषा का दर्जा विधिक रूप से दिया है।

यह हिंदी भाषा का सौभाग्य रहा है कि कई सदियों से वह कोटि-कोटि भारतवासियों की अभिव्यक्ति, संचार और सृजन के लिए एक प्रमुख और सशक्त माध्यम का कार्य करती आ रही है। वह बृहत्तर समाज के जीवन में उसके दुःख-सुख, हर्ष-विषाद और राग-विराग की विभिन्न छटाओं के साथ जुड़ी रही। संवाद को सम्भव बनाते हुए हिंदी ने देश के स्वतंत्रता संग्राम में जान भरने का काम भी किया था और हर कदम पर आगे बढ़ कर सबको जोड़ती रही। ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो यही पता चलता है कि हिंदी में रचे गए साहित्य का समाज के साथ समकालिक रिश्ता बना रहा और वह समाज को प्रेरित-अनुप्राणित करता रहा। देश भक्ति, स्वराज्य और स्वतंत्र भारत की संकल्पना को गढ़ने और आम जन तक पहुँचाने में हिंदी की विशेष भूमिका थी जिसे देश के अधिकांश नायकों ने अनुभव किया था। सन 1914 में कविवर मैथिलीशरण गुप्त की भारत भारती का प्रकाशन हुआ था. निराला जी ने 1930 में 'प्रिय स्वतन्त्र-रव अमृत मन्त्र नव भारत में भर दे' के गान से नए भारत की परिकल्पना की थी। जहाँ स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी की बहुमूल्य भूमिका थी वहीं इस विराट घटना ने हिंदी साहित्य में भी संवेदना, प्रस्तुति और विषय विस्तार की दृष्टि से प्रभावित और समृद्ध किया।

स्वतंत्रता संग्राम में अधिकांश नेताओं ने देश और समाज के कार्य में हिंदी का खूब उपयोग किया। चक्रवर्ती राजगोपालाचारी और नेता जी सुभाष चन्द्र बोस समेत हिंदी के क्षेत्र से बाहर के अनेक नेताओं ने इसे लोक में संवाद का माध्यम बनाया। समाज में हिंदी की व्यापक उपस्थिति थी इसलिए यह निश्चय किया गया और संविधान में व्यवस्था की गयी कि भारत को जिस संपर्क की जरूरत है उस संपर्क के लिए हिंदी ही सबसे ठीक भाषा होगी। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी इस बात की बहुत अच्छे ढंग से वकालत की और इसके लिए काम भी किया। इस पूरी पृष्ठभूमि में आप देखेंगे तो पायेंगे कि हिंदी को एक प्रकार से बड़े पैमाने पर राष्ट्रीय स्वीकृति प्राप्त थी लेकिन आजादी मिलने के बाद दक्षिण भारत में कुछ राजनीति उथल-पुथल हुई जिसमें हिंदी का विरोध किया गया और धीरे-धीरे एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हुई जिसमें भारत सरकार को यह व्यवस्था देनी पड़ी कि जब तक सब लोग तैयार न हो जाएँ तब तक हिंदी का प्रयोग सर्वत्र न किया जाय और उसके बाद भाषा को लेकर कुछ ऐसी तटस्थता और उदासीनता का दौर शुरू हुआ और कुछ ऐसा होता चला गया कि हम इसकी निरंतर उपेक्षा करते रहे। संविधान के संकल्प और हिंदीसेवी तमाम सरकारी संस्थानों और प्रयासों के बावजूद हिंदी के प्रयोग को लेकर प्रगति बहुत संतोषजनक नहीं है।

यदि साहित्य की रचना की दृष्टि से देखें तो हिंदी ने भिन्न-भिन्न साहित्य की शैलियों में और जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में प्रगति की है। उसके प्रकाशन में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। इसके साथ ही मीडिया के क्षेत्र में हिंदी की उल्लेखनीय उपस्थिति दर्ज हुई है और भारत से बाहर जहाँ भी प्रवासी भारतीय रहते हैं वहाँ भी हिंदी का प्रयोग हो रहा है। भारत सरकार ने रुचि ली और विशेष रूप से माननीय अटल बिहारी बाजपेई और श्रीमती सुषमा स्वराज ने बड़े प्रयास और मनोयोग से संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी की ध्वजा फहराई। इस बात का प्रयास किया गया कि हिंदी का अधिकाधिक उपयोग हो और इसके अच्छे परिणाम भी सामने आ रहे हैं। अमेरिका और यूरोप के अनेक विश्वविद्यालयों में भारत को समझने के लिए और भारतीय संस्कृति को जानने के लिए हिंदी के अध्ययन को विशेष महत्व दिया जा रहा है। इस समय अनेक विदेशी विद्वान हिंदी में साहित्य की रचना और हिंदी भाषा के अध्ययन में कार्यरत हैं और कई जगहों पर बहुत ही महत्त्वपूर्ण अध्ययन की परम्पराएँ विकसित हो रही हैं। हिंदी में अंतराष्ट्रीय स्तर पर भी अध्ययन की दृष्टि से रुचि बढ़ी है। वैसे जब तक किसी देश की राजनीतिक क्षमता और उसकी प्रभुता सर्वत्र स्वीकृत नहीं होती तब तक उसकी भाषा का भी महत्व नहीं स्वीकार किया जाता है। आज हमें गर्व है कि प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी भारत और विदेश में अपने अधिकांश व्याख्यान हिंदी में ही देते हैं। अब हिंदी न केवल ज्ञान-विज्ञान और संवाद के साथ अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक सांस्कृतिक सेतु बनने के लिए तत्पर है।

भाषा को सरकार का दायित्व मानकर भारतीय समाज ने यह सोचा कि इसके लिए सरकार बहुत सारे कार्य करे। सरकार ने बहुत से कार्य किए भी। उदाहरण के लिए ' तकनीकी शब्दावली आयोग' बना, ' केन्द्रीय हिंदी संस्थान' बना और हिंदी के प्रशिक्षण के केन्द्र बनाये गये। विश्वविद्यालय बनाये गये, हिंदी की ग्रन्थ अकादमी बनायी गयी। इन उपायों के द्वारा यह कोशिश हो रही थी कि हिंदी का मार्ग प्रशस्त किया जाय लेकिन सरकार की कार्य-प्रणाली और उससे जुड़ी गतिविधियाँ दुर्भाग्य से उतनी सक्षम नहीं रहीं। शायद समाज की आवश्यकता को ध्यान में रखकर और भाषा के प्रकृति को ध्यान में रखकर वे उतनी प्रभावी नहीं रहीं जितनी होनी चाहिए। भाषा को किसी टकसाल में नहीं पैदा कर सकते। भाषा तो प्रयोग के द्वारा जीवन पाती है। जीवन में जिन शब्दों का उपयोग किया जाता है उन शब्दों को ग्रहण करना हमारे लिए आवश्यक होता है। कहीं न कहीं हमारी यह कमी रही कि भाषा का जो प्रवाह है वह अवरूद्ध हो गया और एक ओर पूरी तरह परिनिष्ठित शुद्ध संस्कृत के शब्दों का प्रयोग करने का आग्रह बलवान हो गया और सरकारी हिंदी फाइलों और आलमारियों तक सिमटती गई। दूसरी ओर हम सरकार पर आश्रित होते गये इसके कारण बहुत से कार्य नहीं हो सके जो होने चाहिए थे। भाषा के साथ जो चैतन्य और स्वाभिमान का भाव

जुड़ना चाहिए वह संभव नहीं हो रहा है। अब तो आदमी वह भाषा जो नौकरी और अवसरों के साथ जुड़ी हो, जिसकी कीमत हो, ऐसी भाषा का प्रयोग करेगा। आज अंग्रेजी को हम महत्व देते हैं और भाषा को कैसे सामर्थ्यवान बनाया जाए इसके प्रति जो रूझान समाज में होना चाहिए, जो गर्व होना चाहिए, वह घटा है। अच्छी हिंदी का हम उपयोग करें, जो हमारी बातों को सशक्त ढंग से प्रस्तुत कर सके, अच्छी तरह से संवाद कर सके, इसके लिए अंदर से एक प्रकार का उत्साह होना चाहिए। इसके लिए सांस्कृतिक चेतना के जागरण का प्रयास करना होगा।

आज सर्जनात्मक साहित्य की दृष्टि से हिंदी समृद्ध दिखती है। प्रिंट और इलेक्ट्रानिक मीडिया में हिंदी की उल्लेखनीय उपस्थिति है जो संभवतः पाठकों और दर्शकों की बड़ी संख्या के कारण है। शास्त्रीय (अकादमिक) साहित्य की दृष्टि से जरूर हिंदी की स्थिति संतोषजनक नहीं कही जा सकती क्योंकि अकादमिक दुनिया के मन में हिंदी को लेकर संशय की एक गाँठ बनी हुई है और अंग्रेजी का ही प्राबल्य बना हुआ है। शिक्षा के माध्यम के रूप में हिंदी की स्वीकृति और उपयोग न होने से हिंदी की सामग्री की गुणवत्ता भी नकारात्मक रूप से प्रभावित हो रही है पर उससे भी अधिक चिंता की बात यह है कि हिंदी की पृष्ठभूमि से आने वाले छात्र छात्राओं की प्रतिभा का विकास बाधित हो रहा है। दस बारह प्रतिशत लोगों द्वारा बोली समझी जाने वाली अंग्रेजी की बलि वेदी पर ज्ञान, प्रतिभा और योग्यता आदि की लगातार अनदेखी करते रहना किसी भी तरह से क्षम्य नहीं ठहराया जा सकता। सरकारी क्षेत्र में हिंदी को 'राज भाषा' घोषित करने के बावजूद उसे पूर्वप्रचलित अंग्रेजी के अनुवाद के काम के लिए सुरक्षित कर दिया गया और यह तरकीब राज-काज में वर्ग विशेष की सामर्थ्य बनाए रखने और प्रजा को तंत्र से दूर रखने में सफल रही। भाषा-भेद से मन की दूरियाँ भी बढ़ती हैं और पहचान भी बदलती है।

अस्मिता, भाषा और प्रौद्योगिकी

यहाँ पर यह उल्लेख करना उचित होगा कि सभ्यता के स्तर पर भारतीय अस्मिता को ओझल होने से बचाने में भाषा पर ध्यान देना आवश्यक है। पहचान बदलने के लिए भाषा को बदलना एक प्रभावी तरकीब बन जाती है जो स्मृतियों को गढ़ती चलती है। हिंदी लोक-भाषा रही पर जब सभ्रांत या अभिजात को संवाद की ज़रूरत हुई तो उनको भी इसके शरण में आने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं होता था। यह स्थिति आज भी है। शासन और शिक्षा की भाषा के रूप में ब्रिटेन के औपनिवेशिक राज के दौर में अंग्रेज़ी को भारत में कुछ इस तरह रोपा और स्थापित किया गया कि उसने देश की मानसिकता, ज्ञान के अभ्यास और संस्कृति-चर्या सब कुछ को उलट-पलट दिया। इसका परिणाम हुआ कि हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के प्रयोजन की दिशा बदल गई। दूसरी ओर मीडिया, व्यापार जगत और मनोरंजन आदि के क्षेत्रों में हिंदी की पकड़ मजबूत हुई है परंतु हड़बड़ी में हिंदी के हिंग्लिश होते जाने की चिंता भी होने लगी है। देश की नई शिक्षा नीति ने प्रकट रूप से मातृभाषा को सम्मान देने और अपनी भाषा में शिक्षा देने लेने के अवसर का खाका खींचा है। भाषा का प्रयोग अस्मिता और भावना के साथ जीवन में अवसरों की उपलब्धता से भी जुड़ी है। अंग्रेजी के सम्मोहन से उबरने के लिए स्वाभाविक हिंदी जो समन्वय और लोक से जुड़ कर जीवन पाती रही है उसके उपयोग को बढ़ाना होगा। भाषाओं के भविष्य को लेकर जो चिंताएं व्यक्त की जा रही हैं उन्हें देख कर यह बेहद जरूरी हो गया है कि हिंदी के गौरव गान वाली समारोह की मानसिकता को छोड़ कर हिंदी को ज्ञान विज्ञान और प्रौद्योगिकी के लिए समर्थ बनाया जाय।

हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की मान्य विश्व भाषा के रूप में मान्यता अभी तक नहीं मिल सकी है। यह प्रगति जरूर हुई है कि राष्ट्रसंघ के ट्विटर हैंडिल पर हिंदी में समाचार शुरू हो चुके हैं। अब वहाँ की बुलेटिन हिंदी में भी प्रसारित होना आरंभ हुई है और सभी दस्तावेज़ हिंदी में उपलब्ध करने की व्यवस्था भी हो रही है। विदेश मंत्रालय के काम-काज में हिंदी का प्रयोग बढ़ा है। पत्रकारों के साथ गंभीर विचार-विमर्श हुआ है और भाषागत समस्याओं को पहचान कर उनमें सुधार लाया जा रहा है। हिंदी के लिए भाषिक प्रौद्योगिकी के विकास की दृष्टि से कई योजनाओं पर कार्य शुरू है। केंद्र के राजभाषा विभाग ने भी कई ठोस कदम उठाए हैं। विज्ञान के क्षेत्र में हिंदी के प्रयोग को अनेक संस्थाओं में बढ़ावा दिया गया है। विदेशों में हिंदी पीठ की संख्या बढ़ाई गई है और विदेशों से भारत में आकर हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की सुविधाएँ भी बढ़ाई गई हैं। राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के लिए प्रौद्योगिकी संसाधन केंद्र स्थापित किया जा रहा है। संयुक्त राष्ट्रसंघ में अटल जी, श्रीमती सुषमा स्वराज और वर्तमान प्रधान मंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने अपने वक्तव्य हिंदी में दिए। प्रधान मंत्री मोदी अंतरराष्ट्रीय मंचों पर प्राय: हिंदी का ही प्रयोग करते हैं यह देख भारतीय गर्वोन्नत अनुभव करते हैं।

नई चुनौतियाँ और भाषा की सामर्थ्य

आज आर्थिक उदारीकरण के दौर में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के संचालन से हिंदी को अवसर मिल रहा है। वैश्विक स्तर पर वही भाषा टिक सकेगी जिसका शब्द भंडार बड़ा हो और भाषा में उदारता भी होनी चाहिए, ताकि वह अपने शब्द भंडार को बढ़ा सके। मूल संस्कृत से समृद्ध हिंदी कालांतर में तुर्क, मंगोल, अफ़ग़ान, मुग़ल, फ़्रांसीसी, पुर्तगीज और अंग्रेज आदि से सम्पर्क के फलस्वरूप इन भाषाओं से भी शब्द लिए हैं। भाषा की संप्रेषण क्षमता बढ़ाने के लिए भारत में कई कदम उठाए गए हैं। इनमें तकनीकी शब्दावली का निर्माण, प्रशासनिक साहित्य का अनुवाद, मुद्रण क्षमता का विस्तार, कम्प्यूटर का उपयोग, टी वी चैनेल, समाचार पत्र, त्रंस्लितेरशन और फ़ोनेटिक टूल्स की दिशा

में निरंतर प्रगति हो रही है। मोबाइल ऐसे बन रहे हैं जो हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में चल सकें। विज्ञापन के क्षेत्र में हिंदी की बढ़त स्पष्ट है। सोशल मीडिया से लेखन, पत्रकारिता, सामाजिक सक्रियता और राजनीति के क्षेत्र में उल्लेखनीय तीव्रता आई है।

विश्व व्यवस्था को संचालित करने में प्रयुक्त विश्व-भाषा के लिए कसौटियों (जैसे – हिंदी के प्रयोक्ता विश्व के अनेक देशों में हों और संख्या भी हो, साहित्य रचना हो, शब्द सम्पदा हो, अन्य भाषाओं में अनुवाद हो, यांत्रिक अनुवाद की सुविधा हो, प्रौद्योगिक प्रविधि, ई मेल, ई कामर्स, ई बुक, एम एम एस, वेब दुनिया) पर हिंदी की प्रगति संतोषजनक है। यह अवश्य है कि अब तक उपेक्षा के कारण आधुनिक ज्ञान-विज्ञान विषयक सामग्री कम है। प्रभावी स्पेल चेकर और ऑनलाइन शब्द कोश भी विकसित किया जाना चाहिए।

ग्यारहवें विश्व हिंदी सम्मेलन के लिए हिंदी विषयक चिंतन को संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में स्थापित किया गया और 'हिंदी विश्व और भारतीय संस्कृति' को केंद्रीय विषय रखा गया। 18 से 20 अगस्त 2018 तक यह भव्य आयोजन राजधानी पोर्ट लूई के विवेकानंद अंतरराष्ट्रीय केंद्र में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में कई संकल्प लिए गए। आठ समानान्तर सत्रों में हुई चर्चा में अनेक पक्ष उभरे जिनमें प्रमुख हैं : हिंदी के लिए लोक के आधार को पुष्ट करना, प्रौद्योगिकी की सहायता से हिंदी के विस्तार और प्रतिष्ठा के लिए आवश्यक कारवाई, भाषा-शिक्षण में भारतीय संस्कृति का विनियोग, भारतीय संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन को साहित्य और फिल्म में गंभीरता से ग्रहण करने के लिए आवश्यक कदम उठाना, संचार माध्यमों में भारतीय संस्कृति को स्थान देने के लिए विविध प्रयास की आवश्यकता, प्रवासी भारतीय दुनिया की आधुनिक पीढ़ी से जुड़ने के लिए बहुमुखी प्रयास की आवश्यकता तथा बाल साहित्य के लिए प्रोत्साहन को गंभीरता से लेने की आवश्यकता पर बल दिया गया। बहुत से संकल्प नीतिगत पहल की अपेक्षा रखते हैं। कार्य के स्तर पर कुछ महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव ये थे : सांस्कृतिक अवध ग्राम की स्थापना, अटल बिहारी वाजपेयी पत्रकारिता विश्वविद्यालय की स्थापना, लोक साहित्य तथा बाल साहित्य का संकलन और प्रकाशन, विभिन्न आई टी समाधानों को हिंदी में उपलब्ध कराना, हिंदी की प्रामाणिकता हेतु 'निकष' की प्रणाली का विकास, देव नागरी लिपि का प्रसार, इंडिया की जगह 'भारत' का उपयोग, फिल्म सहित सभी संचार माध्यमों तथा शिक्षण प्रशिक्षण में विभिन्न स्तरों पर भारतीय संस्कृति को यथोचित स्थान दिलाना, विश्व हिंदी सचिवालय को समर्थ बनाना और उसकी शाखाएँ विश्व के अन्य भागों में स्थापित करना। फ़ीजी में, जहाँ हिंदी राज भाषा के रूप में स्वीकृत है, आयोजित होने वाला विश्व हिंदी सम्मेलन विश्व भाषा बनने की दिशा में अग्रसर हिंदी के विकास का एक प्रमुख पड़ाव साबित होगा।

भाषा और सामाजिक चैतन्य

भाषा में दैनंदिन संस्कृति का स्पंदन होता है। वह जीवन की जाने कितनी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। उसके अभाव की कल्पना बड़ी डरावनी होती है क्योंकि भाषा की मृत्यु के साथ एक समुदाय की पूरी की पूरी विरासत के ही लुप्त होने का ख़तरा खड़ा हो जाता है। कहना न होगा कि जीवन को समृद्ध करने वाली हमारी सभी महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ जिनसे किसी समाज की पहचान बनती है उन सबका प्रमुख आधार भाषा ही होती है। किसी भाषा का व्यवहार में बना रहना उस समाज की जीवंतता और सृजनात्मकता को संभव करता है। आज के बदलते माहौल में हिंदी को लेकर भी अब इस तरह के सवाल खड़े होने लगे हैं कि सामाजिक स्तर पर स्वास्थ्य कैसा है और किस तरह का भविष्य आने वाला है। बदलते विश्व में भारत की बढ़ती भूमिका के साथ हिंदी का दायित्व भी बढ़ रहा है। उसे ज्ञान विज्ञान की दृष्टि से समृद्ध करते हुए तकनीकी उत्कृष्टता देनी होगी।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने भोपाल के विश्व हिंदी सम्मेलन में अपने सम्बोधन में कहा था 'भाषा जड़ नहीं हो सकती। जैसे जीवन में चेतना होती है, वैसे ही भाषा में भी चेतना होती है। हो सकता है उस चेतना की अनुभूति स्टेथिस्कोप से नहीं जानी जाती होगी। उस चेतना की अनुभूति थर्मामीटर से नहीं नापी जाती होगी, लेकिन उसका विकास, उसकी समृद्धि उस चेतना की अनुभूति अवश्य कराती है। वह पत्थर की तरह जड़ नहीं हो सकती'। भाषा की इस चेतना की अनुभूति आवश्यक है। हिंदी समृद्ध हो, सबको जोड़ने के लिए सूत्रधार का काम करे, इसके लिए उसके संरक्षण और संवर्धन के व्यापक और सचेत प्रयास की आवश्यकता है। ज्ञान और अनुभव के भंडार के साथ भाषा हमें जीवन के लिए आधार प्रदान करती है और अभिव्यक्ति के लिए समर्थ बनाती है। सुदूर देश में फ़िजीबात (या फ़िजी हिंदी) जिसमें अवधी, भोजपुरी, खड़ी बोली, काइवीती (फ़िजी की अपनी भाषा), और वहाँ का साप्ताहिक अख़बार 'शांतिदूत' हिंदी को जिस तरह संजो रहे हैं और डा. सुब्रमणी का 'डउका पुरान' भाषा और संस्कृति के अंतर्सम्बन्धों को उजागर कर रहे हैं, हिंदी के सामर्थ्य के नए आयाम को उद्घाटित करते हैं। आशा है, फ़िजी में होने वाला विश्व हिंदी सम्मेलन हिंदी और भारत के लिए मूल्यवान साबित होगा।

❋

307, टावर 1- पार्श्वनाथ मैजेस्टिक फ़्लोर्स, इंदिरापुरम (वैभव खंड), ग़ाज़ियाबाद- 201014 (उत्तर प्रदेश), misragirishwar@gmail.com, मोबाइल: 9922399666

संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी क्यों और कैसे ?

प्रो. करुणाशंकर उपाध्याय

जब हम संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषाओं की अद्यतन स्थिति का विश्लेषण करते हैं तो पाते हैं कि अंग्रेजी संयुक्त राष्ट्र संघ के दो स्थायी सदस्यों इंग्लैंड तथा संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रशासनिक भाषा है। इसके अलावा वह कनाडा एवं दक्षिण अफ्रीका में भी राजकाज की भाषा है। किसी समय इंग्लिश ऑस्ट्रेलिया की भी राजभाषा थी परन्तु अब ऑस्ट्रेलियाई लोगों ने उसका नाम बदलकर ऑस्टिन कर दिया है। कारण स्पष्ट है। उसमें ऑस्ट्रेलियाई बोलियों के शब्दों की भरमार है जिसके कारण वह ब्रिटिश इंग्लिश से नितांत भिन्न हो गई है। इसी तरह फ्रेंच भी फ्रांस के अलावा कई देशों में प्रयुक्त होती है। पिछली शती के मध्य तक अफ्रीकी महाद्वीप के अनेक देशों पर फ्रांस का आधिपत्य था।

संयुक्त राष्ट्र संघ विश्व की सर्वोच्च संस्था है। विश्व के प्राय: सभी राष्ट्र उसके सदस्य हैं। उनके बीच संवाद, सहयोग तथा सह- अस्तित्व की भावना को बढ़ावा देने, विभिन्न राष्ट्रों की सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक दशा को विकसित करने तथा समूचे विश्व को युद्ध की विभीषिका से बचाने हेतु वह संकल्पित है। यह संस्था विश्व के सभी देशों के प्रतिनिधियों के लिए परस्पर विचार- विनिमय हेतु एक वैश्विक मंच उपस्थित करती है। फलस्वरूप यहाँ जिस किसी भी विषय पर बहस होती है उसकी गूँजें और अनुगूँजें विश्वव्यापी प्रभाव पैदा करती हैं।

आज जब विश्व का हर छठा व्यक्ति हिंदी बोल और समझ लेता है तब संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी विमर्श का माध्यम बने, यह समय की माँग है।

हम सब इस तथ्य से भली-भाँति परिचित हैं कि 10 जनवरी, 1975 को नागपुर में आयोजित प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन के अध्यक्ष पद से मॉरीशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम ने हिंदी के अंतरराष्ट्रीय महत्त्व को रेखांकित करते हुए यह सुझाव दिया था कि उसे संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाया जाए। उक्त सम्मेलन में तीन महत्त्वपूर्ण निर्णय लिए गए, जो इस प्रकार हैं :-

1. संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा के रूप में स्थान दिया जाए।

2. वर्धा में विश्व हिंदी विद्यापीठ की स्थापना हो, तथा --

3. विश्व हिंदी सम्मेलन की उपलब्धियों को स्थायित्व प्रदान करने की दृष्टि से कोई ठोस योजना बनाई जाए।

अब तक हमने बाद के दोनों लक्ष्य हासिल कर लिए हैं और पहले लक्ष्य की ओर कदम बढ़ा चुके हैं। अब वर्धा में बहुविध संभावनाओं के साथ महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय प्रगति पथ पर अग्रसर है। साथ ही, अब तक विश्व के अलग-अलग हिस्सों में सम्पन्न ग्यारह विश्व हिंदी सम्मेलन इस बात का साक्ष्य उपस्थित करते हैं कि विश्व हिंदी सम्मेलन को स्थायित्व और नियमितता प्राप्त हो चुकी है।

आज संयुक्त राष्ट्र संघ में छह आधिकारिक भाषाएँ प्रयुक्त होती हैं - 1. अंग्रेजी 2. अरबी 3. मंदारिन (चीनी) 4. फ्रेंच 5. रूसी और 6. स्पैनिश। यही छह भाषाएँ प्राय: सभी अंतरराष्ट्रीय संस्थानों एवं उनकी गतिविधियों में प्रयुक्त होती हैं। इसमें यदि अरबी और मंदारिन को छोड़ दें तो एक रोचक तथ्य यह भी सामने आता है कि ये सारी भाषाएँ साम्राज्यवाद के खाद- पानी से विकसित हुई थीं। दूसरी बात यह है कि संयुक्त राष्ट्र संघ की कथित आधिकारिक भाषाएँ कथित राष्ट्रों के स्वाभिमान और दर्प को भी अभिव्यक्त करती हैं। चूँकि द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत जर्मनी और जापान को अतिशय दयनीय बना देने में कोई कोर- कसर बाकी नहीं रखी गई। अत: इनकी भाषाओं का भी संयुक्त

राष्ट्र संघ की कार्यवाही से बाहर होना लाजिमी था। बावजूद इसके जर्मनी, जापान, दक्षिण कोरिया और इजराइल ने अपनी-अपनी भाषा में न केवल विस्मयकारी उन्नति की अपितु आज वे विश्व के सर्वाधिक शक्तिशाली राष्ट्रों की पांत में सीना तानकर खड़े हैं। इन राष्ट्रों ने अपनी भाषा में सर्वतोन्मुखी उन्नति करके विश्व के भाषाई समुदाय के समक्ष यह उदाहरण पेश किया है कि दृढ़ इच्छाशक्ति और सुनियोजित प्रयास के बल पर किसी भी मंजिल तक पहुँचा जा सकता है।

जब हम संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषाओं की अद्यतन स्थिति का विश्लेषण करते हैं तो पाते हैं कि अंग्रेजी संयुक्त राष्ट्र संघ के दो स्थायी सदस्यों इंग्लैंड तथा संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रशासनिक भाषा है। इसके अलावा वह कनाडा एवं दक्षिण अफ्रीका में भी राजकाज की भाषा है। किसी समय इंग्लिश ऑस्ट्रेलिया की भी राजभाषा थी परन्तु अब ऑस्ट्रेलियाई लोगों ने उसका नाम बदलकर ऑस्टिन कर दिया है। कारण स्पष्ट है। उसमें ऑस्ट्रेलियाई बोलियों के शब्दों की भरमार है जिसके कारण वह ब्रिटिश इंग्लिश से नितांत भिन्न हो गई है। इसी तरह फ्रेंच भी फ्रांस के अलावा कई देशों में प्रयुक्त होती है। पिछली शती के मध्य तक अफ्रीकी महाद्वीप के अनेक देशों पर फ्रांस का आधिपत्य था। इन देशों की अपनी कोई मानक भाषा नहीं थी फलत: राजकाज, विदेश व्यापार और राजनीतिक सत्ता के लिए फ्रेंच का चयन करना पड़ा। फ्रांस ने फ्रेंच भाषा-भाषी देशों को एकजुट रखने के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ' फ्रैंको- फोनी ' नामक संगठन स्थापित किया है। यह संगठन अंतरराष्ट्रीय स्तर पर फ्रेंच भाषा के पुरस्करण और संवर्धन की दिशा में अनवरत सक्रिय है। संयुक्त राष्ट्र संघ की अगली आधिकारिक भाषा अरबी भी पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ्रीका के लगभग दो दर्जन देशों की भाषा है। हिंद महासागर के द्वीपपुंज देश कोमोरो के अलावा सोमालिया, जिबूती तथा इरिट्रिया की भाषा भी अरबी है। इसी क्रम में स्पैनिश स्पेन के अलावा इक्कीस देशों की आधिकारिक भाषा है जो ब्राजील को छोड़कर सारे दक्षिण अमेरिकी देशों में प्रयुक्त होती है।इसके अलावा अगली भाषा मंदारिन का जहाँ तक सवाल है वह चीन के अलावा केवल ताइवान और सिंगापुर की प्रमुख भाषा है। संयुक्त राष्ट्र संघ की अंतिम आधिकारिक भाषा रूसी है जिसका रूस के अलावा विघटित सोवियत संघ के 15 देशों में महत्त्व कायम है। यह बाल्टिक सागर से लेकर मध्य एशिया और पूर्वी यूरोप तक परस्पर संपर्क का माध्यम है।

हिंदी क्यों ?

जब हम कथित भाषाओं के निकष पर हिंदी को कसते हैं तो पाते हैं कि आज हिंदी संपूर्ण विश्व में सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा है। भारतवर्ष की विकासशील जनसंख्या हिंदी के प्रसार का एक बड़ा कारण है। आज हिंदी अनेक बोलियों से समन्वित भाषा है। उसका देश- विदेश में अपना संयुक्त परिवार है।आज जितने लोग मातृभाषा अथवा पहली भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग करते हैं, उससे कहीं अधिक लोग उसका प्रयोग द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम और विदेशी भाषा के रूप में करते हैं। इस समय संपूर्ण विश्व में बहुभाषिकता को बढ़ावा मिल रहा है। फलतः हिंदी संपूर्ण विश्व में 65 करोड़ लोगों की पहली भाषा और 50 करोड़ लोगों की दूसरी और तीसरी भाषा है। वह गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब, जम्मू-कश्मीर, कर्नाटक, केरल, तेलंगाना तथा पूर्वोत्तर के भारतीय राज्यों और अधिकांश केन्द्र शासित प्रदेशों तथा नेपाल, भूटान, पाकिस्तान, बांग्लादेश, संयुक्त अरब अमीरात, ओमान, फ़ीजी, मॉरीशस, थाईलैंड, सूरीनाम, त्रिनिदाद और गयाना जैसे देशों में दूसरी एवं तीसरी भाषा के रूप में प्रयुक्त होती है। शेष विश्व में लगभग 20 करोड़ लोगों द्वारा चौथी, पाँचवीं और विदेशी भाषा के रूप में प्रयुक्त होती है। इस तरह संपूर्ण विश्व में 135 करोड़ लोग किसी-न- किसी रूप में हिंदी बोल अथवा समझ लेते हैं। वह विश्व के लगभग सभी देशों और महाद्वीपों में प्रयुक्त हो रही है। यही पद्धति अंग्रेजी और चीन की भाषा मंदारिन का आकलन करने वाले भी अपनाते हैं। अंग्रेजी की संख्या का आकलन करने वाले उन भारतीयों को भी अंग्रेजी बोलने वालों में शुमार करते हैं जो अंग्रेजी माध्यम से पढ़े हैं। यद्यपि अमेरिकी-ब्रिटिश और ऑस्ट्रेलियाई अंग्रेजी में पर्याप्त अंतर है लेकिन उन्हें अलग भाषा के रूप में उल्लेखित नहीं किया जाता है। ठीक इसी तरह चीन की भाषा मंदारिन भी 56 बोलियों और विभाषाओं से समन्वित है। लेकिन चीन सरकार उन्हें अलग नहीं मानती। चीन में मंदारिन के अलावा कैंटोनी, अंग्रेजी, पुर्तगाली, यूगुर, तिब्बती, मंगोली और झियांग को भी आधिकारिक भाषा का दर्जा प्राप्त है। इसी तरह यह भी तुलनीय है कि भारत में 82% भारतीय हिंदी बोल अथवा समझ सकते हैं जबकि चीन में केवल 62% लोग ही मंदारिन बोल अथवा समझ पाते हैं। हिंदी को वैश्विक भाषा का दर्जा दिलाने में एक बड़ा कारक भारत की विकासमान अर्थव्यवस्था भी है।

इस समय भारत की जनसंख्या 142 करोड़ है, जबकि अमेरिका की 33 करोड़, कनाडा की लगभग 4 करोड़, संपूर्ण यूरोप की 75 करोड़, रूस की 15 करोड़ और ऑस्ट्रेलिया की ढाई करोड़ है। कहने का आशय यह है कि इस समय धरती के लगभग 60% हिस्से पर जितनी जनसंख्या रहती है उससे अधिक जनसंख्या भारत जैसे संपूर्ण विश्व के 6% से भी कम क्षेत्रफल वाले देश में रहती है।इस दृष्टि से भी हिंदी का पलड़ा भारी है। हमारी जनसंख्या हिंदी के संख्या बल के लिए वरदान-सदृश है। ऐसी स्थिति में यह वैश्विक मन की अपरिहार्य माँग है कि संयुक्त राष्ट्र संघ अपनी भाषा नीति का नवीनीकरण करे और हिंदी को संयुक्त

राष्ट्र संघ में प्रतिष्ठा सहित आसीन करवाए। हमारी वर्तमान सरकार इस लक्ष्य को प्राप्त करने की पूरी क्षमता रखती है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अफ्रीकी देशों के पिछड़ेपन का कारण विदेशी भाषाएँ ही हैं। विश्व के जिन राष्ट्रों ने विकास किया है उन सबने अपनी भाषा में किया है। इस दृष्टि से यूरोपीय देशों, रूस, चीन, जापान, दक्षिण कोरिया और इजराइल का नाम गिनाया जा सकता है। जिन्होंने अपनी-अपनी भाषाओं में उल्लेखनीय उपलब्धियाँ अर्जित की हैं। अत: यह मानना पड़ेगा कि विकास का संबंध स्वभाषा से है। इन्हीं तथ्यों के आलोक में जब हम संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने का प्रस्ताव रखते हैं तो उसके पक्ष में निम्नलिखित बातें आती हैं :-

1. आज विश्व भर में हिंदी बोलने वालों की संख्या के आधार पर यह पहले क्रमांक पर और मंदारिन दूसरे क्रमांक पर है जबकि प्रयोक्ता देशों के आधार पर भी वह अंग्रेजी के साथ पहले क्रमांक पर है। यह सर्वविदित है कि मंदारिन बोलने वाले जितने देशों में फैले हैं उससे बहुत अधिक देशों में हिंदी बोलने वाले हैं। हिंदी विश्व के लगभग हर देश में

प्रयुक्त हो रही है।

2. वह विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र की आधिकारिक भाषा है और विश्व का हर छठा व्यक्ति हिंदी बोलने अथवा समझने में सक्षम है। ऐसी स्थिति में हिंदी का संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा न होना विश्व के हर छठे व्यक्ति के मानवाधिकार का उल्लंघन है।

3. वह उपग्रह द्वारा प्रसारित चैनलों, कंप्यूटर संजालों और इंटरनेट जैसे सर्वव्यापी वैश्विक माध्यमों के जरिए पूरी शक्ति एवं त्वरा के साथ अग्रसर है। आज बदलती विश्व- व्यवस्था में समूचा विश्व उसके प्रति रुझान महसूस कर रहा है। हिंदी चैनलों का बढ़ता बाजार और बाजारीकरण की स्पर्धा के कारण अंग्रेजी चैनलों का हिंदी में रूपांतरण हो रहा है। विश्व के विकसित देशों में भी हिंदी सिनेमा, टी.वी. कार्यक्रमों तथा कवि सम्मेलनों की माँग बढ़ रही है। अब बी.बी.सी. के हिंदी कार्यक्रमों के श्रोताओं की बढ़ती तादाद उसकी शक्तिमत्ता का उद्घोष कर रही है।

4. हिंदी की शब्द संपदा विपुल एवं विराट है। इसमें पर्यायवाची शब्दों की भी भरमार है। यह विश्व की अन्यान्य बड़ी भाषाओं से विचार-विनिमय करते हुए एक दूसरे को प्रेरित-प्रभावित करने में सक्षम है।

5. हिंदी संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रयुक्त होने वाली भाषाओं की तुलना में अधिक प्राचीन और साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध भाषा है। इसका वाङ्मय अनुवाद के माध्यम से विश्व की दूसरी भाषाओं में पहुँच रहा है। इसकी शाब्दी और आर्थी संरचना एवं लिपि सरल, सुबोध और वैज्ञानिक है। हर वर्ष ऑक्सफोर्ड शब्दकोश अपने नए संस्करणों में हिंदी के सैकड़ों शब्दों का समावेश करता है।

6. हिंदी अब भारत के बाहर फ़ीजी और संयुक्त अरब अमीरात की भी आधिकारिक भाषा है। इसके पठन-पाठन और प्रसारण की सुविधा अनेक देशों में उपलब्ध है। अब भारत के अलावा विश्व के 160 से अधिक विश्वविद्यालयों में इसका अध्ययन- अध्यापन धड़ल्ले से हो रहा है। जबकि जिन विद्यालयों, संघ की शाखाओं, स्वायत्त सेवी संस्थाओं और मंदिरों में इसके प्रशिक्षण की सुविधा है, उनकी संख्या हजारों में है।

7. यह बात हिंदी के पक्ष में जाती है कि वैश्वीकरण और बाजारवाद की नियोजक शक्तियाँ उसके साथ हैं। वे अपने हित में ही सही विज्ञापन और विपणन के लिए हिंदी का प्रयोग कर रही हैं। ऐसा न करने से वे विश्व के सबसे बड़े बाज़ार से वंचित हो सकती हैं।

8. हिंदी विश्व चेतना की संवाहिका होने के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक संदर्भों, सामाजिक संरचनाओं, सांस्कृतिक चिंताओं एवं आर्थिक विनिमय की दृष्टि से भी समर्थ है। यह स्थानीय आग्रहों से मुक्त सर्जकों की भाषा है। इसमें रचित साहित्य में विश्वस्तरीय समझ और समस्याओं के निराकरण का विकल्प है। इसका साहित्य विश्व बंधुत्व, विश्व मैत्री एवं विश्व- कल्याण की भावना से अनुप्राणित है।

9. हिंदी नवीनतम प्रौद्योगिकीय उपलब्धियों ई- मेल, ई- कामर्स, ई- पेपर, ई- जर्नल, ई- बुक, इंटरनेट और वेब जगत में प्रभावपूर्ण ढंग से अपनी सक्रिय उपस्थिति का अहसास करा रही है। इस समय विश्व की किसी भी भाषा में जो तकनीकी सुविधा उपलब्ध है, वह हिंदी में भी है। अब भारत सरकार ने चिकित्सा, विधि, प्रबंधन और अभियांत्रिकी की पढ़ाई भी हिंदी में आरंभ करवा दी है।

10. हिंदी की विश्व- व्याप्ति को लक्षित करके स्वयं संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपनी वेबसाइट और ट्विटर हैंडल हिंदी में आरंभ कर दिया है। वह हर शुक्रवार रेडियो पर एक घंटे का कार्यक्रम भी हिंदी में प्रसारित करता है। उसने इस वर्ष से तीन भारतीय भाषाओं हिंदी, उर्दू और बांग्ला में अनौपचारिक रूप से कार्य करने की अनुमति दे दी है। यह इस बात का द्योतक है कि हिंदी निकट भविष्य में संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा बन जाएगी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि उपर्युक्त दस बातें हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ में आधिकारिक भाषा के रूप में अपनी भूमिका अदा करने के लिए सर्वथा समर्थ एवं योग्य सिद्ध करती हैं। अब वह अवसर पाने पर संयुक्त राष्ट्र संघ में अपनी स्वाभाविक एवं सक्रिय भूमिका अदा करके हिंदी जगत का मस्तक गर्व से ऊँचा उठा सकती है।

हिंदी कैसे?

हिंदी संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बने, इसके लिए हमें गंभीर, साहसिक एवं बहु-आयामी प्रयास करने होंगे। हमें अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए निश्चित, एकाग्र और पूर्णत: समर्पित होना होगा। सर्वप्रथम हिंदी जगत को एकजुटता और सक्रियता दिखानी पड़ेगी और भारत सरकार को ऐसा करने के लिए तैयार करना होगा। भारत सरकार संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने का प्रस्ताव करे, इसके पूर्व वह एक उच्च दक्षता प्राप्त विशेषज्ञ समिति का गठन करे जिसमें सक्षम एवं सक्रिय साहित्यकारों, भाषाविदों, कलाकारों, मीडियाकर्मियों, वैज्ञानिकों तथा तकनीकी विशेषज्ञों का समावेश हो। यह समिति भारत सरकार को हर जरूरी सलाह दे, त्वरित कार्यनिष्पादन के लिए आधारभूत सामग्री और तकनीक मुहैया कराए जिससे हर स्तर पर हिंदी समर्थ सिद्ध हो। वह हर दृष्टि से, हर धरातल पर संवाद, संपर्क और संप्रेषण का माध्यम साबित हो। तदुपरांत भारत सरकार के किस विभाग की क्या भूमिका और जिम्मेदारी होगी, इस बात का निश्चय किया जाए। विदेश विभाग के साथ अन्यान्य मंत्रालयों के मध्य समुचित समन्वय हो जिससे पूरी प्रक्रिया आसान एवं सहज बनी रहे। भारत सरकार फ़ीजी, संयुक्त अरब अमीरात, मॉरीशस, सूरीनाम, नेपाल, भूटान जैसे देशों की सरकारों को सहप्रस्तावक के रूप में तैयार करे। भारत सरकार के वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा जो दस लाख से अधिक शब्दावली तैयार की गई है, उसे इंटरनेट पर उपलब्ध कराया जाए। हमें वर्तमान शती की चुनौतियों के अनुरूप हिंदी को पूर्णत: सक्षम बनाना होगा।

अब वर्तमान वैश्विक परिवेश हिंदी को संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा बनाए जाने के सर्वथा अनुकूल है। समूचे विश्व में लोकतांत्रिक भावना के विकास की दृष्टि से भी उसका संयुक्त राष्ट्र संघ में होना अनिवार्य है।हमारी पूर्व विदेश मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज ने कहा था कि भारत हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा का दर्जा दिलाने के लिए कृतसंकल्प है। हम उन गरीब देशों से भी बात कर रहे हैं जो हिंदी पर खर्च होने वाली राशि के लिए अपना हिस्सा देने के लिए तैयार नहीं हैं। इस संदर्भ में हमारा सुझाव है कि भारत सरकार को हिंदी पर होने वाले संपूर्ण खर्च को स्वयं ही वहन कर लेना चाहिए। अभी हम अंग्रेजी पर जो राशि खर्च कर रहे हैं, हिंदी के प्रयोग के उपरांत वह राशि बचेगी भी तो। वर्तमान समय में विश्व के 191 राष्ट्र संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य हैं और भारत सरकार को बहुमत के लिए 128 देशों के समर्थन की आवश्यकता है। इस समय अंतरराष्ट्रीय राजनीति में भारत का जो प्रभाव है, उसे देखते हुए यह समर्थन कठिन नहीं है। हमने अंतरराष्ट्रीय योग दिवस के लिए दिसम्बर 2014 को संयुक्त राष्ट्र के 177 सदस्यों द्वारा 21 जून को "अंतरराष्ट्रीय योग दिवस" को मनाने के प्रस्ताव को मंजूरी दिलवाई थी। प्रधानमन्त्री मोदी के इस प्रस्ताव को 90 दिन के अन्दर पूर्ण बहुमत से पारित किया गया, जो संयुक्त राष्ट्र संघ में किसी दिवस प्रस्ताव के लिए सबसे कम समय है। ऐसे समय में हमारे वर्तमान विदेश मंत्री श्री एस. जयशंकर का यह कहना कि-

हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा का दर्जा दिलाने के लिए हमारा प्रयास जारी है। इस तरह हमारी वर्तमान सरकार इस विषय पर बेहद गंभीर है और मुझे पूर्ण विश्वास है कि हिंदी निकट भविष्य में संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठा सहित आसीन हो जाएगी।

❋

वरिष्ठ प्रोफेसर, हिंदी विभाग, मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई-400098,
संपर्क:- 1102, सी- विंग, लक्षचंडी हाईट्स, कृष्ण वाटिका मार्ग,
गोकुलधाम, गोरेगांव (पूर्व), मुंबई-400063, मोबाइल 9167921043

दक्षिण भारत में बढ़ता हिंदी का प्रभाव

डॉ. योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरुण'

सन 1918 के मई के प्रथम सप्ताह में मद्रास के 'गोखले हॉल' में हिंदी वर्ग का शुभारंभ हुआ, जिसका उद्घाटन 'होमरूल लीग' के कार्यालय में महान राष्ट्रभक्त डॉ. एनी बेसेन्ट ने किया और इस समारोह की अध्यक्षता सर सी. पी. रामास्वामी अय्यर ने की थी। यहाँ से महात्मा गाँधी जी के पुत्र देवदास गाँधी "पहले हिंदी प्रचारक" बने और पूरे भारत में दक्षिण से हिंदी की विकास-यात्रा का शुभारंभ हुआ। अगस्त, 1918 में हिंदी के प्रबल समर्थक, स्वाधीनता सेनानी स्वामी सत्यदेव परिव्राजक को गाँधी जी के आग्रह पर उत्तर भारत से यहाँ हिंदी पढ़ाने के लिए 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' द्वारा भेजा गया। हिंदी के लिए मनसा-वाचा-कर्मणा समर्पित स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ने 'हिंदी की पहली पुस्तक' के नाम से पाठ्य-पुस्तक तैयार की, जो दक्षिण में हिंदी-शिक्षण की आधार-शिला बनी।

वैदिक काल से ही भारतवर्ष को एक अखंड भू-भाग के रूप में माना गया है, इसीलिए किसी भी पवित्र कर्म के लिए 'संकल्प-विधान' करते हुए हम सदैव "जम्बू द्वीपे भरतवर्षे भारतखण्डे" का उच्चारण करते आए हैं। यही क्यों, हमने तो अपने जल-कलश में "गंगे च यमुने चैव, गोदावरि सरस्वती, नर्मदे सिंधु कावेरी, जलेऽस्मिन सान्निधिं कुरु" का आह्वान करके समग्र भारत की मुख्य प्राणदायिनी नदियों को अपनी प्रार्थना में सम्मिलित कर लिया है। मेरे कहने का सीधा सा तात्पर्य यह है कि मेरा भारत सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टि से सदा 'एकत्त्व' का पक्षधर रहा है। साहित्यिक दृष्टि से देखा जाए तो हम पाएँगे कि वाल्मीकि प्रणीत 'रामायण' और महर्षि वेद व्यास प्रणीत 'महाभारत' के प्राण-पुरुष क्रमशः मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम और लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की कथा उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम अर्थात समग्र भारतवर्ष में लोकप्रिय रही है।

भारतभूमि से पूरे विश्व को अध्यात्म एवं दर्शन का दिव्य अमृत मिलता रहा है और युगों-युगों से भारत के ऋषि-मुनियों के चिंतन से विश्व-मानव सीखता रहा है। यहाँ के ज्ञान की अक्षय परंपरा के लिए कहा गया है-

"एतद देश प्रसूतस्य, सकासादग्र जन्मनः,
स्वम्-स्वम् चरित्रम शिक्षरेन, पृथिव्याम सर्वमानवः"

अर्थात इस भारत देश के महान व्यक्तियों ने ही पृथ्वी के समस्त मानवों को चरित्र की शिक्षा दी है।

सांस्कृतिक दृष्टि से देखें, तो विश्व भर में महान दार्शनिकों और चिंतकों के हृदय-सम्राट जगद्गुरु आदिशंकराचार्य दक्षिण भारत के केरल प्रदेश में पैदा हुए और उन्होंने पूरे भारत को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए "चार पीठों" की स्थापना की थी। इन चारों पीठों के प्रभाव से भारत सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टि से निरंतर एकता के सूत्र में बँधा रहा है और अनेक मत-मतान्तरों के बाद भी हमारी सांस्कृतिक एकता बनी रही है। इसी प्रकार तमिलनाडु के स्वामी रामानुजाचार्य और कर्नाटक के स्वामी मध्वाचार्य आदि अनेक वैष्णव आचार्यों ने पूरे भारत में भ्रमण करके हमारी धार्मिक और दार्शनिक एकता को स्थायित्व देने के साथ ही साथ भारत में 'भक्ति-आंदोलन' की आधारशिला भी रखी थी। इतिहास आज भी साक्षी है कि दक्षिण से उठे 'भक्ति-आंदोलन' ने समग्र भारत को एकता के सूत्र में दृढ़ता से बाँधे रखा और यहाँ "रामचरित मानस" के रचयिता महाकवि तुलसीदास, कृष्ण की लीलाओं का गायन करने

वाले महाकवि सूरदास, कृष्ण के रंग में पूरी तरह रंगी हुई मीरा बाई और कवि रसखान के साथ ही कबीर दास, नानक और रैदास आदि ने भारतवर्ष को सांस्कृतिक एकता का अमृत देकर विश्व के समक्ष सदा जीवंत बनाए रखा है।

भारत के स्वाधीनता-आंदोलन में उत्तर और दक्षिण तथा पूरब और पश्चिम का कोई भेद न मानते हुए, समग्र भारत एक साथ पराधीनता की बेड़ियाँ काटने के लिए एक हो गया था। अत्यंत खेद की बात यह है कि जो भारत आदि शंकराचार्य के युग में "एकत्व की डोर" में बंधा हुआ था, उसी भारत को अंग्रेज़ी-साम्राज्यवाद की राजनीति के कुत्सित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए "भाषा" के आधार पर बाँटने का प्रयास कुछ स्वार्थी राजनीतिज्ञों द्वारा किया गया और इस विभाजन का हथियार उस "हिंदी" को बनाया गया, जिसके प्रचार-प्रसार के लिए भारत की स्वाधीनता के अग्रणी रहे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने मद्रास में "दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा" की स्थापना की थी। इस महान संस्था के लिए गर्व की बात यह रही है कि राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के सुपुत्र श्री देवदास गाँधी "दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास" के पहले "हिंदी प्रचारक" बने थे। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी द्वारा स्थापित "दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा" का महान उद्देश्य वाक्य है -"एक राष्ट्रभाषा हिंदी हो एक हृदय हो भारत-जननी" और इसी ध्येय वाक्य के बीच "तीन हृदय परस्पर जुड़े हुए" दिखाए गए हैं, जो वस्तुतः भारत की "हिंदी" की प्रतिष्ठा का स्वर्णिम स्वप्न रहे हैं। ये तीन हृदय हैं- 1. क्षेत्रीय हृदय, 2. राष्ट्र हृदय और 3. विश्व हृदय।

इसका सीधा सा अर्थ यह है कि राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी "हिंदी" को भारत में तीन स्तरों पर विकसित और फलते-फूलते देखना चाहते थे। पहला स्तर था -"क्षेत्रीय", जहाँ भारत की क्षेत्रीय भाषाओं की शक्ति बनकर हिंदी चले। दूसरा स्तर था "राष्ट्रीय", जहाँ हिंदी राष्ट्रभाषा के रूप में भारत की शक्ति बने और अंतिम तीसरा स्तर था "विश्वव्यापी",जहाँ हिंदी पूरे विश्व की शक्ति बने।राष्ट्रपिता तो हिंदी को "क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और विश्व स्तर पर" फलते-फूलते देखने का सपना संजोए हुए थे, लेकिन राजनीति की शतरंज के धूर्त खिलाड़ियों ने क्षुद्र स्वार्थों को साधने के लिए "हिंदी" के नाम पर भारत को बाँटने का ऐसा घृणित षड्यंत्र रचा, जिसने हिंदी के साथ ही भारत की एकता को भी बहुत बड़ी क्षति पहुँचाई है। आज प्रसन्नता की बात यह है कि धीरे-धीरे सभी भारतवासियों की समझ में यह तथ्य पूरी तरह आ गया है कि हम हिंदी को आधार बनाकर ही प्रगति कर सकते हैं। इस चेतना का सबसे शुभ प्रभाव यह हुआ है कि दक्षिण भारत में भी अब "हिंदी" का प्रचार-प्रसार द्रुतगति से हो रहा है।

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास का महत्व

सन 1918 के मार्च महीने में हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग का वार्षिक अधिवेशन इंदौर में हुआ था और महात्मा गाँधी जी इसके अध्यक्ष बने थे। तभी से दक्षिण भारत में भी हिंदी को "राष्ट्रभाषा" के रूप में प्रतिष्ठित कराने के लिए इसके प्रचार-प्रसार का कार्य आरंभ हुआ। यहीं महात्मा गाँधी ने कहा कि गुजराती, मराठी, बंगाली भाषा-भाषियों के लिए तो हिंदी सीखना सरल है, लेकिन 'द्रविड़ भाषा-भाषियों' के लिए यह कठिन है। तभी गांधी जी ने "हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग" से दक्षिण में हिंदी का प्रचार करने का अनुरोध किया और इसके लिए पर्याप्त धन की माँग भी की। आश्चर्य की बात यह थी कि महात्मा गाँधी के अनुरोध पर तत्कालीन इंदौर नरेश सेठ हुकुमचंद जी ने तुरंत दस-दस हज़ार रुपयों की थैलियाँ गाँधी जी को भेंट कर दी।

इसका सुपरिणाम यह हुआ कि सन 1918 के मई के प्रथम सप्ताह में मद्रास के "गोखले हॉल" में हिंदी वर्ग का शुभारंभ हुआ, जिसका उद्घाटन 'होमरूल लीग' के कार्यालय में महान राष्ट्रभक्त डॉ एनिबेसेन्ट ने किया और इस समारोह की अध्यक्षता सर सी. पी. रामस्वामि अय्यर ने की थी। यहाँ से महात्मा गाँधी जी के पुत्र देवदास गाँधी "पहले हिंदी प्रचारक" बने और पूरे भारत में दक्षिण से हिंदी की विकास-यात्रा का शुभारंभ हुआ। अगस्त, 1918 में हिंदी के प्रबल समर्थक, स्वाधीनता सेनानी स्वामी सत्यदेव परिव्राजक को गाँधी जी के आग्रह पर उत्तर भारत से यहाँ हिंदी पढ़ाने के लिए "हिंदी साहित्य सम्मेलन" द्वारा भेजा गया। हिंदी के लिए मनसा-वाचा-कर्मणा समर्पित स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ने "हिंदी की पहली पुस्तक" के नाम से पाठ्य-पुस्तक तैयार की, जो दक्षिण में हिंदी-शिक्षण की आधार-शिला बनी। महान विचारक और हिंदी के सर्वतोमुखी विकास के प्रति समर्पित काका कालेलकर एवं पुरुषोत्तम दास टंडन जैसे अनेक हिंदी-सेवियों के अथक परिश्रम से दक्षिण भारत में हिंदी के प्रचार-प्रसार को समर्पित इस "दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास" को सन1964 में भारत की संसद ने एक "विधेयक" के द्वारा "राष्ट्रीय महत्त्व की संस्था" (An Institution of National Importance)" घोषित किया और यहाँ उच्च शिक्षा के साथ हिंदी भाषा और साहित्य में शोध के द्वार भी खुल गए। इस संस्था की "स्वर्ण जयंती"29-30 अप्रैल, 1971 को तत्कालीन राष्ट्रपति श्री वी वी गिरी की अध्यक्षता में मनाई गई और "हीरक जयंती" 25, 26 और 27 सितम्बर, 1979 को बड़ी धूमधाम से मनाई गई, जिसका उद्घाटन तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री मोरार जी देसाई ने किया था। अत्यंत

हर्ष एवं गर्व की बात है कि इस संस्था की शताब्दी का समारोह भी धूमधाम से मनाया गया है। आज तो चेन्नई में "हिंदी विद्यापीठ" 'और "साहित्यानुशीलन समिति" जैसी अनेक अन्य संस्थाएँ भी निरंतर हिंदी भाषा और साहित्य के उन्नयन और प्रचार-प्रसार में प्राणपन से लगी हुई हैं और यहाँ हिंदी का वर्चस्व निरंतर बढ़ता जा रहा है।

आंध्र प्रदेश में हिंदी का प्रचार-प्रसार

दक्षिण भारत में आंध्रप्रदेश भी हिंदी के प्रचार-प्रसार में सदैव अग्रणी रहा है। यहाँ भी राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की प्रेरणा और नेतृत्व के कारण ही हिंदी को विशेष प्रोत्साहन और महत्त्व मिला है। आंध्रप्रदेश में सन 1921 में विधिवत रूप से "राजमहेन्द्री शहर" में हिंदी प्रचारक विद्यालय शुरू हुआ, जहाँ पंडित हृषिकेश शर्मा और पंडित रामानंद शर्मा हिंदी के शिक्षक थे। यहाँ "दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास" की शाखा का कार्यालय सन 1920 में "नेल्लूर" शहर में खोला गया और तब श्री मोटूरि सत्यनारायण आंध्रप्रदेश की इस शाखा के संचालक बने थे। सन 1923 में काकिनाडा शहर में हुए कांग्रेस अधिवेशन में स्वागत समिति के अध्यक्ष कोंडा वेंकटप्पय्याजी ने अपना "स्वागत भाषण" जब हिंदी में दिया, तो महात्मा गाँधी सहित सभी ने उसका समर्थन और स्वागत किया। इसी के फलस्वरूप आंध्र के काकिनाडा, विजयवाड़ा, राजमहेन्द्री, गुंटूर और नेल्लूर जैसे शहरों में म्युनिसिपल स्कूलों में हिंदी पढ़ाई जाने लगी। यहाँ के हिंदी-प्रेमी राजनेताओं में श्री पट्टाभिसीता रामय्या, डॉ चेन्ना रेड्डी, संजीवा रेड्डी और सबसे बढ़कर श्री पी. वी. नरसिम्हा राव का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

सबसे बड़ी प्रसन्नता की बात यह है कि आंध्र प्रदेश के छोटे-बड़े 140 से अधिक केंद्रों पर समर्पित स्वयंसेवी सज्जनों की मदद से "हिंदी प्रेमी मंडलियों" का संचालन होता है। इनकी देख रेख में यहाँ कई हिंदी महाविद्यालय भी चलाए जाते हैं। हिंदी के सार्थक प्रचार-प्रसार में आंध्रप्रदेश की "हिंदी नाट्य- मंडलियों" का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। आन्ध्र हिंदी नाट्य मंडली तो पूरे दक्षिण भारत में प्रख्यात है। यहाँ के हिंदी लेखकों में प्रसिद्ध बाल-पत्रिका "चंदा मामा" के संपादक रहे प्रख्यात हिंदी रचनाकार और समर्पित हिंदी-सेवी स्व बालशौरि रेड्डी, आंजनेय शर्मा, कथाकार श्री भीमसेन 'निर्मल' तो अखिल भारतीय स्तर पर जाने जाते हैं। यहाँ से प्रकाशित "कल्पना" और "मिलाप" पत्रिकाओं का स्थान भी राष्ट्रीय स्तर पर बहुत महत्त्वपूर्ण रहा है।

हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद और हिंदी अकादमी, हैदराबाद के साथ ही हैदराबाद हिंदी लेखक संघ का कार्य भी हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण रहा है। केंद्रीय सरकार के "त्रिभाषा सूत्र" को अपनाने वाले राज्यों में आंध्रप्रदेश दक्षिण भारत के सभी राज्यों में अग्रणी रहा है। यहाँ पाँचवीं से दसवीं कक्षा तक हिंदी का अध्ययन अनिवार्य है। गर्व और हर्ष की बात है कि आंध्रप्रदेश से आज हिंदी की ध्वजा पूरे विश्व में फहरी है। जब डॉ पी वी नरसिम्हा राव भारत के प्रधानमंत्री थे, तब उन्होंने तत्कालीन विपक्षी नेता श्री अटल बिहारी वाजपेयी को संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत के प्रतिनिधिमंडल का नेता बनाकर भेजा था। उसी समय श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने संयुक्त राष्ट्रसंघ में अपना भाषण "हिंदी भाषा" में देकर हिंदी को "विश्व भाषा" बनाने का राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का सपना साकार किया था।

कर्नाटक में हिंदी का प्रचार-प्रसार

दक्षिण भारत के राज्य कर्नाटक में भी सन 1922 से ही राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की अजस्र प्रेरणा से हिंदी के प्रचार-प्रसार में युवा-वर्ग प्राणपण से जुटा रहा है। "मैसूर हिंदी प्रचार सभा" कर्नाटक में सर्वप्रथम पंजीकृत होने वाली हिंदी की प्रचार संस्था रही है, जिसका अपना भवन है, तो अपना एक भव्य पुस्तकालय और वाचनालय भी है। यहाँ हिंदी की सर्व प्रसिद्ध मासिक पत्रिकाओं के पुराने अंकों को जिल्द बंधवाकर सुरक्षित रक्खा गया है। बैंगलुरु और मैसूर में हिंदी के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य किए गए हैं। यहाँ सन 1935 में श्री निटटूर श्रीनिवास राव के नेतृत्व में "अखिल कर्नाटक प्रांतीय हिंदी प्रचार सभा" की स्थापना बैंगलूर में हुई थी। सभा के प्रमुख हिंदी प्रचारकों में सिद्धनाथ पंत, यमुना प्रसाद श्रीवास्तव, पं सिद्धगोपाल 'काव्यतीर्थ', टी.कृष्णस्वामी, पी वेंकटाचल शर्मा, एस वी शिवराम शर्मा आदि के नाम आज भी पूरे सम्मान और श्रद्धा के साथ याद किए जाते हैं।

कर्नाटक में "महिलाओं की हिंदी सेवा" सर्वाधिक स्मरणीय और प्रेरक रही है। कर्नाटक महिला हिंदी सेवा-समिति, बैंगलूर की स्थापना भी गाँधीजी की प्रेरणा से हुई थी। यह समिति महिलाओं में हिंदी के प्रचार-प्रसार में सर्वोत्तम कही जा सकती है। कर्नाटक में अनेक संस्थाएँ हिंदी की ध्वजा फहरा रही हैं, जिनमें "मैसूर रियासत हिंदी प्रचार समिति", "कर्नाटक हिंदी प्रचार सभा,गुलबर्गा","हिंदी प्रचार सभा, कोडुग", "हिंदी प्रचार सभा, तुमकुर", "हिंदी प्रचार सभा, चामराज नगर" और "हिंदी प्रचार सभा, बेलगांव" प्रमुख हैं।

केरल में हिंदी का प्रचार-प्रसार

दक्षिण भारत के चारों राज्यों में केरल ही एकमात्र ऐसा राज्य है, जहाँ प्रयोग की दृष्टि से हिंदी किसी भी रूप में अजनबी अथवा पराई भाषा नहीं रही है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के निर्देशानुसार मद्रास में सन 1918 से हिंदी का प्रचार कार्य आरंभ हो गया था, लेकिन केरल में एक राष्ट्रीय आंदोलन के रूप में हिंदी के प्रचार एवं प्रसार का कार्य

श्री एम के दामोदरन उन्नी के नेतृत्व में सन 1922 से शुरू हुआ। उन्होंने "हिंदी-मलयाली स्वबोधिनी" नामक पुस्तक लिखी थी, जो बड़ी प्रसिद्ध हुई। अखिल केरल हिंदी प्रचार सम्मेलन, एर्नाकुलम, केरल के महाराजा कॉलेज में 10 फरवरी, 1929 को सम्पन्न हुआ था, जिसने पूरे केरल राज्य में हिंदी के व्यापक प्रचार-प्रसार की आधारशिला का कार्य किया।

सन 1929 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय, बनारस के संस्थापक पंडित मदन मोहन जी मालवीय ने केरल के प्रमुख नगरों का भ्रमण किया। एर्नाकुलम और कोचिन के सार्वजनिक सम्मेलनों में उनके व्याख्यान हुए, जिनमें से एक सम्मेलन में मालवीय जी ने कहा था -"बड़ी प्रसन्नता की बात है कि कोचिन में हिंदी प्रचार की काफ़ी प्रगति हुई है। मलयालियों की मधुर भाषा मलयालम में संस्कृत शब्दों की भरमार है, अतएव वे आसानी से हिंदी सीख सकते हैं। कोचिन की विधान सभा में हिंदी को अनिवार्य विषय के तौर पर सिखाने के संबंध में जो प्रस्ताव पास किया, उससे देश का कल्याण होगा।"

सन 1922 से 1932 तक के दस वर्षों में केरल राज्य में हिंदी के प्रचार का कार्य "दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास" ही कर रही थी। सन 1932 में सभा ने केरल में अलग-अलग दो शाखा-समितियाँ खोली थी, उन्हीं की तरफ से सन 1934 और 1935 से केरल में हिंदी के प्रचार का कार्य शानदार ढंग से हो रहा है।

उक्त विवरण से यह तो पूर्णतः सिद्ध हो ही जाता है कि दक्षिण भारत में हिंदी को लोकप्रिय बनाने और उसे राष्ट्रभाषा का स्थान दिलाने के उद्देश्य से ही राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने "दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास" की स्थापना की थी, जिसे भारत की संसद ने "राष्ट्रीय महत्त्व की संस्था" घोषित करके हिंदी की महत्ता और राष्ट्रीय स्वीकार्यता पर मुहर लगाई है। आज भी महात्मा गाँधी द्वारा स्थापित यह संस्था हिंदी के प्रचार-प्रसार में अत्यंत सक्रिय रूप से अपनी भूमिका का सफलता पूर्वक निर्वाह कर रही है। यहाँ हिंदी भाषा में जहाँ दक्षिण के युवाओं को उच्च शिक्षा दी जा रही है, वहीं उच्च स्तरीय शोध कार्य भी हो रहा है। केंद्रीय विदेश राज्यमंत्री श्री के मुरलीधरन की अध्यक्षता में "दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास" हिंदी के सर्वतोमुखी उत्थान और विकास में लगी हुई है। हमें विश्वास है कि निहित राजनीति स्वार्थों को पराजित करती हुई भारत के जन-जन की भाषा हिंदी "राष्ट्र की भाषा" अवश्य बनेगी। हिंदी का भविष्य पूर्णतः समुज्ज्वल है, राष्ट्रभाषा के साथ ही हमारी सबसे वैज्ञानिक और समर्थ हिंदी को तो अब विश्व भाषा बनना ही है।

❋

पूर्व प्राचार्य, 74/3, न्यू नेहरू नगर, रुड़की-247667 (उत्तराखण्ड)

मैथिलीशरण गुप्त

हम कौन थे, क्या हो गये हैं, और क्या होंगे अभी
आओ विचारें आज मिल कर, यह समस्याएं सभी
भू लोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला स्थल कहां
फैला मनोहर गिरि हिमालय, और गंगाजल कहां
संपूर्ण देशों से अधिक, किस देश का उत्कर्ष है
उसका कि जो ऋषि भूमि है, वह कौन, भारतवर्ष है

यह पुण्य भूमि प्रसिद्घ है, इसके निवासी आर्य हैं
विद्या कला कौशल्य सबके, जो प्रथम आचार्य हैं
संतान उनकी आज यद्यपि, हम अधोगति में पड़े
पर चिह्न उनकी उच्चता के, आज भी कुछ हैं खड़े

वे आर्य ही थे जो कभी, अपने लिये जीते न थे
वे स्वार्थ रत हो मोह की, मदिरा कभी पीते न थे
वे मंदिनी तल में, सुकृति के बीज बोते थे सदा
परदुःख देख दयालुता से, द्रवित होते थे सदा

संसार के उपकार हित, जब जन्म लेते थे सभी
निश्चेष्ट हो कर किस तरह से, बैठ सकते थे कभी
फैला यहीं से ज्ञान का, आलोक सब संसार में
जागी यहीं थी, जग रही जो ज्योति अब संसार में

वे मोह बंधन मुक्त थे, स्वच्छंद थे स्वाधीन थे
सम्पूर्ण सुख संयुक्त थे, वे शांति शिखरासीन थे
मन से, वचन से, कर्म से, वे प्रभु भजन में लीन थे
विख्यात ब्रह्मानंद नद के, वे मनोहर मीन थे

हिंदी, विश्व की सबसे बड़ी भाषा - तथ्य एवं आँकड़े (शोध रिपोर्ट 2023)

डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल

"किसी भी भाषा के बोलने वालों की गणना, उस भाषा के जानकारों के आधार पर होती है, बोलने में मानक भाषा और सामान्य भाषा जैसा भेद नहीं होता है। लेखन के स्तर पर मानकीकरण का महत्व होता है, बोलने के स्तर पर नहीं। हिंदी बोलने वालों की संख्या की गणना करते समय सिर्फ मानक हिंदी भाषा के जानकारों की संख्या ही एथ्नोलोग में दी गई है जो एथ्नोलोग के मानदंडों के विपरीत है। इसे उदाहरण से समझा जा सकता है जैसे अंग्रेजी भाषा का मानकीकृत रूप है "क्वीन्स इंग्लिश" लेकिन कितने लोग हैं जो इस प्रकार की परिष्कृत अंग्रेजी बोलते हैं। अंग्रेजी भाषा की गणना करते हुए समान्य अंग्रेजी के जानकारों की संख्या दी गई है, " क्वीन्स इंग्लिश" बोलनेवालों की नहीं।"

प्रस्तावना :

'विश्व में भाषाओं की रैंकिंग 'एथ्नोलोग' नाम की प्रतिष्ठित संस्था करती है। यह अमेरिकी संस्था है। एथ्नोलोग हिंदी को तीसरे स्थान पर दिखाता है जबकि हिंदी विश्व में पहले स्थान पर थी और आज भी है, लेकिन उसे निरंतर तीसरे स्थान पर दिखाया जाता रहा है। किसी भी विद्वान ने इस पर आपत्ति नहीं की। यद्यपि मेरे शोध के उपरांत भारत के तथा विश्व के भाषाविद अब हिंदी को पहले स्थान पर मानने लगे हैं, लेकिन एथ्नोलोग इसे आज भी तीसरे स्थान पर दिखा रहा है। यह विसंगति अब तक चलती आ रही है, न तो भारत सरकार की हिंदी के हित में बनी किसी संस्था ने और न ही भाषाविदों की ओर से इस पर कोई आपत्ति दर्ज की गई इसलिए यह गलत आँकड़ा आज भी चल रहा है।

मैंने सबसे पहले इस संबंध में सन 2005 में अपनी आपत्ति दर्ज कराई थी तथा अपनी शोध की प्रति भेजते हुए एथ्नोलोग से अनुरोध किया था कि हिंदी बोलने वालों कि सही संख्या का उल्लेख करते हुए हिंदी को पहले स्थान पर दर्शाएँ। चूँकि उस समय 15 वें संस्करण के प्रकाशन का कार्य पूरा हो चुका था इसलिए एथ्नोलोग के तत्कालीन संपादक श्री पॉल लेविस ने आश्वासन दिया था कि वे मेरे द्वारा सुझाए संशोधन को अपने 16वें संस्करण में प्रकाशित करेंगे।[1] परंतु कुछ समय बाद एथ्नोलोग ने मुझसे कहा कि मुझे उर्दू भाषा को हिंदी भाषा में मर्ज (विलीन) करने हेतु आइ एस ओ में बदलाव की प्रक्रिया पूर्ण करनी होगी। अतः उन्होंने मुझसे लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस से संपर्क करने का सुझाव दिया, इस पर मैंने उन्हें बताया कि मेरा उद्देश्य उर्दू को हिंदी में विलीन करना नहीं है बल्कि मैं चाहता हूँ कि उर्दू भाषा के जानकारों को हिंदी जानकारों में शामिल किया जाए, जैसा कि चीनी भाषा और अंग्रेजी भाषा के बोलने वालों की गणना में एथ्नोलोग द्वारा किया जाता है।

एथ्नोलोग द्वारा हिंदी को प्रथम स्थान पर दर्शाये जाने की अद्यतन स्थिति :

मैंने एथ्नोलोग को सूचित किया कि मैं गत 41 वर्ष से इस शोध को जारी रखे हुए हूँ और हर दो साल में इसका नवीनतम संशोधित संस्करण विश्व हिंदी दिवस (10 जनवरी) को प्रकाशित करता आ रहा हूँ। जिस प्रकार एथ्नोलोग हर वर्ष अपनी रिपोर्ट को संशोधित करता है तथा अद्यतन रिपोर्ट हर वर्ष प्रकाशित करता है, उसी प्रकार मैं भी अपनी संशोधित रिपोर्ट हर दो वर्ष में जारी करता आ रहा हूँ। एथ्नोलोग का यह 25 वाँ संस्करण है और मेरी शोध का यह उन्नीसवाँ संस्करण है जिसमें

वर्ष 2022 तक के आँकड़ों को समाहित करते अद्यतन किया गया है। यह रिपोर्ट " शोध रिपोर्ट 2023" के नाम से जारी की गई है। मेरी शोध रिपोर्ट का अट्ठारहवाँ संस्करण अर्थात 2021 की शोध रिपोर्ट एथ्नोलोग के पास विचाराधीन है। एथ्नोलोग के प्रतिनिधि सुश्री रोना एवं श्री रोब इस मामले में समन्वय कर रहे हैं तथा संपादकीय टीम के निर्णय के बाद एथ्नोलोग अपने आँकड़ों में संशोधन करके हिंदी को पहले स्थान पर दर्शाएगा।

प्रामाणिकता संबंधी विविध चरण :

मेरे इस शोध की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए इसका 20 चरणों में परीक्षण किया गया जिसमें इस शोध पर विश्वविद्यालयों में विद्वानों द्वारा विचार विमर्श, विशिष्ट संगोष्ठियों में परीक्षण, भाषा प्राधिकारियों द्वारा परीक्षण, भाषाविदों व हिंदी के विद्वानों के विचार/ अभिमत आमंत्रित करके शोध की सत्यता का पता लगाया गया। इन सभी चरणों में यह शोध प्रामाणिक सिद्ध हुआ है। इसी आधार पर, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार ने सभी बैंकों, बीमा कंपनियों एवं वित्तीय संस्थाओं को सरकारी निर्देश दिये थे कि सभी हिंदी कार्यशालाओं में इस शोध को अनिवार्य रूप से पढ़ाया जाए व साथ ही गृह पत्रिकाओं के इसे प्रकाशित किया जाए।

भारत सरकार राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय ने इस शोध की प्रामाणिकता की जाँच (FACT CHECK) हेतु इसे केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा (शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार) भेजा था। केन्द्रीय हिंदी संस्थान ने इस कार्य हेतु विशेषज्ञ नियुक्त किया, विशेषज्ञ नें इस शोध को प्रामाणिक माना तथा प्रबल रूप से संपुष्टि करते हुए रिपोर्ट प्रस्तुत की। भारत सहित विश्व के 172 शीर्ष भाषाविदों ने इस शोध का समर्थन किया है। इस शोध ने अपनी प्रामाणिकता के 20 चरण सफलतापूर्वक पूरे कर लिए हैं। अतः निर्विवाद रूप से यह प्रामाणिक रिपोर्ट है।

हिंदी की संख्या को कम आँकने में गलती कहाँ हुई और सुधार कैसे होगा ?

अब हम यहाँ हिंदी को कम आँकने में हुई गलतियों पर चर्चा करेंगे और इसमें सुधार कैसे हो इस पर भी प्रकाश डालेंगे। विश्व में हिंदी की संख्या की गणना में पाँच प्रकार की गलतियाँ हुई हैं, जो इस प्रकार हैं :

1. हिंदी भाषा और मानक हिंदी भाषा में भ्रम पैदा करके मानक हिंदी को ही हिंदी माना है।
2. हिंदी भाषा की गणना में हिंदी की बोलियों को अलग दर्शाया है।
3. भारत में तथा विश्व में हिंदी बोलने वालों की सही संख्या नहीं दी गई।
4. उर्दू भाषा को अलग भाषा मानते हुए उर्दू भाषियों को हिंदी जानकारों में नहीं गिना गया।
5. एथ्नोलोग के मानदंडों के आधार पर हिंदी भाषियों की गणना नहीं की गई।

1. हिंदी भाषा और मानक हिंदी भाषा में भ्रम पैदा करके मानक हिंदी को ही हिंदी माना है :

किसी भी भाषा के बोलनेवालों की गणना, उस भाषा के जानकारों के आधार पर होती है, बोलने में मानक भाषा और सामान्य भाषा जैसा भेद नहीं होता है। लेखन के स्तर पर मानकीकरण का महत्व होता है, बोलने के स्तर पर नहीं। हिंदी बोलने वालों की संख्या की गणना करते समय सिर्फ मानक हिंदी भाषा के जानकारों की संख्या ही एथ्नोलोग में दी गई है जो एथ्नोलोग के मानदंडों के विपरीत है। इसे उदाहरण से समझा जा सकता है जैसे अंग्रेजी भाषा का मानकीकृत रूप है "क्वीन्स इंग्लिश" लेकिन कितने लोग हैं जो इस प्रकार की परिष्कृत अंग्रेजी बोलते हैं। अंग्रेजी भाषा की गणना करते हुए समान्य अंग्रेजी के जानकारों की संख्या दी गई है " क्वीन्स इंग्लिश" बोलनेवालों की नहीं। यही पद्धति चीनी भाषा के लिए अपनाई गई है, चीन की मानकीकृत भाषा मंदारिन है लेकिन सामान्य चीनी भाषा के जानकारों को इसमे शामिल किया गया है। हिंदी भाषा के मामले में केवल मानकीकृत हिंदी भाषा को ही लिया गया है, इस प्रकार हिंदी भाषा के जानकारों की संख्या बहुत कम दिखाई गई है।

2. हिंदी भाषा की गणना में हिंदी की बोलियों को अलग दर्शाया है :

भाषाएँ बोलियों का समुच्चय होती हैं। कई समान बोलियों का विस्तृत रूप ही भाषा के रूप में जाना जाता है। उदाहरण के लिए अंग्रेजी की 160 उपबोलियाँ हैं। इनमें एक दर्जन से अधिक बड़े उप - भाग हैं जैसे ब्रिटिश इंगलिश, अमेरिकन इंग्लिश, कैनडियन, साउथ अफ्रीकन, आस्ट्रेलियन, आयरिश, न्यूजी लैंड, इंडो इंग्लिश, फिलिपिनो इंग्लिश आदि आदि, लेकिन अंग्रेजी भाषा बोलने वालों में इन सभी को जोड़ा गया है। इसी प्रकार चीनी भाषा में गैन, हक्का, ह्वेझौ, जिन्यु, मंदारिन, मिन बेइ, मिन डोंग, मिन नॉन, मिन ज़्होंग, उत्तरी पिंघवा, पु . झिन्याँ, दक्षिणी पिंघूवा, वू, क्षियांग, यू आदि बोलियों को शामिल किया गया है। यह उल्लेख स्वयं एथ्नोलोग ने चीनी भाषा के आँकड़ों को जारी करते हुए यह स्वीकार किया है कि चीनी भाषा में ये शामिल हैं। जबकि हिंदी की निकटतम बोलियों जैसे अवधी, ब्रज, भोजपुरी आदि आदि को हिंदी में नहीं जोड़ा गया है। इन बोलियों को बोलने वाले सभी हिंदी समझते हैं व बोलते भी हैं। इसी प्रकार भारतीय मूल के लोगों द्वारा

विदेशों में बोली जा रही हिंदी को भी हिंदी से अलग कर दिया गया है, कहीं इसे हिंदुस्तानी कहा गया है कहीं, फ़ीजी हिंदी, कहीं सरनामी हिंदी, कहीं गुयानी हिंदी आदि, इस प्रकार न तो भारत में हिंदी के जानकारों कि सही संख्या दर्शाई गई और न ही विश्व में हिंदी बोलने वालों का सही आकलन किया गया। एथ्नोलोग में इन भाषा के जानकारों को हिंदी भाषा के जानकारों से अलग गिना गया है। अंग्रेजी और चीनी भाषा में उनकी बोलियों को भी समाहित करते हुए सही संख्या दी गई है।

3. भारत में तथा विश्व में हिंदी बोलने वालों की सही संख्या नहीं दी गई है :

चूँकि एथ्नोलोग को न तो भारत की किसी संस्था की ओर से और न ही भारत के किसी विद्वान की ओर से और न ही किसी स्वयं सेवी संस्था की ओर से सही आँकड़े दिये गए इसलिए एथ्नोलोग, हिंदी के मामले में भारत की 2011 की जनगणना से भी कम आँकड़े को छापती आ रही है, जबकि 2011 की जनगणना में हिंदी भाषा के जानकारों कि संख्या भारत में 69 करोड़ थी, लेकिन एथ्नोलोग पूरे विश्व में हिंदी के जानकारों कि संख्या 60 करोड़ दिखा रही है। वास्तविकता यह है कि भारत में हिंदी के जानकार 1 अरब 18 करोड़ हैं। अंग्रेजी या अन्य भाषाओं के आँकड़े अद्यतन किए जाते हैं लेकिन हिंदी के आँकड़े 11 वर्ष पुराने हैं और वो भी कम करके दिखाये जाते हैं। किसी ने भी इसका विरोध नहीं किया इसलिए ये ही आँकड़े सही मान लिए गए। इसमें एथ्नोलोग का दोष नहीं है, सारा दोष तो भारतीय विद्वानों का है जो चुप रह कर हिंदी को तीसरे स्थान पर देखते रहे जबकि हिंदी पहले स्थान की हकदार है। यदि कोई संस्था या विद्वान एथ्नोलोग को प्रामाणिक जानकारी देकर तथ्यों या आँकड़ों में सुधार कराना चाहते हैं तो एथ्नोलोग उसे स्वीकार करता है। इस वर्ष भी 24वें संस्करण के बाद 25 वें संस्करण में 13000 सुधार किए गए हैं। हिंदी बोलने वाले विश्व में कितने हैं इसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

4. उर्दू भाषा को अलग भाषा मानते हुए उर्दू भाषियों को हिंदी जानकारों में नहीं गिना गया:

विश्व के सभी विद्वान यह मानते हैं कि हिंदी और उर्दू में कोई विशेष अंतर नहीं है। स्वयं एथ्नोलोग यह मानता है कि हिंदी, हिंदुस्तानी, रेख़ता, दक्खिनी हिंदी, उर्दू, आदि हिंदी कि ही शैलियाँ हैं। इन शैलियों के जानकार हिंदी अच्छी तरह बोलते हैं, अतः इनकी गणना भी हिंदी के जानकारों में या हिंदी बोलने वालों में होनी चाहिए। अंग्रेजी और चीनी भाषा के लिए तो यह मानदंड अपनाया गया कि जिसे थोड़ी सी भी कामचलाऊ अंग्रेजी आती हो उसे अंग्रेजी का जानकार मान लिया गया, चाहे वह कोई भी भाषा बोलता हो, लेकिन उर्दू के जानकार हिंदी जानते हैं यह एथ्नोलोग को भी पता है लेकिन किसी ने इस मुद्दे को नहीं उठाया, इसलिए एथ्नोलोग ने भी इस मामले में कुछ नहीं किया। यहाँ मैं एक बात और स्पष्ट करना चाहूँगा कि एथ्नोलोग के लिए भाषा के जाननेवाले और भाषा को बोलने वाले एक ही श्रेणी में गिने जाते हैं। अतः एथ्नोलोग के मानदंडों के अनुसार उर्दू के जानकार हिंदी के जानकारों में गिने जाने चाहिए, इससे हिंदी के जानकारों की सही संख्या का पता लग सकेगा।

5. एथ्नोलोग के मानदंडों के आधार पर हिंदी भाषियों की गणना नहीं की गई

विश्व में हिंदी बोलनेवालों की गणना एथ्नोलोग के स्वीकृत मानदंडों के आधार पर नहीं हुई इसलिए हिंदी पिछड़ गई। एथ्नोलोग का पहला मानदंड है कि चाहे व्यक्ति किसी भी भाषा को बोलता हो, अगर उसे अन्य भाषा भी आती है तो उसकी गणना होनी चाहिए। मान लीजिये कोई गुजराती भाषी है और उसे अंग्रेजी भाषा भी आती है तो उसकी गणना अंग्रेजी के जानकारों में भी होगी और गुजराती भाषियों में भी। हिंदी के साथ ऐसा नहीं हुआ, हिंदी की गणना में सिर्फ मानक हिंदी भाषा भाषी गिने गए, अन्य भाषा के जानने वाले जो हिंदी भी जानते हैं उन्हें अलग कर दिया गया है, जबकि एथ्नोलोग के अनुसार उनकी गणना हिंदी में भी होनी चाहिए।

एथ्नोलोग का दूसरा मानदंड यह है कि भाषा भाषियों कि गणना अद्यतन होनी चाहिए। उदाहरण के लिए एथ्नोलोग के अनुसार विश्व में, सन 2021 में अंग्रेजी के जानकार 1 अरब 26 करोड़ थे लेकिन इस वर्ष इनकी संख्या 1 अरब 45 करोड़ हो चुकी है। अर्थात आँकड़े बिलकुल ताज़ा तरीन हैं। अंग्रेजी के मामले में भारत के संदर्भ में ही लें, 2011 कि जनगणना में भारत में अंग्रेजी जाननेवाले 12 करोड़ 92 लाख थे आज की तारीख में 26 करोड़ 52 लाख हो गए हैं। अर्थात 2011 से 2021 तक 105 % की वृद्धि हुई है। यह आँकड़ा अद्यतन किया गया है। हिंदी के मामले में 11 साल पुराना आँकड़ा दिया जा रहा है, वह भी गलत मानदंडों के आधार पर गिना गया है। इसलिए संख्या तो कम आएगी ही। ऊपर लिखे कारणों से ही विश्व में हिंदी की संख्या बहुत कम दिखाई जाती है। आज जरूरत है इसमें सुधार करके हिंदी को प्रथम स्थान पर स्थापित करने की..।

इसमें सुधार कैसे होगा ?

इसमें सुधार आसान है। हमें अद्यतन आँकड़े जुटा कर एथ्नोलोग को इस अनुरोध के साथ भेजने होंगे कि वे अगले प्रकाशन में हिंदी के अद्यतन आँकड़े प्रस्तुत करें। यह काम मैंने कर लिया है। सन 2022 के अद्यतन आँकड़े मैंने 5 तालिकाओं मे जुटाये हैं। हिंदी के जानकारों की

संख्या को तीन फार्मूलों का उपयोग करते हुए निकाली गई है ताकि आँकड़ों की विश्वसनीयता बनी रहे और कोई अनावश्यक विवाद उत्पन्न न हो। इन तालिकाओं के अनुसार विश्व में हिंदी बोलने वालों की संख्या इस प्रकार है:

सूत्र 1, (फार्मूला 1), पारंपरिक पद्धति से गणना :

इस पद्धति के अंतर्गत भारत के और विदेशों के हिंदी जानने वालों के आँकड़े एथ्नोलोग से तथा भारत सरकार के विदेश मंत्रालय की वैबसाइट से लेकर संख्या का आकलन किया गया है। इसे विस्तार से इस प्रकार समझाया जा सकता हैं :

तालिका 2 – भारत में हिंदी के जानकारों की संख्या का निर्धारण:

भारत के सभी राज्यों व संघ शासित क्षेत्रों में हिंदी के जानकारों की संख्या को "क", "ख" तथा "ग" क्षेत्रों के आधार पर निकाला गया है। भारत सरकार, गृहमंत्रालय ने वार्षिक कार्यक्रम जारी करते समय इस संकल्पना को अपनाया था। राजभाषा नियम 1976 यथा संशोधित 1987 के तहत, राजभाषा कार्यान्वयन हेतु वार्षिक लक्ष्य निर्धारित करने के लिए यह संकल्पना काम में लायी जाती है। इस सिद्धान्त के अनुसार "क" क्षेत्र में 100 प्रतिशत जनता हिंदी की जानकार है, इसलिए हिंदी पत्राचार के लक्ष्य 100 % रखे जाते हैं। "ख" क्षेत्र में इन राज्यों की भाषा और हिंदी लगभग समान है, यहाँ 90 % जनता हिंदी जानती है, इसलिए हिंदी पत्राचार के लक्ष्य 90% रखे जाते हैं, "ग" क्षेत्र में अलग अलग राज्य में हिंदी जाननेवालों की संख्या अलग-अलग है, लेकिन औसतन 60 प्रतिशत जनता हिंदी जानती है इसलिए यहाँ हिंदी पत्राचार का लक्ष्य 55% रखा जाता है। मैंने अपनी शोध में इसी फार्मूले को अपनाते हुए हिंदी जानकारों की संख्या निकाली है। "ग" क्षेत्र में राज्यवार हिंदी के जानकारों की संख्या जानने के लिए भारत सरकार के राजभाषा विभाग के अधीन कार्यरत नगर राजभाषा कार्यान्वयन समितियों के सदस्य सचिवों, राजभाषा अधिकारियों, हिंदी अध्यापकों तथा दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा तथा अन्य हिंदी प्रचार में लगी संस्थाओं के स्वयंसेवकों से जानकारियाँ एकत्र की गई तथा नमूना सर्वेक्षण एवं अन्य विभिन्न स्रोतों से इसका सत्यापन करने के उपरांत ही आँकड़ों को स्वीकृत किया गया। अतः भारत में हिंदी जानकारों की प्रामाणिक संख्या 1187978516 है अर्थात 1 अरब अट्ठारह करोड़ उन्यासी लाख अठहत्तर हजार पाँच सौ सोलह है। विस्तृत जानकारी के लिए तालिका 2 देखें।

तालिका 3 विदेशों में हिंदी के जानकारों की संख्या (एथ्नोलोग में स्वीकृत देश) :

विदेशों में हिंदी के जानकारों के लिए एथ्नोलोग में स्वीकार किए गए 37 देशों को लिया गया है। एथ्नोलोग ने यह तो स्वीकार किया है कि इन 37 देशों में हिंदी के जानकार हैं लेकिन हिंदी के जानकारों कि संख्या बहुत कम दिखाई है। यहाँ भी उन्होंने सिर्फ मानक हिंदी के आँकड़े लिए हैं, जबकि इन देशों में रह रहे गुजराती, मराठी, बंगला भाषी जो हिंदी के अच्छे जानकार हैं उनकी संख्या हिंदी के जानकारों में नहीं जोड़ी गई है। विदेशों में भारतीय मूल के लोगों द्वारा बोली जा रही हिंदी भाषा को भी इसमें नहीं जोड़ा गया है, इसलिए इसमें सुधार करते हुए हिंदी जानकारों की वास्तविक संख्या निकाली गई है जो 45072451 है। अर्थात चार करोड़ पचास लाख बहत्तर हजार चार सौ इक्कावन है। विस्तृत जानकारी के लिए तालिका 3 देखें।

तालिका 4 विदेशों में हिंदी के जानकारों की संख्या (जो देश एथ्नोलोग की सूची में शामिल नहीं हैं) :

विश्व में 42 देश ऐसे हैं जिनमें बड़ी संख्या में हिंदी के जानकार रहते हैं, परंतु एथ्नोलोग ने इन देशों में हिंदी जानने वालों की गणना नहीं की है। एथ्नोलोग को इन देशों को भी अपनी सूची में शामिल करना चाहिए। एथ्नोलोग को जो भी आँकड़े किसी ने दिये हैं वे तथ्यात्मक नहीं हैं इसलिए इतनी बड़ी चूक हो गई है। एथ्नोलोग जिन मानदंडों के आधार पर भाषा के जानकारों की संख्या निकलता है उसी सिद्धान्त का पालन करते हुए मैंने इन देशों में हिंदी के जानकारों की संख्या निकाली जो इस प्रकार है : 94436510, अर्थात नौ करोड़ चवालीस लाख छतीस हज़ार पाँच सौ दस। विस्तृत जानकारी के लिए तालिका – 4 देखें।

तालिका 5 विश्व के शेष राष्ट्र जहाँ हिंदी के जानकार हैं उनकी संख्या :

विश्व के 133 देश ऐसे हैं जहाँ हिंदी के जानकार हैं ये कहीं कम मात्रा में हैं और कहीं अधिक मात्रा में हैं। यह तालिका अलग से इसलिए बनाई गई है ताकि सभी पाठकों को यह जानकारी हो सके कि सम्पूर्ण विश्व में हिंदी के जानकार और भारतीय मौजूद हैं। भारत के व्यापारियों व नीति निर्धारकों को भविष्य में वैश्विक नीति निर्माण में इन देशों की ओर भी ध्यान देना चाहिए। इन देशों में भी हिंदी के जानकारों की संख्या निकालने पर यह संख्या होती है :- 117683, अर्थात एक लाख सत्रह हजार छह सौ तिरासी। विस्तृत जानकारी के लिए तालिका 5 देखें।

तालिका 1 उर्दूभाषी और अवैध आप्रवासी/ शरणार्थी :

विश्व में फैले समस्त उर्दू भाषी जिनकी संख्या एथ्नोलोग ने 231295440 बताई है, ये सभी हिंदी जानते हैं इसलिए इनकी गिनती हिंदी के जाननेवालों में भी होनी चाहिए।

भारत में पाकिस्तान से हिन्दू, बांग्लादेश से बंगलादेशी, म्यांमार से रोहिङ्ग्या, तिब्बत से तिब्बती शरणार्थी, अफगानिस्तान से अफगानी शरणार्थी भारत में आकर बसे हैं।इनकी संख्या 2 करोड़ से अधिक है। ये

भारत के नागरिक नहीं हैं लेकिन भारत में अवैध रूप से रह रहे हैं, इनमें अधिकांश संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का उपयोग करते हैं। इसलिए इन में से हिंदी जानकारों संख्या 16000000 आँकी गई है। इस प्रकार तालिका 1 के अनुसार हिंदी के जानकार हैं ;- 247295440, अर्थात चौबीस करोड़ बहत्तर लाख पिचानबे हज़ार चार सौ चालीस।

विश्व में हिंदी बोलने वालों की संख्या : (फार्मूला 1)

विश्व में हिंदी बोलने वालों की संख्या जानने के लिए हमें तालिका 1 से तालिका 5 तक के योग को जोड़ना होगा। अतः अंतिम आँकड़े इस प्रकार होंगे :- तालिका 1 = 247295440 + तालिका 2 = 1187978516 + तालिका 3 = 45072451 + तालिका 4 = 94436510 + तालिका 5 = 117683 योग = 1560394680 अर्थात 1 अरब छप्पन करोड़ तीन लाख चौरानबे हज़ार छह सौ अस्सी (1560 मिलियन)

सूत्र 2 (फार्मूला 2) बोलियों के आधार पर हिंदी के जानकार

विश्व में हिंदी के जानकारों की संख्या बोलियों के जानकारों के आधार पर करें तब भी हिंदी के जानकार विश्व में सबसे अधिक हैं। वस्तुतः हिंदी की बोलियों को बोलने वाले विश्व में बड़ी मात्रा में हैं, इन बोलियों को बोलने वाले सभी हिंदी जानते हैं इसलिए इनकी गणना हिंदी बोलने वालों में ही की जाएगी जैसा की एथ्नोलोग अंग्रेजी और चीनी भाषा के लिए करता है। गणना देखें ;- तालिका 6 का योग 1034917490 + तालिका 2 में "ख" क्षेत्र के हिंदी भाषी = 206324040 + "ग" क्षेत्र के हिंदी के जानकार = 303080555 + अवैध शरणार्थी = 16000000 योग = 1560322085 अर्थात 1 अरब छप्पन करोड़ तीन लाख बाईस हज़ार पिचासी (1560 मिलियन)

सूत्र 3 (फार्मूला 3) वृद्धि दर के आधार पर गणना :

यह एक गणितीय सिद्धान्त है जिसमें किसी एक मद की वृद्धि दर की गणना की जाती है और वही वृद्धि दर अन्य मदों पर समान रूप से लागू की जाती है। उदाहरण के लिए भारत की 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में अंग्रेजी जानने वाले 129259678 थे उस समय यह भारत की जनसंख्या का 10.67 प्रतिशत थे। आज एथ्नोलोग के आँकड़ों के अनुसार भारत में 265000000 अंग्रेजी के जानकार हैं, अर्थात अंग्रेजी भाषा के जानकारों की संख्या में 105% की वृद्धि हुई है। अब हम इस वृद्धि दर के आधार पर हिंदी भाषा के जानकारों का पता लगाएंगे।

2011 की भारत की जनगणना के अनुसार भारत में हिंदी के जानकार 691347193 थे। उस समय यह कुल जनसंख्या का 57.09 प्रतिशत था। अंग्रेजी भाषा की समान वृद्धि दर लागू करने पर (105% वृद्धि दर) भारत में आज हिंदी के जानकारों की संख्या है 1417261746 अर्थात 1 अरब एकतालीस करोड़ बहत्तर लाख एकसठ हज़ार सात सौ छियालीस। इस फार्मूले में किसी को कोई संदेह नहीं होना चाहिए। जब बिना सरकारी सहायता के अंग्रेजी 105 प्रतिशत के दर से बढ़ सकती है तो करोड़ों का बजट खर्च करके लाखों हिंदी प्रचारकों, हिंदी अधिकारियों और हिंदी की शीर्ष संस्थाओं के सतत प्रयासों से हिंदी में भी 105 प्रतिशत की वृद्धि सहज ही हो सकती है।

अब इसमें विश्व में हिंदी के जानकारों की संख्या जोड़ कर विश्व में हिंदी जानने वालों की संख्या आसानी से पता की जा सकती है, जो इस प्रकार है :- सूत्र 3 के अनुसार गणना करने पर भारत में हिंदी जानने वाले =1417261746 + विदेश में हिंदी के जानकार तालिका 3 के अनुसार = 45072451 + तालिका 4 के अनुसार विदेश में हिंदी के जानकार 94436510, तालिका 5 के अनुसार विदेशों में हिंदी के जानकार =117683 + तालिका 1 के अनुसार उर्दूभाषी हिंदी के जानकार = 231295440 + अवैध शरणार्थी जो हिंदी के जानकार हैं 16000000 अब कुल योग = 1804183830 अर्थात 1 अरब 80 करोड़ एकतालीस लाख तिरासी हज़ार आठ सौ तीस (1804 मिलियन) यह वास्तविक संख्या होगी।

गणितीय दृष्टि से यह संख्या सही है लेकिन विवाद से बचने के लिए हम भारत में हिंदी के जानकारों की ऊपर तालिका 2 में बताई गई प्रामाणिक संख्या ही ले रहे हैं जो 1187978516 है। इसलिए हम भारत के हिंदी जानकारों की संख्या में से 229283230 घटा रहे हैं। इस समायोजन के पश्चात विश्व में हिंदी के जानकारों की संख्या 1574900600 हो जाएगी (अर्थात 1574 मिलियन) ।

अब आपके सामने स्थिति स्पष्ट है। आप किसी भी फार्मूले से गणना करें, हिंदी पहले स्थान पर ही आएगी। कम से कम संख्या लेने पर भी, तब भी हिंदी प्रथम स्थान पर ही रहेगी क्योंकि संख्याबल में हिंदी दूसरी भाषाओं से बहुत आगे है। यह अंतर 10 करोड़ से भी अधिक है। विश्व में अन्य भाषाओं की स्थिति निम्नवत है

क्र सं	भाषा	बोलनेवालों की संख्या (मिलियन में)	रैंक
1	हिंदी	1560	1
2	अंग्रेजी	1452	2
3	चीनी	1325	3
4	स्पेनी	548	4
5	फ्रेंच	274	5

तालिका -1

विश्व में उर्दूभाषी और अवैध शरणार्थी जो हिंदी बोलते हैं उनकी वास्तविक स्थिति वर्ष 2022 के अंत तक

क्र सं	विवरण	एथ्नोलोग के अनुसार आँकड़े हिंदी के जानकार	मेरी शोध के अनुसार आँकड़े हिंदी के जानकार
1 .	विश्व में उर्दू बोलनेवालों /जानने वालों की संख्या (एथ्नोलोग में दिये गए वर्ष 2022 के आँकड़े)	231295440	231295440
2.	भारत में बसे अवैध आप्रवासी, पाकिस्तानी हिन्दू, बांग्लादेशी / रोहींग्या, अफगानिस्तानी, तिब्बती शरणार्थी कुल संख्या (20000000)	00	16000000
	योग		247295440

तालिका – 2

भारत में हिंदी जाननेवाले (आँकड़े 2022 वर्षांत तक) डॉ जयंती प्रसाद नौटियाल का शोध अध्ययन – 2023

भारत सरकार द्वारा जारी राजभाषा नियम 1976 (यथा संशोधित 1987) के अनुसार भारत के भाषिक क्षेत्र

क्र सं	राज्य / संघ शासित क्षेत्र	जनसंख्या	हिंदी जाननेवालों का प्रतिशत	हिंदी जानने वालों की संख्या
	रा भा नियम 1976 के अनुसार "क क्षेत्र"			
1	अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह	447950	100	447950
2	बिहार	126702082	100	126702082
3	छत्तीसगढ़	30291738	100	30291738
4	दिल्ली	19937705	100	19937705
5	हरियाणा	29041574	100	29041574
6	हिमाचल प्रदेश	7758458	100	7758458
7	झारखंड	395828	100	395828
8	मध्यप्रदेश	87314286	100	87314286
9	राजस्थान	82954047	100	82954047
10	उत्तराखंड	11760016	100	11760016
11	उत्तर प्रदेश	242783169	100	242783169
	योग ("क" क्षेत्र)	678573921		678573921
	रा भा नियम 1976 के अनुसार "ख" क्षेत्र			
12	चंडीगढ़	1253473	90	1128125
13	दादर एवं नगर हवेली	408196	90	367379
14	दमन एवं दीव	288886	90	259997
15	गुजरात	67765634	90	60989070
16	महाराष्ट्र	128132972	90	115319674
17	पंजाब	31399773	90	28259795
	योग ("ख" क्षेत्र)	229248934		206324040
	रा भा नियम 1976 के अनुसार "ग" क्षेत्र			
18	आंध्र प्रदेश	56076014	55	30841807
19	अरुणाचल प्रदेश	1620568	90	1458511
20	असम	36674398	70	25672078
21	गोवा	1635893	90	1472303
22	जम्मू एवं कश्मीर	14894309	85	12660168

क्र सं	राज्य / संघ शासित क्षेत्र	जनसंख्या	हिंदी जाननेवालों का प्रतिशत	हिंदी जानने वालों की संख्या
23	कर्नाटक	70160690	60	42096414
24	केरल	37464011	60	22478406
25	लक्ष्यद्वीप	76570	30	22971
26	मणिपुर	3190188	45	1435584
27	मेघालय	3474132	35	1215946
28	मिजोरम	1278785	30	383635
29	नागालैंड	2321477	30	696443
30	उड़ीसा	48172226	70	33720558
31	पुदुच्चेरी	1482094	25	370523
32	सिक्किम	712275	65	462978
33	तमिलनाडु	81099163	25	20274790
34	तेलंगाना	40795583	70	28556908
35	त्रिपुरा	4302841	40	1721136
36	पश्चिम बंगाल	103593350	75	77695012
37	लद्दाख	325751	70	228025
	योग ("ग" क्षेत्र)	509350318	59.50	303080555
	महा योग (क + ख + ग क्षेत्र)	1417173173	83.82	1187978516

तालिका – 3

(घ) एथ्नोलोग के अनुसार विश्व में हिंदी जाननेवाले और उनकी वास्तविक संख्या

नोट : 1. उर्दू भाषियों की संख्या इन आँकड़ों से हटा दी गई है। इसे अलग से अंत में जोड़ा जाएगा। 2. दक्षिण भारत की भाषाओं के भाषा भाषियों में हिंदी के जानकारों की गणना करना कठिन था इसलिए उनकी गणना हिंदी भाषा के जानकारों में नहीं की गई है। विदेशों में इनकी संख्या बड़ी मात्र में है।)

क्र सं	राष्ट्र	एथ्नोलोग	वास्तविक संख्या	विसंगति का कारण
1	**2**	**3**	**4**	**5**
1.	आस्ट्रेलिया	160000	278800	गुजराती, मराठी, हिंदी, फ़ीजी, पंजाबी भाषियों की कुल संख्या 123000 है। इसका 90 % अर्थात 118800 हिंदी जानकार हैं इसलिए इन्हें हिंदी जाननेवालों में जोड़ा गया है।
2	बेल्जियम	13600	52930	पंजाबी भाषियों की कुल संख्या 43700 है। इसका 90% अर्थात 13600 हिंदी जानकार हैं इसलिए इन्हे हिंदी जाननेवालों में जोड़ा गया है।
3	ब्रुनेई	3900	5808	नेपाली भाषियों की कुल संख्या 2120 है। इसका 90% अर्थात 1908 हिंदी जानकार हैं इसलिए इन्हे हिंदी जाननेवालों में जोड़ा गया है।
4	कंबोडिया	1700	1700	भारत के कंबोडिया से बहुत पुराने सांस्कृतिक संबंध हैं। यद्यपि यहाँ भर्तियों की संख्या कम है लेकिन सांस्कृतिक रूप से ये सजग है।
5	कनाडा	111000	725045	गुजराती, मराठी, नेपाली, पंजाबी भाषियों की कुल संख्या का 90% लेने पर इनकी संख्या 573840 आती है। ये हिंदी के जानकार हैं इसलिए इन्हे हिंदी जाननेवालों में जोड़ा गया है। बंगाली भाषियों की संख्या का 55% लिया है इस प्रकार इनकी संख्या 40205 जोड़ कर यह संख्या बनती है।
6	एक्वेटेरल गिनी	1400	1400	सांस्कृतिक सम्बन्धों तथा नौकरी की तलाश में गए सीमित संख्या में भारतीय है।

क्र सं	राष्ट्र	एथ्नोलोग	वास्तविक संख्या	विसंगति का कारण
1	2	3	4	5
7	एसवाटिनी	8200	8200	500 से अधिक लोगों ने एसवाटिनी की नागरिकता ले ली है। सांस्कृतिक सम्बन्धों तथा नौकरी की तलाश में गए सीमित संख्या में भारतीय है।
8	फ़िनलैंड	2370	8039	नेपाली भाषियों की कुल संख्या का 90 % लेने पर इनकी संख्या 3546 आती है। बंगाली भाषियों की संख्या का 55% लिया है इस प्रकार इनकी संख्या 2123 है। इन्हें जोड़ कर यह संख्या 8039 बनती है।
9	जर्मनी	75400	112221	नेपाली, पंजाबी भाषियों की कुल संख्या का 90 % लेने पर और बंगाली भाषियों की संख्या का 55% लिया है इस प्रकार इनकी संख्या 112221 आती है।
10	केन्या	6700	10000	केन्या में 80 हजार से 1 लाख तक भारतीय मूल के लोग निवास करते हैं। हिंदी के जानकार 10 हजार से अधिक हैं।
11	कुवैत	700000	937320	बंगाली, भाषियों की कुल संख्या का 55 % लेने पर 192500 और नेपाली भाषियों की संख्या का 90% लिया है इस प्रकार इनकी संख्या 44820 आती है।
12	लेसेटू	2200	2200	4000 से अधिक भारतीय निवास करते हैं। 55 % हिंदी के जानकार हैं।
13	लकसेमबर्ग	1200	1200	सीमित मात्रा में भारतीय मूल के लोग रहते हैं
14	मलेशिया	60000	877760	डेली हंट के अनुसार यह संख्या 800000 है। इसमें गुजराती और पंजाबी भाषियों की संख्या का 90 % लेने पर 77760 आती है। डेली हंट के आँकड़े मिला कर योग 877760 होती है। दक्षिण की भाषाओं की संख्या निर्धारित करना कठिन था इसलिए उन्हें हिसाब में नहीं लिया गया है।
15	मारीशस	36000	177900	भोजपुरी भाषियों की संख्या 66000 है। बंगाली भाषियों की संख्या का 55% लेने पर यह संख्या 36000 आती है। गुजरती, मराठी और पंजाबी का 90% लेने पर 39600 की संख्या जोड़ देने पर यह संख्या 1777900 हो जाती है।
16	म्यांमार	133000	4000000	अंग्रेजों के शासन काल में यहाँ हिंदी और अंग्रेजी का बहुत प्रयोग होता था। हिंदी व्यापार की भाषा थी तथा अंग्रेजी प्रशासन की भाषा थी। अतः हिंदी जानकारों की संख्या को विद्वान 50 लाख तक मानते हैं।कम से कम संख्या लेने पर भी यह संख्या 40 लाख है।
17	नेपाल	1307600	29492822	नेपाल में भाषाओं की स्थिति इस प्रकार है : अवधी (547400), भोजपुरी (17403000), मैथिली, (4085000), मारवाड़ी (26410), नेपाली (20780000), संस्कृत (3000), संथाली (50880), यह उल्लेखनीय तथ्य है कि प्रायः सभी नेपाली भाषी हिंदी जानते हैं।
18	न्यूजीलैंड	66300	109711	गुजराती, मराठी, नेपाली, पंजाबी भाषियों की कुल संख्या का 90% लेने पर इनकी संख्या 42080 आती है। ये हिंदी के जानकार हैं इसलिए इन्हें हिंदी जाननेवालों में जोड़ा गया है। बंगाली भाषियों की संख्या का 55% लिया है इस प्रकार इनकी संख्या 1331 है। ये सभी जोड़ कर यह संख्या बनती है।
19	ओमान	100000	450350	गुजराती, मराठी, नेपाली, पंजाबी भाषियों की कुल संख्या का 90% लेने पर इनकी संख्या 49500 आती है। ये हिंदी के जानकार हैं इसलिए इन्हें हिंदी जाननेवालों में जोड़ा गया है। बंगाली भाषियों की संख्या का 55% लिया है इस प्रकार इनकी संख्या 300850 है। ये सभी जोड़ कर यह संख्या बनती है।
20	पनामा	15000	15000	गुजराती, पंजाबी और सिंधी बहुल जनसंख्या है।
21	फिलीपींस	4400	10000	पंजाबी, सिंधी और तमिल निवास करते हैं। इनकी संख्या 1 लाख 20 हजार से अधिक है।

क्र सं	राष्ट्र	एथ्नोलोग	वास्तविक संख्या	विसंगति का कारण
1	2	3	4	5
22	पुर्तगाल	4100	10000	81 हजार से अधिक भारतीय मूल की जनसंख्या निवास करती है। गोवा, दमन दीव के निवासी और गुजराती मूल के नागरिक यहाँ रहते हैं।
23	प्यूरिटोरिको	3670	3670	इस संख्या का अन्य स्रोतों से आधिकारिक रूप में पता नहीं चल पाया है। इसलिए एथ्नोलोग के आँकड़े को ही स्वीकृत कर लिया है।
24	रूसी फेडरेशन	6330	6330	23590 भारतीय रूसी फ़ैडरेशन में रहते हैं। हिंदी जानकारों की संख्या काफी है लेकिन एथ्नोलोग के आँकड़े स्वीकार्य हैं।
25	सऊदी अरेबिया	817000	3220150	बंगाली भाषियों की संख्या का 55% लिया है, इस प्रकार इनकी संख्या 1245750 है। नेपाली, पंजाबी भाषियों की कुल संख्या का 90% लेने पर इनकी संख्या 1157400 आती है। ये सभी जोड़ कर यह संख्या बनती है।
26	सियेरा लियोन	15000	2000	कुल भारतीय 3500 के आसपास हैं। इनमें हिंदी के जानकार लगभग 2000 हैं। यहाँ एथ्नोलोग की संख्या गलत प्रतीत होती है।
27	सिंगापुर	50000	136208	बंगाली भाषियों की संख्या का 55% लिया है, इस प्रकार इनकी संख्या 82500 है। गुजराती भाषियों की कुल संख्या का 90% लेने पर इनकी संख्या 3708 आती है। ये सभी जोड़ कर यह संख्या बनती है।
28	सेंट मार्टिन	2000	3102	5171 की जनसंख्या में हिंदी के जानकार 60% हैं।
29	दक्षिणी अफ्रीका	463000	713800	बंगाली भाषियों की संख्या का 55% लिया है, इस प्रकार इनकी संख्या 165000 है। गुजराती भाषियों की कुल संख्या का 90 % लेने पर इनकी संख्या 28800 आती है। भोजपुरी बोलनेवाले 57000 हैं। ये सभी जोड़ कर यह संख्या बनती है।
30	श्री लंका	41300	150785	बंगाली भाषियों की संख्या का 55% लिया है, इस प्रकार इनकी संख्या 11385 है। गुजराती भाषियों की कुल संख्या का 90% लेने पर इनकी संख्या 98100 आती है। ये सभी जोड़ कर यह संख्या बनती है।
31	स्वीडन	14100	21750	बंगाली भाषियों की संख्या का 55% लिया है, इस प्रकार इनकी संख्या 4081 है। पंजाबी भाषियों की कुल संख्या का 90 % लेने पर इनकी संख्या 3573 आती है। ये सभी जोड़ कर यह संख्या बनती है।
32	थायलैंड	22900	97950	बंगाली भाषियों की संख्या का 55% लिया है, इस प्रकार इनकी संख्या 19250 है। पंजाबी भाषियों की कुल संख्या का 90% लेने पर इनकी संख्या 55800 आती है। ये सभी जोड़ कर यह संख्या बनती है।
33	युगांडा	5300	18000	युगांडा में 30000 भारतीयों में अधिकांश हिंदी, गुजराती, पंजाबी, उर्दू व अन्य भारतीय भाषाएँ बोलते हैं। भाषिक विश्लेषण करने पर हिंदी के जानकारों की संख्या 18000 आती है।
34	यू ए ई	938000	1594080	बंगाली भाषियों की संख्या का 55% लिया है, इस प्रकार इनकी संख्या 449350 है। पंजाबी और नेपाली भाषियों की कुल संख्या का 90% लेने पर इनकी संख्या 333900 आती है। ये सभी जोड़ कर यह संख्या बनती है।
35	यू के	45800	617 937	बंगाली भाषियों की संख्या का 55% लिया है, इस प्रकार इनकी संख्या 121550 है। गुजराती, मराठी, नेपाली एवं पंजाबी भाषियों की कुल संख्या का 90% लेने पर इनकी संख्या 451867 आती है। ये सभी जोड़ कर यह संख्या बनती है।
36	अमेरिका	643000	1500220	बंगाली भाषियों की संख्या का 55% लिया है, इस प्रकार इनकी संख्या 141900 है। गुजराती, मराठी, नेपाली एवं पंजाबी भाषियों की कुल संख्या का 90% लेने पर इनकी संख्या 715320 आती है। ये सभी जोड़ कर यह संख्या बनती है।

क्र सं	राष्ट्र	एथ्नोलोग	वास्तविक संख्या	विसंगति का कारण
1	**2**	**3**	**4**	**5**
37	यमन	316000	316000	अट्ठारहवीं सदी में अंग्रेज़ों ने अदन पर कब्जा कर लिया था। भारत से अदन के व्यापारिक सम्बन्धों के कारण यहाँ हिंदी का प्रचलन हुआ।
	कुल योग	**6197470**	**45072451**	

स्रोत : कॉलम 1 से 3 के आँकड़े एथ्नोलोग के 2022 संस्करण से लिए गए हैं तथा कॉलम 4 एवं 5 के आँकड़े डॉ जयंती प्रसाद नौटियाल की शोध रिपोर्ट 2023 पर आधारित हैं।

तालिका – 4

(च) विश्व में हिंदी भाषियों की संख्या जो एथ्नोलोग में नहीं दर्शाई गई है:

क्र सं	**राष्ट्र**	**वास्तविक हिंदी जानकारों की संख्या**	**हिंदी जानकारों की संख्या निर्धारित करने का स्रोत एवं प्रमुख कारण (कोष्ठक में दिये गए आँकड़े भारत सरकार विदेश मंत्रालय की वेब साइट से लिए गए हैं। इसमें विदेशों में रह रहे भारतीयों (OI) की प्रामाणिक जानकारी दी गई है।)**
1	**2**	**3**	**4**
1.	आस्ट्रिया	15000	(31000) भारतीयों में केरल और पंजाब के निवासी अधिक हैं। इनका 50 % हिंदी जानता है।
2.	बहरीन	200000	(350000) भारतीय हैं। इनमें केरल, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, गोवा, पंजाब, उत्तरप्रदेश, राजस्थान से हैं। घरेलू काम करनेवाली महिलाएं तेलंगाना और आंध्र प्रदेश से हैं। संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग किया जाता है।
3.	भूटान	547718	भारत से आपसी संबंध एवं भौगोलिक समीपता तथा बॉलीवुड की फिल्मों एवं गानों की लोकप्रियता के कारण हिंदी प्रचलित है। भूटान की अधिकांश जनता हिंदी समझ और बोल सकती है।
4.	बोटस्वाना	10000	केरल, आंध्र प्रदेश एवं गुजरात से अधिसंख्य भारतीय मूल के निवासी हैं। अधिकांश गुजराती होने के कारण हिंदी का प्रचालन अधिक है।
5.	चीन (हांग कांग, ताइवान सहित)	98225	(98225) भारतीय और भारतीय मूल की जनसंख्या में अधिकांश बिहारी, बंगाली, राजस्थानी राजपूत, मराठा, पंजाबी और अन्य उत्तर भारतीयों की संख्या बहुत अधिक है।
6.	कोंगों (डी आर)	5 000	(13000) भारतीय मूल के लोगों में, गुजरात, केरल और दक्षिणी राज्यों के मूल निवासी हैं।
7.	डेनमार्क	1500	(15000) की भारतीय मूल की जनसंख्या में दक्षिण भारत से अधिकांश लोग हैं इसलिए हिंदी जाननेवाले 1000 मात्र हैं।
8.	फ़ीजी	300000	फ़ीजी में (313798) भारत वंशी हैं जो आज भी अपनी भाषा और संस्कृति से जुड़े हैं। यहाँ फ़ीजी हिंदी बोली जाती है जो अवधी, भोजपुरी, राजस्थानी, पश्चिमी हिंदी व स्थानीय शब्दों को मिला कर बोली जाती है। फ़ीजी हिंदी अन्य राष्ट्रों में भी बोली जाती है यथा न्यूजीलैंड (27882), आस्ट्रेलिया (29750), यू एस ए (24345), कनाडा (22770), यू के (2000), टोंगा (310)
9.	फ़्रांस	60000	109000 भारतीय मूल की जनसंख्या में फ्रेंच, पंजाबी, हिंदी, गुजराती, तमिल, मलयालम तथा अंग्रेज़ी भाषी हैं। इनमें 60000 से अधिक हिंदी के जानकार हैं।
10.	फ़्रांस (रीयूनियन)	50000	(297300) भारतीय मूल के लोगों में अधिकांश तमिल मूल के हैं लेकिन 1850 में 40000 गुजराती व्यापारी आकर यहाँ बस गए, अन्य प्रान्तों से आए लोग आज भी भारत से जुड़ाव महसूस करते हैं, बॉलिवुड की हिंदी फिल्मों के गीत गुनगुनाते हैं और रामायण तथा महाभारत के श्लोक भी आदर से उच्चारित किए जाते हैं।

क्र सं	राष्ट्र	वास्तविक हिंदी जानकारों की संख्या	हिंदी जानकारों की संख्या निर्धारित करने का स्रोत एवं प्रमुख कारण (कोष्ठक में दिये गए आँकड़े भारत सरकार विदेश मंत्रालय की वेब साइट से लिए गए हैं। इसमें विदेशों में रह रहे भारतीयों (OI) की प्रामाणिक जानकारी दी गई है।)
1	2	3	4
11	फ़्रांस (G M St M)	10000	(67220) भारतीय मूल के व्यक्तियों में अधिकांश तमिल व मलयालम भाषी हैं। अन्य प्रदेशों आए भारतवासियों के साथ मिश्रित हिंदी का उपयोग होता है।
12	घाना	6000	घाना में (10000) की भारतीय आबादी है। मुख्यत: ये गुजराती और सिंधी हैं इसलिए हिंदी के जानकारों की संख्या 6000 है।
13	यूनान (ग्रीस)	11000	(13389) जनसंख्या भारत मूल की है। यहाँ पंजाब से बंधुआ मजदूरी करने के लिए गरीब श्रमिक लाये गए थे। आज भी ये आत्मिक रूप से भारत से जुड़े हैं।
14	गुयाना	299382	(299382) सभी गुयानी हिंदी बोलते हैं। यह भोजपुरी बोली में कुछ स्थानीय शब्दों का उपयोग करके बोली जाती है।
15	इंडोनेशिया	100000	(120000) भारत वंशी रहते हैं, इनमें तमिल, हिंदी, सिंधी, पंजाबी, गुजराती, मलयालम, तेलुगू भाषाभाषी हैं लेकिन संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग किया जाता है।
16	इराक	12000	(18007) भारतीय मूल की जनता में हिंदी के प्रति लगाव होने से यहाँ हिंदी को भारतीय और पाकिस्तानी समुदाय प्राथमिकता देता है।
17	आयरलैंड	40000	(45000) हिंदी अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी, बंगाली, तमिल, मलयालम व अन्य भारतीय आर्यभाषाओं का प्रचलन है
18	इजरायल	50000	(97467) मराठी, गुजराती, हिब्रू तथा अन्य भारतीय भाषाएँ प्रचलित हैं। हिंदी को अनिवासी भारतीय पसंद करते हैं।
19	इटली	190000	(203052) भारतीय लोगों में अधिकांश पंजाब से हैं, केरल से तथा अन्य राज्यों से भी आप्रवासी आते हैं। पाकिस्तान के नागरिक भी एक लाख तक हैं। संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का प्रमुख स्थान है।
20	जमाइका	48000	(80000) की जनसंख्या में 75000 वे लोग हैं जो गिरमिटिया मजदूर के रूप में लाये गए थे जिन्होंने आज तक भी अपनी भाषा और संस्कृति को अपनाए रखा है। ये अवधी और भोजपुरी मिश्रित हिंदी बोलते हैं जिसे यहाँ कैरेबियाई हिंदुस्तानी नाम से जाना जाता है। (60%)
21	जापान	35000	(38619) में से बड़ी संख्या हिंदी, मराठी, पंजाबी, बंगाली भाषियों की संख्या अधिक है। तमिल, तेलुगु और मलयालम भाषी भी संपर्क भाषा के रूप में हिंदी अपनाते हैं।
22	जॉर्डन	10000	(20760) भारतीय जोर्डेन मे हैं। इनमें 50% से अधिक हिंदी के जानकार हैं।
23	दक्षिण कोरिया	11 000	24414 (भारत सरकार विदेश मंत्रालय के दस्तावेजों यह संख्या 13585 है) कोरिया की राजकुमारी का संबंध सदियों से अयोध्या से जोड़ा जाता है। बौद्ध धर्म का प्रचार सदियों पूर्व भारत ने ही यहाँ किया था। इन भारतवंशियों ने हिंदी और भारतीय भाषाओं को आज तक जीवित रखा है।
24	किर्गिस्तान	8000	(11204) हिंदी और भारतीय भाषाओं का प्रचलन काफी मात्रा में हैं।
25	मैडागास्कर	9000	(17500) इस भारतीय मूल की जनसंख्या द्वारा गुजराती, हिंदी, फ्रेंच आदि भाषाएँ बोली जाती हैं।
26	मोज़ाम्बिक	55000	यहाँ भारतीय मूल के 70000 निवासी हैं (विदेश मंत्रालय का आँकड़ा 24800 दर्शाता है) ये कोंकणी, हिंदी, गुजराती भाषी हैं। संपर्क के लिए हिंदी का उपयोग करते हैं।

क्र सं	राष्ट्र	वास्तविक हिंदी जानकारों की संख्या	हिंदी जानकारों की संख्या निर्धारित करने का स्रोत एवं प्रमुख कारण (कोष्ठक में दिये गए आँकड़े भारत सरकार विदेश मंत्रालय की वेब साइट से लिए गए हैं। इसमें विदेशों में रह रहे भारतीयों (OI) की प्रामाणिक जानकारी दी गई है।)
1	2	3	4
27	नीदरलैंड	225000	(240000) यहाँ उत्तर प्रदेश और बिहार से आए गिरमिटिया मजदूरों के अलावा पंजाब से भी व्यापार के लिए भी भारतीय आए थे, कुछ सूरीनाम से भी भारतीय मूल के प्रवासी यहाँ आए। गांधी जी और हिंदी का सम्मान है।
28	नाइजीरिया	20000	(40035) नाइजीरिया में 135 भारतीय कंपनियाँ कार्यरत हैं। भारतीयों में विभिन्न भाषा भाषी शामिल हैं।
29	नार्वे	12000	(22480) कुल भारत वंशियों में गुजराती, पंजाबी, उत्तरप्रदेश एवं तमिलनाडु से आए लोग शामिल हैं।
30	पोलैंड	7000	(10960) में गुजराती, पंजाबी, बंगला, तमिल, तेलुगु भाषा भाषी शामिल हैं। हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति का बहुत महत्व है।
31	क़तर	522585	(746550) यहाँ हिंदी, उर्दू,बंगाली, गुजराती,कन्नड, तमिल, मलयालम भाषा भाषी रहते हैं, संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग होता है, यहाँ 70% हिंदी के जानकार हैं।
32	सेशेल्स	1000	(17200) यद्यपि अधिकांश भारतीय मूल के निवासी है, लेकिन तमिल बहुल हिन्दू, जैन, मुस्लिम तथा ईसाई धर्मावलम्बी है, यहाँ क्रिओल भाषा का प्राधान्य है। हिंदी के जानकार कम हैं।
33	स्पेन	12000	(69988) विभिन्न देशों से भारतीय यहाँ आकार बस गए हैं। यहाँ हिन्दू धर्म और सिक्ख धर्म को मानने वाले हैं। सिंधी समुदाय तथा सिक्ख समुदाय व्यापार करते हैं। हिंदी कम प्रचलित है।
34	सेंट लूसिया	15000	(19150) में से अधिकांश बिहार, झारखंड, उत्तरप्रदेश तथा उत्तरी भारत से यहाँ गिरमिटिया मजदूर के रूप में लाये गए थे।
35	सूरीनाम	200000	(237205) भारतीय मूल के निवासी हैं। इनमें से अधिकांश बिहार, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, पंजाब तथा उत्तरी भारत से व नेपाल व अफगानिस्तान से यहाँ गिरमिटिया मजदूर के रूप में लाये गए थे।
36	स्विट्जर लैंड	15000	(24567) इनमें से अधिकांश व्यक्ति सूचना प्रौद्योगिकी तथा फार्मा क्षेत्र में कार्यरत हैं। हिंदी के जानकार बड़ी मात्रा में हैं।
37	तंजानिया	50000	(60000) इनमे मुख्यतः गुजराती (हिन्दू एवं मुस्लिम) समुदाय से है गौणतः मराठी, कोंकणी, पंजाबी और गोवा निवासी है। गुजराती का वर्चस्व है। संपर्क के लिए हिंदी का उपयोग होता है।
38	त्रिनिडाड एवं टोबेगो	378000	(556800) भोजपुरी, अवधी, बिहारी, मगही जैसी भाषाओं का बहुतायत से उपयोग होता है। संपर्कभाषा के रूप में हिंदी प्रचलित है।
39	ज़ाम्बिया	20000	(30000) मूलतः गुजराती समुदाय के निवासी हैं जो गुजराती भाषा का प्रयोग करते हैं। हिंदी का उपयोग बाहरी भारतीय समुदायों से संपर्क के लिए किया जाता है।
	उर्दू भाषी राष्ट्र		
40	अफगानिस्तान	40100	प्राचीन काल में यह भारत का हिस्सा था। अफगानिस्तान में बोली जाने वाली उर्दू / दारी भाषा की समीपता तथा बॉलीवुड की फिल्मों एवं गानों की लोकप्रियता के कारण हिंदी प्रचलित है, 733000 उर्दू भाषियों को तालिका 1 में शामिल किया गया है। 15000 गोजरी (राजस्थानी) भाषा बोलते हैं। 39000 पंजाबी भाषी हैं।

क्र सं	राष्ट्र	वास्तविक हिंदी जानकारों की संख्या	हिंदी जानकारों की संख्या निर्धारित करने का स्रोत एवं प्रमुख कारण (कोष्ठक में दिये गए आँकड़े भारत सरकार विदेश मंत्रालय की वेब साइट से लिए गए हैं। इसमें विदेशों में रह रहे भारतीयों (OI) की प्रामाणिक जानकारी दी गई है।)
1	2	3	4
41	पाकिस्तान	16000000	15000000 उर्दू भाषी हैं जिनकी गणना तालिका 1 में शामिल है। उर्दू के अलावा पंजाबी और बिहारी जो हिंदी के अच्छे जानकार हैं उनकी संख्या यहाँ दिखाई गई है।
42	बांग्लादेश	74737000	भारत विभाजन तक यह भारत का हिस्सा था। औसत बंगाली भाषी हिंदी जानता है। इसलिए यहाँ हिंदी के जानकार बहुत हैं। उर्दू को यहाँ मैंने शामिल नहीं किया है।
	योग	**94436510**	

तालिका-4 में उन देशों के विवरण दिये गये हैं जहाँ हिंदी बोलने-समझने वालों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है। तालिका-5 में उन अन्य देशों के विवरण हैं जहाँ हिंदी जाननेवालों की संख्या अपेक्षाकृत कम है। स्थान के अभाव के कारण तालिका-5 यहाँ नहीं दी जा रही है। -संपादक

तालिका – 6

(ज) एथ्नोलोग द्वारा जारी विश्व में हिंदी की बोलियों के नवीनतम आँकड़े वर्ष 2022

क्र सं	भाषा /बोली	बोलनेवालों की संख्या	क्र सं	भाषा /बोली	बोलनेवालों की संख्या
				कॉलम 1 का योग	
1.	मानक हिंदी	602198470	17.	जयपुरी	1480000
2.	अवधी	4397400	18.	गुज़्जरी	1600000
3.	बघेली	2680000	19.	काँगड़ी	1120000
4.	भोजपुरी	52463000	20.	सिरमौरी	400000
5.	ब्रज भाषा	1560000	21.	लंबाड़ी	5080000
6.	बुन्देली	5630000	22.	हड़ौती	2940000
7.	छत्तीसगढ़ी	16300000	23.	निमाड़ी	2310000
8.	गढ़वाली	2480000	24.	सुरजापुरी	2260000
9.	हरियाणवी	16000000	25.	भीली	10400000
10.	कुमाऊँनी	2080000	26.	उत्तरी गौंडी	2910000
11.	मगही	20746400	27.	कुल्लू	195000
12.	मेवाड़ी	4210000	28.	महासू	1000000
13.	मेवाती	857000	29.	फ़ीजी बात (अन्य देशों में)	198380
14.	मैथिली	34085000	30.	सरनामी हिंदी	299400
15.	मालवी	5440000	31.	उर्दू	231295440
16.	मागधी	2000	32.	*फ़ीजी हिंदी (फ़ीजी में)	300000
	योग			**कुल योग**	**1034917490**

❋

महानिदेशक, वैश्विक हिंदी शोध संस्थान, देहरादून 248008, उत्तराखंड, भारत, ई मेल dr.nautiyaljp@gmail.com, वैबसाइट www.drjpnautiyal.com मोबाइल 9900068722

फ़ीजी में हिंदी अखबार शांतिदूत के 85 साल

डॉ. जवाहर कर्नावट

शांतिदूत ने प्रारंभ से ही फ़ीजी में रहने वाले भारतीय मूल के लोगों में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता पैदा करनी शुरू कर दी थी। प्रवासी भारतीयों के प्रति सरोकार सिर्फ फ़ीजी में ही नहीं, बल्कि भारत में भी हो। इसके लिए शांतिदूत में विचारोत्तेजक रिपोर्ट और आलेख लगातार छपते रहे। शांतिदूत की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसने भारत के साथ संबंधों को मजबूत बनाए रखने का काम किया। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन से संबंधित प्रत्येक समाचार प्रमुखता से छापा जाता था। गांधी जी की प्रत्येक गतिविधि विशेषकर हिंदू-मुसलमानों में सौहार्द के प्रयास आदि भी शांतिदूत की प्रमुख खबरों में शामिल हुआ करते थे। शांतिदूत ने स्थानीय समाचारों को पत्र में अधिक स्थान दिया। रामायण मंडलियों की गतिविधियों को भी प्रधानता दी तथा शिक्षा के विस्तार के लिए भी प्रयास किया।

भारत से लगभग साढ़े ग्यारह हजार किलोमीटर दूरी पर बसा देश फ़ीजी प्रशांत महासागर का एक सुरम्य द्वीप है। करीबन नौ लाख की आबादी वाले इस देश में भारतीय मूल के लोगों का गौरवशाली और संघर्षपूर्ण इतिहास रहा है। फ़ीजी में भारतीयों का आगमन शर्तबंदी प्रथा के अंतर्गत गन्ने के खेतों में मजदूर के रूप में काम करने के लिए ब्रिटिश सत्ता के आदेश के अधीन सन् 1879 से शुरू हुआ था। सन 1916 में इस प्रथा के बंद होने तक अर्थात् 38 वर्षों में 85 हजार से अधिक भारतीय मजदूर फ़ीजी पहुँच चुके थे जो अधिकांशत: पश्चिमी बिहार तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश के थे एवं अवधी या भोजपुरी भाषा का प्रयोग करते थे। फ़ीजी में हिंदी का उदय तथा विकास इन्हीं गिरमिट भारतीय मजदूरों के माध्यम से हुआ था। फ़ीजी में आज हिंदी के लिए जो ठोस जमीन पिछले 140 वर्षों में तैयार हुई, उसी के परिणामस्वरूप यह आज फ़ीजी की संविधान सम्मत राजभाषा भी है। भारत के अलावा हिंदी को यह गौरव केवल फ़ीजी में ही प्राप्त है।

अपनी फ़ीजी यात्रा के दौरान यह रोचक तथ्य भी मेरे सामने आया कि फ़ीजी में हिंदी पत्रकारिता का इतिहास 107 वर्षों पुराना है। इस अवधि में हिंदी की कई पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ और बंद भी हुए किंतु शांतिदूत साप्ताहिक समाचार पत्र पिछले 85 वर्षों से लगातार प्रकाशित हो रहा है। फ़ीजी में हिंदी पत्रकारिता की शुरुआत डॉ मणिलाल ने 1913 में 'द सेटलर' पत्र से की थी। बीसवीं सदी के दूसरे दशक में ही कई हिंदी समाचार पत्रों के प्रकाशन की शुरुआत हुई। इन पत्रों में फ़ीजी समाचार, भारतपुत्र, वृद्धि तथा वृद्धि वाणी लोकप्रिय हुए। तीसरे और चौथे दशक में भी हिंदी समाचार पत्रों के प्रकाशन की शुरुआत और बंद होने का सिलसिला लगातार जारी रहा।

शांतिदूत समाचारपत्र की शुरुआती दास्तां भी अत्यंत रोचक है। फ़ीजी टाइम्स एंड हेरल्ड नामक ब्रिटिश संस्थान द्वारा अंग्रेजी समाचार पत्र फ़ीजी टाइम्स प्रकाशित हो रहा था। इसी समय द्वितीय विश्व युद्ध के बादल भी मंडरा रहे थे। इटली की सेना युद्ध में उतर चुकी थी। फ़ीजी टाइम्स के जनरल मैनेजर श्री बाकर के मन में यह विचार आया कि स्थानीय लोगों को मित्र राष्ट्रों के पक्ष में विश्व युद्ध से जोड़ने के लिए क्यों न हिंदी में अखबार निकाला जाए ? इसी विचार से 11 मई 1935 को साप्ताहिक अखबार शांतिदूत की शुरुआत हुई। इस पत्र के संपादक का कार्यभार संभाला श्री गुरुदयाल शर्मा ने जो पेसिफिक प्रेस से हिंदी पत्रकारिता का अनुभव प्राप्त कर चुके थे। अपने पहले संपादकीय में श्री गुरु दयाल पत्र की नीतियों को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं:

> "शांतिदूत का यह प्रथम अंक हम आपकी सेवा में उपस्थित करते हुए हर्ष मना रहे हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि इस पत्र के द्वारा फ़ीजी के प्रवासी भारतीयों को समस्त संसार की वह खबर मिलती रहेगी जिससे हिंदी भाषा-भाषी जनता अनभिज्ञ रहती थी। इस पत्र के स्वामी भारत, इंग्लैंड, चीन, जर्मनी, जापान इत्यादि भूमंडल का समाचार बेतार के तार द्वारा अर्थात केबल के जरिये से मंगा रहे हैं। जैसा कि आज तक हिंदी पत्रकार नहीं कर सका है। अतएव हम अपने पाठक, ग्राहक एवं अनुग्राहकों को यह विश्वास दिला सकते हैं कि आप इस पत्र से संतुष्ट रहेंगे।"

शांतिदूत के इस अंक की 300 प्रतियां प्रकाशित हुई थीं, जो 8 पृष्ठीय था। फ़ीजी की राजधानी सुवा तथा आसपास के क्षेत्रों में ये प्रतियाँ तुरंत बिक गईं। पत्र को प्रारंभ करने से अधिक चुनौती उसे जीवित रखने की थी। श्री गुरुदयाल के संपादन में यह समाचार पत्र शीघ्र ही फ़ीजी में लोकप्रिय हो गया। अपने दूसरे ही संपादकीय में श्री गुरुदयाल शर्मा ने फ़ीजी की संसद में चल रही मनोनीत प्रथा का जोरदार विरोध किया और आम निर्वाचन की माँग की। शांति दूत ने प्रारंभ से ही फ़ीजी में रहने वाले भारतीय मूल के लोगों में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता पैदा करनी शुरू कर दी थी। प्रवासी भारतीयों के प्रति सरोकार सिर्फ फ़ीजी में ही नहीं बल्कि भारत में भी हो इसके लिए शांतिदूत में विचारोत्तेजक रिपोर्ट और आलेख लगातार छपते रहे। शांतिदूत की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसने भारत के साथ संबंधों को मजबूत बनाए रखने का काम किया। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन से संबंधित प्रत्येक समाचार प्रमुखता से छापा जाता था। गांधी जी की प्रत्येक गतिविधि विशेषकर हिंदू मुसलमानों में सौहार्द के प्रयास आदि भी शांतिदूत की प्रमुख खबरों में शामिल हुआ करते थे। शांति दूत ने स्थानीय समाचारों को पत्र में अधिक स्थान दिया। रामायण मंडलियों की गतिविधियों को भी प्रधानता दी गई तथा शिक्षा के विस्तार के लिए भी प्रयास किया। हर त्योहार पर सुंदर विशेषांक प्रकाशित कर सभी धर्मों के प्रति समभाव तथा पारस्परिक समझ का वातावरण बनाया। सन 1939 में छिड़े विश्व युद्ध में भारतीय जनता को सचित्र समाचार देने वाला शांतिदूत अकेला हिंदी पत्र था। इस कारण पत्र की प्रसार संख्या बढ़कर 16000 तक पहुँच गई। 25 वर्ष पूरे होते-होते शांतिदूत फ़ीजी का सबसे सम्मानित पत्र बन गया।

सन 1950 तक शांतिदूत हिंदी तथा अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं में प्रकाशित होता था किंतु बाद में इस के रूप में परिवर्तन हुआ और बढ़ती माँग के कारण यह पत्र केवल हिंदी में प्रकाशित होने लगा। शांति दूत के संपादन का दायित्व 1935 से 1979 तक पंडित गुरुदयाल ने बड़ी निष्ठा तथा परिश्रम से संभाले रखा। अपनी स्वर्ण जयंती {1985} के पूर्व ही शांति दूत में 1 दिसंबर 1983 से कंप्यूटर टाइप का प्रयोग हुआ जिससे पत्र की छपाई साफ सुंदर तथा आकर्षक हो गई। पंडित गुरुदयाल के सेवानिवृत्त होने पर श्री महेश चंद्र शर्मा 'विनोद' शांतिदूत के नए संपादक बने। विनोद जी हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं के ज्ञाता थे तथा उनके पास पत्रकारिता का व्यापक अनुभव था। जिस समय वे शांतिदूत के संपादक बने, वह समय राजनीतिक अस्थिरता का था। इस समय कूयाने विद्रोह भी हुआ। शांति दूत के पत्रकारों को भी बंदूक की नोक पर कार्यालय से बाहर निकाल दिया गया। इसके उपरांत भी शांति दूत ने अपनी बात साहस, निर्भीकता, संतुलन और विवेक से रखी। भय, आशंका और हिंसा के दौर में भी शांतिदूत की भूमिका अविस्मरणीय रही। शांतिदूत ने विभिन्न समुदायों में एकता और शांति की मशाल जलाए रखी। इसके संपादकीयों में राष्ट्रहित को सर्वोपरि रखा गया।

श्री विनोद के संपादन में शांतिदूत को नए आयाम प्राप्त हुए। उन्होंने नए लेखक मंडल का निर्माण किया। राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संस्थानों पर निर्भीक होकर प्रभावपूर्ण संपादकीय लिखे। श्री विनोद ने सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य यह भी किया कि फ़ीजी में विकसित नई विदेशी भाषा शैली फ़ीजी हिंदी के महत्व को समझा तथा स्थानीय लेखकों को उस भाषा में लिखने के लिए प्रेरित किया और स्वयं भी ' थोरा हमरो भी तो सुनो' स्तंभ प्रति सप्ताह लिखा।

सन 1987 में फ़ीजी में हुई राजनीतिक उथल-पुथल से भारतीयों की प्रतिष्ठा को गहरा आघात लगा। जिस देश को भारतवंशियों ने अपनी निष्ठा और समर्पण से विश्व के एक प्रतिष्ठित देश के रूप में ला खड़ा किया था, उसी देश में उन्हें जीवन और सम्मान खंडित होता दिखाई देने लगा। अनेक भारतीय फ़ीजी छोड़कर अन्य देशों को कूच कर गए। शांति दूत के लोकप्रिय संपादक श्री विनोद जी भी त्यागपत्र देकर न्यूजीलैंड चले गए। इन तमाम विपरीत परिस्थितियों के बावजूद शांतिदूत का प्रकाशन जारी रहा।

फ़ीजी में शांति दूत के प्रकाशन के 85 वर्ष पूर्ण हो चुके हैं किंतु इसकी लोकप्रियता हमेशा बनी रही। शांतिदूत का दीपावली विशेषांक प्रत्येक वर्ष अत्यंत समृद्ध एवं विशिष्ट होता था। इस विशेषांक में आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड के लेखकों की रचनाओं का भी समावेश होता रहा। 125 से अधिक पृष्ठों के विशेषांक में दीपावली के साथ ही भारतीय संस्कृति, त्योहारों और परंपराओं पर विशेष लेख होते थे। मुझे सन 2016 में अपनी यात्रा के दौरान शांति दूत के कार्यालय जाने का अवसर भी मिला। शांति दूत के प्रथम अंक से लेकर आज तक के सभी अंकों की वर्षवार फाइल इस कार्यालय में व्यवस्थित रूप से देखने को मिली। सन 2000 से श्रीमती नीलम शांतिदूत के संपादन का कार्य दायित्व निभा रही थी। उनसे शांतिदूत के बारे में चर्चा करते हुए इस अखबार की 85 वर्षों की यात्रा के अनेक उतार-चढ़ाव जानने को मिले। वह स्वतंत्र पत्रकार के रूप में शांतिदूत से कई वर्षों से जुड़ी रहीं। विगत 20 वर्षों तक उन्होंने घर परिवार, सामाजिक दायित्व को निभाते हुए साधनों की कमी और विपरीत वातावरण में भी अखबार को गौरवमयी ढंग से प्रकाशित किया।

शांतिदूत हिंदी की वैश्विक पत्रकारिता का ध्वज शान से फहराता रहा। शांति दूत के माध्यम से हजारों लोगों ने हिंदी सीखी। शांतिदूत में हिंदी विद्यार्थियों के लिए दो पृष्ठ विशेष रूप से आरक्षित होते थे जिनमें स्कूलों के पाठ्यक्रमों से जुड़े विषयों पर क्रमवार प्रस्तुति होती थी। रचनात्मक साहित्य को भी शांति दूत ने पर्याप्त स्थान मिला। कहानी, कविता, व्यंग्य आदि निरंतर प्रकाशित होते रहे। शांति दूत में बालीवुड फिल्मों तथा कलाकारों आदि के बारे भी समाचार विस्तार से होते थे।प्रत्येक अंक में फिल्मों की समीक्षा, फिल्मी कलाकारों के किस्से-कहानियाँ छपते थे। शांतिदूत के शुरुआती वर्ष 1935 के अंकों में भी भारतीय फिल्मों के विज्ञापन दिखाई देते हैं, जिससे स्पष्ट है कि फ़ीजी में रहने वाले भारतीयों के लिए वर्षों से मनोरंजन का प्रमुख माध्यम बॉलीवुड ही है। अन्य देशों की तरह फ़ीजी में भी हिंदी को रोमन लिपि में लिखने व पढ़ने का चलन बढ़ रहा है। इसी कारण शांतिदूत में अब कुछ पृष्ठ रोमन हिंदी में छपना शुरू हो गए, किंतु 11 मई 2020 को शांति दूत के 85 वर्ष पूर्ण हुए। पिछले दिनों यह सूचना पाकर अत्यंत दुःख हुआ कि अब शांतिदूत पत्र का प्रकाशन बंद हो गया। फ़ीजी से हिंदी पत्रकारिता के स्तम्भ का इस तरह ढह जाना किसी सदमे से कम नहीं।

❋

निदेशक, हिंदी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल, मो. 7506378525 ई-मेल jkarnavat@gmail.com

इंटरनेट पर हिंदी में सामग्री: वर्तमान एवं भविष्य की रूपरेखा

डॉ. सुजीत कुमार

भारत सरकार भी भारतीय भाषाओं में डिजिटल संसाधन और सेवाएँ प्रदान करने पर विशेष जोर दे रही है। जुलाई 2015 में शुरू की गई "डिजिटल इंडिया" योजना में सरकार के तीन प्रमुख दृष्टिकोण हैं। पहला, प्रत्येक नागरिक के लिए एक उपयोगिता के रूप में डिजिटल बुनियादी ढाँचा, दूसरा, माँग आधारित सेवाएँ और तीसरा, नागरिकों का डिजिटल सशक्तिकरण। डिजिटल इंडिया के तीसरे विजन के तहत, भारतीय भाषाओं में डिजिटल संसाधन/सेवाएँ प्रदान करने और सहभागी शासन के लिए सहयोगी डिजिटल प्लेटफॉर्म पर विशेष जोर दिया गया है (डिजिटल इंडिया, 2015)। यह दृष्टि मोटे तौर पर नागरिकों को बुनियादी ढाँचा प्रदान करने, ई-गवर्नेंस को बढ़ावा देने और सूचना संपन्न और सूचना गरीब के बीच डिजिटल विभाजन को कम करने पर केंद्रित है।

इंटरनेट के उद्भव के बाद, अल-सग्गाफ, (2006), ब्रिग्स एंड मार्क (2009), मैनसेल, (2009) और एनगुयेन (2008) जैसे विद्वानों ने एक नई जनसंचार प्रणाली की संभावनाओं को समझा। इस नए माध्यम में अंतःक्रियाशीलता और तात्कालिकता जैसी तकनीकी विशेषताएँ हैं, जो पहली बार देखी गई हैं और जो सूचना भेजने और प्राप्त करने के तरीके में क्रांतिकारी बदलाव ला सकती हैं (गुयेन, 2008)। इंटरनेट के इन्हीं गुणों के कारण आज इंटनेट न सिर्फ अंतर्वैयक्तिक संचार का एक पुरोधा माध्यम बन गया है बल्कि जनसंचार में भी इसकी भूमिका बढ़ती जा रही है। अमेरिका में सर्वप्रथम इंटरनेट का उद्भव एक सुरक्षित संचार प्रणाली के तौर पर रक्षा मंत्रालय के सहयोग से हुआ था। उस वक्त शायद ही किसी ने यह सोचा हो कि यह 'नए मीडिया' के तौर पर उभरेगा एवं अन्य माध्यमों के लिए एक चुनौती पेश करेगा। मोबाइल इंटरनेट आने के बाद तो जैसे एक क्रांति ही आ गई है, जहाँ अब हर प्रकार की सूचना लोगों के पॉकेट तक पहुँच गई है। लेकिन जिस प्रकार हर नई तकनीक संभावनाओं के साथ-साथ नई चुनौतियाँ भी लेकर आती हैं, वैसे ही इंटरनेट सूचना क्रांति तो लाया लेकिन साथ ही कुछ चुनौतियाँ भी इसके साथ आईं।

कई शोधों ने साबित कर दिया है कि इंटरनेट में अंग्रेजी एक प्रमुख भाषा है। 1990 के दशक के मध्य में 80% वेबसाइटें अंग्रेजी में थीं। ऑर्गनाइजेशन फॉर इकोनॉमिक को-ऑपरेशन एंड डेवलपमेंट (द डिफॉल्ट लैंग्वेज, 1999) द्वारा किए गए एक अध्ययन में पाया गया कि ओईसीडी देशों में लगभग 78% वेबसाइट्स अंग्रेजी में थीं, जबकि "सिक्योर-सर्वर" पर 91% वेबसाइट्स अंग्रेजी में थीं। , और .com डोमेन में सुरक्षित सर्वर पर पूरी तरह से 96% वेबसाइट अंग्रेजी में थीं। आज भी अंग्रेजी का हिस्सा 55 प्रतिशत है (ज़ज़ुलक, 2015)।

भारत जैसे देश में सिर्फ 5% पुरुष और 3% महिलाएँ धाराप्रवाह अंग्रेजी बोलती हैं और 28% पुरुष और 17% महिलाएँ कुछ अंग्रेजी बोलती हैं (औला, 2014) यह डिजिटल दुनिया भाषाई-सांस्कृतिक विभाजन से भी संबंधित है। जो लोग अंग्रेजी नहीं (या कम) बोलते हैं, उनके पास डिजिटल सूचना और प्रौद्योगिकियों तक बहुत सीमित पहुँच होती है, क्योंकि इंटरनेट पर व्यापक रूप से उपयोग किए जाने वाले सभी सॉफ्टवेयर के लिए अंग्रेजी के कुछ ज्ञान की आवश्यकता होती है। इसलिए गैर-अंग्रेजी बोलने वालों को इंटरनेट का लाभ नहीं मिल रहा है। यह सीमा तीसरे डिजिटल गैप से संबंधित है, यानी सूचना प्रौद्योगिकी तक पहुँच में असमानता (केनिस्टन, 2003)।

समय के साथ सभी भाषाओं द्वारा वेब तकनीक को अपनाने के बाद भी यह देखा गया है कि इंटरनेट पर विभिन्न भाषाओं का प्रतिनिधित्व अंग्रेजी की तुलना में कम है। इंटरनेट पर अंग्रेजी सबसे अधिक प्रचलित भाषा बनी हुई है (पाओलिलो, 2005)। कारण आंशिक रूप से सामाजिक के साथ-साथ तकनीकी भी हैं। सबसे पहले, इंटरनेट अमेरिकी कंपनियों के प्रभुत्व वाली दूरसंचार अवसंरचना का उपयोग करता है। दूसरा, कई हालिया रुझानों के बावजूद, अंग्रेजी

उपयोगकर्ता अभी भी इंटरनेट उपयोगकर्ताओं का सबसे बड़ा समूह हैं। तीसरा, इंटरनेट पर उपयोग की जाने वाली अधिकांश प्रौद्योगिकियाँ अंग्रेजी के अनुकूल हैं। गैर-रोमन अक्षरों के लिए इंटरफेस बोझिल हैं या कुछ भाषाओं के लिए अभी तक मौजूद नहीं हैं (यूनेस्को, 2003)। अंग्रेजी में सभी ऑनलाइन सामग्री का 55 प्रतिशत हिस्सा है लेकिन 20 साल से भी कम समय पहले यह 80 प्रतिशत से अधिक था (ज़ज़ुलक, 2015)।

यह हिंदी उपयोगकर्ताओं के 'सूचना-बहिष्करण' की ओर जाता है जो न केवल पहुँच और कनेक्टिविटी का सवाल है, बल्कि सामग्री का भी है। कई अध्ययनों में पाया गया है कि इंटरनेट पर हिंदी में पर्याप्त सामग्री मौजूद नहीं है। खास कर गुणवत्तापूर्ण सामग्री का तो बेहद अभाव है। यह अभाव हिंदीभाषी लोगों के लिए एक मानवनिर्मित एवं तकनीक के द्वारा समर्थित बाधा है। किसी भी व्यक्ति या समाज के विकास में उसकी मातृभाषा एक बाधा नहीं बल्कि एक सहयोगी की भूमिका में होनी चाहिए। लेकिन तकनीकी एवं अन्य कारणों इंटरनेट पर हिंदी सामग्री का अभाव देखा गया है। भारत में किए गए अनेक शोधों में इंटरनेट पर हिंदी में सामग्री के अनुपलब्धता के कई कारण बताए गए हैं जो निम्नलिखित हैं:

ढाँचागत कारण: अंग्रेजी समाचार वेबसाइटों की तुलना में हिंदी वेबसाइटों में ढांचागत कमजोरी देखी गई है। यह पाया गया कि हिंदी वेबसाइटों में या तो सर्वर स्थान कम है या हिंदी वेबसाइट मुख्य वेबसाइट के उप-डोमेन के रूप में चल रहा है। अधिक सर्वर स्थान वेबसाइट के खुलने एवं एक वेबपेज से दूसरे वेबपेज तक जाने को सुगम बनाता है और यहाँ तक कि एक समय में अत्यधिक उपयोगकर्ता के वेबसाइट पर आ जाने के समय भी, वेबसाइट सुचारू रूप से खुलती है। दूसरी ओर, यदि वेबसाइट में सर्वर स्पेस कम होता है, तो एक समय में ज्यादा उपयोगकर्ताओं के वेबसाइट पर आने के समय इसके क्रैश होने की संभावना हमेशा बनी रहती है।

संपादकीय कारण: संपादकीय टीम वेबसाइट के लिए सामग्री तैयार करने के लिए जिम्मेदार होती है। कई वरिष्ठ संपादकों के साक्षात्कार से यह पता चलता है कि सभी हिंदी वेबसाइटों में अंग्रेजी समाचार वेबसाइटों की तुलना में संपादकीय कर्मचारियों की संख्या कम होती है। यह अंतर निश्चित रूप से सामग्री की विविधता और गुणवत्ता को प्रभावित करता होगा। संपादकीय कर्मचारियों की कम संख्या के साथ सामग्री में गुणवत्ता लाना एवं विभिन्न प्रकार की सामग्री को तैयार करना संभव नहीं है। यह विभिन्न प्रकार के तकनीकी प्लेटफार्मों को वेबसाइटों से जोड़ने में भी लागू होता है, क्योंकि ये सभी कार्य संपादकीय टीम के द्वारा ही किया जाता है।

तकनीकी कारण: हिंदी वेबसाइटों में तकनीकी कर्मचारियों की संख्या भी कम पाई जाती है। कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाए तो तकनीकी कर्मचारियों की नियुक्ति संस्थान के अंग्रेजी वेबसाइट की देख-रेख के लिए किया है जो बहुत जरूरी होने पर हिंदी वेबसाइट के तकनीकी कार्य को भी देख लेते हैं। इस प्रकार की व्यवस्था विविध प्रकार की मल्टीमीडिया सामग्री तैयार करने और हिंदी समाचार वेबसाइट में संवादात्मक सुविधाओं का उपयोग करने के लिए पर्याप्त नहीं है। इसके कारण हिंदी वेबसाइटों के संपादकीय कर्मचारी अक्सर इन्फोग्राफिक और मल्टीमीडिया सामग्री का उपयोग अपनी वेबसाइट में नहीं कर पाते हैं। इसके लिए डिजाइनरों और वीडियो एनकोडर की एक समर्पित टीम की जरूरत होती है जो हिंदी वेबसाइटों को उपलब्ध नहीं है।

एक हिंदी बहुल राष्ट्र होने के कारण इन सभी कमियों को दूर करना अत्यधिक आवश्यक है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी मूल लोगों के संचार अधिकारों को बहुत महत्त्वपूर्ण मानते हुए कहा है कि लोगों तक उन्हीं की भाषा में सूचनाओं को पहुँचाना सरकारों एवं विभिन्न संगठनों का कर्तव्य है। भारत में जहाँ बहुसंख्या गैर अंग्रेजी बोलने वाले लोगों की ही है उनके सूचना अधिकार का सम्मान करते हुए इन तमाम कमियों को दूर किया जाना चाहिए।

हालाँकि इन कमियों के बावजूद जैसे-जैसे गैर-अंग्रेजी भाषी देश ऑनलाइन आए हैं, अन्य भाषाओं में सामग्री की मात्रा भी बढ़ी है। इंटरनेट वर्ल्ड स्टैट्स (2015) के अनुसार 2000-2015 के बीच, अन्य भाषाओं में उपयोगकर्ताओं की वृद्धि दर अंग्रेजी की तुलना में बहुत अधिक है। इस अवधि के दौरान अंग्रेजी उपयोगकर्ताओं की वृद्धि दर 520 प्रतिशत के साथ बढ़ी, जबकि चीनी, स्पेनिश और अरबी उपयोगकर्ताओं की वृद्धि दर क्रमशः 2080 प्रतिशत, 1312 प्रतिशत और 6592 प्रतिशत रही।

यह अनुमान है कि यदि इंटरनेट पर स्थानीय भाषा की सामग्री प्रदान की जाती है तो भारत में इंटरनेट उपयोगकर्ता 24% तक बढ़ सकते हैं। यदि सामग्री स्थानीय भाषा में प्रदान की जाती है तो ग्रामीण क्षेत्रों में 43% गैर-इंटरनेट उपयोगकर्ता इस माध्यम को अपनाएँगे। शहरी क्षेत्रों में, 13.5% गैर-उपयोगकर्ता इंटरनेट का उपयोग करेंगे यदि सामग्री स्थानीय भाषाओं में प्रदान की जाती है। भाषाओं में, ऑनलाइन सामग्री तक पहुँचने के लिए हिंदी एक प्रमुख भाषा के रूप में उभरती है। ग्रामीण भारत में, 27% उपयोगकर्ता ऑनलाइन सामग्री का उपयोग करने के लिए हिंदी का उपयोग करते हैं, इसके बाद मराठी और तमिल हैं। शहरी भारत में भी, 60% उपयोगकर्ता हिंदी में ऑनलाइन सामग्री का उपयोग करते हैं, इसके बाद तमिल और मराठी (आईएएमएआई, 2015) का स्थान आता है।

Google और Yahoo जैसे संगठन भारतीय भाषाओं में सामग्री डिजाइन करने और बनाने के लिए पहल कर रहे हैं। गूगल इंडिया के प्रबंध निदेशक राजन आनंदन ने कहा, "भारत में अगले 30 करोड़ इंटरनेट उपयोगकर्ता अंग्रेजी का उपयोग नहीं करेंगे। इसलिए हम भारतीय भाषाओं में इंटरनेट को सक्षम करने पर काम कर रहे हैं, जो विकास को गति देने की कुंजी है" (थॉमस, 2014)। Yahoo India आठ भारतीय क्षेत्रीय भाषाओं में ईमेल प्रदान करता है। माइक्रोसॉफ्ट के पास 12 भारतीय भाषाओं में स्थानीयकृत कार्यालय हैं जिनमें असमिया,

बंगाली, गुजराती, हिंदी, कन्नड़, कोंकणी, मलयालम, मराठी, उड़िया, पंजाबी, तमिल और तेलुगु शामिल हैं (डी'मोंटे, 2015)।

भारत सरकार भी भारतीय भाषाओं में डिजिटल संसाधन और सेवाएँ प्रदान करने पर विशेष जोर दे रही है। जुलाई 2015 में शुरू की गई "डिजिटल इंडिया" योजना में, सरकार के तीन प्रमुख दृष्टिकोण हैं। पहला, प्रत्येक नागरिक के लिए एक उपयोगिता के रूप में डिजिटल बुनियादी ढाँचा, दूसरा, माँग आधारित सेवाएँ और तीसरा, नागरिकों का डिजिटल सशक्तिकरण। डिजिटल इंडिया के तीसरे विजन के तहत, भारतीय भाषाओं में डिजिटल संसाधन/सेवाएँ प्रदान करने और सहभागी शासन के लिए सहयोगी डिजिटल प्लेटफॉर्म पर विशेष जोर दिया गया है (डिजिटल इंडिया, 2015)। यह दृष्टि मोटे तौर पर नागरिकों को बुनियादी ढाँचा प्रदान करने, ई-गवर्नेंस को बढ़ावा देने और सूचना संपन्न और सूचना गरीब के बीच डिजिटल विभाजन को कम करने पर केंद्रित है। डिजिटल डिवाइड शब्द को उन लोगों के बीच के अंतर के रूप में परिभाषित किया जाता है जहाँ एक तरफ वो लोग हैं जिनका सूचना संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) तक पहुँच है और उनका उपयोग करने का कौशल है, और दूसरी ओर वो लोग हैं जिनके पास न तो पहुँच है और न ही कौशल (महलदार, 2015)। इस परिभाषा से, यह स्पष्ट है कि डिजिटल विभाजन समूहों और व्यक्तियों के बीच सामाजिक और आर्थिक असमानता है। इसी असमानता को दूर करना सरकार का लक्ष्य है ताकि मातृभाषा सूचना आधारित समाज के निर्माण में बाधक न बनें बल्कि वह सहयोगी बने और अधिक से अधिक लोग सूचना समाज का हिस्सा बन सकें। दरअसल भारत में सही मायने में सूचना समाज तभी बनेगा जब मातृभाषा बोलने वाले लोग उसके हिस्सेदार बनेंगे।

नई शिक्षा नीति 2020 में भी स्थानीय भाषाओं में शिक्षा देने पर जोर दिया गया है। वर्तमान सरकार का मानना है कि भाषाई कारण किसी की शिक्षा में बाधक न बनें। अगर देश को सही मायने में एक सूचित समाज बनाना है तो मातृ भाषाओं में शिक्षा को बढ़ाने पर जोर देना होगा। इस दिशा में सरकार तो काम कर ही रही है साथ ही निजी क्षेत्र के सूचना प्रदाता कंपनियों को भी आगे आना होगा। इंटरनेट का बाजार जिस प्रकार से स्थानीय भाषाओं की ओर उन्मुख है ऐसी उम्मीद की जानी चाहिए कि भारत की निजी सूचना प्रदाता कंपनियाँ भी आगे आएँगी और मातृभाषा आधारित वेबसाइट की कमियों को दूर करेगी। इन सभी आधारों का अवलोकन करने पर यह कहा जा सकता है कि इंटरनेट पर हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है। वह दिन दूर नहीं जब भारत के हर नागरिक तक हर प्रकार की सूचना उसी की मातृभाषा में पहुँचेगी।

संदर्भ सूची

Al-Saggaf, Y. (2006). The online public sphere in the Arab world: The war in Iraq on the Al Arabia website. Journal of Computer-Mediated Communication, 12 (1), 311-334.

Briggs., & Mark. (2009). Journalism Next: A Practical Guide to Digital Reporting and Publishing. London: Sage.

Mahaldar, O., & Bhadra, K. (2015). ICT: a magic wand for social change in rural India. In PE Thomas, M. Srihari, & S. Kaur (Eds.), Handbook of research on cultural and economic impacts of the information society (pp. 501–525). Published in the United States of America by Information Science Reference (an imprint of IGI Global) 701 E. Chocolate Avenue Hershey PA, USA 17033: IGI Global.

Mansell, R. (2009). The power of new media networks. In Hammer, R. & Kellner, D. Media/cultural studies: Critical approaches.107-123. New York: Peter Lang Publishing

Nguyen, A. (2008). "The contribution of online news attributes to its diffusion: An empirical exploration based on a proposed theoretical model for the micro-process of online news adoption/use", First Monday. 13 (4). DOI:10.5210/fm.v13i4.2127

Zazulak, S. (2015). English: the language of the internet. Retrieved on 10 May, 2016 from http://www.english.com/blog/english-language-internet

Keniston, K., & Kumar, D. (2003). The four digital divides. Online eri□im, 21, 2010.

Aula, S. (2014). The Problem with English language in India, Retrieved on 12 November, 2015 from http://www.forbes.com/sites/realspin/2014/11/06/the-problem-with-the-english-language-in-india/#29dfc0e37bea

Cultural and Linguistic Diversity in the Information Society. (2003). Retrieved on 12 April, 2014 from http://unesdoc.unesco.org/images/0013/001329/132965e.pdf. UNESCO Publication

Paolillo, J., Pimienta, D., & Prado, D. (2005). Measuring linguistic diversity on the Internet. UNESCO Institute for Statistics Montreal, Canada.

Internet world users by language (2015), retrieved on 11 May, 2016 from http://www.internetworldstats.com/stats7.htm

Internet and Mobile Association of India report. (2015). Retrieved on 9 March, 2016 from http://www.iamai.in/sites/default/files/annual_report/AnnualReport2014-15.pdf

D'Monte. (2015). Need more local language content for Internet to bloom. Retrieved on 10 February, 2013 from http://www.livemint.com/Opinion/zCFoFUXebEbxBOVq8a2UUJ/Need-more-local-language-content-for-Internet-to-bloom-in-In.html

Thomas. T. (2014). Google to hold Indian language hackathon in Bangalore. Retrieved on 18 November, 2015 from http://rtn.asia/t-t/5333/google-to-hold-indian-language-hackathon-in-bangalore.

❋

सहायक प्राध्यापक, जनसंचार एवं मीडिया विभाग, दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय, Email: sujeetkumar@cub.ac.in, Mobile: 8292440278

आत्मनिर्भर भारत और हिंदी

प्रो. भारती गोरे

> *भारत एक बहुभाषिक-बहुसांस्कृतिक देश है। यह निश्चित रूप से भारत के व्यक्तित्व का अत्यधिक सक्षम पक्ष है। लेकिन दुर्भाग्य से दुनिया ही नहीं, इस देश के भी टुच्ची सोच के लोग इसे एक दुर्बल पक्ष साबित करने पर तुले हुए हैं। यहाँ की स्थानीय-प्रादेशिक भाषाओं का अपना महत्त्व है, होना ही चाहिए। लेकिन जब अपने राज्य की सीमा लांघकर राष्ट्र स्तर पर पहुँचने की बात आती है तो एक अदद ऐसी भाषा की आवश्यकता होती है जो देश में सर्वत्र स्वीकार हो, समझी जाती हो और स्थानिक भाषा की गरिमा को समझती भी हो। अंग्रेजी ऐसी भाषा कदापि नहीं हो सकती जिसके माध्यम से स्थानीय से राष्ट्रीय तक की यात्रा तय की जा सके। आज भी देश में लगभग दो से तीन प्रतिशत लोग ही अंग्रेजी में लिख-बोल-पढ़ पाते हैं।*

एक समय था जब भारत 'सोने की चिड़िया' कहलाता था। ज्ञान, विज्ञान, धन-संपन्नता आदि प्रत्येक क्षेत्र में यह भूमि सदैव ही श्रेष्ठ रही है। इस भूमि की संपन्नता का एक बहुत बड़ा दुष्परिणाम यह रहा कि उसे विदेशी आक्रमण सहने पड़े। लेकिन भारत एक ऐसी भूमि रहा है, जिसे आपदा को अवसर में बदलना आता है। निरंतर होते आक्रमणों ने भी इस देश को भाषा, साहित्य, शिल्पादि क्षेत्रों में बहुत संपन्न बनाया। विदेशी आक्रमण के बीच स्वयं को मिटा देने की अपेक्षा भारत ने आक्रमणकारियों की ही स्वीकारणीय विशेषताओं को अपनाकर अपनी संपन्नता में वृद्धि की। शक, हूण, मंगोल, मुस्लिम, डच, पुर्तुगाली, अंग्रेज आदि के निरंतर आक्रमणों में भी भारत की हस्ती केवली बची ही नहीं रही, बल्कि बढ़ती रही।

भारत की संपन्नता का एक बहुत बड़ा कारण भारत की आत्मनिर्भरता रही है। भारत प्राचीन समय में एक स्वावलंबी देश था। यहाँ वस्तु विनिमय पद्धति प्रचलित थी। इसी के माध्यम से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती थी। अंग्रेज जब भारत में आये तब यहाँ की आत्मनिर्भरता से चकित हो गये। यहाँ से वस्तुएँ गोरों के देश में निर्यात की जाती थी, यह इतिहास है। लेकिन धीरे-धीरे अंग्रेजों के सुव्यवस्थित षडयंत्र ने भारत को कंगाल ही नहीं किया बल्कि हर तरह से पराधीन भी बना दिया। इसके लिए उन्होंने पहला वार भारत की आत्मनिर्भरता पर किया। भारत को अपना उपनिवेश बनाने के लिए उन्होंने भारत के मानस को गुलाम बनाया और इसके लिए अपनी शिक्षा-पद्धति भारत पर थोप दी। लॉर्ड मेकाले की शिक्षा पद्धति ने अंग्रेजों की आवश्यकता के अनुसार क्लर्क गढ़ने शुरू किये और भारतीयों की स्वतंत्रता व आत्मनिर्भरता समाप्तप्राय हो गई। इसमें भाषा अंग्रेजों का सबसे बड़ा शस्त्र बनी।

अंग्रेजों ने भाषा के माध्यम से भारतीयों में हीनताबोध पैदा किया। इसी हीनताबोध के कारण भारतीय न केवल अपनी भाषा, संस्कृति, इतिहास बल्कि राष्ट्रीयता तक को लेकर नकारात्मक सोच से ग्रस्त हो गये।

दुर्भाग्य से यह सिलसिला दशकों तक जारी रहा। हम भारतीय विदेशी भाषा से लेकर विदेशी खान-पान, रहन-सहन तक हर बात से प्रभावित थे और उनका अनुगमन करने की चेष्टा में जुटे हुए थे। वस्तुत: यह मानसिक गुलामी देश के सामने खड़ा एक ऐसा संकट था जिसकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। इस क्रम में भारत की आत्मनिर्भरता का क्षरण होता गया और देश परावलंबी बनता गया।

दो साल पहले भारत ही नहीं, संपूर्ण विश्व कोरोना महामारी की चपेट में आ गया। 2020 के आरंभ में ही देश में तालाबंदी घोषित

की गई। इसी समय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी 12 मई 2020 को कोरोना महामारी के संबंध में एक आर्थिक पैकेज की घोषणा कर रहे थे जब 'आत्मनिर्भर भारत' संकल्पना का पहली बार सार्वजनिक उल्लेख हुआ। जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, देश के स्वावलंबी होने की आवश्यकता के संकेत इससे मिलते हैं। क्षेत्र चाहे जो हो, भारत को स्वयं ही निर्भर होना होगा, इस बात का निर्धार 'आत्मनिर्भर भारत' में व्यक्त किया गया। इस अभियान ने करोना महामारी के संकट में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई और विशेष बात यह कि इस महामारी के समाप्त होने के बाद भी आत्मनिर्भरता का संकल्प बार-बार दुहराया गया। देश के संसाधनों से ही देश के लिए आवश्यक वस्तुओं का निर्माण हो ताकि किसी भी छोटी या बड़ी आवश्यकता की पूर्ति के लिए देश को किसी के सामने हाथ न फैलाना पड़े, इस भूमिका के साथ 'आत्मनिर्भर भारत' का क्रियान्वयन किया जाने लगा। भारत के अंतर्गत व्यापार-उद्योग में वृद्धि कराना, युवाओं के लिए रोजगार उपलब्ध कराना, देश से गरीबी खत्म करना आदि 'आत्मनिर्भर भारत' के मोटा-मोटी उद्देश्य रहे हैं। लेकिन बारीकी से देखा जाये तो 'आत्मनिर्भर भारत' के माध्यम से अपने संस्कार, अपनी संस्कृति, ज्ञान-दर्शन और भाषा की श्रेष्ठता को समझकर अपने विस्मृत अस्तित्व को जागृत करने का प्रयास किया जा रहा है। करोना महामारी के कारण यह समझ में आ गया है कि तमाम आधुनिक व वैज्ञानिक प्रगति के बावजूद आपदाओं से निपटना अत्यधिक कठिन हो सकता है। यदि किसी भी समय में आपदाओं का डटकर मुकाबला करना है तो अपनी अर्थव्यवस्था अत्यंत मजबूत हो और सामाजिक आदि व्यवस्था ऐसी हो कि स्थानीय स्तर पर तक हमारी प्रत्येक छोटी-बड़ी आवश्यकता की पूर्ति हो सके। इस दृष्टि से संगठित एवं असंगठित दोनों ही स्तरों पर पर्याप्त सशक्तता आवश्यक है। स्वदेशी का महत्त्व इस समय पुन: दोहराया जा रहा है। हमारे देश की युवा पीढ़ी को उसकी अपनी क्षमताओं से परिचित कराने हेतु कौशल विकास पर बल दिया जा रहा है। भारत युवाओं का देश कहा जाता है। यह युवा शक्ति अपने कौशल के बल पर देश को पूर्णत: आत्मबल और आत्मविश्वास से समृद्ध बना सकती है। इन सारी बातों में हिंदी जैसी अत्यधिक सशक्त एवं संपन्न संपर्क भाषा महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करेगी।

पराधीनता के दौर में भी हिंदी के ही माध्यम से स्वाधीनता व आत्मनिर्भरता का अलख जगाने का काम किया गया था। भारत के अलग-अलग प्रांतों से स्वाधीनता संग्राम में स्वयं को समर्पित करने के लिए आगे बढ़े समाजसुधारक व सेनानियों ने हिंदी के माध्यम से ही अपनी बात सर्वदूर पहुँचाई थी। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, स्वातंत्र्यवीर सावरकर, काका कालेलकर, केशवचंद्र सेन, सुभाषचंद्र बोस, बंकिमचंद्र, सरदार पटेल आदि अनेकानेक महनीय जनों ने हिंदी को स्वाधीनता के लिए छेड़े गए राष्ट्रीय आंदोलन का अभिन्न अंग बताया। भारतेंदु जैसे श्रेष्ठ साहित्यकार ने हर प्रकार की उन्नति के लिए 'निजभाषा' की उन्नति को आवश्यक माना हैं। 'निजभाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल' एक उक्ति मात्र नहीं है। स्वाधीनता संग्राम में भारतीयों में प्राण फूँकने का श्रेय हिंदी को जाता है। किंतु समय बदला और अपने विकास के हिंदी जैसे - कारक-तत्त्व को दरकिनार किया जाने लगा।

भारत एक बहुभाषिक-बहुसांस्कृतिक देश है। यह निश्चित रूप से भारत के व्यक्तित्व का अत्यधिक सक्षम पक्ष है। लेकिन दुर्भाग्य से दुनिया ही नहीं, इस देश के भी टुच्ची सोच के लोग इसे एक दुर्बल पक्ष साबित करने पर तुले हुए हैं। यहाँ की स्थानीय-प्रादेशिक भाषाओं का अपना महत्त्व है, होना ही चाहिए। लेकिन जब अपने राज्य की सीमा लांघकर राष्ट्र स्तर पर पहुँचने की बात आती है तो एक अदद ऐसी भाषा की आवश्यकता होती है जो देश में सर्वत्र स्वीकार हो, समझी जाती हो और स्थानिक भाषा की गरिमा को समझती भी हो। अंग्रेजी ऐसी भाषा कदापि नहीं हो सकती जिसके माध्यम से स्थानीय से राष्ट्रीय तक की यात्रा तय की जा सके। आज भी देश में लगभग दो से तीन प्रतिशत लोग ही अंग्रेजी में लिख-बोल-पढ़ पाते हैं। दूसरी बात, अंग्रेजी जैसी भाषा प्रादेशिकता की गरिमा की रक्षा कर पायेगी, इस बात को लेकर पर्याप्त आशंका उठाई जा सकती है। भारतीयता का जो व्यापक खांटी रंग हिंदी में मिलेगा, अन्यत्र संभव नहीं। हिंदी जितनी सहजता से अन्यान्य भाषा-बोलियों के बीच वाहिका का दायित्त्व निभा पायेगी, उतनी अन्य कोई भाषा नहीं निभा सकती।

भारत की आत्मनिर्भरता में लघु उद्योग, कुटीर उद्योग, गृहिणियों द्वारा चलाये जानेवाले छोटे-छोटे उद्योग, मत्स्य पालन, सिलाई बुनाई-कढाई से लेकर बड़ी-पापड-अचार बनाने तक के छोटे उद्योगों ने अत्यधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। स्वाभाविक है, जहाँ कच्चा माल विपुल मात्रा में उपलब्ध होता है, वहीं इस तरह के उद्योग चलाये जाते हैं। लेकिन यह भी सच है कि जहाँ बनता है, वहाँ बिकने की संभावना बहुत कम होती है। अत: उन वस्तुओं को गाँव, प्रदेश और भूमंडलीकरण के इस दौर में देश तक की सीमा से परे, बाजार में लाना हो तो स्थानीय भाषा या अंग्रेजी उपयुक्त सिद्ध नहीं हो सकती। स्थानीय भाषा केवल उस राज्य तक सीमित होगी और अंग्रेजी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी जरूर, पर स्थानीय बाजार में उपयुक्त सिद्ध नहीं

होगी। ऐसी स्थिति में हर तरह के व्यापार का फैलाव केवल हिंदी के माध्यम से ही संभव है। यही कारण है कि अमेजोन जैसी कंपनियाँ अपनी सेवाएँ हिंदी में प्रदान कर रही हैं। इसमें भाषा उन्नयन उनका उद्देश्य हो न हो, व्यापार उन्नयन का उद्देश्य अवश्य ही निहित है।

पर्यटन-उद्योग भारत का महत्त्वपूर्ण उद्योग है, जो स्थानीय विशेषताएँ प्रादेशिक स्तर पर प्रादेशिक भाषा में सर्वज्ञात हैं; वे हिंदी के माध्यम से ही विश्व स्तर तक पहुँचाई जा सकती हैं। मीडिया, सिनेमा, व्यापार, संचार एक नहीं, अनेक क्षेत्र ऐसे हैं जिन्हें पूर्व से लेकर पश्चिम तक और उत्तर से लेकर दक्षिण तक एक सूत्र में केवल हिंदी के द्वारा बांधा जा सकता है। यह तमाम क्षेत्र रोजगार के क्षेत्र हैं और इनकी जानकारी हिंदी के माध्यम से पाई जा सकती है।

हिंदी जैसी भाषा का प्रयोग 'आत्मनिर्भर भारत' के संदर्भ में करते हुए प्रश्न केवल आर्थिक आत्मनिर्भरता का ही नहीं रहता। आज हमें आजाद हुए पचहत्तर साल बीत चुके हैं। अब हम उपनिवेश नहीं रहे हैं लेकिन इस समय नवउपनिवेशवाद ने हमारे मन-मस्तिष्क पर डेरा जमा लिया है। अब प्रत्यक्ष अंग्रेजों का शासन नहीं लेकिन युरोप, खासकर अमरिका ने भारत के बाजार को अक्षरश: निगल लिया है। बची खुची कसर चीन ने पूरी कर दी है। कमाल की बात यह कि यह सारी खुराफात उन्होंने हिंदी के माध्यम से की है। वे जानते हैं कि व्यापार हो या संस्कृति, भारत में सर्वदूर पैठना है तो हिंदी का कोई विकल्प नहीं है। इसीलिए तो विश्वभर की शक्तियाँ अपनी बाजारवादी नीतियों के तहत (न चाहते हुए भी) हिंदी प्रशिक्षण पर बल दे रही हैं। एक तरह से हमारे शस्त्र से हमें परास्त किया जा रहा है। अब हिंदी जैसे शक्तिसंपन्न शस्त्र का अपने हित में प्रयोग करना आवश्यक बन गया है। हिंदी का प्रयोग भारत की वस्तुएँ ही नहीं, भारत के इतिहास, ज्ञान, परंपरा को भी विश्वभर में पहुँचायेगा। हिंदी ही एकमात्र ऐसी भाषा सिद्ध होगी जिसके माध्यम से हम न केवल आर्थिक बल्कि मानसिक रूप से आत्मनिर्भर बनेंगे। अपने भीतर हिंदुस्तानी होने का गर्व भरने की क्षममता केवल हिंदी में है। देशप्रेम का जज्बा कोई विदेशी या सीमित-स्थानीय भाषा कैसे जगा पायेगी? 'आत्मनिर्भर भारत' की संकल्पना का साध्य हिंदी जैसे साधन से प्राप्त होगा, इसमें कोई संदेह नहीं।

❋

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, डॉ बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद- 431004 (महाराष्ट्र) 9422437678
drbharatigore@gmail.com

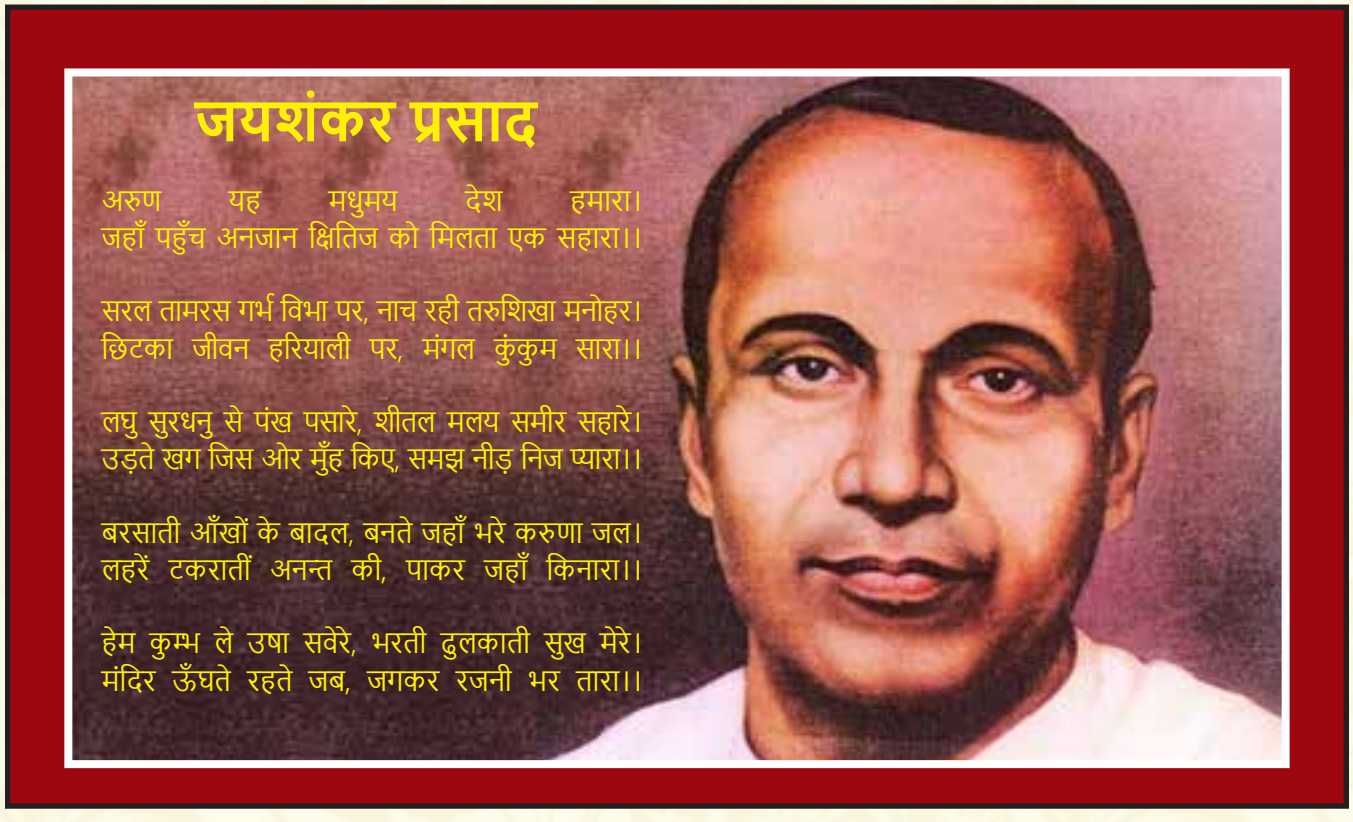

हिंदी का विकास एवं विस्तार

डॉ. सोनम डेहरिया

हिंदी राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता की कड़ी है। इस कड़ी को हम जितना मजबूत बनाएँगे, उतनी ही सक्षमता के साथ यह भारतवासियों के दिलों में अपना स्थान बना सकती है। राष्ट्रभाषा हिंदी ही इस देश के नागरिकों में राष्ट्रीय एकता, स्वाभिमान जागृत कर सकती है। बिना राष्ट्रभाषा के कोई भी राष्ट्र अपने को संपूर्ण रूप में अभिव्यक्ति नहीं दे सकता। राष्ट्रभाषा की अवहेलना करना, राष्ट्रध्वज, राष्ट्रगीत तथा संविधान की अवहेलना करने के समान है। इस देश के सम्मानित नागरिक होने के नाते प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य हो जाता है कि संविधानसम्मत राष्ट्रभाषा का आदर करें और उसे उसका वास्तविक स्थान प्रदान करने में अपनी भूमिका का निर्वाह करें। इस राष्ट्रीय यज्ञ में समिधा देना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने एक राष्ट्रभाषा हो, एक हृदय हो भारत जननी का नारा अपना प्रतीक चिह्न माना है।

भारतीय संविधान की अष्टम अनुसूची में सम्प्रति बाईस भारतीय भाषाओं को शामिल किया गया है। 26 जनवरी 1950 ई. को भारतीय संविधान के लागू होते समय संविधान की अष्टम अनुसूची में असमिया, उड़िया, उर्दू, कन्नड़, कश्मीरी, गुजराती, तमिल, तेलुगु, पंजाबी, बंगला, मराठी, मलयालम, संस्कृत और हिंदी आदि चौदह भारतीय भाषाओं को मान्यता प्राप्त थी। 10 अप्रैल 1967 ई. को उनमें पंद्रहवीं भाषा के रूप में सिंधी जुड़ गई, तत्पश्चात 1993 ई. में कोंकणी, नेपाली और मणिपुरी इन तीनों भाषाओं का उनमें समावेश किया गया। 23 दिसंबर 2003 ई. को मैथिली, संथाली, बोडो और डोगरी भाषा के समावेश से आज यह संख्या बाईस तक पहुँच चुकी है। हमारे देश में उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, छत्तीसगढ़, उत्तरांचल, झारखंड, दिल्ली तथा अंडमान निकोबार द्वीप समूह की हिंदी मातृभाषा है।

विश्व जनसंख्या 1999 के आँकड़ों के अनुसार वैश्विक स्तर पर हिंदी जानने वालों की संख्या 1103 मिलियन है जबकि चीनी भाषा के संदर्भ में संख्या 1052 मिलियन है। संयुक्त राष्ट्र संघ के सर्वेक्षण के अनुसार वैश्विक स्तर पर 111.2 करोड़ जनता हिंदी भाषा जानती है। भारतीय मूल का एक करोड़ बीस लाख संख्या का जनमानस आज 132 देशों में बिखरा हुआ है। हिंदी के प्रयोगकर्ताओं की संख्या 70 प्रतिशत से अधिक है जबकि अंग्रेजी बोलने वालों की संख्या मात्र 0.58 प्रतिशत है अर्थात् पूरा एक प्रतिशत भी नहीं है। शब्द संख्या की दृष्टि से वर्तमान समय में हिंदी एक समृद्ध भाषा है। लगभग ढाई लाख से अधिक शब्द सम्पदा हिंदी के पास है जबकि अंग्रेजी में मूल शब्दों की संख्या दस हजार से अधिक नहीं है।

वैश्विक स्तर पर 73 राष्ट्रों के 150 विश्वविद्यालयों में हिंदी के अध्ययन, अध्यापन व अनुसंधान की सुविधा उपलब्ध है। अमेरिका के 38, रूस के 7, जर्मन के 17 तथा जापान के 2 विश्वविद्यालयों में हिंदी अध्ययन हो रहा है। फ़ीजी, सूरीनाम, त्रिनीडाड, गुयाना, मॉरीशस आदि देशों की भाषा हिंदी ही है, क्योंकि वहाँ भारतीय मूल के निवासियों की संख्या अधिक है। ब्रिटेन, आयर्लैंड, मलेशिया, सिंगापुर में भी प्रवासी भारतीयों की संख्या अधिक ही है। मॉरीशस में 52 प्रतिशत जनता भारतीय मूल की है। हिंदी का प्रचार व प्रसार वहाँ जोरों पर है। 1976, 1993 तथा 2018 में वहाँ तीन विश्व हिंदी सम्मेलन हुए। फ़ीजी में भी हिंदी प्रतिष्ठित है। 70 प्रतिशत जनता वहाँ हिंदी का प्रयोग कर रही है। सूरीनाम में भारतीय मूल निवासियों की संख्या 40 प्रतिशत से ऊपर है। 2003 ई. में सातवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन सूरीनाम में आयोजित किया गया था। त्रिनिदाद और टोबेगो में भारतीय वंश के निवासियों की संख्या 45 प्रतिशत से अधिक है। 1996 में पाँचवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन त्रिनिडाड में हुआ था। श्रीलंका के तीनों विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। चीन के पेइचिंग विश्वविद्यालय तथा आकाशवाणी में हिंदी का बोलबाला है।

अधिक विस्तार में न जाते हुए यह कहना पर्याप्त होगा कि भारत के विदेशों से व्यापारिक संबंध सदियों नहीं, सहस्राब्दियों पुराने हैं, यदि यह सच है तो उस भारत तथा विदेशों के बीच संपर्क और व्यापारिक संबंधों के निर्वाह की भाषा कौन-सी थी? यह शोध का विषय हो सकता है, किंतु इस तथ्य को जानने के लिए किसी शोध की आवश्यकता नहीं है कि वह संपर्क भाषा अंग्रेजी नहीं थी, क्योंकि तब इंग्लैंड तक की भाषा अंग्रेजी नहीं थी, मध्य युग तक इंग्लैंड फ्रांसीसी भाषा के वर्चस्व से आक्रांत रहा था। राष्ट्रभाषा का प्रचार राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होकर प्रारंभ हुआ था, हिंदी वास्तव में राष्ट्रीयता की संवाहिका रही है। इस राष्ट्रीयता के संदेश को जन-जन तक पहुँचाने में प्रचारकों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। वास्तव में किसी भी देश की राष्ट्रभाषा उस देश की अस्मिता का प्रतीक होती है। भारत ने अनादिकाल से अपने देश में भाषाओं को अपने वाङ् मय, संस्कृति, धर्म, दर्शन, इतिहास, पुराण, वेद तथा ज्ञान-विज्ञान का माध्यम बनाया था और समस्त विश्व में हमारी भाषाओं में प्रणीत वाङ् मय को गौरव की दृष्टि से देखा, अपने यहाँ आयात किया और हमारे देश को विश्व का गुरु माना। किन्तु अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् लार्ड मैकाले ने हमारी संस्कृति, सभ्यता और साहित्य एवं भाषाओं पर कुठाराघात करने के लिए अंग्रेजी को हम पर थोपा। हम अंग्रेजी के रंग में इस प्रकार रंग गए कि आज भी उससे मुक्त नहीं हो पा रहे हैं।

हिंदी राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता की कड़ी है। इस कड़ी को हम जितना मजबूत बनाएंगे, उतनी ही सक्षमता के साथ यह भारतवासियों के दिलों में अपना स्थान बना सकती है। राष्ट्रभाषा हिंदी ही इस देश के नागरिकों में राष्ट्रीय एकता, स्वाभिमान जागृत कर सकती है। बिना राष्ट्रभाषा के कोई भी राष्ट्र अपने को संपूर्ण रूप में अभिव्यक्ति नहीं दे सकता। राष्ट्रभाषा की अवहेलना करना, राष्ट्रध्वज, राष्ट्रगीत तथा संविधान की अवहेलना करने के समान है। इस देश के सम्मानित नागरिक होने के नाते प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य हो जाता है कि संविधानसम्मत राष्ट्रभाषा का आदर करें और उसे अपना वास्तविक स्थान प्रदान करने में अपनी भूमिका का निर्वाह करें। इस राष्ट्रीय यज्ञ में समिधा देना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने एक राष्ट्रभाषा हो, एक हृदय हो भारत जननी का नारा अपना प्रतीक चिह्न माना है। भारत के पूर्व रक्षा मंत्री ने कहा था कि जिस भाषा की संस्कृति हमसे सात समुंदर दूर है, वह भाषा हमें केवल रचना सिखा सकती है, मौलिक चिन्तन नहीं।

श्री जोन्स द्वारा लिखित अंग्रेजी पुस्तक 'टर्म्स ऑफ दी इंग्लिश लेंग्वेज' के अनुसार सन् 1650 तक अंग्रेजी इंग्लैंड की राजभाषा नहीं थी। अंग्रेजों की मातृभाषा अंग्रेजी होने के बावजूद वहाँ फ्रेंच व लेटिन का बोलबाला था। कानून फ्रेंच भाषा में बनते थे। शिक्षा लेटिन में दी जाती थी। आज जैसे भारत में अंग्रेजी में बोलना व शिक्षा लेना उच्च वर्ग, सभ्यता व बुद्धिजीवी होने का प्रतीक है, ठीक वैसे ही तब इंग्लैंड के वकील, डॉक्टर, नेता फ्रेंच व लेटिन का प्रयोग करते थे। वहाँ अंग्रेजी की वकालत करने वाला गंवार और जाहिल कहलाता था, ठीक वैसे ही जैसे भारत में आज हिंदी बोलने-पढ़ने वाला। सन् 1650 में इंग्लैंड की संसद में दायर याचिका में फ्रेंच व लेटिन को गुलामी का सबूत कहा गया। 22 नवंबर सन् 1650 को ब्रिटेन की संसद ने निर्णय लिया कि पहली जनवरी 51 के बाद इंग्लैंड में फ्रेंच और लेटिन भाषा में सरकारी या गैर-सरकारी कामकाज नहीं होगा। उसका स्थान अंग्रेजी लेगी। सरकार इस अवधि में कानून व शिक्षा की संपूर्ण व्यवस्था अंग्रेजी में करेगी और मात्र 38 दिनों के भीतर यह सारी व्यवस्था कर ली गई और अंग्रेजी इंग्लैंड की राष्ट्रभाषा बन गयी। अंग्रेजों ने एक ही झटके में दो विदेशी भाषाओं को देश से बाहर निकाल फेंका। फलत: अंग्रेजी आज अंतरराष्ट्रीय भाषा बन गई। यदि अंग्रेज एकजुट होकर मात्र 38 दिनों में फ्रेंच व लेटिन को देश निकाला दे सकते हैं तो आप अंग्रेजी को क्यों नहीं? तुर्की के 1922 में स्वतंत्र होने पर वहाँ के शासनाध्यक्ष कमाल पाशा ने अपने सलाहकारों की सलाह को ठुकराते हुए एक ही रात में अर्थात् अगले ही दिन से पूरा काम स्वभाषा में करने का ऐसा पक्का निर्णय लिया था, जो आज तक भी अटूट है। 1997 में हांगकांग, ब्रिटेन से चीन को हस्तांतरित हो गया। इसके साथ ही हांगकांग सरकार ने विद्यालयों में मुख्य विषय के रूप में अंग्रेजी पढ़ाए जाने पर प्रतिबंध लगा दिया और यह घोषणा की कि जो प्राध्यापक इसे स्वीकार नहीं करेंगे, उन्हें अर्थदंड के अलावा जेल भी भेजा जा सकता है। इसके साथ ही उस विद्यालय की आर्थिक सहायता भी बंद कर दी जायेगी। हांगकांग में 12 वर्ष से अधिक उम्र वाले बच्चों को अनिवार्य रूप से कैटनी (चीनी) भाषा पढ़ाने का प्रावधान रखा गया। इसी प्रकार तंजानिया में स्वाहिली हेतु पूर्वी पाकिस्तान में बांग्ला हेतु, फिनलैंड में फिनी हेतु और श्रीलंका में सिंहली को राजभाषा बनाये जाने के प्रयोजनार्थ खूब जमकर खून की होली खेली गई और उनकी मनचाही भाषा ही वहाँ की राजभाषा बनी। राष्ट्रीय संस्कृति और भाषा शुद्धता के उद्देश्य से प्रेरित होकर फ्रांसीसी अकादमी (1630) ने बड़े उत्साह में फ्रांसीसी भाषा को विदेशी शब्दों और प्रभावों से बचाते हुए अपनी भाषा को शुद्ध रखने का प्रयास किया। इटली में फ्लोरेन्टाइन अकादमी (1540) और अकादमी डेलाकुस्का (1582) नामक दो भाषा अकादमियों ने तुस्कन भाषा के मानक व्याकरण और शब्दकोशों का निर्माण कर तुस्कन को मानक इतालवी का दर्जा दिलाया। 17वीं और 18वीं शताब्दियों में अनेक यूरोपीय देशों में इसी प्रकार की भाषा अकादमियां उभरकर सामने आई, जैसे स्पेन में स्पेनिश अकादमी (1783), स्वीडन में स्वीडिश अकादमी (1786), जर्मनी में जर्मन अकादमी (1617), इंग्लैंड में अंग्रेजी अकादमी (लगभग 1712)।

हिंदी को, वर्तमान गौरवपूर्ण स्तर तक पहुँचाने में विदेशी एवं हिंदी भाषी विद्वानों की ही अहम भूमिका रही है। हिंदी किसी प्रदेश विशेष, धर्म विशेष या जाति विशेष की भाषा नहीं है। यह, हिंदी भाषा की अपनी शक्ति और अपना सामर्थ्य है कि वह कई धर्म-संस्कृतियों की सम्पदा तथा विविध देशी-विदेशी विद्वानों की सेवा-श्रद्धा से सुशोभित एवं समृद्ध होती रही है। स्वेच्छा से एवं स्वान्त: सुखाय हिंदी पढ़ने, लिखने और समझने वाले देशों में मुख्यत: रूस, अमेरिका, कनाडा, इंग्लैंड, जर्मनी, बेल्जियम, फ्रांस, यूगोस्लाविया, चेकोस्लोवाकिया, इटली, रूमानिया,

चीन, जापान, नार्वे, स्वीडन, हंगरी, बुल्गारिया, पोलैंड, आस्ट्रेलिया, हालैंड, रोम तथा मैक्सिको आदि कई देशों का नाम लिया जा सकता है, तो मूलतः भारतवंशी किन्तु वर्तमान में प्रवासी भारतीयों के रूप में पहचान बना लेने वाले मॉरीशस, फ़ीजी, गुयाना, सूरीनाम, कीनिया, ट्रिनीडाड, बर्मा, थाईलैंड, नेपाल, बंगलादेश, श्रीलंका, मलेशिया तथा दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में भी हिंदी पैतृक सम्पत्ति और मातृभाषा के रूप में स्थापित होकर अत्यन्त विस्तार-प्रचार पाती रही है। इन देशों में हिंदी पत्र-पत्रिकाएं छपती रहीं। विद्यालय, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी का पठन-पाठन चलता रहा, शोध एवं कार्यशालाएं चलती रहीं। अनुवाद होते रहे। हिंदी व्याकरण तथा कोश लेखन जैसी महत्त्वपूर्ण परियोजनाएं बरसों चलती रहीं। व्यक्तिगत तथा संस्थागत स्तर पर हिंदी के लिए ये गतिविधियाँ किसी न किसी रूप में कार्यान्वित होती ही रही हैं।

यूनेस्को की भाषा होने के गौरव से सम्पन्न यह भाषा अब शीघ्र ही संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा होने का गौरव भी हासिल करेगी। आज बहुत से विदेशी-विद्वानों के नाम हैं, जिन्हें हिंदी भाषा एवं साहित्य के विकास और संवर्द्धन के लिए ससम्मान स्मरण किया जाता है। इनमें सोवियत संघ के डॉ. ई.पी. चेलिशेव, पश्चिमी जर्मनी के डॉ. लोठार लुत्से, त्रिनिदाद के श्री शंभूनाथ कपिलदेव, चेकोस्लोवाकिया के डॉ. ओदोलेन स्मेकल, जर्मन जनवादी गणतंत्र के डॉ. हेलमुट नेस्पिताल, जापान के के. दोई, स्वीडन के प्रो. लेनार्ड पेर्सन, कनाडा के डॉ. क्रिस्टोफर किंग, ब्रिटेन कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्रो. डॉ. आर. आर. मैरिया बूस्की आदि-आदि सैकड़ों नाम इस दिशा में गिनवाए जा सकते हैं। डॉ. गिलक्राईस्ट, गार्सा द तासी, डॉ. मोनियर विलियम्स, डॉ. अब्राहम ग्रियर्सन, ग्राहम बेली, डॉ. एल.पी. तेस्सीतोरी, जे. फर्गुसन, ए.पी. बरात्रिकोव, फादर कामिल बुल्के, केटलर तथा शेक्सपीयर आदि कुछ नाम तो हिंदी सेवा के लिए जगविदित ही हैं।

जब तक हमारी मातृभाषा में हमारे सारे विचार प्रकट करने की शक्ति नहीं आ जाती है और जब तक वैज्ञानिक विषय मातृभाषा में नहीं समझाए जा सकते, तब तक राष्ट्र को नया ज्ञान नहीं मिल सकेगा। यह भी सिद्धसत्य है कि सारी जनता को नए ज्ञान की आवश्यकता है, सारी जनता कभी अंग्रेजी नहीं समझ सकती है और यदि अंग्रेजी पढ़ने वाला ही नया ज्ञान प्राप्त कर सकता है तो सारी जनता को नया ज्ञान मिलना असंभव है। कहने का तात्पर्य यह है कि हिंदी का महत्व केवल राष्ट्रभाषा और राजभाषा के रूप में नहीं, बल्कि जनभाषा के रूप में सर्वोपरि है, क्योंकि हिंदी साक्षरों की ही नहीं, अपितु निरक्षरों की भी संपर्क भाषा है।

हिन्द महासागर के मध्य बसा एक सुंदर सलोना देश है मॉरीशस। अगर मॉरीशस को "लघु भारत" कहा जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। मॉरीशस का इतिहास बताता है कि 'सत्यार्थ प्रकाश' के आगमन से वहाँ देवनागरी लिपि और खड़ीबोली का प्रचलन हुआ और इसी ग्रंथ के जरिए मॉरीशस में हिंदी साहित्य का विकास संभव हुआ। मॉरीशस में हिंदी प्रचारिणी सभा की स्थापना 1926 में तिलक विद्यालय के नाम से हुई। 10 दिसंबर 1935 को यह संस्था हिंदी प्रचारिणी सभा के नाम से पंजीकृत हुई।

जब हम हिंदी के विश्व स्वरूप की बात करते हैं तब यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि हिंदी भाषा का प्रयोग भारत के बाहर अनेक देशों में होता है। मास्को में रूसी भाषा से हिंदी में अनुवाद कार्य का एक बहुत बड़ा केंद्र है। गत तीन दशकों में इस केन्द्र ने रूसी साहित्यकारों एवं चिंतकों-दार्शनिकों की अनेक कृतियों का हिंदी में अनुवाद किया है और ये पुस्तकें सस्ते दामों में उपलब्ध भी हैं। इसी प्रकार जर्मनी, इंग्लैंड, अमेरिका, चीन, जापान आदि देशों के विश्वविद्यालयों में हिंदी विभाग स्थापित हैं, जिनमें हिंदी प्रशिक्षण के अलावा शोध कार्य भी किया जाता है। विश्व भर में विश्व भाषा के अध्ययन की यदि तुलनात्मक परीक्षा करें तो हम पाएँगे कि पश्चिमी देशों में पश्चिम की भाषाओं के केंद्र पर्याप्त संख्या में हैं, लेकिन भारतीय भाषाओं में सर्वाधिक रुचि हिंदी में है।

हिंदी में सृजनात्मक कार्य के विश्व पटल पर भारतेतर लेखकों की दो श्रेणियाँ देखी जा सकती हैं, एक भारतीय मूल के लेखक तथा दूसरे अन्य देशों के लेखक। उधर कुछ सर्वाधिक चर्चित लेखकों में श्री अभिमन्यु अनंत, मॉरीशस के प्रख्यात लेखक हैं जो भारतीय मूल के हैं। श्री सोमदत्त बखोरी, पूजानंद नेमा, रामदेव धुरंधर आदि मॉरीशस के मुख्य धारा के लेखक हैं। रूस के वरिन्निकोव, चेलीशेव, सैकेविच, उलत्सफेरोव आदि कुछ प्रसिद्ध नाम हैं, जिन्होंने हिंदी भाषा व्याकरण एवं आधुनिक हिंदी साहित्य के बारे में महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की है। इसी तरह चेकवासी प्रोफेसर ओदोलेन स्पेकल हैं, जो हिंदी के कवि हैं। इनकी अनेक पुस्तकें भारत में बहुचर्चित रही हैं तथा उन्हें हिंदी लेखक के रूप में अनेक सम्मान भी प्राप्त हुए हैं। पोलैंड के प्रोफेसर मारिया क्षिस्तोनफ एक

विवेचक और चिंतक हैं तथा वे हिंदी में बराबर लिखते रहते हैं। अमेरिका में अनेक अमरीकी मूल के प्राध्यापक हैं, जिन्होंने हिंदी भाषा के विषय में महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखे हैं।[1]

04 अक्टूबर 1977 को तत्कालीन विदेश मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी ने प्रथम बार संयुक्त राष्ट्र महासभा में हिंदी में भाषण देकर हिंदी को विश्व स्तर पर स्थापित किया था, किंतु क्या यह मान-प्रतिष्ठा हिंदी राज्यों ने बरकरार रखी है?

वास्तविकता यह है कि भाषा चाहे हिंदी हो या कोई और, यह हमारे भारतीय संस्कारों का मुख्य पोषण तत्व है। इसके समृद्ध हुए बिना हम अपने आप पर और भारतीय होने पर गर्व नहीं कर सकते। हिंदी हमारे स्वप्नों, कल्पनाओं और आकांक्षाओं की भाषा है। यह सब हम अपनी भाषा में ही व्यक्त कर सकते हैं। इस संबंध में श्री विद्यानिवास मिश्रजी ने गलत नहीं कहा था कि 'इसमें अपनापन है। अंग्रेजी प्रतिष्ठा की भाषा बनती जा रही है, जबकि प्रतिष्ठा चरित्र और योग्यता से होती है। हिंदी के विकास में तीर्थयात्रियों, संतों, फकीरों और व्यापारियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। हिंदी को राजा की भाषा मानकर नहीं, बल्कि मानवीय भाषा मानकर सरकारी कामकाज एवं दैनिक व्यवहार में लाना चाहिए।'

भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में देश की बाइस भाषाओं को शामिल किया गया है। पहले इस अनुसूची में पंद्रह भाषाएँ थीं।

1. असमिया 2. बोडो 3. मणिपुरी 4. नेपाली 5. बंगला 6. उड़िया 7. हिंदी 8. उर्दू 9. संताली 10. मैथिली 11. संस्कृत 12. पंजाबी 13. डोंगरी 14. कश्मीरी 15. मराठी 16. गुजराती 17. कन्नड़ 18. तेलुगु 19. तमिल 20. मलयालम 21. सिंधी 22. कोंकणी।

हिंदी देश के व्यापक भू-भाग में बोली जाती है। इसे देश के ग्यारह प्रदेशों ने राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है, ये प्रदेश हैं - बिहार, झारखंड, उत्तरप्रदेश, उत्तरांचल, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, दिल्ली और अंडमान निकोबार द्वीप समूह। हिंदी की लिपि देवनागरी है। देवनागरी लिपि ब्राह्मी लिपि से विकसित हुई है। असमिया, बंगला, उड़िया आदि लिपियाँ भी ब्राह्मी की ही संतान हैं। इसलिए इन लिपियों से देवनागरी लिपि की अत्यधिक समानता है। असमिया, बंगला, उड़िया, नेपाली इत्यादि भाषाओं की शब्दावली भी लगभग अस्सी प्रतिशत हिंदी से मिलती है। आठवीं अनुसूची की भाषाओं में आधी से अधिक भाषाओं की लिपि देवनागरी है। हिंदी, संस्कृत, मैथिली, मराठी, डोगरी की लिपि तो देवनागरी है ही, गुजराती भाषा की लिपि भी देवनागरी का ही एक रूप है। गुजराती ने देवनागरी की शिरोरेखा से स्वयं को मुक्त कर लिया है तथा कुछ अक्षरों की आकृतियाँ बदल दी हैं। गुजराती भाषा की शब्दावली भी हिंदी से 75 प्रतिशत मिलती है। इसी प्रकार पंजाबी भाषा की गुरुमुखी लिपि भी देवनागरी का परिवर्तित अवतार है। बोडो भाषाभाषियों ने स्वेच्छा से देवनागरी लिपि को स्वीकार कर लिया है। संताली भाषा पाँच लिपियों में लिखी जाती है- देवनागरी, बंगला, उड़िया, रोमन और ओल-चिकि। आजकल संताली के लिए देवनागरी का प्रयोग बढ़ रहा है, क्योंकि लिपियों के एक से अधिक विकल्प होने के कारण संताली का उचित विकास नहीं हो पा रहा है, जबकि झारखंड की चालीस प्रतिशत जनता संताली भाषा बोलती है। कश्मीरी भाषा को शारदा लिपि में लिखा जाता है, जिसका विकास भी ब्राह्मी लिपि से ही हुआ है। कोंकणी भाषा पाँच लिपियों में लिखी जाती है- देवनागरी, कन्नड़, रोमन, अरबी तथा मलयालम। लेकिन सर्वाधिक लोग कोंकणी के लिए देवनागरी और कन्नड़ लिपियों का प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार सिंधी भी तीन लिपियों में लिखी जाती है- देवनागरी, गुरुमुखी और अरबी। मणिपुरी भाषा के लिए 18वीं शताब्दी में बंगला लिपि को स्वीकार किया गया, लेकिन आजकल मणिपुर के लोग बंगला लिपि को हटाकर मणिपुरी लिपि को अपनाने के लिए आंदोलन कर रहे हैं। मणिपुरी भाषा भी तीन लिपियों में लिखी जाती है- मणिपुरी, बंगला और देवनागरी। संक्षेप में कहा जा सकता है कि दक्षिण भारत की चार भाषाओं तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम को छोड़कर देश की सभी भाषाओं और लिपियों का हिंदी भाषा एवं देवनागरी लिपि से बहुत साम्य है।[2]

जब दक्षिण में हिंदी प्रचार और राष्ट्रीय व भावात्मक एकता के संदर्भ की बात करनी हो तो जेहन में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा का नाम उभरता है। भावात्मक और राष्ट्रीय एकता की दिशा में इस संस्था ने हिंदी के प्रचार-प्रसार में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है और दे रही है। किसी भी व्यक्ति के लिए राष्ट्र की क्या महत्ता है यह बताने की आवश्यकता नहीं। राष्ट्र शब्द एक ऐसा व्यापक शब्द है, जो स्वयं में विशाल अर्थ समेटे है। यह विभिन्न जातियों, धर्मों, संस्कृतियों, परम्पराओं, भाषाओं एवं बोलियों के समूह का नाम है। इनके एक रहने पर राष्ट्र स्वयं मजबूत रहता है। कोई भी व्यक्ति अपने राष्ट्र के नाम पर ही जाना पहचाना जाता है। जब भारत के संदर्भ में बात होती है तो एक विशाल जनसमुदाय हमारे नेत्रों के समक्ष घूम जाता है, जिसमें विभिन्न धर्म, भिन्न-भिन्न संस्कृतियाँ समाहित हैं। राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता मात्र धर्मों की एकता नहीं, बल्कि विभिन्न भाषाएँ बोलने वाले समुदायों की भी एकता है। ये एकता तभी रहती है, जब कोई भी भाषा-भाषी समुदाय विभाजित न हो, किन्तु आज स्थिति यह है कि भाषा बोलने वाला समुदाय भी विभाजित है।

भावात्मक एवं राष्ट्रीय ऐक्य के लिए किसी एक भाषा को राष्ट्रभाषा मानना ही होगा। इसमें जातीय धार्मिक विद्वेष नहीं आना चाहिए। भारतवासियों को यह कदापि नहीं भूलना चाहिए कि भले भारतीय संस्कृति, धर्म, भाषा अलग-अलग हों, फिर भी सब एक ही देश के वासी हैं। भारत में विभिन्न राज्यों की भाषाएँ वहाँ की राजभाषाएँ होंगी, किन्तु जब राष्ट्र की बात होगी तो सभी जातियों को मिलाने वाली केंद्रीय भाषा ही होगी और वह केंद्रीय भाषा हिंदी ही हो सकती है। भावात्मक एकता के लिए विभिन्न भाषा-भाषी देशभक्तों, समाज सुधारकों का योगदान कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

भाषा दिलों को जोड़ती है, तोड़ती नहीं। लोग भाषा के नाम पर दिलों में दूरियाँ पैदा करते हैं। भावात्मक और राष्ट्रीय चेतना की जाग्रति में हिंदी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। हिंदी सार्वदेशिक और सार्वकालिक भाषा है। जिस प्रकार किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व की पहचान उसकी अभिव्यक्ति से होती है, वैसे ही किसी भाषा की अपनी पहचान उसकी अभिव्यंजना शैली से स्थापित होती है। आज हिंदी की अपनी गरिमा और अपनी पहचान है। उसे किसी बैशाखी की आवश्यकता नहीं है। यह भारत के हर जन और हर हृदय की भाषा है। किसी भी राष्ट्र की चेतना उस राष्ट्र की भाषा में निहित होती है। भाषा ही देश को पहचान और महत्व प्रदान करती है। राष्ट्र अपनी भौगोलिक एवं ऐतिहासिक सीमाओं में आबद्ध रहता है। जब उसकी यह एकता और अखंड़ता टूटती है तो उसे पराधीन होते देर नहीं लगती। भारत जैसे विशाल भू-भाग वाले देश की नियति यही रही है कि कभी संस्कृति, कभी भाषा और कभी धर्म के नाम पर फूट डाल कर शासन करने वाले शासन करते रहे और भारतवासी, गुलामी को बेबस होकर सहते रहे। आज देश स्वतंत्र है, उसे स्वतंत्र हुए, 75 वर्ष हो चुके हैं। इन वर्षों में हमने एक ओर बहुत कुछ खोया तो बहुत कुछ पाया भी है।

कोई भी भाषा देश की राष्ट्रीय चेतना और भावात्मक एकता के लिए आधार प्रस्तुत करने में तब तक सफलता प्राप्त नहीं कर सकती, जब तक उसमें उस राष्ट्र की समग्र चेतना की वाहिका बनने की क्षमता न हो। हिंदी एक ऐसी भाषा है, जिसमें विचार-विनिमय के साथ-साथ ऐतिहासिक एवं परम्परागत चेतना को प्रकट करने की क्षमता निहित है। भाषा तो लहरों के समान होती है, क्योंकि इसमें उतार-चढ़ाव होगा, उतनी ही वह सार्थक एवं सम्प्रेषणयुक्त होगी। हिंदी में यह सभी गुण है। एक स्थान पर भारत के पूर्व प्रधानमंत्री पी. वी. नरसिंहराव ने भी कहा है कि संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का चलन आज का नहीं सदियों पुराना है और दक्षिण इससे अछूता नहीं है। रावजी का मानना है कि एक राष्ट्र के नाते भारत ने अपने लिए एक आधिकारिक भाषा निश्चित कर ली है, किन्तु वह यह भी मानते हैं कि आपसी संबंधों के गहनीकरण में अपनी भाषा के अलावा प्रांतीय स्तर की प्रमुख भाषाओं में से किसी एक का थोड़ा ज्ञान रखने में लाभ ही होगा। राष्ट्रीय एकता की दिशा में हिंदी का बहुत बड़ा योगदान है क्योंकि, राष्ट्रीय एकता का वास्तविक आशय है इतिहास जनित एक भौगोलिक इकाई में सार्वत्रिक समष्टिपोषक वातावरण, आदान-प्रदानात्मक सहजीवन की कामना एवं परस्पर आश्रय की नियतिमूलक अनुभूति जो ग्राम समूह से विस्तृत होती हुई समूचे राष्ट्र में व्याप्त हो।

दक्षिण भारत में हिंदी भाषा, त्रिभाषा व द्विभाषा के रूप में अपना दायित्व निभा कर राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधने और भावात्मक ऐक्य स्थापित करने में प्रयत्नरत है। दक्षिण भारत के चारों राज्यों तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, केरल और कर्नाटक में हिंदी, हिंदी प्रचार और प्रचारकों के द्वारा खूब फलफूल रही है। इस हिंदी के प्रचार को शीर्ष की ऊँचाइयों तक पहुँचाने के लिए सम्पूर्ण दक्षिण भारत में ऐसी अनेक हिंदी प्रचार संस्थाएँ हैं, जो वर्षों से इस कार्य में अति ईमानदारी के साथ लगी हुई हैं। यदि हिंदी प्रचार और भावात्मक एकता के संदर्भ में किसी एक संस्था का नाम लेना हो तो दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा का नाम आता है। दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा जो दक्षिण के सभी प्रांतों में स्थित है, उन्नीस सौ अट्ठारह से हिंदी प्रचार-प्रसार में लगी हुई है। पूरे दक्षिण में हजारों प्रचारक हिंदी की उन्नति में निःस्वार्थ भाव से जुटे हैं। इस प्रसिद्ध संस्था द्वारा हिंदी प्रचार का कार्य अधिक बढ़ जाने के कारण तथा चारों प्रांतों में प्रचार कार्य को नवीन गति देने के लिए विजयवाड़ा, मदुराई, तिरुवनन्तपुरम, एरणाकुलम तथा बंगलूर में सभा की शाखाएँ स्थापित की गयी हैं। प्रारम्भ से ही कर्नाटक, केरल और आंध्रा में हिंदी का प्रचार कार्य जितना आसान था, उतना तमिलनाडु में नहीं था, क्योंकि तमिल भाषा का व्याकरण हिंदी में अत्यधिक भिन्न है।[3]

आंध्र में हिंदी प्रचार के लिए कई कार्यक्रम चलाए जाते हैं जैसे - हिंदी महासभाओं का आयोजन, हिंदी प्रचारक सम्मेलन, हिंदी प्रचार सप्ताह, हिंदी महाविद्यालय, हिंदी नाटकों का प्रदर्शन साहित्य प्रकाशन आदि। इसी प्रकार दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की सभी इकाइयों में सदैव हिंदी से संबंधित अनेकानेक कार्यक्रम चलते रहते हैं। कर्नाटक में मैसूर हिंदी प्रचार सभा ऐसी पहली संस्था है, जो हिंदी प्रचार-प्रसार में लगी हुई है। कर्नाटक की यह विशेषता रही है कि हिंदी प्रचार के लिए प्रतिवर्ष हिंदी शिविरों का आयोजन किया जाता है। अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने हिंदी के प्रचार में भरपूर सहयोग दिया है। गुलबर्गा, कोडगु, तुमकूर, बेलगाम, धारवाड़ आदि के हिंदी प्रचारक सतत प्रयत्नशील हैं। केरल में हिंदी की स्थिति सबसे अच्छी है। वहाँ की आम जनता में हिंदी का काफी प्रचार-प्रसार है। कालिकट, कोल्लम, त्रिशूर, चेगन्नूर, कोट्टायम, हरिप्पाड़ आदि स्थानों से हिंदी प्रचार-प्रसार चल रहा है। दक्षिण में हिंदी की स्थिति को मजबूत बनाने में कई अन्य कई संस्थाओं एवं पत्र-पत्रिकाओं का अविस्मणीय योगदान रहा है।[4]

अत: कह सकते हैं कि देश के हर प्रांत के साथ-साथ विश्व में भी हिंदी का प्रचार-प्रसार हो रहा है। अभियान निरंतर जारी है और रहेगा। विश्व फलक पर हिंदी का वर्चस्व बढ़ा है, यह विश्व भाषा भी बनेगी।

संदर्भ - ग्रंथ

1. विश्व भाषा हिंदी, संपादक: राज केसरवानी, राष्ट्रीय हिंदी सेवी महासंघ, इंदौर (म.प्र.) पृ. 50.
2. वही, पृ. 89.
3. वही, पृ. 102.
4. वही, पृ. 103.

❋

c/o डॉ. संतोष डेहरिया, उप पुलिस अधीक्षक बंगला (SDOP), अमरवाड़ा कोर्ट के पास, सिविल लाइन, अमरवाड़ा, जिला-छिंदवाड़ा (म.प्र.)-480201

मॉरीशस में हिंदी : गंभीर चुनौतियों के घेरे में

रामदेव धुरंधर

> *हिंदी विश्व स्तर पर निखरे तो मॉरीशस में भी इसकी छाप पड़ सकती है। पर हिंदी को बनना तो अपने मॉरीशस में ही होगा। बाहर से यहाँ हिंदी आए यह सुमधुर हो सकता है, लेकिन प्रश्न यह तो हो यह देश अपनी हथेलियों से समंदर पार के देशों को कितनी हिंदी दे रहा है? उन्नति प्रगति की बात भी इसी तरह से है। दूसरा देश दे तो हम भिखारी जैसे भाव से ले लें और हमारा मन इतना गिरा हो कि हम ले तो सकते हैं, लेकिन दे नहीं सकते। जो लोग इस देश में अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए हिंदी के प्रचारक बने रहे और अपने बच्चों को इंग्लैंड पढ़ने के लिए भेजते रहे उनके पुत्र और प्रपौत्र इस देश में हिंदी से बहुत दूर पड़ते हैं। पर ऐसा भी नहीं कि हिंदी इन्हीं की मोहताज हो या इनकी बैसाखी का सहारा पा कर ही दो कदम चल सके। वास्तव में अब तो सूक्ष्मता इस तरह से है कि ये लोग हिंदी वालों से शरण की अपेक्षा करते हैं।*

मॉरीशस में हिंदी के प्रचार-प्रसार की दीवानगी में ऐसा भी हुआ है। कहने का एक प्रचलन हो गया था-भोजपुरी छोड़ो और हिंदी को अपनाओ। यह हिंदी के लिए एक हुंकार अवश्य थी, लेकिन यह बस एक भोलापन था। वास्तव में भोजपुरी से ही इस देश में हिंदी को धार मिली है। पर वर्तमान में हालत कुछ इस तरह से बन आयी है कि भोजपुरी डूबने के खतरे हम पर बहुत ही मंडरा रहे हैं और इसके समानान्तर एक प्रश्न इस तरह से भी उभर कर सामने आ रहा है कि हिंदी की परिस्थिति इस देश में अब कैसी है? अब ऐसा हुआ कि भोजपुरी छूटती गयी और हिंदी ठीक से पल्ले न पड़ी, फिर तो परिणाम ऐसा निकला हमारे लोग क्रिओल भाषा में विलय होते चले गये। आज क्रिओल ही ऊपर है और भोजपुरी कहीं बहुत गहरे दरक गयी। भोजपुरी के मामले में जहर ने तो अपना काम कर दिखाया है। शेष रही हिंदी, हम इसे खोने से तो बचा लें।

हिंदी यहाँ अब भाषा होती है, इससे पहले हिंदी यहाँ संस्कृति होती थी। संस्कृति को मानें तो वह पूजा-पाठ है, जीवन का एक सूत्र है। यह रहे क्योंकि इसके रहने से ही हम एक पहचान का दावा कर सकते हैं। पर हिंदी को केन्द्रित करने से बात इस तरह से आगे बढ़ती है कि इस भाषा को पढ़ने से जरूरी नहीं हिंदूवाद से ग्रसित हों। यहाँ फ्रेंच पढ़ने वाले तो हिंदू ही ज्यादा हैं। किसी को नहीं लगता इस भाषा से वह फ्रांसीसी हो सकता है। वह हो भी नहीं सकता, लेकिन फ्रेंच से वह दमदार मॉरीशस वासी बन सकता है। मैं हिंदी को इस दम से आँकने का प्रयास कर रहा हूँ 'कितना अच्छा होता यहाँ जोश का एक दरिया बह रहा होता, हिंदी पढ़ लो मॉरीशस के सच्चे नागरिक कहलाओगे।' ऐसे अवसर यहाँ अकसर उद्भूत हुए हैं। तभी तो इस तरह माँग उठती थी मॉरीशस के सदन में कि हिंदी की पहचान बने। पर दुख मानें तो इस बात के नारे सुनने-देखने में बड़े चमकीले होते थे, लेकिन उसकी नींव बड़ी कमजोर होती थी। जहर का एक सूत्र मैं वहाँ देखता हूँ जिन्होंने हिंदी के लिए कभी इतनी चीख-चिल्लाहट की हो उन्होंने जान-बूझ कर अपने बच्चों को हिंदी से दूर हटाने के लिए उन्हें इंग्लैंड में पढ़ाया। मॉरीशस जैसे छोटे से देश में इस तरह के प्रयास पाँच ही हुए हों तो वह बहुत है।

हिंदी विश्व स्तर पर निखरे तो मॉरीशस में भी इसकी छाप पड़ सकती है। पर हिंदी को बनना तो अपने मॉरीशस में ही होगा। बाहर से यहाँ हिंदी आए यह सुमधुर हो सकता है, लेकिन प्रश्न यह तो हो यह देश अपनी हथेलियों से समंदर पार के देशों को कितनी हिंदी दे रहा है? उन्नति प्रगति की बात भी इसी तरह से है। दूसरा देश दे तो हम भिखारी जैसे भाव से ले लें और हमारा मन इतना गिरा हो कि हम ले तो सकते हैं, लेकिन दे नहीं सकते। जो लोग इस देश में अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए हिंदी के प्रचारक बने रहे और अपने बच्चों को इंग्लैंड पढ़ने के

लिए भेजते रहे उनके पुत्र और प्रपौत्र इस देश में हिंदी से बहुत दूर पड़ते हैं। पर ऐसा भी नहीं कि हिंदी इन्हीं की मोहताज हो या इनकी बैसाखी का सहारा पा कर ही दो कदम चल सके। वास्तव में अब तो सूक्ष्मता इस तरह से है कि ये लोग हिंदी वालों से शरण की अपेक्षा करते हैं। यह वोट की पद्धति है और वोट के मामले में कुछ भी हो सकता है। काश, एक बार इस देश में ऐसा झोंका आ जाये हिंदी की शरण में आ जाओ तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। सब भागे चले आयेंगे। पर अभी के लिए यह कल्पना का एक सूरज हो सकता है, जो नाम से सूरज तो हो, लेकिन उसका प्रकाश होता ही न हो।

इंग्लैंड को अपनी अंग्रेजी और फ्रांस को अपनी फ्रेंच के साथ तरक्की के सोपान चढ़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि ये दोनों देश अपनी – अपनी भाषा में स्वयं बहुत आगे हैं। पर भारत को अपनी हिंदी के साथ ऊपर उठना पड़ता है। वर्तमान में भारत जितना आगे जायेगा हिंदी भी उसके साथ जायेगी। किसी भी देश पर निर्भर करता है वह समृद्ध हो तो उसके यहाँ निर्मित खिलौने भी विश्व बाजार पा लेते हैं। हिंदी को मैं खिलौना नहीं उसे अस्मिता से जोड़ कर बात कर रहा हूँ। भारत हिंदी में तरक्की करे तो वह उसकी अस्मिता होगी, जिसके दो छींटों की अपने मॉरीशस में कामना तो मैं कर ही सकता हूँ।

मॉरीशस में तीन बार विश्व हिंदी सम्मेलन संपन्न हो चुका है। भारत ने ही मॉरीशस को यह अवसर प्रदान किया है। इसका तात्पर्य यह है संस्कृति, राजनीति और भाषा तीनों में भारत के साथ हमारा साझा है। मैंने मॉरीशस में श्रद्धेय अटलबिहारी बाजपेयी जो को कहते सुना था मॉरीशस को छोटा देश कहा जाता है, लेकिन संयुक्त राष्ट्र संघ में बड़े देशों की तरह यह भी एक वोट का अधिकार रखता है। बाजपेयी जो को सुनने पर मुझे लगा था मॉरीशस की आत्मा ऊपर उठाने के लिए यह उनकी वाक्यपटुता थी। आज के दिनों में भारत हिंदी में ऊपर उठता है तो इसके समानांतर 'मॉरीशस में हिंदी की अपनी शरम और करम धरम हो वह भारत को दिखाये तुम बिरवा बोते हो तो मैं उसमें अपनी ओर से एक पत्ता तो टाँक ही रहा हूँ।' मॉरीशस अब अन्दरूनी बात को समझ तो ले उसे तीन विश्व हिंदी सम्मेलन शोभा के लिए नहीं मिले, बल्कि सिद्ध करने के लिए मिले कि भारत मुझ पर इतना विश्वास करते हो तो मुझमें इतना दम है उस विश्वास को और निखार सकूँ।

मॉरीशस में आयोजित द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन [सन् 1976] का नाम मैं बहुत लेता हूँ। उन दिनों मॉरीशस में हिंदी के लिए समर्पण की भावना कुछ अधिक ही देखी जाती थी और विश्व सम्मेलन से उस भावना को धार अधिक ही मिली थी। इस संदर्भ को शब्दबद्ध करने के लिए मुझे जब भी आवश्यकता पड़ती है मैं समय का सत्य ही बयाँ करता हूँ। यहाँ एक साल में तीस तक हिंदी की पुस्तकों का विमोचन हो जाया करता था। नियमित कवि गोष्ठी का संयोजन होता था। भारत से कवि बुलाये जाते थे। यहाँ के कवियों को भी उनके साथ कविता सुनाने का अवसर मिलता था। सन् 1967 में यहाँ रामधारी सिंह दिनकर और सुमन जी आये थे। ऐसे लोगों को पा कर मॉरीशस की हिंदी धन्य ही तो हुई है।

मैंने ऊपर की पंक्तियों में यह हवाला दिया कि तीस तक हिंदी पुस्तकों का कभी यहाँ विमोचन हो जाया करता था, लेकिन आज मेरे पास कहने के लिए शून्यता ही शेष है, शायद ही हिंदी की पुस्तक के नाम पर इस तरह का आयोजन होता हो। भारत सरकार के सौजन्य से अब तो यहाँ विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना हो चुकी है। सचिवालय के रूप में यहाँ भारत की यह एक प्रबल स्थापना है। फ्रांस अपनी भाषा के लिए इस देश में इस तरह के बहुत सारे काम करता है। भारत ने भी एक प्रयोग कर लिया, विश्व सचिवालय इस देश को देते हैं वह इसे संभाल कर तो बताये। मैं संदेह से परे हूँ। मॉरीशस में हिंदी के लिए जो काम होना चाहिए मैं मानता हूँ वह काम हो सकता है, लेकिन इसके लिए जमीन तैयार होनी चाहिए। पर सच कहें तो जमीन तैयार होने में ही खतरनाक पेंच है। मन दहकता है जब किसी भारतवंशी राजनेता को हिंदी की पुस्तक थमायें तो कहने का जैसे उसका तकिया कलाम हो, दुर्भाग्य उसे हिंदी नहीं आती है। यह कहने में अब तो एक शोभा होती है। भिक्षा के लिए हाथ फैलाने वाला भी कह दे हिंदी में भीख न दो, अन्यथा समझने में मुझसे भूल हो जायेगी, भीख ही मिली कि जवान छोकरी मिली। हिंदी का लेखक होने से मैं हिंदी नाम के घाट -घाट का पारखी हूँ। मेरी अस्मिता है हिंदी को मैं जी लेता हूँ। ठीक इसी तरह मेरे पड़ोसी की अस्मिता हो सकती है उसे तो हिंदी से बस कन्नी ही काटनी है। सब के अपने – अपने अधिकार होते हैं, इसलिए कोई किसी पर अपना दबाव बना नहीं सकता। पर मेरा सपना इतना अवश्य होता है हिंदी वालों में परस्पर एका हो। तुम मेरी कविता सुनो, मैं तुम्हारी रचित कहानी सुनता हूँ। तुम मुझे अच्छी राय दो, मैं तुम्हें लेखन का नुस्खा दूँ। हमारे पूर्वज तो इसी तरह अपनी शामें गुजारते थे। रास्ते पर हिंदी में ही तो नमन का आदान-प्रदान होता था। आज ऐसा नहीं कह सकते कि वर्तमान शुष्क हो। इसे बस थोड़ा गुनगुना लें, फिर देखें रस की धार अपने आप कैसे फूट पड़ती है।

मॉरीशस में स्कूलों के लिए अंग्रेजी और फ्रेंच अनिवार्य भाषाएँ हैं। हिंदी वैकल्पिक होती है। हिंदी में यहाँ पत्रिका की गुंजाइश नहीं है। बच्चे नौकरी के लिए ही तो पढ़ते हैं। हिंदी में नौकरी की कोई खास संभावना न होने से बच्चे इस ओर मुड़ कर देखना न चाहें तो किस दावे पर उन्हें कोस सकें। मैंने इस संदर्भ में अब तक बहुत लिखा। इस वक्त एक नयी बात मुझे सूझ रही है जो यहाँ लिख रहा हूँ। मॉरीशस के टूरिस्ट होटलो में यहाँ फ्रांसीसी मूल के गोरों का दबदबा बना होता है। फ्रेंच, अंग्रेजी,

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

वर दे, वीणावादिनि वर दे!
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत-मंत्र नव
भारत में भर दे!

काट अंध-उर के बंधन-स्तर
बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर
कलुष-भेद-तम हर प्रकाश भर
जगमग जग कर दे!

नव गति, नव लय, ताल-छंद नव
नवल कंठ, नव जलद-मन्द्ररव;
नव नभ के नव विहग-वृंद को
नव पर, नव स्वर दे!

वर दे, वीणावादिनि वर दे।

जर्मन आदि में उनका काम चल जाता है। भारतीयों से भी उनका काम अंग्रेजी में चल जायेगा। इस कोण से हिंदी के लिए कोई प्रश्न तो उठता ही नहीं। पर यहाँ गोरे हिंदी भाषा को जानते हैं और उनके जानने में यह शामिल है, यह तो भारत की भाषा है।

गोरों के होटल में दो चार दिन आवास कर रहे एक भारतीय मित्र ने मुझसे यह पूछा था क्या होटल के कर्मचारियों पर हिंदी में बात करने का प्रतिबंध होता है? बात यह थी मेरे उस मित्र को लगा था, या तो कर्मचारी उससे हिंदी में बात करना चाहता नहीं था या उस पर हिंदी में बात करने की पाबंदी हो। मेरे लिए दोनों बातें सही थीं, एक तो कर्मचारियों पर पाबंदी हो और दूसरी बात यह कि स्वयं कर्मचारी हिंदी जान कर भी बोलने से कन्नी काटे। यह भी इस देश में हिंदी के मंद पड़ने का एक कारण होता है। यहाँ रेडियो और टी. वी. अर्द्ध सरकारी हैं। गोरों ने अपना विरोध जताने के लिए अपने बूते रेडियो शुरू किया था। यह दस बारह साल पहले की बात है। उस रेडियो से हिंदी में समाचार प्रसारित होता था। सरकारी करारनामे में दर्ज होने से उन्हें ऐसा करना पड़ा था। पर एक साल भी न हुआ था कि उन्होंने हिंदी समाचार हटा दिया। मेरा कहने का मतलब यह है गोरे अपनी परिभाषा से दूरदर्शी हैं। यदि भविष्य में हिंदी से उन्हें खतरा हो सकता है तो वर्तमान में ही वे अपना मोर्चा तैयार कर रहे हैं।

मॉरीशस में आदमी हिंदी में बातें कर ले, लेकिन लिखने में उसे कठिनाई होती है। तभी तो यहाँ हिंदी में अखबार चल नहीं पाता। अब जरा इस बात पर गौर करें, एक तो हिंदी के नाम पर मन ही बीमार हो और दूसरा यह बहाना हाथ लग जाये हिंदी पढ़ना नहीं आता, तो फिर इस भाषा के हक में औदार्य कहाँ है? सच कहें तो यह भाषा किसी का कर्ज खा कर बैठी नहीं है मुझे पूछें क्योंकि अनपूछी हो जाने पर छूटी पड़ी हुई हूँ। भाषा के हाथ-पाँव नहीं होते कि चल कर वह आये। बल्कि भाषा के पास जाना पड़ता है। मॉरीशस में जन्म लेने से मैंने तो ऐसा ही अनुभव किया है, मुझे स्वयं हिंदी के पास जाना पड़ा है। राहें और संभावनाएँ बहुत थीं, थोड़ा दिशांतर कर लेने से मैं बड़े मजे से अंग्रेजी और फ्रेंच में जा समाता। पर हिंदी ने मुझे जकड़ लिया और मैंने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। ऐसा नहीं कि मैं इस भावना का पहला पथिक हूँ। बल्कि मैंने तो लोगों का अनुसरण किया है। मैंने देखा है, लोगों ने यहाँ हिंदी के लिए बहुत त्याग किया है। हिंदी से रोटी की बात तो बहुत बाद में जुड़ी थी। पहले इससे मन और आत्मा जुड़ी थी और एक कारवाँ बन गया था। यहाँ हिंदी हो कर ही भारतीयता बची है।

❋

कारोलीन बेल एयर मोरीशस, पिन कोड, 40102. फोन नंबर +23057537057

कैनेडा में हिंदी

डॉ. शैलजा सक्सेना

> *भारतीय समुदाय में भारत से आए पहली पीढ़ी के लोग बातचीत में प्राय: हिंदी का प्रयोग करते हैं। हिंदी के कार्यक्रम, बॉलीवुड से आए अभिनेताओं, संगीतकारों तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों की मुख्य भाषा हिंदी होने से व्यावहारिक स्तर पर हमें यह दिखाई देती है। पुस्तकालयों में हिंदी फ़िल्मों के कैसेट अभारतीय लोगों में भी लोकप्रिय होने से सरकार उनकी खरीद पर हिंदी पुस्तकों की तुलना में कहीं अधिक खर्च करती है। भारतीयों द्वारा सरकार पर दबाव डालने से अब आवश्यक सूचनाओं का हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद उपलब्ध होने लगा है तथा कोर्ट, अस्पताल (मानसिक रोग केंद्रों में), नगरपालिका की सेवाओं आदि में हिंदी और पंजाबी में भी सेवाएँ उपलब्ध हैं।*

कैनेडा का नाम भारत में और विशेष रूप से पंजाब प्रांत में बहुत आत्मीयता से लिया जाता है। ऐसा लगता है कि पंजाब के हर तीसरे घर से कोई न कोई कैनेडा में रहता है या जाने का इंतज़ार कर रहा है। इस तरह कैनेडा अपने में 'छोटा पंजाब और छोटा भारत' बसाए रखने के लिए प्रसिद्ध है। सन 1900 से भारतीयों का कैनेडा आना प्रारंभ हुआ था पर 1966 तक बहुत ही कम भारतीय यहाँ रहते थे। मूलत: पंजाबी थे। इस हिसाब से पंजाबी भाषा यहाँ की प्रमुख अप्रवासी भाषाओं में नेतृत्व करती दिखाई देती है। 1966 के बाद अन्य प्रांतों के लोगों की संख्या भी बढ़नी शुरू हुई। पिछले वर्षों के आँकड़ों की तुलना करने पर दिखाई देता है कि 2011 से 2016 के बीच हिंदी बोलने वालों की संख्या में 26.0 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है जबकि पंजाबी बोलने वालों की 18.2%, उर्दू बोलने वालों की 25% और गुजराती बोलने वालों की संख्या में 20.9% की बढ़ोतरी हुई है। (आँकड़े-साभार-statcan.gc.ca)

हिंदी बोलने और समझने वालों की संख्या बढ़ने का एक कारण यह भी हो सकता है कि अपनी मातृभाषा और अंग्रेज़ी के 'अतिरिक्त' भाषा में लोगों ने हिंदी को रखा हो। जो भी कारण रहा हो पर यह सच है कि यह बढ़ती संख्या, हिंदी भाषा के प्रसार के साथ ही भारतीय संस्कृति और साहित्य के प्रसार का सूचक भी है। कैनेडा में हिंदी भाषा का इतिहास लगभग सौ साल पुराना है और साहित्य की यात्रा लगभग हमें पिछले सत्तर-पचहत्तर वर्षों से ही दिखाई देती है। तकनीकी माध्यमों के बढ़ते युग में यह यात्रा निरंतर समृद्ध और सशक्त हो रही है, इसमें संदेह नहीं है। अनेक ब्लॉग, पत्र-पत्रिकाएँ, पुस्तक प्रकाशन कैनेडा की इस समृद्धि के द्योतक हैं।

कैनेडा में हिंदी की स्थिति को जानने के लिए चार स्तरों पर उसकी जाँच की जानी चाहिए:

1. भाषा का व्यावहारिक प्रयोग
2. कम्यूनिटी स्कूलों या मंदिरों/घरों में उसका अध्यापन
3. सरकार के द्वारा मान्यता प्राप्त शिक्षा संस्थानों में भाषा का अध्यापन।
4. साहित्य सृजन

व्यवहार में हिंदी

भारतीय समुदाय में भारत से आए पहली पीढ़ी के लोग बातचीत में प्राय: हिंदी का प्रयोग करते हैं। हिंदी के कार्यक्रम, बॉलीवुड से आए अभिनेताओं, संगीतकारों तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों की मुख्य भाषा हिंदी होने से व्यावहारिक स्तर पर हमें यह दिखाई देती है। पुस्तकालयों में हिंदी फ़िल्मों के कैसेट अभारतीय लोगों में भी लोकप्रिय होने से सरकार उनकी खरीद पर हिंदी पुस्तकों की तुलना में कहीं अधिक खर्च करती है। भारतीयों द्वारा सरकार पर दबाव डालने से अब आवश्यक सूचनाओं का हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद उपलब्ध होने लगा है तथा कोर्ट, अस्पताल (मानसिक रोग केंद्रों में), नगरपालिका की सेवाओं आदि में हिंदी और पंजाबी में भी सेवाएँ उपलब्ध हैं।

स्कूलों में हिंदी

कैनेडा में सरकारी स्तर पर दो मान्यता प्राप्त भाषाओं- अंग्रेज़ी और फ्रेंच के अतिरिक्त लगभग 1600 भाषाएँ बोलने वाले लोग रहते हैं। सरकार ने इनमें से कुछ भाषाओं को सीखने के लिए हैरिटेज कक्षाएँ चलाई हैं। हिंदी भी हैरिटेज पाठ्यक्रम का हिस्सा है।

हिंदी पाठ्यक्रम में:

हैरिटेज क्लास:

हिंदी कैनेडा के स्कूलों के नियमित पाठ्यक्रम में नहीं पढ़ाई जाती। वह प्रारंभिक शिक्षा के रूप में विभिन्न स्कूल-बोर्ड द्वारा "हैरिटेज क्लास" के तौर पर पढ़ाई जाती है। ये कक्षायें शनिवार को या स्कूल के बाद सप्ताह में एक दिन दी जाती हैं। इन कक्षाओं में बच्चे हिंदी बोलना, लिखना और पढ़ना सीखते हैं परन्तु ये कक्षायें खुली कक्षायें होती हैं यानी कि कोई भी बच्चा किसी भी समय इन कक्षाओं में दाखिला ले सकता है और साथ ही ये एक ही स्तर की कक्षायें होती हैं अत: बच्चे बहुत अधिक सीख नहीं पाते। इस तरह की पढ़ाई से बच्चे बहुत ज़रूरी बातें तो हिंदी में बोलना सीख जाते हैं परन्तु उस स्तर से आगे नहीं बढ़ पाते। उनकी भाषा के प्रति रुचि भी इस तरह के अव्यवस्थित वातावरण में समाप्त हो जाती है और शिक्षक के लिये भी सारे विद्यार्थियों को साथ लेकर चलना कठिन हो जाता है।

मंदिरों में हिंदी कक्षाएँ:

कैनेडा में जहाँ भी भारतीय हैं उन्होंने अपने धर्म और संस्कृति को बचाये और आगे चलाये रखने के लिये मंदिरों का निर्माण किया है। यहीं पर बच्चों को सप्ताह में एक घंटे हिंदी या दूसरी भारतीय भाषा की शिक्षा भी दी जाती है। साथ ही बच्चे भारतीय नृत्य और संगीत भी सीखते हैं।

ओंटेरियो के टोरोंटो शहर में लगभग 66 मंदिर हैं और उनमें से लगभग ३०% मंदिरों में हिंदी भाषा की शिक्षा दी जाती है। 1994 से "हिन्दी लर्निंग इंस्टीट्यूट" के श्री जगदीश शारदा शास्त्री और डॉ. रत्नाकर नराले, डॉ. भारतेंदु श्रीवास्तव (रामायण गान के माध्यम से) हिंदी की शिक्षा दे रहे हैं। इस तरह के और भी कई प्राइवेट स्कूल, जैसे "फ्रीडम योगा" (संदीप कुमार त्यागी) यहाँ हैं जो हिंदी भाषा की शिक्षा देते हैं।

कैनेडा की राजधानी ओटवा में "मुकुल हिंदी स्कूल" है जहाँ सभी स्तरों पर कक्षायें दी जाती हैं। मुकुल हिंदी स्कूल की स्थापना सन 1971 में हुई थी और कुछ वर्षों के बाद ही इसे स्कूल बोर्ड ने मान्यता दे दी। अब इस में शिक्षा का सारा व्यय स्कूल बोर्ड उठाता है और पाठ्यक्रम निर्धारण और कक्षायें चलाने का भार स्कूल पर है। सरकारी मदद होने के कारण यह स्कूल व्यवस्थित रूप से आज भी चल रहा है।

ऐसे ही ब्रिटिश कोलंबिया में बर्नबी में विश्व हिन्दू परिषद ने 1975 से, वैदिक हिन्दू सोसायटी ऑफ कैलगरी ने 1980 से, कैलगरी रामायन भजन मंडली ने 1982 से, वैंकुवर के महालक्ष्मी मंदिर ने 1991 से, सरी की वैदिक हिन्दू कल्चरल सोसाइटी ने 1997 से और रिचमंड की वैदिक कल्चरल सोसाइटी ने 2004 से हिंदी की शिक्षा देनी प्रारंभ करी (साभार- श्रीनाथ द्विवेदी, Hindi activities in Canada) इन शहरों में भी प्राइवेट हिंदी कक्षायें और सरकारी हैरिटेज कक्षायें दी जाती हैं। अल्बर्टा की "हिन्दू सोसाइटी" में कक्षायें दी जाती हैं। इसके अलावा वहाँ "अल्बर्टा हिंदी परिषद" का हिंदी स्कूल ऐसा अकेला हिंदी स्कूल है जिसके पास अपनी इमारत है। वहाँ १९८५ से हिंदी कक्षायें चलती है। इसी तरह सेंट जॉन्स में प्रो. एस.पी. सिंह के साथ कुछ इच्छुक माता-पिता ने मिल कर हिंदी कक्षाएँ १९८० से प्रारंभ की। प्रो. सिंह ये कक्षायें मैमोरियल कॉलेज में लेते थे पर १९९२ में ये कक्षायें रोक दी गईं। मैनीटोबा में पहले ये कक्षायें मंदिर में ली जाती थीं परन्तु १९९८ में यह वहाँ के भारतीय भवन में पढ़ाई जाती हैं। नोवास्कोशिया के हैलीफैक्स शहर में कुछ हिंदी प्रेमियों ने हिंदी की कक्षायें १९७२ से १९८३ तक चलाईं।

विश्वविद्यालय के स्तर पर:

कैनेडा के कुछ विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है जैसे ओंटारियो में; यूनिवर्सिटी ऑफ टोरोंटो, यॉर्क यूनिवर्सिटी, वैस्टर्न यूनिवर्सिटी, ब्रिटिश कोलंबिया में यूनिवर्सिटी ऑफ ब्रिटिश कोलंबिया में ईस्ट एण्ड साउथ एशियन लेन्गुएजस विभाग के अन्तर्गत बी.ए. हिंदी की डिग्री प्राप्त की जा सकती है। १९७२ में यूनिवर्सिटी ऑफ टोरोंटो ने हिंदी के कोर्स देने प्रारंभ किये जो आज तक चल रहे हैं। प्रो. बी.एम सिन्हा ने मैकगिल यूनिवर्सिटी में १९८४-८५ में हिंदी पढ़ाई। मॉन्ट्रियल स्थित मैकगिल यूनिवर्सिटी बहुत प्रसिद्ध है और वहाँ ९७३७ कोर्स में पढ़ाई उपलब्ध है परन्तु आज की तिथि में हिंदी भाषा पर कोई कोर्स अलग से उपलब्ध नहीं है। २०१५ से अल्बर्टा यूनिवर्सिटी हिंदी का कोर्स देना प्रारंभ करने वाली है।

कैनेडा में हिंदी की शैक्षिणिक स्तर पर यह धीमी और बिखरी हुई कार्यवाही हिंदी के भविष्य को चोट पहुँचा रही है। जो विद्यार्थी हिंदी सीखते हैं वे इसे अपने परिवार से बातचीत करने के लिये सीखते हैं। व्यावसायिक स्तर पर हिंदी का उपयोग लोगों को अधिक नहीं दिखाई देता। कैनेडा की सरकार इन भाषाओं के प्रति उस प्रकार का उत्साह नहीं दिखाती जिस प्रकार अमरीकी सरकार दिखाती है।

इन स्कूलों के अतिरिक्त भारतीय सांस्कृतिक कार्यक्रमों का भाषा माध्यम प्राय: हिंदी ही है। हिंदी प्रेमियों ने साहित्य सृजन के माध्यम से हिंदी भाषियों को हिंदी साहित्य और संस्कृति से जोड़े रखने की चेष्टा की है।

पत्र-पत्रिकायें

हिंदी प्रेमियों ने घरों में कवि सम्मेलन करने से अपनी साहित्यिक गतिविधियाँ प्रारंभ की थीं पर आज ये गतिविधियाँ संगठित संस्थाओं की सक्रियता में बदल चुकी हैं। इनके माध्यम से कवि सम्मेलन, नाटक, संगोष्ठियाँ आदि आयोजित होती रहती हैं।

पत्रिकाओं के प्रकाशन के संदर्भ में पहला हिंदी पाक्षिक "विश्वभारती" नाम से सरदार रघुवीर सिंह ने १९७६-७७ में टोरोंटो में

प्रारंभ किया। यह पत्र धार्मिक और सांस्कृतिक सूचनाएँ देने के साथ ही हिंदी भाषा सिखाने का काम भी करता था। इस संस्था ने १९८५ में "हिंदी संवाद" नामक त्रैमासिक पत्रिका छापी जो लगभग १५ वर्षों तक नियमित रूप से प्रकाशित हुई"* (श्री ओंकारनाथ द्विवेदी, 'काव्योत्पल', पृष्ठ xv)। 1990 के आसपास "संगम" नाम का एक पाक्षिक पत्र टोरोंटो से उमेश विजय ने निकालना शुरू किया जो कई वर्षों तक चला। इसी समय श्री ज्ञान राज हंस ने रेडियो स्टेशन से 'भजनमाला' का प्रसार शुरू किया जो बहुत अधिक लोकप्रिय हुआ।

ए.टी.एन. का टी.वी. चैनल प्रारंभ हुआ जिसे चंद्रशेखर चलाते हैं, हिंदी कार्यक्रमों को बढ़ाने वाला यह चैनल आज भी बहुत लोकप्रिय है।

"हिंदी चेतना" त्रैमासिक पत्रिका का संपादन श्री श्याम त्रिपाठी ने मार्च १९९८ में प्रारंभ किया। इस पत्रिका ने कैनेडा के हिंदी कवियों को प्रकाशन के लिये एक मंच दिया। यह पत्रिका आज भी चल रही है।

श्री जगमोहन हूमर ने १९८२ में "अंकुर" नाम से हिंदी और अंग्रेज़ी की पत्रिका निकाली जो कुछ वर्षों तक चली। इसी तरह त्रिलोचन सिंह गिल ने "भारती" पत्रिका निकाली जो अधिक नहीं चल पाई। ब्रिटिश कोलंबिया में डॉ. नीलम वर्मा नवंबर २००५ से एक अंग्रेज़ी और हिंदी की मासिक पत्रिका 'एशियन आउटलुक' निकालती हैं जिसका बड़ा पाठक वर्ग है। डॉ. जाइद लाइक "पोर्ट मूडी" से द्वैमासिक अंग्रेज़ी-हिंदी का पत्र निकालते हैं। यह पत्रिका "शहपरा" २००१ से चल रही है। एडमंटन से दुष्यंत सारस्वत "सरस्वती पत्र" नाम से मासिक पत्र जुलाई २००४ से चला रहे हैं। हिंदी लिटरेरी सोसाइटी ऑफ कैनेडा की पत्रिका "संवाद" १९८४ से डॉ. ओ.पी. द्विवेदी (गुऐल्फ) और डॉ. बी.एन. तिवारी (भारत) के सहयोग से निकलनी प्रारंभ हुई थी और आज भी यह आचार्य श्रीनाथ द्विवेदी के संपादन में चल रही है।

कैनेडा में टोरोंटो से कई हिंदी समाचार पत्र भी निकले जैसे, "इण्डिया अब्रौड" (सम्पादन-रवि रंजन पांडे), "समय इंडो-कनैडियन" (कंवलजीत सिंह कंवल) आदि।

टोरोंटो से कैनेडा की पहली हिंदी वेब पत्रिका अटठारह वर्ष पूर्व "साहित्यकुंज" भी निकली जिसके सम्पादक श्री सुमन कुमार घई हैं। इस पत्रिका से भारत और दुनिया के बहुत से नामी लेखक जुड़े हुए हैं।

संस्थाएँ और साहित्यकार

सन १९८२ में टोरोंटो में "हिंदी परिषद टोरोंटो" का निर्माण हुआ, जिसके प्रथम अध्यक्ष सरदार रघुबीर सिंह थे। इस संस्था में कई हिंदी प्रेमी सक्रिय थे, जैसे रघुवीर सिंह, डॉ. भारतेंदु श्रीवास्तव, प्रो. हरिशंकर आदेश, श्याम त्रिपाठी, शैल शर्मा आदि। सन १९८३ में "हिंदी लिटरेरी सोसाइटी ऑफ कैनेडा" की स्थापना की गई। इसके प्रथम अध्यक्ष (स्वर्गीय) डॉ. त्र्यम्बकेश्वर द्विवेदी मॉट्रियाल से थे और फिर इसके अध्यक्ष ब्रिटिश कोलम्बिया के आचार्य श्रीनाथ द्विवेदी हुए। श्रीनाथ द्विवेदी की अध्यक्षता में यह संस्था अब 'कनैडियन एशियन स्टडीज़ एसोसियेशन' से संबद्ध हो गई है। सन १९९९ में डॉ. भारतेंदु श्रीवास्तव के नेतृत्व में १२ सदस्यों द्वारा "हिंदी साहित्य सभा" का गठन हुआ। १९९८ में टोरोंटो में ही 'हिंदी प्रचारिणी सभा का गठन हुआ जिसके अध्यक्ष श्री श्याम त्रिपाठी हुए। इसी के अन्तर्गत "हिंदी चेतना" का प्रकाशन होता है।

२००८ टोरोंटो में सुमन कुमार घई, विजय विक्रांत और डॉ. शैलजा सक्सेना ने "हिंदी राइटर्स गिल्ड" संस्था प्रारंभ की जिसका उद्देश्य साहित्य स्तर में सुधार के लिये मासिक गोष्ठियाँ करना और हिंदी की पुस्तकों का कैनेडा में ही प्रकाशन/प्रचार करना है। इस संस्था ने अब तक १३ पुस्तकों और पुस्तिकाओं का प्रकाशन किया है तथा १२ प्रसिद्ध नाटकों जैसे "अंधायुग", "रश्मिरथी", "मित्रो मरजानी", "सूरदास", "संत जनाबाई", "आधे-अधूरे", आदि के मंचन के माध्यम से हिंदी में जनरुचि बढ़ाने की चेष्टा की है। बच्चों के हिंदी कार्यक्रम प्रति वर्ष कराते हुए यह संस्था नई पीढ़ी में भी हिंदी प्रेम को बनाए रखने का प्रयास कर रही है।

कैनेडा से कई काव्य-संग्रह भी प्रकाशित हुए। श्रीनाथ प्रसाद द्विवेदी ने १९८८ में "कैनेडियन", डॉ. निर्मला आदेश ने १९९५ में "किंजल्क", १९९७ में डॉ. भारतेन्दु श्रीवास्तव और श्याम त्रिपाठी ने "प्रवासी काव्य" शीर्षकों से टोरोंटो के कवियों के काव्य-संकलन प्रकाशित किए। श्रीनाथ द्विवेदी ने हिंदी, पंजाबी, उर्दू और बंगला भाषा के कवियों का संकलन "रावी के अहसास फ्रेजर के तट पर" और २००६ में "उत्तरी अमेरिका के हिंदी साहित्यकार" संकलन प्रकाशित किया। २००९ में डॉ. भारतेंदु श्रीवास्तव, अचला दीप्तिकुमार और डॉ. शैलजा सक्सेना के संपादन में "काव्योत्पल" प्रकाशित हुआ। २०२१ में सुमन कुमार घई और डॉ. शैलजा सक्सेना ने "सपनों का आकाश- पद्य संकलन" (४१ कवियों का संग्रह) और "संभावनाओं की धरती- गद्य संकलन" (२१ लेखकों का संग्रह) तैयार किए जो पुस्तक बाज़ार.कॉम पर ई-पुस्तक रूप में और केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा द्वारा प्रिंट रूप में भी उपलब्ध हैं।

कोरोना काल में कैनेडा के लेखकों को ज़ूम के माध्यम से कैनेडा की हिंदी को वैश्विक पटल पर रखने का अवसर मिला। हिंदी राइटर्स गिल्ड कैनेडा, हिंदी मंच कैनेडा, वैश्विक हिंदी परिवार, वातायन यू के, सिंगापुर संगम आदि अनेक समूहों ने हिंदी के अनेक अंतरराष्ट्रीय कार्यक्रम आयोजित किए, जिनमें से कुछ में बच्चों ने भी भाग लिया। पिछले दो वर्ष वैश्विक पटल पर हिंदी के कोरस गान का समय रहा, हिंदी प्रेमियों/ विद्वानों ने परस्पर पहचान कर अपनी प्रिय भाषा के प्रसार और उपयोग को दृढ़ करने की अनेक योजनाएँ बनाई हैं, विश्वास है कि हिंदी का भविष्य इस एकजुटता से समृद्ध होगा और कैनेडा में हिंदी बोली के रूप में ही नहीं, भाषा रूप में भी लोकप्रियता पाएगी।

❋

सह-संथापक निदेशक - हिन्दी राइटर्स गिल्ड कनाडा, 2288, डेल रिज ड्राइव, ओकविल, ओंटारियो, कैनेडा- एल.6 एम 3 एल 5
संपर्क 1-905-580-7341

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी शिक्षण

डॉ. रेखा राजवंशी

ऑस्ट्रल में रामकृष्ण हिंदी एंड कल्चरल स्कूल, कैनबरा में कैनबरा हिंदी विद्यालय चल रहे हैं। निजी व्यक्तियों द्वारा अनेक उपनगरों में हिंदी की शिक्षा प्रदान की जाती है। पर्थ में हिंदी समाज का हिंदी स्कूल आदि हिंदी शिक्षण की सुविधा प्रदान करते हैं।

कुछ सरकारी विद्यालय हिंदी का शिक्षण मुख्य धारा के अंतर्गत करवाते हैं। जैसे न्यू साउथ वेल्स का वेस्ट राइड पब्लिक स्कूल पहला स्कूल था जहाँ पिछले सत्ताईस साल से हिंदी पढ़ाई जा रही है। आजकल न्यू साउथ वेल्स, विक्टोरिया, क्वींसलैंड और वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया में हिंदी शिक्षण की सुविधा कुछ स्कूलों में उपलब्ध हो गई है। 2023 से वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया में हिंदी भाषा कक्षा एक से कक्षा बारह तक के पाठयक्रम में शामिल हो जाएगी।

ऑस्ट्रेलिया भी भारत की ही तरह एक बहु-सांस्कृतिक देश है, जहाँ अनेक देशों के लोग आकर बस गए हैं। यहाँ के खान-पान, रंग, रूप, भाषा, वेशभूषा और वेशभूषा में यानी विभिन्न संस्कृतियों का समावेश है। ऑस्ट्रेलिया में बोले जाने वाली करीब तीन सौ भाषाओं में विविध भारतीय भाषाएँ भी हैं। हिंदी के अतिरिक्त पंजाबी, तमिल, पंजाबी, गुजराती आदि हैं। ऑस्ट्रेलिया में भी हिंदी अन्य देशों की भाँति पुष्पित, पल्लिवत हुई है।

2021 की जनगणना के नवीनतम आंकड़े इस बात की पुष्टि करते हैं कि नए भारतीय प्रवासी भारत से तेजी से आ रहे हैं। नए आँकड़ों के अनुसार, ऑस्ट्रेलिया में हिंदी भाषी लोगों की संख्या 197,000 से अधिक है, जबकि 2016 में 159,652 थी। जिसका मतलब है कि हिंदी बोलने वालों की संख्या में वृद्धि हो रही है। आँकड़ों के अनुसार न्यू साउथ वेल्स में, हिंदी भाषा बोलने वालों की संख्या 80,000 से अधिक है, उसके बाद विक्टोरिया (66,930) और क्वींसलैंड (21,344) हैं। इन परिणामों से यह भी स्पष्ट हुआ कि हिंदू धर्म देश में सबसे तेजी से बढ़ते धर्मों में से एक है।

आजकल शिक्षा और रोजगार के लिए अनेक भारतीय ऑस्ट्रेलिया आ रहे हैं, जिसके कारण दोनों देशों के मध्य प्रगाढ़ संबंध स्थापित हो गए हैं।

भारतीय भोजन, तीज त्यौहार, योग, मेडिटेशन के अतिरिक्त यहाँ की संस्कृति भी लोकप्रिय हो रही हैं। ऑस्ट्रेलिया के बहु-सांस्कृतिक समाज में अनेकों भाषाएँ बोली और पढ़ाई जाती हैं। उनमें हिंदी, या आधुनिक मानक हिंदी, भारत की सबसे व्यापक रूप से बोली जाने वाली आधिकारिक भाषा को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। भारत की तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था के कारण हिंदी बोलना समझना महत्त्वपूर्ण हो गया है।

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी शिक्षण का प्रारंभ

ऑस्ट्रेलिया में उन्नीस सौ सत्तर के दौरान हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण मंदिरों में शुरू हुआ जब लोगों ने साहित्य और सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन मंदिरों में शुरू किया।

औपचारिक रूप से हिंदी की शिक्षा पहली बार 1965 में क्वींसलैंड विश्वविद्यालय ऑस्ट्रेलिया के आधुनिक भाषा संस्थान के प्रौढ़ शिक्षा संस्थान द्वारा तृतीय स्तर पर प्रारंभ की गई थी।

1997 में ऑस्ट्रेलिया में छह विश्वविद्यालय थे, जिनमें हिंदी पढ़ाई जा रही थी।

2011 में ऑस्ट्रेलिया की केंद्रीय सरकार के आदेश पर अकारा (ACARA) यानी ऑस्ट्रेलियन करिकुलम एसेसमेंट एंड सर्टिफिकेशन ने राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के लिए हिंदी का चयन किया।

2012 में, तत्कालीन ऑस्ट्रेलियाई प्रधानमंत्री जूलिया गिलार्ड ने "ऑस्ट्रेलिया इन द एशियन सेंचुरी" सरकार का श्वेत पत्र जारी किया। उन्होंने घोषणा की कि हिंदी को प्राथमिकता वाली भाषा के रूप में माना जाएगा - हर स्कूली बच्चा हिंदी सीखने में सक्षम होगा। आजकल यहाँ हिंदी, विद्यालयी पाठ्यक्रम का हिस्सा है, और हिंदी का कक्षा 1 से 12 तक राष्ट्रीय स्तर पर पाठ्यक्रम भी तैयार किया गया है।

ऑस्ट्रेलिया के विद्यालयों में हिंदी शिक्षण

ऑस्ट्रेलिया सरकार की भाषा संबंधी नीति के अनुसार कुछ विद्यालयों में हिंदी की शिक्षा का प्रावधान है। कुछ संगठन और व्यक्ति निजी रूप से हिंदी की शिक्षा प्रदान करते हैं। यद्यपि उन्हें सरकार के शिक्षा विभाग की तरफ से कुछ सहायता दी जाती है। ऑस्ट्रेलिया के अधिकांश प्रदेशों में हिंदी पढ़ाई जा रही है।

1986 में विक्टोरिया में मेलबर्न के ब्रिंजविक नगर में प्राथमिक स्तर पर सबसे पहले हिंदी की कक्षाएं प्रारंभ हुईं। 1993 में 11वीं 12वीं कक्षाओं में हिंदी पठन-पाठन को मान्यता मिल गई जिससे अनेक विद्यार्थियों ने हिंदी पढ़ना प्रारंभ किया।

1993 में विक्टोरिया की सरकार ने 11वीं और 12वीं कक्षा में हिंदी भाषा को हाई स्कूल में मान्यता दी। बाद में यह मान्यता ऑस्ट्रेलिया के अन्य प्रदेशों में भी प्रदान की गई। आज विद्यार्थी 12वीं कक्षा की हिंदी परीक्षा में बैठ सकते हैं।

मेलबर्न में हिंदी अध्ययन का कार्यक्रम प्रेप से सकेंडरी तक है।

सिडनी के हिंदी विद्यालयों में मुख्य हैं बाल भारती इंडो ऑस्ट विद्यालय, जहाँ पिछले पैंतीस साल से रविवार हिंदी की कक्षाएं लगाई जा रहीं हैं। विद्यालय का प्रारम्भ माला मेहता तथा समुदाय के अन्य लोगों ने मिलकर किया। अब इस स्कूल ने मुख्य धारा के कुछ विद्यालयों में आफ्टर स्कूल हिंदी की कक्षाएं लगानी शुरू की हैं।

साउथ एशियन हिंदी स्कूल कोगरा, AHMA स्कूल ऑफ़ लैंगवेजेस, ग्रीन वैली हिंदी स्कूल, लिवरपूल आर्ट्स एंड कल्चर - हिंदी विद्यालय, फ़ीजी के हिंदी विद्यालय भी हिंदी पढ़ाते हैं।

न्यू साउथ वेल्स में ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षा में हिंदी शिक्षण और परीक्षा आरंभ करने का श्रेय डॉ जगदीश चावला को जाता है। बाद में इंडो ऑस्ट-बाल भारती हिंदी स्कूल में भी ग्यारहवीं और बारहवीं को हिंदी पढ़ाना शुरू किया गया और हिंदी एच एस सी की परीक्षा शुरू हुई।

ऑस्ट्रल में राम-कृष्ण हिंदी एंड कल्चरल स्कूल, कैनबरा में कैनबरा हिंदी विद्यालय चल रहे हैं। निजी व्यक्तियों द्वारा अनेक उपनगरों में हिंदी की शिक्षा प्रदान की जाती है। पर्थ में हिंदी समाज का हिंदी स्कूल आदि हिंदी शिक्षण की सुविधा प्रदान करते हैं।

कुछ सरकारी विद्यालय हिंदी का शिक्षण मुख्य धारा के अंतर्गत करवाते हैं। जैसे न्यू साउथ वेल्स का वेस्ट राइड पब्लिक स्कूल पहला स्कूल था जहाँ पिछले सत्ताईस साल से हिंदी पढ़ाई जा रही है। आजकल न्यू साउथ वेल्स, विक्टोरिया, क्वींसलैंड और वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया में हिंदी शिक्षण की सुविधा कुछ स्कूलों में उपलब्ध हो गई है। 2023 से वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया में हिंदी भाषा कक्षा एक से कक्षा बारह तक के पाठयक्रम में शामिल हो जाएगी।

ऑस्ट्रेलिया में विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी शिक्षण

तृतीयक स्तर पर, हिंदी पहली बार ऑस्ट्रेलिया में 1965 में क्वींसलैंड विश्वविद्यालय के आधुनिक भाषा संस्थान के प्रौढ़ शिक्षा संस्थान द्वारा पेश की गई थी। वह पाठ्यक्रम, जो अभी भी उपलब्ध है, को विश्वविद्यालय डिग्री कार्यक्रम के एक भाग के रूप में लिया जा सकता है। 1972 से अन्य ऑस्ट्रेलियाई वयस्क शिक्षा केंद्रों और TAFEs ने छिटपुट रूप से हिंदी में पाठ्यक्रमों की पेशकश की है।

1997 में ऑस्ट्रेलिया में छह विश्वविद्यालय थे, जिनमें हिंदी पढ़ाई जाती थी, जब कि आज केवल दो विश्वविद्यालयों ऑस्ट्रेलियन नॅशनल युनिवेर्सिटी कैनबरा और लॉ ट्रोब युनिवेर्सिटी मेलबर्न में ही हिंदी पढ़ाई जा रही है, हालाँकि दोनों विश्वविद्यालय संसाधन की कमी से जूझ रहे हैं।

पहले जिन विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती थी उनमें से सिडनी विश्वविद्यालय और मोनाश, रॉयल मेलबर्न इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी में हिंदी की शिक्षा बंद कर दी गई।

जब कि कैनबरा ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी में पिछले कई वर्षों से हिंदी पढ़ाई जा रही है, जिसे हिंदी विभाग प्रोफेसर रिचर्ड मैकग्रेगर द्वारा यहाँ स्थापित किया गया था। यहाँ हिंदी विषय स्नातक अध्ययन के लिए उपलब्ध है, एशियन स्टडीज संकाय के अंतर्गत स्नातक स्तर पर पाठ्यक्रम उपलब्ध है। ऑस्ट्रेलियन नॅशनल युनिवेर्सिटी में डॉ पीटर फ्रीडलैंडर हिंदी के प्राध्यापक हैं। डॉ. क्रिस्टोफर डायमंड भी ऑस्ट्रलियन नेशनल यूनिवर्सिटी में हिंदी पढ़ाते हैं। ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी के सीनियर लेक्चरर डॉ पीटर फ्रीडलैण्डर ने राष्ट्रीय स्तर की दो हिंदी

शिक्षण की कार्यशालाएं भी आयोजित करीं। लॉ ट्रोब यूनिवर्सिटी में डॉ इयन वुलफर्ड हिंदी के प्राध्यापक हैं।

सिडनी यूनिवर्सिटी में भी हिंदी शिक्षण होता था पर करीब दस साल पहले बंद हो गया और उसके बाद यूनिवर्सिटी के प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में हिंदी उपलब्ध थी जो पिछले पाँच साल से बंद हो गई। चूँकि भारतीय अंग्रेजी बोल लेते हैं तो ऑस्ट्रेलिया के लोगों को हिंदी सीखने की आवश्यकता नहीं लगती। फिर भी बॉलीवुड और भारत में पर्यटन के इच्छुक ऑस्ट्रेलियन्स को हिंदी सीखने में रूचि है।

टेफ यानि टेक्निकल एंड फरदर एजुकेशन के कुछ केंद्रों में भी वयस्कों के लिए हिंदी शिक्षा का प्रबंध था। 1980 में विक्टोरियन स्कूल ऑफ लैंग्वेजेज़ की कक्षाओं में व्यस्क विद्यार्थी भी प्रवेश ले सकते थे। विक्टोरिया में काउंसिल ऑफ एडल्ट एजुकेशन भी शिक्षा वयस्कों को शिक्षा प्रदान करते हैं। इसी तरह सिडनी, और अन्य राज्यों में भी कुछ संस्थान व्यस्को को हिंदी शिक्षण की सुविधा प्रदान करते हैं। निजी तौर पर भी बहुत से व्यक्ति हिंदी की ऑनलाइन कक्षाएं लेते हैं।

यूँ तो ऑस्ट्रेलिया में हिंदी शिक्षण की सुविधाएं उपलब्ध हैं परन्तु हमारी जनसँख्या के हिसाब से काफी नहीं हैं। बच्चे भी हिंदी सीखने के लिए अधिक उत्साहित नहीं लगते। न्यूयॉर्क टाइम्स में प्रकाशित लेख के अनुसार इस सदी के अंत तक विश्व में बोली जाने वाली आधी भाषाएँ विलुप्त हो जाएँगी। तो प्रश्न यह है कि क्या इस सदी के अंत तक विदेशों में हिंदी भी विलुप्ति के कगार पर पहुँच जाएगी? या फिर बॉलीवुड के गाने और संगीत कविता लिखने की प्रेरणा देंगे? या हिंदी फ़िल्में कहानी लिखने के लिए विद्यार्थियों को प्रेरित करेंगी? जब भारतीय अप्रवासियों की भावी पीढ़ी हिंदी लिख, पढ़ ही नहीं पाएगी तो क्या 'स्पीच टू टेक्स्ट' जैसी तकनीक उन्हें हिंदी में लिखना सिखा पाएगी? या हिंदी रोजगार के ऐसे अवसर पैदा करेगी जो युवा पीढ़ी के मन में हिंदी के प्रति उत्साह का संचार करेंगे? जो भी हो यह आवश्यक है कि इस बारे में निरंतर विचार विमर्श किया जाए और अपनी अगली पीढ़ी को बराबर हिंदी बोलने बल्कि के लिए प्रोत्साहित करने का प्रयास जारी रखा जाए।

❋

1, Leigh Place, West Pennant Hills, New South Wales
2125, Australia

महादेवी वर्मा

जाग तुझको दूर जाना!
चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना!
जाग तुझको दूर जाना!
अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कम्प हो ले!
या प्रलय के आँसुओं में मौन अलसित व्योम रो ले;
आज पी आलोक को ड़ोले तिमिर की घोर छाया
जाग या विद्युत शिखाओं में निठुर तूफान बोले!
पर तुझे है नाश पथ पर चिन्ह अपने छोड़ आना!
जाग तुझको दूर जाना!
बाँध लेंगे क्या तुझे यह मोम के बंधन सजीले?
पंथ की बाधा बनेंगे तितलियों के पर रंगीले?
विश्व का क्रंदन भुला देगी मधुप की मधुर गुनगुन,
क्या डुबो देंगे तुझे यह फूल दे दल ओस गीले?
तू न अपनी छाँह को अपने लिये कारा बनाना!
जाग तुझको दूर जाना!

श्रीलंका में हिंदी

डॉ. एल. एम. रिझा निशादिनी लंसकार

"वैश्वीकरण की वर्तमान स्थिति में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए और भी प्रयत्न करने की आवश्यकता है। वह इसलिए हैं क्योंकि हिंदी एक ऐसी समृद्ध भाषिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक परंपरा की वाहिनी है, जो हर पहलू पर भारत की एकता और अखंडता की पृष्टभूमि को पुख्ता करने के साथ-साथ 'वसुधैव कुटुंबकम' की भावना को प्रेरित कर रही है। विद्वान गणेश शंकर विद्यार्थी ने एक बार ऐसा कहा— "एक दिन हिंदी एशिया ही नहीं, विश्व की पंचायत में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेगी। ... संसार की कोई भी भाषा मनुष्य जाति को उतना ऊँचा उठाने, मनुष्य को यथार्थ में मनुष्य बनाने तथा संसार को सभ्य बनाने में उतनी सफल नहीं हुई जितनी आगे चलकर हिंदी होगी।" अतः हिंदी भाषा से प्रभावित अन्य देशों के व्यक्तियों व संस्थाओं द्वारा विश्व भर के विभिन्न देशों में हिंदी भाषा और साहित्य के प्रचार-प्रसार, प्रोत्साहन, संवर्धन एवं संरक्षण हेतु शिक्षण पद्धतियों को विकसित करने का प्रयास किया जा रहा है।"

भाषा हर किसी प्राणी को एक सूत्र में पिरो देनेवाले धागे जैसी है। साथ-ही-साथ भाषा किसी भी समाज में द्रष्टव्य विभिन्न जीवन शैलियों की जननी भी होती है। बोलने वाले समुदाय की सतत निर्झरिणी भी भाषा ही है। पूरे संसार में लाखों भाषाएँ बोली जाती हैं। परंतु उन भाषाओं में से कुछ समृद्ध तथा प्रभावशाली भाषाएँ भी हैं जो मातृभाषा न होते हुए भी विदेशियों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं। हिंदी भाषा, संसार की उन समृद्ध व प्रभावशाली भाषाओं में से एक है जो विश्व भर के अधिकतर व्यक्तियों को अपनी ओर रिझा ले गयी है।

यह तथ्य सर्वविदित है कि हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा है। परंतु हिंदी अब केवल भारत की ही नहीं रही है, वह अंतरराष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण करते हुए इस भूमण्डल की एक महत्त्वपूर्ण भाषा बन रही है। दिल्ली से लेकर दुबई तक तथा सूरत से लेकर सूरीनाम तक हिंदी का चलन है। वर्तमान में संसार में व्यापकतम स्तर पर बोली जानेवाली भाषाओं में तीसरी सबसे बड़ी भाषा है हिंदी, एवं वह आधुनिक ज्ञान की एक ऐसी भाषा के रूप में तेज़ी से उभर रही है जो अपने अंदर विज्ञान, प्रोद्योगिकी और अर्थव्यवस्था सहित विभिन्न क्षेत्रों को समेटी हुई है। संख्याबल और भू विस्तार की दृष्टि से भी हिंदी संसार की मुख्य भाषाओं में से एक बन गयी है। इसलिए इसमें कोई संदेह नहीं है कि हिंदी का विस्तार हुआ है।

वास्तव में हिंदी ने किस प्रकार सदियों के अंदर विश्व के कोने-कोने की यात्रा की, यह एक विचारणीय बात है। आज संसार 'विश्व गाँव' (ग्लोबल विलेज) के रूप में चर्चित हो रहा है, पर सैकड़ों वर्ष पहले जब न संचार-क्रान्ति हुई थी न यातायात की सुविधाएँ उपलब्ध थीं, तब भारत के पुरखों, पूर्वजों ने हिंदी को संसार के कोने-कोने में फैलाया। मूलतः लगभग 160 वर्ष पहले ब्रिटिश उपनिवेश के शासन के कारण भारत से अनेक श्रमिक फ़ीजी, त्रिनिदाद, मॉरीशस और सूरीनाम आदि देशों में ले जाए गये थे। वे भारतवंशी यों ही खाली हाथ उन देशों में नहीं गये, वे अपने साथ हिंदी एवं अपने धर्म ग्रंथों को भी ले गये, तथा पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपने भारतीय मूल के होने का अभिमान अन्यों को दिखाते-सुनाते रहे, जिससे हिंदी व भारतीय संस्कृति को विश्वव्यापी पहचान मिली। समय के बीत जाने के साथ-साथ भारतीय मूल के लोग व्यवसाय, शिक्षा एवं अन्य कारणवश पूरे विश्व में फैलने लगे तथा इस भाँति आज भी भारत के प्रवासी-जन हिंदी के चलन को विश्वव्यापी बना रहे हैं। सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन, 2003 के उपलक्ष्य में भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने संसार में हिंदी की व्याप्ति के संबंध में ऐसा उल्लेख किया है — "...यह बड़े गर्व की बात है कि आज हिंदी विश्व के कोने-कोने तक पहुँच गयी है। विदेशों में रह रहे भारतीय भाई-बहनों, हिंदी विद्वानों एवं मनीषियों ने हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार करने में उल्लेखनीय योगदान दिया है।..." अतः अब

यह तथ्य सुस्पष्ट है कि विश्व में हिंदी के प्रचलन के कार्य में भारत के प्रवासीजनों का बहुत बड़ा हाथ है। वर्तमान में भी वे लोग अपनी भाषाई व सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखते आ रहे हैं।

वैश्वीकरण की वर्तमान स्थिति में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए और भी प्रयत्न करने की आवश्यकता है। वह इसलिए है क्योंकि हिंदी एक ऐसी समृद्ध भाषिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक परंपरा की वाहिनी है, जो हर पहलू पर भारत की एकता और अखंडता की पृष्टभूमि को पुख्ता करने के साथ-साथ 'वसुधैव कुटुंबकम' की भावना को प्रेरित कर रही है। विद्वान गणेश शंकर विद्यार्थी ने एक बार ऐसा कहा— "एक दिन हिंदी एशिया ही नहीं, विश्व की पंचायत में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेगी। ... संसार की कोई भी भाषा मनुष्य जाति को उतना ऊँचा उठाने, मनुष्य को यथार्थ में मनुष्य बनाने तथा संसार को सभ्य बनाने में उतनी सफल नहीं हुई जितनी आगे चलकर हिंदी होगी।" अतः हिंदी भाषा से प्रभावित अन्य देशों के व्यक्तियों व संस्थाओं द्वारा विश्व भर के विभिन्न देशों में हिंदी भाषा और साहित्य के प्रचार-प्रसार, प्रोत्साहन, संवर्धन एवं संरक्षण हेतु शिक्षण पद्धतियों को विकसित करने का प्रयास किया जा रहा है। आज संसार के अनेक विश्वविद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई हो रही है, संस्थागत और निजी प्रयासों से हिंदी के प्रचार-प्रसार और प्रशिक्षण के क्षेत्र में बड़ी तादाद में लोग लगे हैं। इस प्रकार पाकिस्तान, बांगलादेश, श्री लंका, नेपाल, भूटान, म्यांमार, चीन, जापान, दक्षिण-कॉरिया, मोंगोलिया, थाइलैंड आदि एशियाई देशों में ही नहीं, बल्कि अमेरिका, कनाडा, रूस, इंग्लैंड, जर्मनी, फ्रांस, इटली, आदि पश्चिमी देशों में भी हिंदी को व्याप्त करने की ओर प्रयास हो रहे हैं। अतः हिंदी के, भारतीय उपमहाद्वीप की हिंदी भाषा-आबादी की सीमा को लांघकर विश्वभर में फैल जाने में अन्य देशों का भी पर्याप्त योगदान है।

भारत के पड़ोस देशों में से श्री लंका भी एक ऐसा देश है, जहाँ सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक स्तर पर हिंदी एक जीवंत भाषा के रूप में अपना अस्तित्व बनायी हुई है। भारत से इतर हिंदी बोले जानेवाले तथा हिंदी का अध्ययन-अध्यापन होनेवाले देश के रूप में संसार में श्री लंका का एक प्रमुख स्थान है। श्री लंका के निवासियों में हिंदी भाषा तथा भारतीय संस्कृति को एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। पुराने-ज़माने से ही भारत व श्री लंका का रिश्ता चला आ रहा है। श्री लंका के इतिहास के संबंध में इस बात का उल्लेख मिलता है कि 6 ई० पू० में भारत से आये "विजय" नामक राजा तथा उनके साथ सौ साथियों से ही प्राचीन श्री लंका के व्यवहार व जीवन-शैली सुसंस्कृत बन गये हैं। इस भाँति भारत तथा श्री लंका के संबंध का एक सुदूर अतीत है। तो यदि यहाँ के निवासियों में हिंदी के प्रति कोई विशेष रुचि जाग्रत न हुई तो वही आश्चर्य की बात बन सकती है।

वास्तव में श्री लंका में लगभग सात दशकों से हिंदी का अध्ययन तथा अध्यापन-कार्य हो रहे हैं। बॉलिवुड फ़िल्मों तथा गीतों के कारण एक भाषा के रूप में जनता में हिंदी के प्रचलित होने का अतीत इससे भी पुराना है। माना जाता है कि उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अर्थात सन् 1880 श्री लंका में The Elphiniston Dramatic Company नामक नाटक दल का आगमन हुआ था, जिसने न केवल सिंहली रंगमंच को प्रभावित किया है, बल्कि उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत का रस भी यहाँ के निवासियों को प्रदान किया है। तदुपरान्त श्री लंका के रंगमंच से संबन्धित अनेक कलाकार भारतीय कथाओं, संगीत तथा संस्कृति से प्रभावित होकर इन क्षेत्रों से संबन्धित उच्च-शिक्षा प्राप्त करने हेतु 'शांतिनिकेतन', 'भातखण्डे संगीत विद्यापीठ' आदि संस्थाओं में भर्ती होने लगे, जिससे उनमें हिंदी भाषा के प्रति रुचि भी जाग्रत होने लगी। इस प्रकार रंगमंच तथा संगीत के कलाकारों तथा पाली, संस्कृत व हिंदी भाषा के ज्ञानी बौद्ध भिक्षुओं के कारण क्रमशः श्री लंका में हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार हुआ।

केवल इतना ही नहीं, 'रेडियो सिलोन' अर्थात 'Sri Lanka Broadcasting Corporation' पर हिंदी के गाने भी प्रसारित होने लगे तथा देश भर के सिनेमा-घरों में हिंदी फ़िल्मों का प्रदर्शन भी होने लगे, जिससे लोगों में हिंदी की मधुरता के प्रति रुचि उमड़ने लगी, जो आज तक पीढ़ी-दर-पीढ़ी वह रुचि दिन-ब-दिन बढ़ती चली आ रही है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य की बात करें तो श्री लंका में राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी की समृद्ध परम्परा दृष्टिगोचर प्रतीत होती है। कोलबँ सहित यहाँ के अनेक प्रांतों के 09 विश्वविद्यालयों (कॅलणिय विश्वविद्यालय, श्री जयवर्धनपुर विश्वविद्यालय, सबरगमुव विश्वविद्यालय, कोलबँ विश्वविद्यालय, दृश्य और प्रदर्शन कला विश्वविद्यालय, रुहुण विश्वविद्यालय, मोरटुव विश्वविद्यालय, रजरट विश्वविद्यालय, पेरादेणिय विश्वविद्यालय) में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन हो रहा है। इन विश्वविद्यालयों में से विशेषकर कॅलणिय विश्वविद्यालय में एक स्वतंत्र विभाग के रूप में हिंदी-विभाग की स्थापना हुई है, जिसमें स्वर्गीय प्रॉ० इंद्रा दसनायक जी का उल्लेखनीय एवं सराहनीय योगदान है, जिन्हें विश्व हिंदी सम्मान भी प्राप्त है। कॅलणिय विश्वविद्यालय के संबंध में और एक उल्लेखनीय बात यह भी है कि विदेशी छात्र भी वहाँ आकर हिंदी सीखते – पढ़ते हैं, जो श्री लंका के लिए भी गरिमा का विषय है।

जिस प्रकार इससे पूर्व भी इस तथ्य का उल्लेख किया गया है, श्री लंका में सरकारी संस्थाओं के रूप में नौ प्रमुख विश्वविद्यालयों में हिंदी को प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम, स्नातक व स्नातकोत्तर के स्तर (बी० ए०, एम० फिल०, पीएच०डी०) पर पढ़ाया जाता है तथा उनके अतिरिक्त लगभग

50 से अधिक स्कूलों में हिंदी भाषा को एक मुख्य विषय के रूप में पढ़ाया जाता है। साथ-साथ श्री लंका में राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित एवं राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त एक ही संस्था 'राष्ट्र भाषा शिक्षण एवं प्रशिक्षण संस्थान' जिसके द्वारा श्री लंका की राजभाषा नीति को कार्यान्वित किया जाता है, में भी हिंदी को एक विदेश भाषा के रूप में पढ़ाया जाता है। इस संस्था द्वारा श्री लंका के सभी हिंदी प्रेमियों को हिंदी का अध्ययन करने का अवसर दिया गया है। इसके अतिरिक्त देश भर में स्थापित स्वैच्छिक व निजी संस्थाओं में भी हिंदी से संबन्धित अध्ययन व अध्यापन-कार्य हो रहे हैं, जिनमें से कुछ 20 सालों से भी अधिक पुराने हैं।

यह बात प्रसन्नता का कारण है कि हिंदी वैश्विक परिदृश्य में अपनी जगह बना रही है। आज जब भाषाएँ खत्म हो रही हैं, हिंदी निरंतर फैल रही है। दुनिया भर में इसका विस्तार हो रहा है। इस भाँति विश्व में हिंदी भाषा पुष्पित व पल्लवित होने से अवगत श्री लंका के निवासी भी व्यावसायिक आवश्यकताओं पर ध्यान देते हुए हिंदी भाषा का अध्ययन कर रहे हैं। यहाँ के कुछ संस्थाओं में हिंदी फ़िल्मी गीतों के माध्यम से पढ़ाई जाती है और प्रवासी भारतवंशी (व्यावसायिक कारण हेतु विस्थापित जन) हिंदी की अलख और संस्कृति को जगाए रखे हैं। इतना ही नहीं भारतीय उच्चायोग द्वारा स्थापित 'स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र', 'समकालीन हिंदी अध्ययन केंद्र' एवं श्री लंका के उत्तर एवं दक्षिण प्रदेश में स्थापित 'भारतीय कांसुलेट जनरल' आदि संस्थाएँ भी हिंदी के विकास में प्रयासरत हैं।

यह सर्वविदित तथ्य है कि कोई भी भाषा अपनी संस्कृति से अभिन्न है इसलिए ही कोई भी संस्कृति का संवाहक भी उसकी भाषा बनती है। इस भाँति श्री लंका के लोगों में जितनी हिंदी लोकप्रिय है उतनी ही उसकी संस्कृति। अर्थात श्री लंका में भारतीय संस्कृति के प्रति अनुराग होना भी हिंदी सीखने का प्रमुख कारण बना है। उत्तर भारतीय पहनावे, आभूषण, खान-पान, तीज-त्यौहार, जीवन-शैली को अधिक चाहनेवाले लोग श्री लंका में रहते हैं। बाल-या-वृद्ध बिना किसी भेद के उत्तर भारतीय संस्कृति के विचित्र अवसरों को अपने देश में रहते हुए अनुभव करना पसंद करते हैं। इस कारण यहाँ के अधिकतर विवाह उत्सवों में लोग साड़ी, घाघरा-चोली, शलवार-कमीज़, कुर्ता, लहँगे आदि उत्तर भारतीय पहनावों में सजते हैं। केवल विवाह में आने वाले लोग ही नहीं वर-वधू भी उत्तर भारतीय पोशाकों में सजना पसंद करते हैं। अतः आज श्री लंका में हिंदी इसलिए ग्राह्य है क्योंकि वह भारतीय संस्कृति की पहचान बन गयी है। इस कारण श्री लंका में हिंदी के अध्ययन व अध्यापन होने वाले संस्थाओं में खाली हिंदी-ज्ञान ही नहीं दिया जाता, इस तथ्य का भी बोध कराने वाले कई कार्यक्रमों का आयोजन प्रतिवर्ष हो रहा है कि विश्व के किसी भी व्यक्ति को हिंदी से संबन्धित समग्र ज्ञान प्राप्त करना है तो उसे अपरिहार्य रूप में भारतीय संस्कृति के मूल में जाना होगा। इसलिए प्रतिवर्ष श्री लंका में मुख्यतः दीपावली, गणतन्त्र दिवस, स्वतंत्रता दिवस, विश्व हिंदी दिवस आदि विशेष अवसरों पर भाँति-भाँति के सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है, जिनके कारण जनसाधारण में व हिंदी-प्रेमियों में हिंदी के प्रति सुरुचिपूर्ण उत्साह उत्पन्न हो।

विश्व में ऐसी भी जगहें हैं जहाँ भारतीय मूल के लोगों की बहुलता नहीं हैं तब भी वहाँ पर हिंदी बोली जाती है। श्री लंका भी ऐसी एक जगह है जहाँ के अधिकांश आम लोग कम-से-कम हिंदी के ०५-१० सरल शब्द अर्थ सहित जानते हैं, जिसका एक मात्र कारण बॉलीवुड सिनेमा है। साथ में श्री लंका के हिंदी-विद्वानों द्वारा हिंदी मूल भाषा से सिंहली भाषा में अनुवाद-कार्य किये जाने के कारण बॉलीवुड सिनेमा की भाँति यहाँ के लोग हिंदी के समृद्ध साहित्य से भी अवगत होने लगे हैं। वर्तमान तक प्रेमचंद, यशपाल, कमलेश्वर, महाश्वेता देवी, असगर वजाहत आदि हिंदी के जाने-माने लेखकों की प्रमुख रचनाओं का सिंहली अनुवाद हो चुके हैं, जिसका श्रेय विनेतृ, वरिष्ठ प्रॉ॰ उपुल रंजित हेवावितागमगे जी को जाता है, जो एक सफल व सम्मानित अनुवादक हैं तथा अपनी हिंदी-सेवा के लिए उन्हें विश्व हिंदी सम्मान समेत कई राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय सम्मान प्राप्त हैं।

वास्तव में श्री लंका में हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है। श्री लंका जैसे देशों के होते हुए विश्व में हिंदी की स्थिति निराशाजनक होने की कोई संभावना नहीं रहेगी। आनेवाले समय में श्री लंका में हिंदी और विस्तार पाएगी। अंततः भारतीय सरकार एवं हिंदी के प्रचार-प्रसार से संबन्धित अन्य संस्थाओं से यह विनम्र अनुरोध है कि श्री लंका में हिंदी पढ़नेवाले जनता को व्यावसायिक स्तर पर प्रेरणा स्वरूप कोई बढ़ावा या सहायता दे सकते हैं तो वह यहाँ के हिंदी प्रेमियों व सेवियों के लिए बड़ा प्रोत्साहन विषय बनेगा।

उपरोक्त विवरण से यह विदित होता है कि श्री लंका में हिंदी-प्रचलन के कार्य में अग्रगामी तरक्की होगी। श्री लंका के हिंदी प्रेमियों व सेवियों की एक मात्र अभिलाषा यह है कि श्री लंका तथा भारत के हज़ारों वर्षों से चले आ रहे अटूट संबंध और सुदृढ़ तथा सशक्त हों। ❋

अस्वॅद्दुम, कुरुणैगल, श्री लंका। 60 000, (rnishadinee8822@gmail.com)

चीन में हिंदी शिक्षण की दशा एवं दिशा

डॉ. विवेक मणि त्रिपाठी

चीन में हिंदी शिक्षण को पांच भागों में बांटा जा सकता है, पहला वर्ष 1942 से वर्ष 1948 तक, यह समय हिंदी शिक्षण का प्रारंभिक काल था, उस समय चीन राजनीतिक रूप से बहुत ही उथल –पुथल से गुजर रहा था, परिणामत: इस काल में हिंदी भाषा शिक्षण में ज्यादा प्रगति नहीं हुई। चीन में हिंदी शिक्षण का दूसरा काल वर्ष 1949 से 1968 तक था, यह काल चीन में हिंदी शिक्षण के लिए बहुत ही अच्छा रहा, इसी समय नए भारत और नए चीन की स्थापना हुई, दोनों देशों में मित्रता की नई कहानी शुरू हुई, तत्कालीन चीनी प्रधानमंत्री चऊ एन लाय ने चीनी विद्यार्थियों को हिंदी पढने के लिए प्रेरित किया। उस समय के भारतीय राजदूत महोदय की पत्नी को पेइचिंग विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ाने के निमंत्रित किया गया, फलत: हिंदी का भी विकास द्रुतगति से हुआ।

भारत एवं चीन विश्व की चार महान सभ्यता वाले देश हैं जिनके मध्य दो हज़ार वर्षों के सांस्कृतिक संबंधों का गौरवमयी इतिहास रहा है। इन दो हज़ार वर्षों में दोनों देश एक दूसरे की सभ्यता संस्कृति से सीखते आ रहे हैं। चीन में भारतीय भाषाओं के अध्ययन का लम्बा इतिहास रहा है। प्राचीन काल में भारत से हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म, योग, आयुर्वेद का ज्ञान चीन गया जिसने चीनी संस्कृति को समृद्ध किया। चीनी जन इने भारतीय ज्ञान को विस्तृत रूप से समझने के लिए भारतीय भाषाओं के ज्ञान को आवश्यक समझा, फलतः प्राचीन भारत की तत्कालीन भाषा संस्कृत तथा बाद में पाली भाषाओं का चीनी विद्वतजनों ने सांगोपांग अध्ययन किया। ह्वेनसांग, फाह्यान, यित्सिंग जैसे चीनी विद्वान भारत आये और विश्वप्रसिद्ध नालंदा विश्वविद्यालय में संस्कृत –पाली भाषाओँ के ज्ञान सहित भारतीय दर्शन, चिकित्सा विज्ञान आदि का अध्ययन किया और वापस चीन जाकर उनका चीनी भाषा में अनुवाद भी किया जिनमें से अधिकतर आज भी संग्रहित है। धर्मांध मुस्लिम आक्रमणकारी बख्तियार खिलजी द्वारा नालंदा विश्वविद्यालय को नष्ट कर देने के कारण भारत में उनमें से अधिकांश अप्राप्य है। भारत से भी बोधिधर्मन, कुमारजीव आदि महान विद्वान् अपने विपुल ज्ञान भंडार के साथ चीन गए और भारतीय ज्ञान को चीनी विद्वत जनों के समक्ष रखा। भारतीय – चीनी विद्वानों के संयुक्त प्रयास से भारत –चीन के मध्य 2000 वर्ष लम्बे सांस्कृतिक सेतु का निर्माण हुआ जिसका प्रभाव हम आज भी देख सकते हैं।

प्राचीन चीनी विद्वानों ने संस्कृत भाषा के माध्यम से भारत- चीन सम्बन्ध की नींव रखी। वर्तमान समय में भी चीन भारतीय संस्कृति को समझने के लिए भारतीय भाषाओं का अध्ययन कर रहा है जिसमें संस्कृत, पाली, हिंदी, तमिल, पंजाबी, गुजराती, बंगाली, उर्दू आदि भाषाएँ शामिल हैं। इन भारतीय भाषाओं में से संस्कृत –पाली भाषाओँ पर अधिकतर शोध ही होता है। पंजाबी, गुजराती, बंगाली, उर्दू भाषाओं में 1-2 वर्षीय पाठयक्रम ही उपलब्ध हैं जो कुछेक वर्ष पहले ही प्रारंभ हुए हैं। अभी चीन में भारतीय भाषाओं में केवल हिंदी भाषा में ही स्नातक, स्नातकोत्तर, पीएचडी पाठयक्रम उपलब्ध है। वर्तमान में चीन के चौदह विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा एवं साहित्य में पाठयक्रम चलाये जा रहे हैं।

चीन में हिंदी शिक्षण को लगभग आठ दशक का लम्बा समय पूरा हो गया है। सर्वप्रथम १९४२ में चीन के युन्नान प्रान्त के राष्ट्रीय पूर्वी भाषा महाविद्यालय में हिंदी शिक्षण प्रारंभ हुआ, लेकिन उस समय चीन में जापान विरोधी युद्ध विजय को देखते हुए हिंदी विभाग को सिछवान प्रान्त के छोंग्छिंग शहर में स्थानांतरित कर दिया गया, और १९४६ में नानचिंग शहर में स्थानांतरित कर दिया गया। १९४९ में चीनी

जनवादी गणराज्य की स्थापना हुई और पूर्वी भाषा महाविद्यालय को नानचिंग शहर से राजधानी पेइचिंग के पेइचिंग विश्वविद्यालय के पूर्वी भाषा महाविद्यालय में मिला दिया गया जो कालांतर में चीन में हिंदी अध्ययन का महत्त्वपूर्ण केंद्र बन गया।

चीन में हिंदी शिक्षण को पांच भागों में बांटा जा सकता है, पहला वर्ष १९४२ से वर्ष १९४८ तक, यह समय हिंदी शिक्षण का प्रारंभिक काल था, उस समय चीन राजनितिक रूप से बहुत ही उथल –पुथल से गुजर रहा था, परिणामतः इस काल में हिंदी भाषा शिक्षण में ज्यादा प्रगति नहीं हुई। चीन में हिंदी शिक्षण का दूसरा काल वर्ष १९४९ से १९६८ तक था, यह काल चीन में हिंदी शिक्षण के लिए बहुत ही अच्छा रहा, इसी समय नए भारत और नए चीन की स्थापना हुई, दोनों देशों के मित्रता की नई कहानी शुरू हुई, तत्कालीन चीनी प्रधानमंत्री चऊ एन लाय ने चीनी विद्यार्थियों को हिंदी पढने लिए प्रेरित किया, उस समय के भारतीय राजदूत महोदय की पत्नी को पेइचिंग विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ाने के निमंत्रित किया गया, फलतः हिंदी का भी विकास द्रुतगति से हुआ, इस काल के हिंदी विद्वानों ने चीन के हिंदी शिक्षण की मजबूत नीवं रखी, लेकिन १९६२ में हुए भारत – चीन युद्ध ने हिंदी की विकास यात्रा पर विराम लगा दिया।

तीसरा काल वर्ष १९६६ से १९७६ तक था, यह काल चीन में सांस्कृतिक क्रांति का काल था, सांस्कृतिक क्रांति के समय चीन में बहुत असमान्य काल था, विश्वविद्यालयों में प्रवेश परीक्षा की प्रणाली को बंद कर दिया गया था, विद्यार्थियों को अनुशंसा के आधार पर प्रवेश मिलने लगा, जिसके कारण शैक्षिक रूप से असामान्य लोग विश्वविद्यालय में प्रवेश करने लगे जिसका प्रभाव हिंदी शिक्षण पर भी पड़ा, प्रवेश लेने वाले विद्यार्थी मुख्यतः किसान और सैनिक होते थे, जिनकी अकादमिक क्षेत्र में कोई विशेष रूचि नहीं थी,फलतः उनका चीन के हिंदी अध्ययन – शोध में कोई विशेष योगदान नहीं रहा।

चौथा काल १९७६ से २००५ और पांचवां काल २००५ से वर्तमान समय तक। यह समय चीन के आर्थिक विकास के प्रारंभ का समय था, अस्सी के अंत का दशक चीन के आधुनिकतावाद और आर्थिक सुधारवाद में प्रवेश का समय था, चीन में चतुर्दिक सकारात्मक परिवर्तन का समय था, आर्थिक प्रगति के साथ चीन के कई नए विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा की पढ़ाई शुरू हुई।

पांचवां काल २००५ से वर्तमान समय तक। वर्ष २००५ में चीनी राष्ट्रपति का भारत आगमन हुआ, दोनों देशों के मध्य द्विपक्षीय व्यापार बढ़ने लगा, व्यापार के साथ - साथ भाषाई सम्बन्ध भी प्रगाढ़ करने की आवश्यकता को दोनों देशों के नेताओं ने समझा और इस काल में चीन में सबसे ज्यादा विश्वविद्यालयों में हिंदी की पढाई शुरू हुई, और लगभग १० नए विश्वविद्यालयों में हिंदी पाठ्यक्रम में स्नातक एवं स्नातकोत्तर पाठयक्रम शुरू की गई।

चीन में स्नातक चार वर्षों का होता हैं, स्नातकोत्तर तीन वर्षों का होता है। हिंदी में स्नातक करने वाले विद्यार्थी पहले दो वर्ष बुनियादी हिंदी सीखते हैं, हिंदी व्याकरण, हिंदी श्रवण, मौखिक हिंदी आदि पढ़ते हैं, तृतीय वर्ष में वे भारत जाते हैं जहाँ एक वर्ष वे हिंदी भाषा के साथ साथ भारतीय संस्कृति के साथ साक्षात्कार करते हैं जो उनके लिए एक बहुत ही अलग प्रकार का अनुभव होता है, क्योंकि भारत जाने से पहले वे मीडिया के माध्यम से ही भारत से परिचित हुए होते हैं , जिससे उनके मन में भारत के प्रति थोड़ी नकारात्मक छवि बैठ जाती है कि भारत महिलाओं के लिए असुरक्षित नहीं है, लेकिन भारत में एक साल रहने के दौरान उन्हें भारतीय समाज को नजदीक से देखने का अवसर प्राप्त होता है जिससे उनके मन में भारत के बारे में बैठी भ्रान्ति समाप्त हो जाती है, उन्हें भारत से अनकहा लगाव हो जाता है जो उनके चीन वापस जाने के बाद भी अपनी ओर आकर्षित करता है, फलस्वरूप कई चीनी विद्यार्थी स्नातकोत्तर करने तथा नौकरी करने भारत चले जाते हैं। तृतीय वर्ष भारत जाने के लिए चीनी विद्यार्थियों को चीनी सरकार तथा भारतीय सरकार से छात्रवृति मिलती हैं, यदि किसी कारणवश किसी विद्यार्थी को छात्रवृति नहीं मिलती है तो वे स्वयं के खर्च से भारत चले जाते हैं। चतुर्थ वर्ष में चीनी विद्यार्थी भारत से वापस आने बाद भारत-चीन सांस्कृतिक सम्बन्ध का इतिहास, भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति, व्यावसायिक हिंदी, हिंदी –चीनी अनुवाद, हिंदी साहित्य, आदि विषय पढ़ते हैं, साथ ही पहले सत्र में हिंदी में एक लघु शोध निबंध लिखते हैं, शोध निबंध का विषय भारतीय साहित्य, समाज, भारत चीन सम्बन्ध आदि से सम्बन्धित होता है। दुसरे सत्र में विद्यार्थी बाहर किसी कंपनी में कार्यानुभव लेते है। इस प्रकार चतुर्थ वर्ष में विद्यार्थी हिंदी में शोध अनुभव भी ले लेते हैं तथा कार्यानुभव भी, जो उनके स्नातक होने के बाद उनके भविष्य निर्धारण में बहुत ही सहायक सिद्ध होता है।

आज चीन में हिंदी बहुत ही लोकप्रिय है, लोकप्रिय होने का सबसे पहला कारण तो भारत – चीन के मध्य दो सहस्त्र वर्षों के सांस्कृतिक आदान-प्रदान है। दूसरा सबसे बड़ा कारण है हिंदी का बाज़ार की भाषा होना, आज हमारी हिंदी जन भाषा, लोक भाषा, राज्य भाषा, विश्व भाषा से होते हुए बाज़ार की भाषा बन चुकी है, जिससे चीनी विद्यार्थी हिंदी विषय में अधिक रूचि ले रहे हैं। पिछले एक दशक में दस से अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी अध्यापन शुरू हुआ है, जिससे चीनी विद्यार्थियों के पास हिंदी अध्यापन में अच्छा अवसर दिखाई दे रहा है, जिसके कारण चीनी विद्यार्थी हिंदी में स्नातकोत्तर, पीएचडी कर रहे हैं। चीन

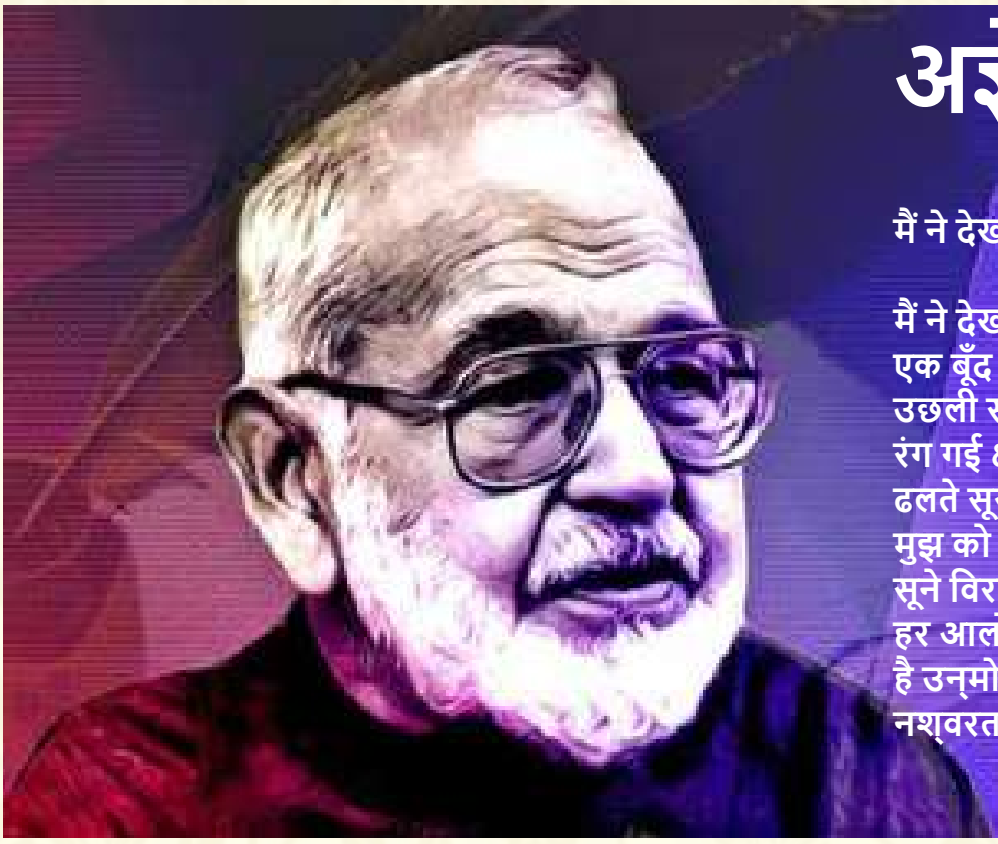

अज्ञेय

मैं ने देखा, एक बूँद

मैं ने देखा
एक बूँद सहसा
उछली सागर के झाग से;
रंग गई क्षणभर,
ढलते सूरज की आग से।
मुझ को दीख गया:
सूने विराट् के सम्मुख
हर आलोक-छुआ अपनापन
है उन्मोचन
नश्वरता के दाग से!

में हिंदी अनुवाद भी व्यापक स्तर पर हो रहे है, अभिज्ञानशाकुन्तलम, वाल्मीकि रामायण, सुर सागर, मैला आँचल, निर्मला आदि भारतीय साहित्यिक कृतियों का चीनी भाषा में अनुवाद हो चूका है। भारत से चीन आने वाले व्यापारी भी हिंदी अनुवादकों की मांग करते हैं। हाल के कुछ वर्षों में चीन में हिंदी फिल्मों की लोकप्रियता बढ़ी हैं, हिंदी फ़िल्में भारत से कई गुना अधिक व्यापार चीन में करती हैं, हिंदी धारावाहिक भी चीन में बहुत लोकप्रिय हैं, हिंदी फ़िल्में एवं धारावाहिकें चीन में चीनी सबटाइटल के साथ प्रदर्शित होती हैं, ऐसे हिंदी से चीनी अनुवादकों की मांगे दिन प्रतिदिन बढ़ रही हैं, इस प्रकार के अनुवाद कार्यों में अच्छे पैसे मिलते हैं।

भारतीय मोबाइल बाज़ार में लगभग 73 प्रतिशत हिस्सेदारी चीनी कंपनियों की है, चीनी कम्पनियाँ हिंदी से स्नातक युवाओं को अधिक वरीयता देती हैं। चीन के लगभग छः सौ शहरों में योग केंद्र है, आयुर्वेद भी बहुत लोकप्रिय है, इसके कारण भी बहुत से चीनी जिज्ञासु स्वयं भी हिंदी सीखते है।

वर्तमान समय में चीन में हिंदी भाषा एवं साहित्य पर बहुत शोध हो रहे हैं, रामचरितमानस, सूरसागर, फणीश्वर नाथ रेणु की मैला आंचल, प्रेमचंद की प्रतिनिधि कहानियों का चीनी भाषा में अनुवाद हो चूका है। चीनी विद्यार्थी स्नातक एवं स्नातकोत्तर में भी लघु शोध निबंध लिखते है, इन लघु शोध निबंधों के माध्यम से चीनी विद्यार्थी भारतीय संस्कृति, दर्शन, वाणिज्य, भारतीय नारी की स्थिति आदि को समझने का प्रयास करते हैं। साथ ही चीनी विद्वत जन भी अपने तथ्यपरक शोधों से हिंदी भाषा को समृद्ध कर रहे हैं। हिंदी में उनके योगदान को देखते हुए प्रसिद्ध चीनी शिक्षक प्रोफेसर यू लोंग यू को वर्ष 2016 में भारत के माननीय राष्ट्रपति द्वारा भारत अध्ययन के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिए "भारत विद पुरस्कार" प्रदान किया गया। बीजिंग विश्वविद्यालय के हिंदी के प्रोफेसर च्यांग चिंग ख्वेई जिनका सूरदास पर विशेष शोध कार्य हैं को हिंदी में विशेष योगदान के लिए वर्ष 2018 में भारत सरकार द्वारा "डॉ जार्ज गियर्सन पुरस्कार " प्रदान किया गया। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि हिंदी भाषा रुपी सेतु के माध्यम से भारत – चीन संबंध दिन प्रतिदिन प्रगाढ़ हो रहे हैं। चीन में हिंदी भाषा दिन प्रतिदिन लोकप्रिय हो रही है, कालांतर में भारत – चीन के मध्य सांस्कृतिक सम्बन्ध को घनिष्ट करने में जो कार्य हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म एवं योग ने किया था, आज वहीं कार्य हिंदी कर रही है।

❋

असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (हिंदी), क्वान्तोंग विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, चीन

नीदरलैंड में हिंदी

विश्वास दुबे

भारतवंशियों ने अपनी एकजुटता के लिए हिंदुस्तानी पठन-पाठन की परंपरा आरम्भ की। सनातन धर्म की कई संस्थाएँ गठित की गईं, जो भारतीय संस्कृति और भारतीय भाषाओं (हिंदी सहित) के इर्द गिर्द केन्द्रित थीं। प्रवासी भारतीयों से भी बहुत पहले इन भारतवंशियों द्वारा हिंदी भाषा का अध्ययन - अध्यापन प्रारम्भ हो गया था। उनकी हिंदी में विशेष रुचि रही। इन सुरीनामियों ने अपने पूर्वजों से हिंदी के गीत-कहानी सुने है, इनके त्योहारों पर हिंदी (भोजपुरी) गीत-संगीत बजते हैं। इस तरह भारतवंशियों के प्रभाव में हिंदी के प्रचार-प्रसार की नींव रखी गई। 14 सितम्बर को यहाँ हिंदी दिवस मनाया जाता है, इस अवसर पर सूरीनामी संस्थाओं में वाद-विवाद, भाषण, निबंध लेखन आदि कार्यक्रम होते हैं।

मैं पिछले एक दशक से भी ज्यादा समय से विदेश में हूँ, और हर देश में हिंदी के अलग रूप को देखा-समझा है।

जिस तरह प्रवासियों को एक नए देश में अनेक अवरोधों के बीच आगे बढ़ना पड़ता है, और खुद को स्थापित करना होता है, उसी तरह भाषा भी नई ज़मीन और नए देश में अपनी जगह तलाशती है। जैसे-जैसे भाषा को चाहने वाले उन अवरोधों को हटाकर भाषा का मार्ग सुगम करते हैं, वहीं किसी भाषा के प्रचार-प्रसार की राह सुनिश्चित होती है।

विदेशों में हिंदी की स्थिति सब जगह एक सी नहीं है। मॉरीशस, फ़ीजी, सूरीनाम, त्रिनिडाड जैसे देशों में जहाँ इस भाषा के प्रति प्रेम है, अनुराग है, वहीं अन्य देशों जैसे अमेरिका, यूरोप के देशों में वहाँ बसे भारतीयों की जनसंख्या के आधार पर हिंदी संपर्क भाषा बनी है और उसके अनुसार ही हिंदी का प्रसार हुआ है।

जैसी जिस देश की परिस्थिति, हिंदी भाषा के प्रसार का वैसा विविध रूप। जिन देशों में अंग्रेजी भाषा का बोलबाला है वहाँ स्थिति अलग है, उन देशों की तुलना में जहाँ अंग्रेजी हावी नहीं है। जो देश अपनी खुद की भाषा पर बल देते हैं, वह हिंदी को अंग्रेजी के समकक्ष मानते हैं। फिर ये भी है कि अपनी जनसंख्या के आधार पर भारतीय और भारतवंशी जितना प्रतिनिधित्व अपने देश की सरकार में ले पाते हैं, उसी अनुपात में यह हिंदी को उठाने की बात कर पाते हैं। किसी भाषा के प्रचार-प्रसार में यह भी जरूरी है कि वह उस देश के साहित्य में कितना जड़ जमा पाती है। रोजमर्रा के जीवन में भाषा का प्रसार यूनिवर्सिटी और स्कूलों में नहीं, घरों, सड़कों और बाजारों में उसके उपयोग पर निर्भर करता है।

यह सच है कि समय के साथ विदेशियों का झुकाव हिंदी की ओर बढ़ा है। इसमें बॉलीवुड का अहम योगदान है। कई देशों में टेलीविजन तथा सिनेमाघरों में बॉलीवुड की फिल्में दिखाई जाती है, हिंदी धारावाहिक भी दिखाई जाते हैं, जिन्हें अक्सर डब करके दिखाया जाता है। इन धारावाहिकों और फिल्मों की वजह से यहाँ के लोगों की भारतीय संस्कृति में रुचि बढ़ती है, तथा उसको जानने की उत्सुकता भी बढ़ती है, और किसी भी देश की संस्कृति को जानने के लिए वहाँ की भाषा को जानना बहुत जरूरी है। यह भी एक बहुत बड़ा कारण है कि कई देशों के लोग हिंदी में रुचि लेते हैं।

नीदरलैंड्स में मुझे लगभग 6 साल हो गए हैं और मैंने हर गुजरते साल के साथ, हिंदी को भी यहाँ फलते फूलते देखा है।

यूँ तो नीदरलैंड्स का भारतीय संस्कृति और हिंदी भाषा से पुराना रिश्ता रहा है - भारतीय साहित्यकार और महापुरुष यहाँ आते रहे जैसे रविंद्रनाथ टैगोर, महर्षि ज़ोगी आये, जिससे भारतीय संस्कृति और भाषा के प्रति लोगों की रूचि रही। कहते हैं कि आजाद हिन्द फ़ौज के सैनिक भी यहाँ आकर रहे थे। यहाँ के लायीडेन विश्वविद्यालय में डच विद्वानों ने हिंदी साहित्य पर अनेकों लेख लिखकर हिंदी साहित्य की जड़ें स्थापित करने का काम किया। भारत से भी हिंदी के साहित्यकार और विद्वान् यहाँ आंमत्रित किये गए। प्रेमचंद की 'सप्त सरोज' का हिंदी से डच में अनुवाद किया गया था।

नीदरलैंड्स में हिंदी की स्थिति को समझने में सबसे पहले ये समझना होगा कि यह देश एक मामले में अनूठा है - नींदरलैंड्स में हिंदी के प्रसार की दो धाराएं हैँ एक जो भारतवंशी संभाले हैँ और एक जो प्रवासियों ने संभाला है

यहाँ भारी संख्या में भारतवंशी है - सूरीनामी। लगभग 180,000 से ज्यादा भारतवंशी सूरीनामी नीदरलैंड में रहते हैं और जो अपने घर में डच के अलावा भोजपुरी/अवधी भाषा भी बोलते हैं। भारतीय संस्कृति, धर्म और भाषा सूरीनामी संस्कृति में समाहित है। भारतवंशियों ने अपनी एकजुटता के लिए हिंदुस्तानी पठन-पाठन की परंपरा आरम्भ की। सनातन धर्म की कई संस्थाएँ गठित की गयी, जो भारतीय संस्कृति और भारतीय भाषाओं (हिंदी सहित) के इर्द गिर्द केन्द्रित थी। प्रवासी भारतीयों से भी बहुत पहले इन भारतवंशियों द्वारा हिंदी भाषा का अध्ययन - अध्यापन प्रारम्भ हो गया था। उनकी हिंदी में विशेष रूचि रही। इन सुरीनामीयों ने अपने पूर्वजों से हिंदी के गीत कहानी सुने है, इनके त्योहारों पर हिंदी (भोजपुरी) गीत संगीत बजते हैं। इस तरह भारतवंशियों के प्रभाव में हिंदी के प्रचार प्रसार की नींव रखी गयी। 14 सितम्बर को यहाँ हिंदी दिवस मनाया जाता है, इस अवसर पर सूरीनामी संस्थाओं में वाद-विवाद, भाषण, निबंध लेखन आदि कार्यक्रम होते हैं।

नीदरलैंड्स में हिंदी के प्रचार - प्रसार में सबसे अग्रणी भूमिका हिंदी यूनिवर्स फाउंडेशन की है, जिसने पुष्पिता जी की अध्यक्षता में हिंदी के प्रसार में बहुत ठोस काम किया है। इसके आलावा हिंदी परिषद नींदरलैंड, हिंदी प्रचार संस्था और हिंदी भाषा समिति भी पिछले कई वर्षों से हिंदी के प्रसार में जुटे हैं।

यहाँ के उजाला रेडियो और आमोर रेडियो पर हिंदी गाने बजते है। कुछ प्रभावशाली सरनामी राजनीतिज्ञों ने भोजपुरी भाषा में काव्य संग्रह भी लिखें है। नींदरलैंड में कई मंदिर है जहाँ हिंदी का बोलबाला है, इन मंदिरों में भारत से आये पंडितों ने संस्कृति के साथ हिंदी की अलख जगा रहीं है।

ये सारे तथ्य हिंदी भाषा के प्रसार के आधार बने।

खुशखबरी ये है कि पिछले कुछ वर्षों में जो हिंदी के प्रचार प्रसार के लिए भारतीय सरकार द्वारा और साहित्यकारों, बुद्धिजीवियों द्वारा सतत प्रयास किए जा रहे हैं, उनमे बहुत बढ़ोतरी हुई है। कोरोना काल में सूचना प्रौद्योगिकी के साधनों द्वारा वैश्विक रूप से ऑनलाइन संवाद बढ़ा है, और इसका फायदा हिंदी प्रसार को भी हुआ है। हिंदी के प्रति एक सकारात्मक सोच बढ़ी है, कोरोना काल में सब कुछ ऑनलाइन था तो इस दौरान हिंदी के अंतरराष्ट्रीय कवि सम्मलेन, वेबिनार हुए और संपर्क सूत्र बढे। भारत की कई पत्रिकाओं में नींदरलैंड्स में रह रहे प्रवासी रचनाकारों की रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं, और इससे हिंदी साहित्य के प्रति यहाँ के युवाओं में लगाव बढ़ा है।

प्रवासी भारतीय वैश्वीकरण का सबसे प्रत्यक्ष वाहक हैं और कई ऑनलाइन सांस्कृतिक और साहित्यिक कार्यक्रमों के माध्यम से उनके बीच हिंदी एक जीवंत कड़ी बन रही है। हिंदी की वेब साइट्स की संख्या भी बहुत बढ़ी है, इंटरनेट पर हिंदी लोकप्रिय हो रही है और हिंदी साहित्य भी अब इंटरनेट के माध्यम से विश्व भर में प्रसारित होने लगा है।

पिछले कुछ वर्षों में भारतीय दूतावास और आईसीसीआर के प्रयासों में तेजी आयी है। आईसीसीआर के माध्यम से कई देशों में अब भारतीय राजदूतवास के अंतर्गत हिंदी शिक्षक भी उपलब्ध कराए जा रहे हैं। अमेरिका में तो काफी समय से हिंदी पढ़ाई जा रही है, अब यूरोप के भी कई देशों जैसे नीदरलैंड्स इत्यादि में हिंदी का प्रशिक्षण शिक्षण हो रहा है। नीदरलैंड्स में गाँधी केंद्र हिंदी के प्रचार प्रसार में सक्रिय रहा है।

किसी भी भाषा का प्रचार और प्रसार इस बात पर निर्भर है कि बोलचाल के अलावा, उस भाषा में कामकाज/व्यवसाय भी हो रहा हो। भारत विकसित देश बन रहा है और एक बहुत बड़ा बाजार है बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए जहाँ वह अपना माल भेज सकें और इसलिए उन्हें एक ऐसी भाषा की जरूरत होगी, जिससे वह भारतीयों से संपर्क साध सके। विदेशों में भी हिंदी तभी बढ़ेगी जब भारत में इसका प्रयोग बढे और यह व्यवसाय से जुड़े, जब हिंदी नित्य प्रतिदिन उपयोग में आएगी और व्यवसाय की भाषा बनेगी, रोजगार की भाषा बनेगी।

❋

सूचना प्रौद्योगिकी निदेशक, vishwas@kaviarpan.com

ग्रेट ब्रिटेन में हिंदी

डॉ. कृष्ण कुमार

1947 में भारत को स्वतंत्रता मिल गयी किन्तु देश का विभाजन कर दिया-भारत और पाकिस्तान दो स्वतंत्र देश बन गए। ब्रिटेन ने अपनी अर्थ व्यवस्था तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद हुई बर्बादी को सुधारने के लिए भारत-पाकिस्तान के सुप्रशिक्षित एवं प्रशिक्षित लोगों के लिए 'वर्क वाउचर' की शुरुआत की। इस परियोजना का लाभ उठा कर बड़ी संख्या में प्रवासी अपने-अपने परिवार के साथ आने लगे; इनको कम से तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। इस प्रकार ब्रिटेन में हिंदी के प्रारम्भिक काल की शुरुआत हुई थी। यह अनुमान लगाया जाता है कि इनकी संख्या लगभग 40 हजार हो सकती है जो मुख्यत: हिंदी भाषी प्रांतों के थे।

ग्रेट ब्रिटेन में हिंदी/हिंदुस्तानी का इतिहास लगभग चार सौ साल पुराना है और यह भारत में इनके उपनिवेशवाद से सम्बद्ध है| आलेख में बहुत ही संक्षेप में इस विषय पर चर्चा करते हुए इस देश में हिंदी की दशा-दिशा के बारे में कुछ विचार व्यक्त किये गए हैं।

सातवीं शताब्दी में अपभ्रंश से उत्पन्न हिंदी भाषा-नागरी लिपि का स्वरुप लगातार बदलता रहा है किन्तु लिपि का वर्तमान ढांचा 1100 ईस्वी तक स्थापित हो चुका था। भाषा को लिपि से अलग-थलग करके देखना और समझना गलत होगा क्योंकि दोनों के बीच आत्मा-शरीर सा सम्बंध है। चौदह सौ वर्षों में हिंदी ने अनेक भौगोलिक सीमाओं को पार किया है और अब यह कम से कम 63 देशों में सुनी जा सकती है। किसी भाषा के निस्तार, प्रचार-प्रसार, विकास एवं इतिहास का सम्यक आकलन करने से पहले यह आवश्यक होता है कि हम अपनी आधारेखा को ठीक से स्थापित कर लें जिससे कि संभावित मतभेद कम से कम रहे और वही पढ़ा-सुना जाय जो लिखा जाय।

इस संदर्भ में यूरोप में स्थित वह भूभाग जिसे आज लोग, कम से कम भारत में, तरह-तरह के नामों से सम्बोधित करते हैं ज़रूरत से ज्यादा भ्रांतियां पैदा करता रहा है। उदाहरण के लिए अच्छे पढ़े-लिखे समझदार भी ब्रिटेन, इंग्लैंड, लंदन, विलायत एवं युनाइटेड किंगडम (यू.के.) में कोई अंतर नहीं देखते हैं। 2006 में प्रकाशित एक बड़े ही प्रभावी आलेख में भारत के ही श्री नारायण कुमार जी ने एडिनबरा को (जो स्कॉटलैंड में है) इंग्लैण्ड के अंदर समाहित करते हुए यह लिखा कि 'जार्ज ग्रियर्सन का जन्म ''इंग्लैण्ड एडिनबरा'' में हुआ था[1]। इस तरह की त्रुटियाँ एक अरसे से होती आ रही हैं और यह क्रम चलता ही जाएगा जब तक कि एक सामूहिक प्रयास नहीं किया जाता। आइये हम सबसे पहले ग्रेट ब्रिटेन में हिंदी की सीमा का निर्धारण ही कर लें। विभिन्न शब्दकोशों, ऐतिहासिक पुस्तकों एवं मकड़जालादि को खंगालने के पश्चात अधोलिखित निष्कर्ष निकलता है।

ब्रिटेन को ग्रेट ब्रिटेन भी कह लेते| हो सकता है यह यहाँ के लोगों की मानसिकता का परिचायक हो। ब्रिटेन या ग्रेट ब्रिटेन कई प्रदेशों का समूह है जिसमें इंग्लैंड, स्कॉटलैंड, वेल्स और अन्य छोटे-छोटे द्वीप सम्मिलित हैं। लंदन ब्रिटेन की राजधानी एवं आज के संदर्भ में सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है [2] जो इस काउंटी का नाम भी है, ठीक दिल्ली की तरह। काउंटी का काम-काज स्थानीय आवश्यकता के आधार पर होता है न कि राष्ट्र के आधार पर। युनाइटेड किंगडम (यू.के.) ब्रिटेन में उत्तरी आयरलैंड को भी मिला लेने से बनता है। किन्तु एक बड़ी ही दिलचस्प बात यह है कि यू.के. पासपोर्ट के मुखपृष्ठ पर अंकित होता है-'युनाइटेड किंगडम एवं आयरलैंड'। अब प्रश्न यह उठता है कि यदि यू.के. में उत्तरी आयरलैंड समाहित है तो पासपोर्ट में ऐसा क्यों छपा होता है। यह एक छोटे से शोध का विषय बन सकता है। भौगोलिक एवं राजनीतिक परिभाषाओं में ठीक उसी प्रकार का कारण हो सकता है जिस प्रकार अयोध्या में सरयू एवं घाघरा नदियों को लेकर है। इन दोनों नदियों का संगम अयोध्या के पास, संभवत:, तुलसीदास जी के जन्म स्थान पसका के पास होता है जहां

वराह मंदिर भी है। इसके बाद यह साझी नदी अयोध्या की ओर बहती है। सरकारी कागजों में इसे घाघरा कहते हैं जबकि सांस्कृतिक कृतियों में इसे सरयू के नाम से सम्बोधित किया जाता है। मैं यह आशा करता हूँ कि भविष्य में प्रबुद्ध रचनाकार वही लिखेंगे या कहेंगे जो वे चाहते हैं। विलायत भी एक बहुत पुराना शब्द है जिसका प्रयोग भी गलत-सलत ढंग से होता रहा है और होता जा रहा है। वास्तव में यह एक मुहावरा सा हो गया है और भारत में कहीं भी विदेश जाने को विलायत जाना मान लिया जाता है [2]।

यू.के. में हिंदी के दृश्य को ठीक से देखने एवं इसका सम्यक आकलन करने के लिए समीक्षकों आलोचकों को उपयुक्त चश्मे का प्रयोग करना पड़ेगा अन्यथा वे वास्तविकता से वंचित रह कर अन्याय करते रहेंगे, जो वे जान-जान कर करना तो नहीं चाहते हैं। दुर्भाग्यवश यह प्रक्रिया कई दशकों से चलती आ रही है। जैसे किसी पौधे के सही विकास एवं पनपने के लिए उपयुक्त वातावरण की आवश्यकता होती है ठीक उसी प्रकार भाषा-साहित्य के साथ होता है। भारत की हिंदी और विदेशों में रची जाने वाली हिंदी में अंतर का होना स्वाभाविक ही नहीं प्राकृतिक भी है। परिवेश की विविधता तरह-तरह की वैचारिक स्थितियों को जन्म देती है। इस दृष्टि से यू.के. एवं मॉरिशस के हिंदी सृजन में बड़ी ही रोचक समानताएं हैं। दोनों देशों में हिंदी अपने आपको उस वातावरण में स्थापित करने का साहस-प्रयास कर रही है जहां की लिंग्वाफ्रैंका हिंदी न हो कर अंग्रेज़ी और फ्रेंच आधारित क्रियोल तथा दोनों देशों की व्यावहारिक भाषा अंग्रेज़ी एवं अंग्रेज़ी-फ्रेंच है। किन्तु मॉरिशस इस दिशा में 1903 से निरंतर आगे बढ़ता आया है जहां हिंदी में प्रकाशानादि की सुविधाएं उपलब्ध हैं। इस प्रकार यू.के. एवं मॉरिशस की हिंदी के इतिहास में समानता का होना स्वाभाविक ही है। इन दोनों देशों के रचनाधर्मियों की स्थिति लंका में रह रहे विभीषण जैसी लगती है; जो उसने श्री हनुमान जी से इस प्रकार व्यक्त की थी :

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महं जीभि बिचारी। ।

इस विषय पर गंभीरता से मनन करने का समय आ गया है। ग्रेट ब्रिटेन में हिंदी के इतिहास की रूपरेखा परिवेश के कारण श्री रामचंद्र शुक्ल आदि के ग्रंथों से भिन्न होगी। डॉ. श्यामधर तिवारी के मॉरिशस के हिंदी साहित्य से कुछ मदद अवश्य मिल सकती है [3]। सब चीज़ों को ध्यान में रखते हुए ग्रेट ब्रिटेन में हिंदी साहित्य के इतिहास को नीचे दिए गए रूप से विभाजित किया जा सकता है:

कालखंडों का विभाजन

1600 - 1947	ग्रेट ब्रिटेन में हिंदी/हिंदुस्तानी का आदिकाल
1947 -1980	ग्रेट ब्रिटेन में हिंदी का प्रारम्भिक काल
1980 - 1991	ग्रेट ब्रिटेन में हिंदी का संघर्ष काल
1991 -	ग्रेट ब्रिटेन में हिंदी का विकास काल /डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी काल

इन चारों काल खडों के बारे में विस्तार से या संक्षेप में ही बात करने के लिए यह आलेख उपयुक्त न होगा, अतः हम उन्हीं मुद्दों पर बात करेंगे जो विषय को ठीक से समझने में सहायक हो सकते हैं। हमने देखा है कि ग्रेट ब्रिटेन में हिंदी/हिंदुस्तानी के इतिहास के साथ इनकी भारत में उपनिवेशवाद की जड़ें फैलाना था। यक्ष प्रश्न यह बनता है कि क्यों और कैसे? और यहीं से प्रारम्भ हो जाती है पहले काल खंड-आदिकाल की कहानी। पुर्तगाली यायावर वास्को डे गामा (1469-25.2.1525) ने यूरोप के लिए भारत के समुद्री मार्ग की खोज 25 मई 1498 में कर व्यापारियों के लिए अनेकानेक संभावनाओं के द्वार खोल दिए थे। इस सदी में धार्मिक युद्ध यूरोप के विभिन्न भागों में हो रहे थे। इस दौरान ब्रिटेन में महारानी एलिजाबेथ 1 (07.09.1533-24.03.1603) का राज था और स्पेन के फिलिप 2 ब्रिटेन की रानी को परास्त कर कैथोलिक धर्म स्थापित करना चाहता था। इस कारण उसने मई 1588 में 'स्पैनिश आर्मादा' के द्वारा इंग्लैण्ड पर आक्रमण कर दिया। अंततोगत्वा ब्रिटेन की जीत तो हुई किन्तु आर्थिक रूप से देश का सत्यानाश हो गया। भारत के बारे में वे जान चुके थे कि यह 'सोने की चिड़िया' है; अतः इस पर राज करने के लिए महारानी ने 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' की स्थापना की| और एक जहाज पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत के लिए रवाना किया। कंपनी के कर्मचारियों के भाषाई प्रशिक्षण के लिए केन्द्रों की स्थापना हुई। और इसके लिए शब्दकोशों एवं प्रशिक्षण पुस्तिकाओं के निर्माण हुए एवं यहीं से ग्रेट ब्रिटेन में हिंदी/हिंदुस्तानी की नींव पड़ी। उदाहरण के लिए हैली (हार्टफोर्डशायर जो लंदन से 19 मील की दूरी पर स्थिति है) में 1803 में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने यह केंद्र खोल कर सारी योजना को बढ़ावा दिया था। धीरे-धीरे भारत के विभिन्न प्रदेशों पर इस कम्पनी का राज होता गया जो 1858 तक चला। और इसके बाद भारत का सारा प्रशासन एवं रखरखाव ब्रिटेन के शासक के आधीन आ गया। इस दौरान भारत में रहने के बाद अंग्रेज़ अफसर अपने साथ घर में काम करने लिए खानसामों एवं मजदूरों को लाते रहे।

1947 में भारत को स्वतंत्रता मिल गयी किन्तु देश का विभाजन कर दिया-भारत और पाकिस्तान दो स्वतंत्र देश बन गए। ब्रिटेन ने अपनी अर्थ व्यवस्था तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद हुई बर्बादी को सुधारने के लिए भारत-पाकिस्तान के सुप्रशिक्षित एवं प्रशिक्षित लोगों के लिए 'वर्क वाउचर' की शुरुआत की। इस परियोजना का लाभ उठा कर बड़ी संख्या में प्रवासी अपने-अपने परिवार के साथ आने लगे; इनको कम से तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। इस प्रकार ब्रिटेन में हिंदी के प्रारम्भिक काल की शुरुआत हुई थी। यह अनुमान लगाया जाता है कि इनकी संख्या लगभग 40 हजार हो सकती है [4] जो मुख्यतः हिंदी भाषी प्रांतों के थे। धीरे-धीरे समय एवं परिवारों के विस्तार के साथ बच्चों से आपस में संवाद करने के लिए इनको हिंदी पढ़ाने वाले अध्यापकों की आवश्यकता पड़ी और हिंदी भाषा का प्रयोग ब्रिटेन में बढ़ने लगा। यह काम मंदिरों, सामुदायिक केन्द्रों एवं घरों में होने लगे। इनकी मांग के दबाव के कारण ब्रिटिश सरकार ने भी मुख्यधारा के विद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई को स्वीकार करते हुए पाठ्यक्रमों

में हिंदी को भी समाहित कर दिया। कालांतर में यही ऐच्छिक विषय के रूप में कई विश्वविद्यालयों में भी होने लगा। अंततः ब्रिटेन के विद्यालयों में हिंदी का शिक्षण होने लगा और मानित परीक्षाएं भी होने लगीं। 1994 में परिस्तिथियाँ बदलीं और परीक्षाएं बंद हो गईं हिंदी भाषी हितैषियों के दबाव में आकर सरकार ने 'हिंदी सीढ़ी' परियोजना की नींव रखी। हिंदी पढ़ने वाले बच्चों की संख्या कम होने के कारण यह सफल न हो सकी और 1994 के बाद विद्यालयों में इसका शिक्षण बंद ही हो गया। ऐसी स्थिति का जन्म होने में भारतीयों एवं भारत सरकार की निष्क्रियता ही मूल कारण था। इस दिशा में हुए कुछ प्रयास असफल किये जा रहे हैं। और यही स्थिति आज भी है। ब्रिटेन में हिंदी के संघर्ष काल में स्वैच्छिक कक्षाओं में, मंदिरों में तथा व्यक्तिगत शिक्षकों द्वारा ही हिंदी की पढ़ाई चलती रही। किन्तु विगत कुछ वर्षों में आशा की कुछ किरणें दिखने लगी हैं। इसके बारे में कुछ चर्चा आगे करेंगे।

ब्रिटेन में हिंदी का स्वरूप विकास काल/डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी काल में यह न केवल प्रचार-प्रसार में आगे बढ़ा वरन देवनागरी लिपि में हिंदी लेखन में अभूतपूर्व परिवर्तन आया जिसका श्रेय डॉ. सिंघवी जी को जाता है। हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं में सैकड़ों पुस्तकों का प्रकाशन हुआ यद्यपि ब्रिटेन में इसकी कोई सुविधा न थी। इस कारण रचनाकारों को बड़ी परेशानी निरंतर होती रही और प्रकाशक-मुद्रक इसका लाभ उठाते रहे। इस दिशा में भारत के कुछ आलोचकों ने भी प्रवासी कृतियों को सहनशीलता-सकारात्मक उदारता की दृष्टि से न देख कर, बिना उनके परिवेश एवं संघर्ष को ठीक से समझे, इनकी बहुत भर्त्सना की है। मैं इस बात की वकालत नहीं कर रहा कि इनकी रचनाओं को किसी कोटे के अंदर छापा एवं सराहा जाए। ब्रिटेन में हिंदी के भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि भारत सरकार के सहयोग एवं प्रोत्साहन से यहाँ भी मॉरिशस की तरह देवनागरी लिपि में प्रकाशन की परियोजनाओं का सूत्रपात किया जाए| एक छोटी सी पहल बीकन बुक्स (प्राइवेट) लिमिटेड बर्मिंघम ने की तो ज़रूर है किन्तु यथोचित संशाधनों के अभाव के कारण इस दिशा में गति नहीं आ पाई है। मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि क्योंकि डॉ. सिंघवी एवं उनकी पत्नी श्रीमती कमला सिंघवी जी भी काव्य साधना में लीन थे, उन्होंने बड़ी लगन के साथ मार्क ट्वैन के वक्तव्यानुसार ब्रिटेन के हिंदी लेखन को प्रोत्साहित किया। सुप्तप्राय कवि सम्मेलनों में नई ऊर्जा भरी और यह चल निकला, जो निरंतर नियमित रूप से हर वर्ष चलता रहा, करोनाकाल में लॉकडाउन के समय को छोड़ कर। ब्रिटेन में हिंदी शिक्षण के अतीत और वर्तमान के बारे में यॉर्क विश्वविद्यालय के श्री महेंद्र वर्मा जी ने अपने आलेख [4] में सविस्तार लिखा है जिसका प्रयोग इस आलेख में भी किया गया है।

जैसा संकेत किया गया है कि वर्तमान के ब्रिटेन में हिंदी की प्रगति में एक प्रकार का उछाल सा आया है। ब्रिटेन में प्रवासी भारतीयों की तीसरी और चौथी पीढ़ी के लोग बड़े हो रहे हैं जो अपनी जड़ों से जुड़ना तथा अपने-अपने बाबा-नाना के परिवारों से संवाद बनाए रखना चाहते हैं, अब बड़ी संख्या में वे हिंदी पढ़ और लिख भी रहे हैं। 1980 के दशक में हिंदी को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से एक अभिनव प्रयोग दक्षिण अफ्रीका के विरजानंद वदुलो एवं हीरालाल शिवनाथ जी के माध्यम से हुआ। इसकी सूचना 'इंडिया संवाद' ने 'PIOs Promoting Hindi Abroad: Story of Two Flag bearers of Hindi in South Africa' आलेख के माध्यम से दी थी। इन दोनों ने हिंदी को आगे बढ़ाने के लिए अपने घरों पर 'सत्संग ग्रुप' की 1982 में स्थापना की। इसके माध्यम से लगभग 40 बच्चों के साथ हिंदी पढ़ाने की शुरुआत की। सत्संग के माध्यम से हिंदी के बारे में इन लोगों ने विश्व हिंदी दिवस 2018 के समय सूचना दी थी। इस योजना के अंतर्गत बच्चे हिंदी में भजन गाते और धार्मिक कार्यक्रमों को टेलीविज़न के पर्दे पर देखते। बातों-बातों में इनको हिंदी भी पढ़ाते। कुछ ऐसा ही प्रयोग बर्मिंघम, यू.के., में कवीन्द्र सिंह एवं गीता सिंह और अन्य 7 परिवारों के माध्यम से, 'बर्मिंघम सत्संग संगम' के रूप में हुआ। इसकी शुरुआत 24 जनवरी 2015 में हुई एक सुनियोजित पूर्वनिर्धारित शैली के अनुसार। इस संगम के सदस्य प्रति सप्ताह मिलते और सत्संग के बाद वे अपने सुख-दुःख को साझा भी करते। उत्तरोतर यह परिवार बढ़ता गया और 2018 तक यह संख्या 7 से 30 पहुंच गई। बच्चे हिंदी बोलने और लिखने ही नहीं लगे वरन सार्वजनिक मंचों पर अपनी रचनाओं का पाठ भी करने लगे। आकर्ष बंसल की स्वरचित हिंदी कविताएँ प्रकाशित भी होने लगीं [5]। राखी बंसल ने अपने एक आलेख में इस परियोजना के बारे में विस्तार से लिखा है [6]।

इस प्रकार यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि ब्रिटेन में हिंदी का भविष्य अब काफी उज्ज्वल है जिसमें स्थानीय अंग्रेज़ भी बढ़-चढ़ कर अपना योगदान कर रहे हैं क्योंकि वे यह सोचते हैं कि हिंदी के ज्ञान से वे अपना काम सुचारु रूप से कर सकेंगे।

संदर्भ:

1. नारायण कुमार, 'विलायत में हिंदी नवरत्न', प्रवासी संसार, वर्ष 3, अंक 4, अक्टूबर-दिसंबर 2006, पृष्ठ 23-25 एवं 38।
2. McGregor, R.S., ''The Oxford Hindi-English Dictionary'', Oxford University Press, 1983 edition.
3. कमल किशोर गोयनका, 'हिंदी का प्रवासी साहित्य', साक्षात्कार (प्रवासी भारतीय हिंदी लेखन विशेषांक), अंक 329-339, मई-जुलाई 2007, पृष्ठ 13-38।
4. महेंद्र किशोर वर्मा, 'इंग्लैंड में हिंदी शिक्षण:अतीत और वर्तमान' अक्षरा, अक्टूबर 2022, पृष्ठ 89-94।
5. आकर्ष बंसल, 'कोरोना', आधुनिक साहित्य (यू.के.), अप्रैल-दिसंबर 2020, अंक 10-12, पृष्ठ 91 (युवा स्वर के अंतर्गत)।
6. राखी बंसल, 'ग्रेट ब्रिटेन में हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति की पुनरावृति:सत्संग के माध्यम से ..', आधुनिक साहित्य (यू.के.), जनवरी-मार्च 2018, अंक 1, पृष्ठ 8-10।

❋

वरिष्ठ साहित्यकार एवं संस्थापक, गीतांजलि यू.के.
ई-मेल: profdrkrishna@googlemail.com

अटल बिहारी वाजपेयी

भारत जमीन का टुकड़ा नहीं

"भारत जमीन का टुकड़ा नहीं,
जीता जागता राष्ट्रपुरुष है।
हिमालय मस्तक है, कश्मीर किरीट है,
पंजाब और बंगाल दो विशाल कंधे हैं।
पूर्वी और पश्चिमी घाट दो विशाल जंघायें हैं।
कन्याकुमारी इसके चरण हैं, सागर इसके पग पखारता है।
यह चन्दन की भूमि है, अभिनन्दन की भूमि है,
यह तर्पण की भूमि है, यह अर्पण की भूमि है।
इसका कंकर-कंकर शंकर है,
इसका बिंदु-बिंदु गंगाजल है।
हम जिएंगे तो इसके लिए
मरेंगे तो इसके लिए।"

-अटल बिहारी वाजपेयी

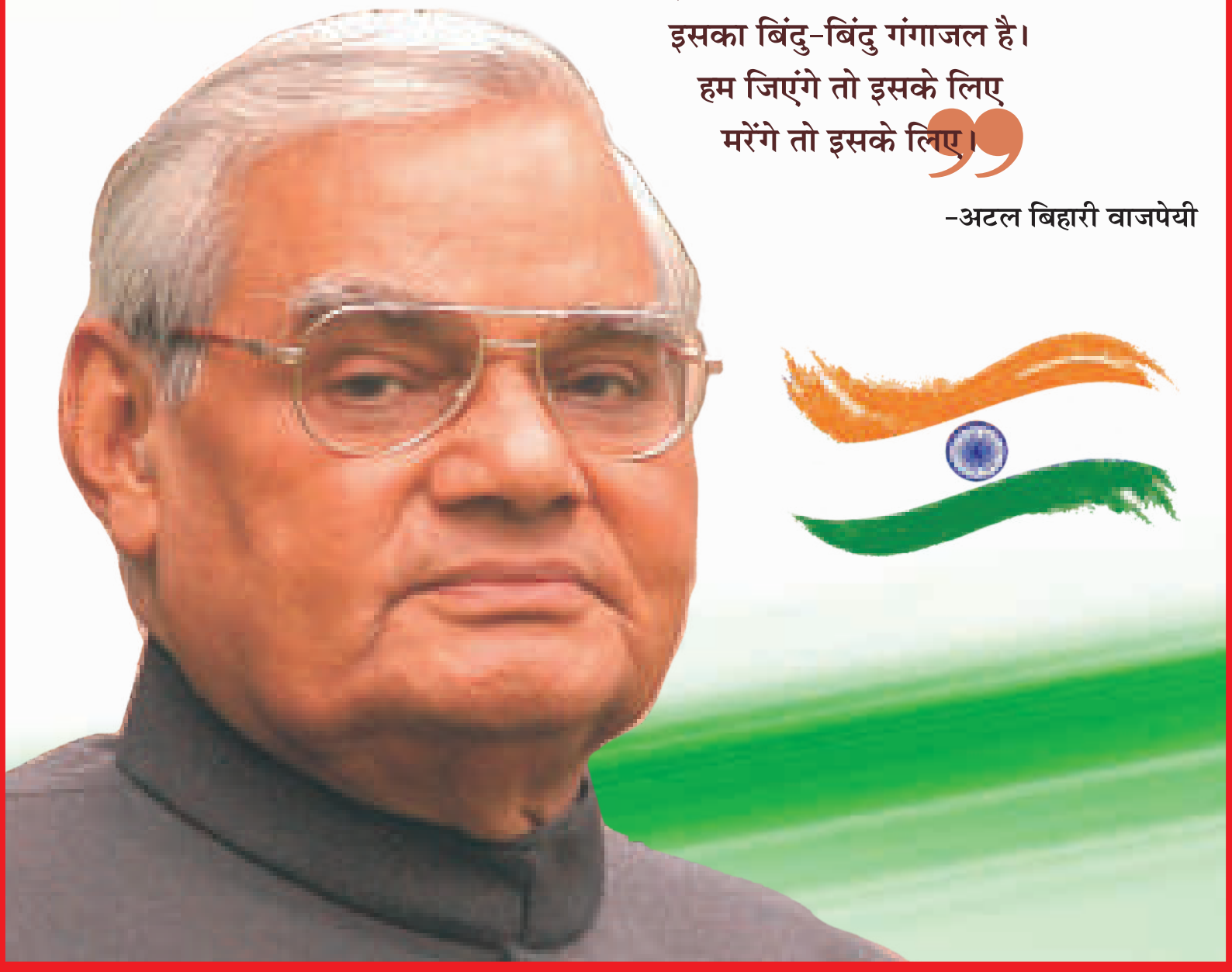

संस्कृति कुंभ

गगनांचल
साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

वर्ष 46 अंक 1-2 जनवरी - अप्रैल 2023
12वां विश्व हिंदी सम्मेलन विशेषांक

हिंदी बिरवा

शर्त में जिसने जीवन को उत्सर्ग किया,
हम उन्हीं के श्री चरणों में शीश झुकाते हैं,
हम रक्त बिंदुओं से सींच-सींच, हिंदी बिरवा पनपाते हैं।।

हम फीजी के नंदन कानन में,
सर्व जाति के तरूण-तरूणियों में,
गाँव-गाँव में झूम-झूम कर,
हिलमिल जुल वर्ष अंत में,
निज स्नेहाजिल चढ़ा-चढ़ा कर, भक्ति भाव दर्शाते हैं।
हम रक्त बिंदुओं से सींच-सींच, हिंदी बिरवा पनपाते हैं।

फिर बन कर माली हिंदी बगिया के,
लता बेलियों की डाल-डाल में,
कली फूल पर चहक-चहक कर,
बाल किरण की रश्मि आभा में,
उस वीणा की तंत्रीतार को, बार-बार झनकाते हैं।
हम रक्त बिंदुओं से सींच-सींच, हिंदी बिरवा पनपाते हैं।
फिर हिंदी साहित्य सम्मेलन की,
हम महफिल साज सजाते हैं,
बन उनके सहचर हम अपना-अपना
रस भीनी राग झँकाते हैं।

उसी लतिका की स्वर-लहरी को, फिर गीतों में गाते हैं।
हम रक्त बिंदुओं से सींच-सींच, हिंदी बिरवा पनपाते हैं।
कभी बैठ इस सम्य विजन में,
हम गायक बन जाते हैं,
अपनी कल्पना वेदी पर,
स्वप्निल धूनी नमाते हैं,
उन्मादित हो बीच-बीच में, हिंदी अलख जगाते हैं।
हम रक्त बिंदुओं से सींच-सींच, हिंदी बिरवा पनपाते हैं।।
अभी-अभी तो किसलय ही है,
किसलय से कलियाँ होंगी,
कलियों से फिर फूल-फूल में,
मीठी रंग-रलियाँ होंगी,
इसलिए तो विंधे ''कुमुद'' मधुप बने मँडराते हैं।
हम रक्त बिंदुओं से सींच-सींच, हिंदी बिरवा पनपाते हैं।

-काशी राम कुमुद (फीजी)

गांधी और वंदेमातरम् : अमर पवित्र राष्ट्रगीत

डॉ. कमल किशोर गोयनका

गांधी की दृष्टि में स्वराज्य का स्वप्न हिंदू-मुस्लिम एकता से ही संभव था और इसके लिए वे मुस्लिम नेताओं तथा समाज को संतुष्ट करने तथा स्वराज्य संघर्ष में साथ देने के लिए तीन नारों में दो नारे (पहला और तीसरा) स्वीकार कर रहे थे, जिनमें 'अल्लाह हो अकबर' नारे को प्रथम स्थान पर रखकर भी उन्होंने 23 अगस्त, 1947 की कलकत्ता की प्रार्थना-सभा में कहा था, "यह मर्मस्पर्शी धार्मिक नारा है, जिसका अर्थ है कि ईश्वर महान है, पर मैं स्वीकार करता हूं कि हिंदुस्तान में इस नारे के साथ जो जुड़ा है, वह अच्छा नहीं है। यह अक्सर हिंदुओं को आतंकित कर देता है, क्योंकि कभी-कभी मुसलमान क्रुद्ध होकर हिंदुओं को मारने-पीटने के लिए यह नारा लगाते हुए मस्जिदों से बाहर निकलते हैं।"

आधुनिक भारत के इतिहास में उन्नीसवीं सदी कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है– इस सदी में ब्रिटिश पराधीनता स्थायी रूप से स्थापित हो गई, ब्रिटिश पराधीनता के क्रूर दमन, शोषण, अन्याय तथा भारतीयों को हमेशा के लिए गुलाम बनाने के विरुद्ध स्वाधीनता के लिए पहला सशस्त्र विद्रोह हुआ और असफल हुआ तथा इसके साथ ही भारतीय आत्मा पर हुए नृशंस आघातों एवं जख्मों ने सदी के अंतिम दशकों में जीवन के हर क्षेत्र में–राजनीति, धर्म, समाज, साहित्य, कला आदि में, ऐसे महान व्यक्तियों को जन्म दिया जिन्होंने देश की जनता को जागृत किया तथा उसके मन में दासता से मुक्त होकर स्वराज्य में जीने-मरने का स्वप्न उत्पन्न कर दिया। यदि हम आजादी के इन सत्तर-पिचहत्तर वर्षों का इतिहास देखें तो हमें इन महान भारतीयों की तुलना में ऐसे दो-चार व्यक्तियों से अधिक दिखाई नहीं देंगे। उन्नीसवीं सदी में राजा राममोहन राय, बंकिम, विद्यासागर, विवेकानंद, टैगोर, शरत्, सुभाषचंद्र बोस, अरविंद घोष, गांधी, पटेल, स्वामी दयानंद, राजेंद्र प्रसाद, कृपलानी, लाला लाजपतराय, हरदयाल, प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, मैथिली शरण गुप्त, स्वामी श्रद्धानंद, रवि वर्मा, पृथ्वीराज कपूर आदि की लंबी परंपरा दिखाई देती है जो भारत की सोई, दबी, ढकी तथा दमित आत्मा को जागृत करके देश में पराधीनता से मुक्ति तथा स्वाधीनता की कामना को साकार रूप दे रही थी, और इनमें कुछ भारतीय– स्वामी विवेकानंद, गांधी, हरदयाल आदि विदेश में भी इस नई भारतीय चेतना और जागृति का प्रचार-प्रसार कर रहे थे। इस प्रकार उन्नीसवीं सदी जहाँ भारतीयों की पराजय का काल है, वहाँ वह राष्ट्र को जागृत करने वाली कई पीढ़ियों के जन्म और सक्रिय होने का भी युग है। इन पीढ़ियों ने ही अपने राष्ट्रीय- सांस्कृतिक विचारों तथा जागरण-कार्यों से भारत की बीसवीं सदी के इतिहास के स्वरूप को निर्मित किया, जो आधुनिक इतिहास का उज्ज्वलतम पक्ष है।

गांधी और 'वंदेमातरम्' के साथ उनके संबंधों के प्रसंग में इस पृष्ठभूमि को समझना और जानना जरूरी है। गांधी ने पराधीन देश के नागरिक के रूप में इंग्लैंड में बैरिस्टरी की शिक्षा ली और अंग्रेजों की दासता के जाल में फँसे दक्षिण अफ्रीका में ही लगभग बीस साल तक वकालत की और ब्रिटिश साम्राज्य का सहयोग करने के साथ वे दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के अधिकारों के लिए अहिंसक लड़ाई लड़ते रहे, परंतु दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए वे भारत आते रहे और भारत की राजनीतिक हलचलों तथा समस्याओं से भी रूबरू होते रहे। कलकत्ता में 1901 में कांग्रेस का सम्मेलन हुआ तो उन्होंने उसमें भाग लिया और बंगाल के पत्रकारों, संपादकों तथा नेताओं से भी उन्होंने मुलाकातें कीं और वहाँ के समाज से थोड़ा बहुत संबंध बना, किंतु उनकी इस यात्रा से काफी पहले बंगाल में एक ऐसी घटना हो चुकी थी, जिसने पराधीन

भारत के इतिहास को बदल दिया और गांधी ने इस यात्रा के समय इस महान गीत का गायन सुना। इससे काफी पहले बंगला लेखक बंकिमचंद्र ने 1875 में 'वंदेमातरम्' गीत की स्वतंत्र रूप में रचना की और 1980-82 में धारावाहिक रूप में प्रकाशित होने वाले उपन्यास 'आनंदमठ' में इस गीत को उसका हिस्सा बना दिया और जब 1883 में 'आनंदमठ' का मंचन हुआ तो 'वंदेमातरम्' का पहली बार गायन हुआ। कलकत्ता में 28 दिसंबर,1896 को राष्ट्रीय सभा की बैठक में रवींद्रनाथ टैगोर ने 'वंदेमातरम्' को संपूर्ण रूप में अपनी स्वर-रचना में सुनाया और 1901 के अधिवेशन में कांग्रेस के मंच पर दक्षिणायन सेन ने अपनी स्वर- लहरी में इस गीत का गायन किया और इसके बाद कांग्रेस के अधिवेशनों में इसे राष्ट्रगीत मानकर इसके गायन की परंपरा ही बन गई। बंकिम की बड़ी पुत्री शदकुमारी की राय में यह अच्छा गीत नहीं था, लेकिन बंकिम ने उसे उत्तर दिया," तुम एक दिन देखोगी कि दस-बीस वर्ष में ही इस गीत के कारण सारा बंगाल सुलग उठेगा और सारे देशवासी इसके प्रभाव में आ जाएंगे।" बंकिम का देहांत 8 अप्रैल, 1894 को हो गया, लेकिन उनकी यह भविष्यवाणी सच हुई और गांधी भी इसके साक्षी और संवाहक बने।

गांधी की 1901 की यात्रा से पहले लॉर्ड कर्जन भारत में वाइसराय (6 जनवरी,1899-18 नवंबर,1905) बनकर आ गये थे और सुधारों के नाम पर उन्होंने कई कार्य किये, लेकिन उनके बंगाल विभाजन के कार्य ने बंगाल में एक अद्भुत राष्ट्रीय क्रांति उत्पन्न कर दी और इसके परिणामस्वरूप उन्हें पद से हाथ धोकर इंग्लैंड लौटना पड़ा, परंतु बंग-भंग की उनकी योजना ने जैसे पूरे देश को जाग्रत कर दिया। लॉर्ड कर्जन ने क्षेत्र तथा धर्म के आधार पर बंगाल को हिंदू और मुस्लिम क्षेत्रों में विभक्त कर दिया और 19 जुलाई, 1905 को इसकी घोषणा की और 16 अक्टूबर, 1905 को विभाजन का कानून लागू कर दिया। कर्जन की घोषणा के बाद बंगाल में इसका विरोध शुरू हो गया और 7 अगस्त, 1905 को कलकत्ता के कालेज चौक पर हजारों छात्र एकत्र हुए और 'वंदेमातरम्' का गीत गूँज उठा। महर्षि अरविंद घोष ने 17 अप्रैल, 1907 को अपने लेख में लिखा," प्रदीर्घ निद्रा से जाग जाते समय बंगवासियों ने सत्य का दर्शन करने के लिए इधर-उधर देखा और उसी परम सौभाग्यशाली क्षण में किसी ने 'वंदेमातरम्' कहा। बस मंत्र मिल गया और एक ही दिन में संपूर्ण राष्ट्र देशभक्ति के धर्म का अनुचर हो गया। माता ने अपना दिव्य-दर्शन कराया। जिन लोगों ने यह दर्शन किया, उनमें फिर शांति और विश्राम दोनों गायब हो गये। अब शांति कैसे? विश्राम कैसे? जब तक मंदिर पूर्णतः साकार नहीं होता, उसकी मूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठा नहीं हो पाती, उसे बलि नहीं चढ़ाई जाती, तब तक फिर निद्रा की सोची भी नहीं जा सकती। दिव्य-दर्शन प्राप्त राष्ट्र फिर कभी भी आक्रांता से पददलित नहीं हो सकता। 'वंदेमातरम्' भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का पहला युद्ध-मंत्र है जो बुलंदी के साथ प्रकट हुआ है।" इससे पहले वे 13 अक्टूबर, 1905 को कलकत्ता में 'वंदेमातरम्' सम्प्रदाय की स्थापना कर चुके थे। इस कानून के लागू होते ही बंगाल में जैसे विरोध की तथा अपनी दबी भारतीय चेतना का विस्फोट हो गया। 16 अक्टूबर, 1905 को राखी बंधन आंदोलन शुरू हो गया और रवींद्रनाथ टैगोर इस विशाल समूह का नेतृत्व कर रहे थे तथा लोग परस्पर राखी बाँधते हुए यह गीत गा रहे थे:---

सात कोटि लोकेर करुण क्रंदन,
सुने ना सुनिल कुर्ज्जन दुर्ज्जन।
ताइ निते प्रतिशोध मनेर मतन,
करिलाम राखी बंधन।
नगरे नगरे ज्वाला रे आगुन,
हृदये हृदये प्रतिज्ञा दारुण।
विदेशी वाणिज्य कर पदाघात,
मायेर दुर्दशा घुचाबे भाई।

गांधी को दक्षिण अफ्रीका में इस बंग-भंग आंदोलन तथा 'वंदेमातरम्' के उद्घोष की महाध्वनि शीघ्र ही सुनाई पड़ी और उन्होंने अपने अखबार 'इंडियन ओपिनियन' के 2 दिसंबर, 1905 को 'वंदेमातरम् : बंगाल का शौर्यमय गीत' लेख लिखा और हिंदी एवं गुजराती में संपूर्ण 'वंदेमातरम्' को भी उद्धृत किया और अपने लेख में लिखा," पश्चिम के प्रत्येक राष्ट्र का अपना राष्ट्रगीत है। यह गीत अच्छे अवसरों पर गाया जाता है। अंग्रेजी में 'गॉड सेव द किंग' गीत ही प्रसिद्ध है। उसको गाते समय अंग्रेजों में शौर्य आता है। जर्मनी का राष्ट्रगीत भी प्रख्यात है। फ्रांस का 'मारसले' गीत इतने ऊंचे दर्जे का है कि वह जब गाया जाता है, तब फ्रांसीसी लोग उन्मत्त हो जाते हैं। इस प्रकार के अनुभवों से बंगाली कवि बंकिमचंद्र के मन में बंगाली लोगों के लिए एक गीत बनाने का विचार आया। उन्होंने 'वंदेमातरम्' नाम का गीत रचा है जो इस समय सारे बंगाल में फैला हुआ है। बंगाल में स्वदेशी माल के व्यवहार-संबंधी आंदोलन के सिलसिले में विराट सभाएँ की गई हैं। उनमें लाखों लोग एकत्रित हुए हैं और सभी ने बंकिमचंद्र का गीत गाया है। कहा जाता है कि यह गीत इतना लोकप्रिय हो गया है कि राष्ट्रगीत बन गया है। अन्य राष्ट्रों के गीतों से यह मधुर है और इसमें विचार उत्तम हैं। दूसरे राष्ट्रों के गीतों में अन्य राष्ट्रों के बारे में खराब विचार होते हैं। इस गीत में ऐसी कोई बात नहीं है। इस गीत का मुख्य हेतु सिर्फ स्वदेशाभिमान पैदा करना है। इसमें भारत को माता का रूप देकर उसका स्तवन किया

गया है। जिस प्रकार हम अपनी माँ में सभी गुणों का भाव मानते हैं, उसी प्रकार कवि ने भारत माता में सभी गुण माने हैं। जिस प्रकार हम माँ को श्रद्धापूर्वक पूजते हैं, उसी प्रकार इस गीत में भारत माता की प्रार्थना की गई है। इसमें अधिकतर शब्द संस्कृत के हैं, किंतु सरल है, भाषा बंगला है, परंतु वह भी सरल ही रखी गई है। इसलिए इस गीत को सभी समझ सकते हैं। यह गीत इतने उच्चकोटि का है कि हम उसके शब्दों को ज्यों-का-त्यों गुजराती में दे रहे हैं और साथ ही हिंदी भाषा में भी।" गांधी ने इसके चार साल बाद लिखी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ' हिंद स्वराज' में भी बंग-भंग पर विस्तार से लिखा है। वे लिखते हैं कि देश में सही जागृति लॉर्ड कर्जन के बंग-भंग से उत्पन्न हुई और अंग्रेजी राज को पहली बार इतना बड़ा धक्का लगा था तथा बंगाल के टुकड़े करने का विरोध करने के लिए प्रजा उठ खड़ी हुई और बंगाल की हवा उत्तर में पंजाब तक और दक्षिण में मद्रास इलाके में कन्याकुमारी तक पहुँच गई है। इसने अंग्रेजी जहाज में स्थायी दरार डाल दी है, परंतु हम में भी 'माडरेट' (नरम दल, डरपोक पक्ष) तथा 'एक्स्ट्रीमिस्ट' (गरम दल, हिम्मतवाला पक्ष) दो दल बन गये हैं और सूरत कांग्रेस में तो करीब-करीब मारपीट हो गई थी, फिर भी देश में जागृति आई है और उसे बनाकर रखना है। गांधी के ये वक्तव्य बंग-भंग की घटना के बाद के हैं, परंतु उनका विचार उस समय का भी मिलता है जब वे बंकिमचंद्र तथा उनकी किसी कृति को जानते भी नहीं थे और अपनी किशोरावस्था में उन्होंने 'वंदेमातरम्' गीत सुना था। गांधी ने अपने लेख 'राष्ट्रीय झंडा' लेख में जो 'हरिजन' में 1जुलाई, 1939 को प्रकाशित हुआ, लिखा है," सवाल यह नहीं है कि यह गीत (वंदेमातरम्) किसने लिखा और कैसे एवं कब लिखा।बंग-भंग के दिनों में यह हिंदुओं तथा मुसलमानों,सभी का बहुत ही प्रभावशाली युद्ध का नारा बन गया था। जब मैं अपनी किशोरावस्था (13-18 वर्ष, अर्थात् 1883-88) में 'आनंदमठ' या उसके अमर लेखक बंकिमचंद्र के बारे में कुछ नहीं जानता था, तब भी 'वंदेमातरम्' ने मुझे अभिभूत कर दिया था और जब मैंने सबसे पहली बार 'वंदेमातरम्' को गाते हुए सुना तब मैं मंत्रमुग्ध हो गया। पवित्रतम राष्ट्रीय भावना इस गीत में मैंने देखी। मुझे महसूस ही नहीं हुआ कि यह केवल हिंदुओं का गीत है या सिर्फ हिंदुओं के लिए रचा गया है। इसने लाखों भारतीयों के दिलों पर अधिकार कर लिया है। यह बंगाल के अंदर या बाहर लाखों लोगों के हृदय की गहराई तक पहुँच कर देशभक्ति के भाव को आंदोलित कर दिया है। बंगाल ने देश को और जो देनें दी हैं, उनमें से इस गीत की कुछ कड़ियाँ भी राष्ट्र को एक देन हैं। जब तक राष्ट्र जीवित है, तब तक यह राष्ट्रगीत भी अमर रहेगा।" (संपूर्ण गांधी वांग्मय,खंड:69, पृष्ठ 413-14)। इससे स्पष्ट है कि गांधी किशोरावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था (70 वर्ष की आयु) तक 'वंदेमातरम्' को पवित्र तथा अमर राष्ट्रगीत मान रहे थे और उसे राष्ट्र के अस्तित्व के साथ जोड़ कर उसके अमरत्व की घोषणा भी कर रहे थे।

गांधी के दक्षिण अफ्रीका से लौटने तथा राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व करने तथा स्वराज्य के लिए भारत के सभी धर्मों, जातियों तथा क्षेत्रों के लोगों को साथ लेकर चलना था और इस कारण से उन्होंने हिंदू- मुस्लिम एकता की नीति बनाई और खिलाफत आंदोलन का समर्थन किया और ईश्वर के साथ अल्ला को जोड़कर दोनों धर्मों को साथ लाने का प्रयत्न किया, लेकिन बंग-भंग ने दोनों के बीच इतनी दूरी बढ़ा दी कि 1906 में 'मुस्लिम लीग' की स्थापना हुई और आगे चलकर मजहब के आधार पर पाकिस्तान का जन्म हुआ। गांधी अपने स्वराज्य आंदोलन में 'वंदेमातरम्' को सबके लिए राष्ट्रीय-गीत बनाना चाहते थे और कांग्रेस अधिवेशनों में सबसे पहले इसी गीत का गायन होता था, परंतु कांग्रेस 'नरम दल' और 'गरम दल' के रूप में बँट गई और कांग्रेस में तथा उसके मुस्लिम सदस्यों में तथा सरकारी संस्थाओं आदि में 'वंदेमातरम्' का विरोध शुरू हो गया। सरकारी संस्थाओं आदि में 'गॉड सेव द किंग' गाया जाता था और मुस्लिम सदस्य अपने मजहब का हवाला देकर 'वंदेमातरम्' का विरोध इस आधार पर करते थे कि इसमें भारत माता की पूजा करने की प्रार्थना है और यह इस्लाम के विरुद्ध है। कांग्रेस में तो 1905 में ही गोखले नहीं चाहते थे कि अधिवेशन में 'वंदेमातरम्' का गायन हो, परंतु लोगों की जबरदस्त माँग पर रवींद्र नाथ

टैगोर की बहन की बेटी सरला देवी चौधरी ने इस राष्ट्रगीत का पूरा गायन किया। गांधी को इस विरोध का कई रूपों में सामना करना पड़ता है और वे कभी दृढ़ता तथा कभी बीच का रास्ता और कभी एक व्यक्ति के विरोध पर भी इस गीत को न गाने की बात कहते हैं। उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद ने 1938 में जब 'वंदेमातरम्' के गाने पर रोक लगाई गई तो गांधी ने अपने पास आये छात्रों से कहा कि 'वंदेमातरम्' धार्मिक गीत नहीं है और उन्हें पूरा अधिकार है कि वे अपने कमरों या प्रार्थना सभाओं में इसे गायें और यदि अधिकारी न मानें तो अपनी पढ़ाई बंद कर दें। इस संबंध में जब गांधी के वक्तव्य को लेकर कुछ उलझन पैदा हुई तो गांधी ने 'वंदेमातरम्' शीर्षक टिप्पणी में यह भी लिखा कि "अगर किसी मिली-जुली भीड़ में कोई व्यक्ति कांग्रेस द्वारा स्वीकृत रूप में भी (आरंभिक दो पद) 'वंदेमातरम्' गीत गाने पर आपत्ति करता है, तो उसे नहीं गाया जाना चाहिए। इसके साथ यह भी कहते हैं कि मैं यह जानना हूं कि बहुत से देशभक्तों के लिए 'वंदेमातरम्' का गायन एक धार्मिक कर्तव्य हो गया है।" (' संपूर्ण गांधी वांग्मय', खंड: 69, पृष्ठ 474-75)। इसी प्रसंग में गांधी 6 अक्टूबर, 1940 को 'हरिजन' अंग्रेजी में लिखते हैं कि " 'वंदेमातरम्' राष्ट्रगीत है या नहीं, इस बात का फैसला करना मिशनरियों का काम नहीं है। उनके लिए यह जानना काफी है कि विद्यार्थी इस गीत को राष्ट्र-गीत मानते हैं।"

कांग्रेस और तीन नारों का विवाद

गांधी के असहयोग आंदोलन के बाद कांग्रेस का नेतृत्व लगभग गांधी के ही हाथ में आ गया और वे ही मुख्यत: आंदोलन की रीति-नीति तथा स्वराज्य के स्वरूप का निर्धारण करते थे और उनके विचारों का विरोध भी कभी-कभी प्रकट होने लगा था।। कांग्रेस में 'वंदेमातरम्' को लेकर पहला प्रकट विरोध 1923 के कालीनाड़ा अधिवेशन में सामने आया जब अधिवेशन के अध्यक्ष मौलाना अहमद अली ने भारतीय शास्त्रीय संगीत के गायक विष्णु दिगंबर पलुस्कर को 'वंदेमातरम्' गाने से रोका, लेकिन उन्होंने उसे संपूर्ण रूप में प्रस्तुत किया। मुस्लिम नेताओं तथा मुल्ला-मौलवियों का विरोध एवं फतवेबाजी तो विशुद्धत: साम्प्रदायिक थी, क्योंकि खिलाफत आंदोलन में अहमद अली, शौकत अली,जाफर अली तथा जिन्ना तक भी सभाओं में खड़े होकर 'वंदेमातरम्' का गायन करते थे, लेकिन यह विरोध इस रूप में भी आया कि कांग्रेस की सभा में मुस्लिम समूह 'अल्ला हो अकबर' तथा हिंदू लोग 'वंदेमातरम्' के नारे लगाने शुरू कर दिये। कांग्रेस ने 1937 में इस विरोध को खत्म करने के लिए एक समिति बनाई, जिसके सदस्य रवींद्रनाथ टैगोर, सुभाषचंद्र बोस, मौलाना कलाम आजाद तथा जवाहरलाल नेहरू थे। इस समिति ने 'वंदेमातरम्' गीत के आरंभिक दो चरणों को ही गीत के रूप में स्वीकार किया और 1938 के हरीपुरा कांग्रेस अधिवेशन में इसे स्वीकार कर लिया गया। इस पर रवींद्र नाथ टैगोर की काफी आलोचना हुई, क्योंकि वे स्वयं इसके संपूर्ण रूप का गायन कर चुके थे। रवींद्र नाथ टैगोर ने इस आलोचना से व्यथित होकर 2 नवंबर,1937 को एक पत्र प्रकाशित किया और लिखा कि अत्यंत खेद की बात है कि 'वंदेमातरम्' हमारा राष्ट्रीय गीत हो सकता है या नहीं,इस बात को लेकर आज तक काफी विवाद हुआ है। इस पर सोचते समय मुझे एक घटना याद आती है कि इस गीत के रचयिता के जीवन काल में इस गीत को सबसे पहले स्वरबद्ध करने का भाग्य मुझे मिला था। कलकत्ता कांग्रेस के एक अधिवेशन में यह गीत मैंने स्वयं ही गाया था। इस गीत के पूर्वार्द्ध में अत्यंत कोमल भावनाओं एवं श्रद्धाओं का संगम है, साथ ही मातृभूमि के सौंदर्य का परिचय कराया है। अतः इस गीत ने मुझे बहुत प्रभावित किया था। यही कारण था कि यह गीत जिस पुस्तक (आनंदमठ) में प्रकाशित हुआ था, उससे इस गीत को अलग करने में मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ। मेरे पिताजी एकेश्वरवादी थे। उनके इस आदर्श में समरस होते हुए भी मुझे इस संपूर्ण गीत के प्रति नितांत आदर है। बंगाल विभाजन की संकटपूर्ण घड़ी में यह गीत एक राष्ट्रीय गीत के रूप में रूपांतरित हो गया और यह तेजी से विजयघोष के रूप में बदल गया। बंकिमचंद्र का यह संपूर्ण गीत जिस पुस्तक में है, उसके मजमून के साथ इस गीत को पढ़ा जाये तो मुस्लिम लीग को ठेस पहुँचेगी, इसे मैं निस्संकोच स्वीकार करता हूं, किंतु इस गीत का पहला भाग, जो राष्ट्रीय गीत माना जाता है, उस भाग को उपन्यास की कथावस्तु से जोड़कर विचार करना जरूरी नहीं है। इस गीत का अपना एक स्वतंत्र स्थान है। उसने एक प्रेरणादायक गीत का सम्मान पहले ही प्राप्त कर लिया है। उस पर किसी भी साम्प्रदायिक या धर्माधिष्ठित घटकों को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।" इस संबंध में सुभाष चन्द्र बोस रवींद्र नाथ टैगोर की भावना को समझ रहे थे और उसे ज्यादा स्पष्ट शब्दों में जवाहरलाल नेहरू को 17अक्टूबर,1937 को लिखे पत्र में इस रूप में प्रकट कर रहे थे," मैं आपके विचार से सदा सहमत रहा हूँ कि हिंदू-मुस्लिम एकता के प्रश्न पर आर्थिक पक्ष अधिक महत्त्वपूर्ण है। साम्प्रदायिक मुसलमानों को बार-बार हौवा खड़ा करने की आदत है, सभी मुसलमानों को नौकरी में कम जगह मिली है और अचानक ही 'वंदेमातरम्' का महत्व बढ़ गया है और यह कांग्रेस की विजय का प्रतीक है। राष्ट्रवादी मुसलमानों द्वारा उठाई गई कठिनाइयों और मुसीबतों पर हम सहर्ष विचार करने को तैयार हैं, लेकिन साम्प्रदायिक मुसलमानों की उठाई किसी बात को अधिक महत्व नहीं दिया जा सकता। यदि आज उनकी 'वंदेमातरम्' की बात पर उनकी तुष्टि करने का प्रयत्न किया गया तो कल वे कोई और नई बात उठा देंगे, केवल साम्प्रदायिक भावनाओं को उठाकर उसे उभारने

के लिए और कांग्रेस को दुविधा में डालने के लिए।" सुभाष चंद्र बोस ने यह भी लिखा कि वंदेमातरम् के दो अंतरे मानने पर भी न हिंदू संतुष्ट हुए और न मुसलमान और यह तथ्य भी इतिहास में है कि जिस जिन्ना ने एक समय 'वंदेमातरम्' खुद गाया था तथा कांग्रेस ने मुसलमान नेताओं की आपत्ति के समाधान के लिए आरंभिक दो चरण ही स्वीकार कर लिए थे, फिर भी जिन्ना ने 1 मार्च,1938 को ' द न्यू टाइम्स आफ लाहौर' में लिखा," पूरे भारत में मुसलमानों ने 'वंदेमातरम्' या मुस्लिम विरोधी गीत के किसी भी संस्करण को बाध्यकारी राष्ट्रगीत के रूप में स्वीकार करने से इंकार कर दिया है।" इस प्रकार मुस्लिम लीग के अमृतसर में हुए 1908 के अधिवेशन से 'वंदेमातरम्' को मजहबी आधार पर जो विरोध शुरू हुआ था, वह जिन्ना तक आता गया और पाकिस्तान के जन्म में सहायक बना।

गांधी काफी समय से मुस्लिम नेताओं का 'वंदेमातरम्' का विरोध देख रहे थे, लेकिन स्वराज्य के लिए दोनों सम्प्रदायों की एकता जरूरी थी, इसलिए इस हिंदू- मुस्लिम एकता के लिए कोई सर्वमान्य रास्ता निकालने की कोशिश कर रहे थे और इसके लिए वे 'वंदेमातरम्' को प्रथम स्थान से हटाने के लिए भी तैयार हो गये। गांधी के 'यंग इंडिया', 8 सितंबर,1920 को प्रकाशित लेख ' तीन राष्ट्रीय नारे' में इस समस्या का समाधान निकालने का प्रयास करते हैं। गांधी लिखते हैं कि मैं शौकत अली की इस बात से सहमत हूँ कि सभा में हिंदू 'वंदेमातरम्' का तथा मुसलमान 'अल्ला हो अकबर' का नारा लगाते हैं जो कानों को बहुत कड़वा लगता है और प्रकट होता है कि हिंदू-मुसलमान एक मन से काम नहीं कर रहे हैं। गांधी ऐसी स्थिति में अपना समाधान देते हुए लिखते हैं," इसलिए केवल तीन ही नारे स्वीकार किये जाने चाहिए।एक तो 'अल्लाह हो अकबर' का नारा हिंदू और मुसलमान दोनों को उत्साह के साथ लगाना चाहिए और इस तरह अपना यह विश्वास प्रकट करना चाहिए कि ईश्वर ही महान है और कोई नहीं। दूसरा नारा होना चाहिए 'वंदेमातरम्' या 'भारत माता की जय'। तीसरा होना चाहिए 'हिंदू-मुसलमान की जय', जिसके बिना भारत को जय नहीं मिल सकती और न लोग अपने इस विश्वास को सच्ची अभिव्यक्ति ही दे सकते हैं कि ईश्वर सबसे महान है। बेशक मैं चाहता हूँ कि अखबारों और सार्वजनिक कार्य करने वाले लोग मौलाना साहब का सुझाव अपनायें और जनता को केवल ये तीन नारे लगाने की प्रेरणा दें। इन तीनों में बहुत अर्थ भरा हुआ है। पहला नारा (अल्लाह हो अकबर) एक प्रार्थना,और अपनी लघुता की आत्म- स्वीकृति है और इस तरह वह विनयशीलता का द्योतक है। यह नारा सभी हिंदुओं और मुसलमानों को श्रद्धा और भक्ति से लगाना चाहिए। हिंदुओं को ऐसे अरबी शब्दों का प्रयोग करने से कतराने की जरूरत नहीं, जिनमें न केवल आपत्ति के लायक कोई बात नहीं है, बल्कि जो हमें ऊपर उठाने वाले हैं। ऐसी बात नहीं है कि ईश्वर को कोई खास ज़बान ज्यादा पसंद है। 'वंदेमातरम्' के साथ जिन अद्भुत बातों की स्मृति जुड़ी हुई है वह तो है ही; इसके अलावा यह एक राष्ट्रीय आकांक्षा, अर्थात् भारत पूरी ऊँचाई तक उठे, की अभिव्यक्ति है, और मैं 'भारत माता की जय' की अपेक्षा 'वंदेमातरम्' को ज्यादा पसंद करूंगा, क्योंकि यह उदारतापूर्वक बंगाल की बौद्धिक और भावनात्मक उच्चता स्वीकार करना होगा। चूँकि हिंदुओं और मुसलमानों के हृदयों के मिलन के बिना भारत कुछ रह नहीं जाता, इसलिए 'हिन्दू-मुसलमान की जय' एक ऐसा नारा है जिसे हमें कभी नहीं भूलना चाहिए।" ('संपूर्ण गांधी वांग्मय', खंड :18, पृष्ठ 263-64)।

गांधी की दृष्टि में स्वराज्य का स्वप्न हिंदू-मुस्लिम एकता से ही संभव था और इसके लिए वे मुस्लिम नेताओं तथा समाज को संतुष्ट करने तथा स्वराज्य संघर्ष में साथ देने के लिए तीन नारों में दो नारे (पहला और तीसरा) स्वीकार कर रहे थे, जिनमें 'अल्लाह हो अकबर' नारे को प्रथम स्थान पर रखकर भी उन्होंने 23 अगस्त, 1947 की कलकत्ता की प्रार्थना-सभा में कहा था, "यह मर्मस्पर्शी धार्मिक नारा है, जिसका अर्थ है कि ईश्वर महान है, पर मैं स्वीकार करता हूं कि हिंदुस्तान में इस नारे के साथ जो जुड़ा है, वह अच्छा नहीं है। यह अक्सर हिंदुओं को आतंकित कर देता है, क्योंकि कभी-कभी मुसलमान क्रुद्ध होकर हिंदुओं को मारने-पीटने के लिए यह नारा लगाते हुए मस्जिदों से बाहर निकलते हैं।" ('संपूर्ण गांधी वांग्मय', खंड : 89, पृष्ठ 90-91)। गांधी यह मानते हैं कि केवल भारत में ही इस नारे का ऐसा उपयोग होता है, फिर भी "अगर दोनों समुदायों में स्थायी मैत्री पैदा करनी है तो हिंदुओं को अपने मुसलमान भाइयों के साथ यह नारा लगाने में किसी तरह हिचकिचाहट नहीं करनी चाहिए। भगवान को कई नामों और कई गुणों से पहचाना जाता है। राम, रहीम, कृष्ण सब एक ही ईश्वर के नाम हैं।"(वही)। गांधी के इस तुष्टिकरण का यह दुःखद परिणाम हुआ कि मुस्लिम नेताओं ने अपने मजहब के आधार पर देश के दो टुकड़े करा दिये और गांधी को भी अंत में स्वीकृति लेनी पड़ी। 'वंदेमातरम्' पराजित हो गया और 'अल्लाह हो अकबर' विजयी हुआ।

'वंदेमातरम्' 'जयहिंद' तथा 'जन-गण-मन' : प्रथम स्थान पर कौन?

गांधी के सम्मुख 'वंदेमातरम्' और 'जय हिंद' में से कौन-सा प्रथम है, इसे चुनने का प्रश्न भी सामने आया। सुभाष चंद्र बोस ने भारत से बाहर जाकर 'आजाद हिंद फौज' बना ली और उसका 'जय हिंद' उसका युद्ध का नारा बनाया गया और यह नारा 1942 में गांधी के नारे 'करो या मरो' से भी लोकप्रिय होने लगा। गांधी के मन में इन दो नारों के

बीच चुनाव का वैसा संकट नहीं था, जैसा 'अल्लाह हो अकबर' को लेकर था। गांधी ने सुभाष चंद्र बोस का हवाला देते हुए 'वंदेमातरम्' को पहला स्थान दिया और 10 जनवरी, 1946 को गोहाटी की प्रार्थना-सभा में कहा,"'वंदेमातरम्' के स्थान पर 'जयहिंद' का नारा नहीं लगाना चाहिए। सुभाष बोस के मुख से निकले ये शब्द बहुत कर्णप्रिय हैं, लेकिन उसके कारण 'वंदेमातरम्' को भुला नहीं देना चाहिए। उसका उच्चारण तो कांग्रेस की स्थापना-काल से ही किया जा रहा है। पहले आपको 'वंदेमातरम्' और फिर आपको 'जयहिंद' कहना चाहिए। मैं आपके इस अभिवादन का प्रत्युत्तर पूरे मन से दूँगा, लेकिन इसे 'वंदेमातरम्' के बिना नहीं होना चाहिए। अगर आप बलिदान की ऐसी परंपरा से जुड़कर 'वंदेमातरम्' का त्याग कर सकते हैं तो मुझे आशंका है कि आप 'जयहिंद' का भी त्याग कर देंगे।" ('संपूर्ण गांधी वांग्मय', खंड : 82, पृष्ठ 417)। गांधी के सामने यह प्रश्न भी आया कि 'जय हिंद' तो युद्ध-घोष के रूप में शुरू किया गया, तब यह नारा क्या अहिंसक कार्य के लिए अपनाना उचित होगा। इस पर गांधी का उत्तर था कि 'जयहिंद' नारा सुभाष बाबू ने सशस्त्र- युद्ध में एक युद्ध-घोष के रूप में किया था, इसका मतलब यह नहीं है कि अहिंसक कार्यवाही में उसका त्याग किया जाना चाहिए। इस आधार पर तो हमें 'वंदेमातरम्' का भी त्याग करना होगा, क्योंकि 'वंदेमातरम्' का नारा लगाते हुए लोगों के हिंसापूर्ण कार्यवाही करने के उदाहरण भी देखने को मिले हैं। यदि कोई चीज तत्वत: बुरी है तो उसका त्याग करना मनुष्य का निश्चित कर्तव्य हो जाता है। मेरी राय में 'वंदेमातरम्' और 'जयहिंद' का एक ही अर्थ है। एक में हम भारत माता को नमन करते हैं और इस तरह उसकी विजय की कामना करते हैं, दूसरे में केवल उसकी विजय की कामना की गई है। ये दोनों नारे एक साथ लगाने का कोई प्रश्न ही नहीं है और 'जयहिंद' 'वंदेमातरम्' का स्थान नहीं ले सकता।"(13 जनवरी,1946, 'संपूर्ण गांधी वांग्मय', खंड : 82, पृष्ठ 443)।

गांधी 'वंदेमातरम्' को पवित्र तथा अमर राष्ट्रगीत मानते रहे, और यथासमय इसका उल्लेख भी करते रहे, परंतु स्वराज्य के संघर्ष में उन्हें मुस्लिम नेताओं को संतुष्ट करने के लिए 'वंदेमातरम्' के स्थान पर 'अल्लाह हो अकबर' को पहला स्थान देना पड़ा, ह जानते हुए भी कि इसका उपयोग हिंदुओं को आतंकित करने तथा उनको मारने-पीटने के लिए किया जाता है। गांधी का इससे भी लक्ष्य पूरा नहीं हुआ और मुस्लिम नेताओं ने मजहब के आधार पर देश के टुकड़े करा दिये और गांधी का अपनी लाश पर पाकिस्तान बनने का प्रण भी कुछ न कर सका। गांधी का 'वंदेमातरम्' के प्रति जो गहरा समर्पण था, वह भी स्वतंत्रता मिलने पर उनके साथी कांग्रेस नेताओं ने भी उसकी उपेक्षा की और रवींद्र नाथ टैगोर का 'जन-गण-मन' को राष्ट्रगीत स्वीकार कर लिया। जवाहरलाल नेहरू ने तो अंतरिम सरकार में ही 'जन-गण-मन' को राष्ट्रगीत के रूप में प्राथमिकता दे दी थी और संविधान-सभा के अध्यक्ष डा. राजेंद्र प्रसाद ने 24 जनवरी,1950 को राष्ट्रगीत के संबंध में घोषणा करते हुए कहा," 'जन-गण-मन' शब्दों से रचा गया गीत तथा संगीत भारत का राष्ट्रगीत है। इसके शब्दों में कुछ परिवर्तन करने का सरकार को अधिकार रहेगा। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में ऐतिहासिक भूमिका निभा चुके 'वंदेमातरम्' को 'जन-गण-मन' के समान स्थान दिया जायेगा और उसकी प्रतिष्ठा भी 'जन-गण-मन' के समान ही रहेगी।" इस निर्णय के फलस्वरूप 'जन-गण- मन' को राष्ट्रगीत (National Anthem) और 'वंदेमातरम्' को राष्ट्रीय गीत (National Song) के रूप में मान्यता मिली। यह इतिहास की कैसी विडम्बना है कि जिस 'वंदेमातरम्' को गांधी तथा पूरा देश राष्ट्रगीत, जागरण गीत तथा स्वदेश के लिए बलिदानी गीत एवं अमर गीत मान रहा था और जो कांग्रेस तथा क्रान्तिकारियों का समान रूप से स्वाधीनता संग्राम का गीत था, वह दूसरे स्थान पर रख दिया गया और जिस 'जन-गण- मन' गीत का स्वाधीनता संग्राम से कोई संबंध नहीं था, उसे संविधान-सभा ने पहले स्थान पर रखकर उसे देश का 'राष्ट्रगीत' घोषित कर दिया। यह भी इतिहास की विडंबना है कि गांधी और टैगोर दोनों ही इन गीतों के इस सत्य को देखने के लिए जीवित न रह सके और यदि इनका निर्णय उनके जीवनकाल में होता तो उनके विचारों को देखकर यह कहा जा सकता है कि इन गीतों का इतिहास शायद दूसरा होता।यह भी ज्ञातव्य है कि ये दोनों गीत विवादास्पद रहे, टैगोर पर 'जन-गण-मन' को ब्रिटेन के सम्राट जॉर्ज पंचम के सम्मान में लिखने का आरोप लगा था, जिससे महाकवि टैगोर बड़े व्यथित हुए और उन्होंने 29-3-1939 के पत्र में लिखा, "शाश्वत मानव इतिहास में युग-युग से प्रवास करने वाले पथिकों की रथयात्रा को चिर सारथी के रूप में मैं चौथे या पाँचवें जॉर्ज की स्तुति में गीत लिख दूँगा, इतनी अपरिमित मूर्ढ़ता शायद मुझ में है, ऐसी जिन्हें आशंका हो, उनके प्रश्नों का उत्तर देना मैं अपना अपमान समझता हूं।" इसी प्रकार मुस्लिम नेताओं ने 'वंदेमातरम्' को हिंदू गीत कहकर उसका विरोध किया और कांग्रेस ने उसके आरंभिक दो चरण को ही राष्ट्रगीत के रूप में स्वीकार किया और इसे गांधी, टैगोर आदि का समर्थन था, पर फिर भी अंत में स्वीकार नहीं हुआ। आज हमारा राष्ट्रगीत 'जन-गण-मन' है और हर भारतीय इसका नमन करता है, पर 'वंदेमातरम्' राष्ट्रगान होकर भी उसे, उसके इतिहास के कारण, राष्ट्रगीत जैसा ही सम्मान मिलता रहेगा। अब 'जन-गण-मन' तथा 'वंदेमातरम्' दोनों ही भारतीय आत्मा के अंग हैं और सदैव रहेंगे।

❋

ए-98, अशोक विहार, फेज प्रथम, दिल्ली-110052, मोबाइल : 09811052469, ईमेल : kkgoyanka@gmail.com

इतिहास लेखन की सांस्कृतिक अवधारणा

प्रो. उदय प्रताप सिंह

इतिहास को उसी प्रकार नहीं बदला जा सकता जिस प्रकार किसी राष्ट्र की भौगोलिकता को बदलना संभव नहीं है। पश्चिम की भूमि में आम नहीं होता क्योंकि वह पूर्वी भूमि की भौगोलिकता की ही विशेषता है। तब हमें धर्म की ऐतिहासिकता क्यों असुविधाजनक लगती है? सांस्कृतिक परंपराओं में साम्प्रदायिकता की गन्ध कैसे उत्पन्न हो सकती है? वन्देमातरम जैसे गीत प्रश्नांकित क्यों होते है? क्या यह हमारी अर्धविकसित एवं अधकचरी इतिहास दृष्टि नहीं है? क्या इतिहास लेखन की यह दृष्टि सामी धर्म-दृष्टि से अनुप्राणित नहीं है? सच तो ये है कि हमने अपनी स्वतंत्र इतिहास दृष्टि दो हजार वर्ष में कभी निर्मित ही नहीं की फिर उसका विकास कैसे सम्भव है? इसलिए हमारे इतिहासकार सामी दृष्टि को ही ऐतिहासिक, वैज्ञानिक तथा एक अर्थ में आधुनिक दृष्टि स्वीकार कर जीवन को देखने परखने और रचने की अंतिम दृष्टि मान बैठे।

आजकल धर्म एवं इतिहास पर तेजी से बहस चल रही है। इसके मूल में मजहबी कट्टरता और मानवीय मूल्यों का क्षरण है। कट्टरता से बढ़ती हिंसा ने मानवता के सामने संकट खड़ा कर दिया है। विज्ञान का हिंसक स्वरूप इसमें वृद्धि कर रहा है। मजहब के आधार पर बने देशों की यही नीति बन गई है। वे चाहे ईसाई देश हो या इस्लामी। इस्लाम तो आपस में ही मरने मारने पर आमादा है। इसमें जितने राष्ट्र उससे अधिक इस्लाम के चेहरे। ईसाइयों के साथ भी यही है। मूल्यों के टूटते दौड़ में भागता-दौड़ता बुद्धिजीवी अपनी संस्कृति की ओर लौट रहा है, पर उसे वहाँ भी कुछ खास नहीं मिल पा रहा है। हिंसा बढ़ रही है। गलाकाट प्रतिस्पर्धा अपने चरम पर है। वस्तुतः फसाद की यही ताहीर है और यही नियति भी। स्वतन्त्र चिंतन को कम महत्त्व मिलना इसका कारण है। खींची हुई रेखा पर चलने को विवश मनुष्य उन पर जल भी रहा है और झुलस भी। यह धर्म की नियति नहीं। भारत में अद्भुत धर्मों की नियति इससे पूर्णतः भिन्न है। इसका बड़ा कारण उसकी सांस्कृतिक चेतना में निहित सहिष्णुता और उदारता है। भारतेतर धर्म धर्म नहीं मजहब है। यदि ऐसा न होता तो अपने मजहब के लोग अपनों का प्रतिदिन कत्ल क्यों करते? वह भी मजहबी स्थलों पर मजहबी लीला का यह हिंस्रकाल आज से नहीं सैकड़ों वर्षों से चल रहा है। प्रथम विश्वयुद्ध से लेकर द्वितीय विश्वयुद्ध तक इसके अनेक उदाहरण हैं। इस्लाम की तो बात ही जाने दीजिए। ईसाई धर्मावलंबी राष्ट्रों में हिंसा और अलगाव का दौर आज तक चल रहा है। पोलैण्ड, हंगरी, युगोस्लाविया, चेकोस्लोवाकिया और सोवियत संघ का खण्ड-खण्ड होना इसी बात का प्रमाण है। इजराइल और फिलिस्तीन का संघर्ष इसका ज्वलंत उदाहरण है। ईसाई धर्मावलम्बित उतरी कोरिया का अन्य ईसाई समर्थक राष्ट्रों पर खतरा बना रहना मजहबी विकृति का प्रमाण है। अपने द्वारा ही अपनों पर आक्रमण भारतीय धर्म के आवस से बनी संस्कृति में नहीं है। असहिष्णुता की यह आत्मघाती संस्कृति मजहबी कट्टरता की उपज है। इन विकृतियों से भारत में उपजे धर्म बचे हुए हैं। उसका मुख्य कारण सहिष्णुता, समभाव, स्वतंत्रता और प्रत्येक आत्मा में परमात्मा की छाया देखना है।

भारत एक प्राचीन देश है। यहाँ की संस्कृति समृद्ध है। यह मजहबी कट्टरता से दूर धर्म के आशय से निर्मित हुई है। इस समुन्नत संस्कृति के देश भारत में भिन्न-भिन्न प्रकार के लोग आते रहे हैं। कभी व्यापारी बन, कभी आक्रमणकारी बन तो कभी राज्याधिकारी बन। उनकी भाषा, खान-पान, रहन-सहन, रीति-रिवाज, तीज-त्योहार, धर्म-मजहब और साथ-साथ रहने का प्रभाव यहाँ के लोंगो पर पड़ता रहा है, पर यहाँ का जनमानस उनके मजहब और संस्कृति से अप्रभावित रहा है। शासित होते हुए भी विचार से पूर्ण स्वतंत्र। उसका बड़ा कारण था यहाँ की संस्कृति का सर्व समावेशी स्वरूप, सहिष्णुता व समभाव का संबल।

जीवन की उच्चता का आदर्श। मनुष्य जाति की स्वतंत्रता कोई भारतीय संस्कृति से सीखे। भाषा-बोली, रीति-रिवाज, पहनावा, खान-पान को अपने अनेसार ढाल लेना यहाँ की विशेषता है। यह आज से नहीं वैदिक काल से चल रहा है। बहुलतावादी समाज के बावजूद एकात्मकता का जीवन-दर्शन भारतीय संस्कृति का प्राण है। भिन्न-भिन्न विचार समूहों के प्रवाह को गांगेय प्रवाह का रूप दे देना ही भारतीय संस्कृति के टिकने का बड़ा आधार रहा है- 'ठहरा जिसमें जितना बल है।'- सांस्कृतिक चेतना के कवि जयशंकर प्रसाद सदाशयता, सहनशीलता, शरणागत की रक्षा, आचरण की पवित्रता और समभाव की उच्चता में है। चिन्तन की स्वतंन्त्रता और उपास्य की अनेकता में एक तत्त्व की प्रधानता ही आर्यावर्त्त की संस्कृति का संबल है। जयशंकर प्रसाद के शब्दों में हम कह सकते है कि-'एक तत्त्व की ही प्रधानता, कहो उसे जड़ या चेतन'। एक तत्त्व के जीवन दर्शन से प्रभावित होता आज का मुस्लिम समुदाय भी जो विश्व की अनेक संस्कृतियों से कटा हुआ है- वह भारत की सांस्कृतिक चेतना में जीने को आतुर है।

पं. विद्यानिवास मिश्र साहित्य और संस्कृति के अन्तःसम्बन्ध को इस प्रकार व्याख्यायित करते हैं।- '' इस देश की संस्कृति सीता हैं, जो धरती से जनक के हल की नोक से पैदा हुई हैं। इस देश की संस्कृति गंगा हैं, जिन्हें भगीरथ ने अपने परिश्रम से पहाड़ खोदकर निकाला था। इस देश की संस्कृति गौरी हैं, जिन्होंने अपने प्रियतम को सौन्दर्य से नहीं तप से प्राप्त किया था। इस देश की संस्कृति असंख्य ग्रामीण बन्धु और वनवासी हैं, जो असंख्य बाधाओं को राम की धनुही से तोड़ने का विश्वास सखते हैं।''

जब हम भारतीय या राष्ट्रीय चिन्तन की बात करते हैं तब हमारा ध्यान भारत राष्ट्र की विशिष्टताओं की ओर आकृष्ट होता है। धर्म, प्रतीक, मिथक, पौराणिक कल्पना, राष्ट्रीय चरित्र, सुदीर्घ गौरवशाली परम्परा, बहुविध मान्यताएँ, प्राचीन-अर्वाचीन ऐतिहासिक तथ्य, रहन-सहन, उत्सव, त्यौहार, राष्ट्र-पुरुष, नदी, वन, पर्वत, सागर, तीर्थ और उनके प्रति युग-युगों से विकसित होते संस्कार-सभी राष्ट्रीयता के अभिन्न अंग बन जाते हैं। भारतीय संदर्भ में जब हम नेशनैलिटी का अनुवाद राष्ट्रीयता के अर्थ में करते है। तब उपर्युक्त अर्थ प्रदान करता हो लेकिन हमारी राष्ट्रीयता केवल कागज पर लिखा शब्द मात्र नहीं है बल्कि वह उस सुदीर्घ राष्ट्रीय जीवन से जुड़ी हुई हैं, जिसकी नस-नस में हमारे आराध्य देव, मिथक, ऐतिहासिक स्थल, मान्यताएँ तथा विश्वास सब कुछ सन्निहित हैं। महर्षि अरविन्द ने कहा था कि हमारी राष्ट्रीयता हमारे सनातन धर्म की पर्याय है, परन्तु हम यह तथ्य विस्मृत कर गये भारतीय राष्ट्रवाद के मूल में सनातन धर्म है। अतः उसका स्वरूप सामान्य अर्थ में समझे जाने वाले राष्ट्रवाद से भिन्न है। इसीलिए भारतीय राष्ट्रवाद किसी के विरुद्ध नहीं है। जैसे सनातन धर्म भी किसी के

विरुद्ध नहीं। पश्चिमी इतिहास लेखकों ने हमारी इस सांस्कृतिक मान्यता पर बार-बार प्रतिघात किया और तथाकथित बुद्धजीवी वर्ग को इतिहास को पुनरुत्थानवादी घोषित करने का बीड़ा हमने स्वयं उठा लिया। अतः भारत राष्ट्र की प्राचीनता के विषय में अनेक प्रश्न उठ खड़े हुए। हमारा राष्ट्र बहुत प्राचीन था, उनकी संस्कृति और सभ्यता महान थी। इस सत्य को कुछ अंग्रज इतिहास लेखकों ने जहाँ उजागर किया कुछ अन्यों से छिपाया और विकृत भी किया जिसे आज के बुद्धिजीवी, किसी हद तक भारतीय इतिहास लेखक भी, स्वीकार करते प्रतीत होते हैं।

हमारे वैचारिक-दर्शन का इतिहास वेदों से प्रारम्भ होता है। आज तक स्वदेशी इतिहासकार इस सत्य को पूर्ण रूप से स्थापित नहीं कर सकें। इसके पीछे विदेशी चिन्तन का अन्धाधुकरण है। आवश्यकता इस बात की है कि इतिहास-लेखन का स्रोत हमारे अपने ग्रन्थ बने। आज तक इसी दृष्टि का विकास न हो सकने के कारण हमारे यहाँ चक्रवर्ती सम्राट की अवधारणा भी विवाद के घेरे में पड़ी है। अपने शास्त्रों के अनुशीलन से पता चलता है कि चक्रवर्ती राजा की अवधारणा बहुत प्राचीन है। धर्म-चक्रवर्ती अैर राज्य-चक्रवर्ती, ये दो प्रकार का चक्रवर्तित्व था। गौतम बुद्ध का धर्म-चक्रवर्तित्व सम्पूर्ण संसार द्वारा स्वीकार किया गया है। किन्तु चन्द्रगुप्त को राज्य चक्रवर्ती कहा गया है। ये अवधारणाएं राष्ट्र की अवधारणा की अनुपस्थिति में सम्भव नहीं है, परन्तु अंग्रेज इतिहास लेखकों ने जब हमारे इतिहास ग्रन्थों की रचना की तो राष्ट्रविहीन भारत की कल्पना फैलाई। लोगों को ऐसा प्रतीत हुआ कि हम कभी एक राष्ट्र थे ही नही, हमने शक्ति और सत्ता के महत्व को समझा ही नहीं। सातवीं शताब्दी के (प्रथम दशक 606 ई0) में महाराजा हर्ष के उपरान्त उत्तर भारत में कोई चक्रवर्ती सम्राट नहीं हुआ, लेकिन पहले के काल-खण्डों में भी कितनी बार ऐसा हुआ। दक्षिण भारत में इसकी परंपरा लम्बी रही है। वहाँ के राष्ट्रकूट राजा जो चक्रवर्ती सम्राट थे जिसका विजय-रथ उत्तर भारत से बंगाल तक निर्बाध गति से चलता रहा जब उसी राजा ने एलोरा में शिव मंदिर का निर्माण करवाया तो उसे कैलाश नाम से अभिहित किया गया। दक्षिण भारत की नदियों कृष्णा- कावेरी को गंगा-यमुना नाम दिया गया। ये नाम उत्तर भारत के थे जिन्हें दक्षिण भारत के सम्राट ने अपनाकर अपने चक्रवर्तित्व सम्राट की मुहर लगाई। राष्ट्रकूट सम्राटों के उपरान्त चोल सम्राटों का आगमन हुआ वे भी चक्रवर्ती थे। विजयनगर का सम्राज्य भी चक्रवर्ती था। यह भावधारा यहीं सूखती नहीं है; बल्कि उत्तर भारत के मुसलमान सम्राट तक चक्रवर्ती बनने की ललक में प्रयासरत थे। राष्ट्रीयता की यह दृष्टि हमारे इतिहासकार

आज तक विकसित ही नहीं कर सके। पाश्चात्य विकृत सोच के प्रभाव में एक मान्यता यह भी निरन्तर स्थापित की जाती रही है कि इस देश में ब्राह्मणों का प्रभुत्व रहा है जबकि यह मिथ्या धारणा है। अन्य लोगों की तरह ब्राह्मण भी एक सामान्य नागरिक कि तरह रहता था। राष्ट्र का प्रमुख हमेशा चक्रवर्ती सम्राट ही हुआ करता था। यहाँ तक कि जाति का निर्धारण भी वही करता था न कि ब्राह्मण। भारतीय इतिहासकारों को इन विकृत चिन्तनों से बचने की आवश्यकता है। साथ ही सांस्कृतिक भावधारा के प्रछन्न प्रवाह को प्रकट करने की आवश्यकता है।

वस्तुतः हमें इतिहास दृष्टि और सृष्टि दोनों में परिवर्तन करना चाहिए। इतिहास के नाम पर केवल क्रूर पुरुषों को इस प्रकार पढ़ाया जाता है जैसे कि वे ही आदर्श पुरुष थे। तलवारों के बल पर भौगोलिकताओं को बदलने वाले इतिहास पुरुषों को अपना इतिहास बताया जाय और अपेक्षा की जाय कि देश के नागरिक शान्तिकामी हों- यह दिवास्वप्न ही है। आज के यूरोपपरस्त इतिहास लेखकों की सबसे बड़ी दुरभिसंधि यह है कि वह राजनीतिक नृशंसता की संस्कृति एवं सभ्यता को केन्द्रित शक्ति के रूप में प्रतिस्थापित तथा गौरवान्वित करता है। मानवीय उदात्तता एवं सद्गुणों को अप्रासंगिक और अवान्तर बनाता चलता है। जब तक इतिहास चिन्तन और लेखन की यह दृष्टि बनी रहेगी तब तक अशोक महान् की सांस्कृतिक उपलब्धियों, राणा सांगा, महाराणा प्रताप एवं शिवाजी तथा अन्यान्य राष्ट्रपुरुषों की सांस्कृतिक समाजिक सेवाओं का महत्त्व अनुद्घाटित ही रह जाएगा। ऐतिहासिक अध्याय में हमें यह भी जोड़ना होगा कि हमारे अत्यन्त निकट के दो राष्ट्रपुरुषों की सेनाओं में मुसलमान सैनिकों का अच्छा प्रतिनिधित्व रहा है। 1857 ई. के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम को 'सिपाही विद्रोह' की संज्ञा देना इतिहास को गलत दिशा में समझना है। ध्यातव्य है कि 'रोटी' और 'कमल' जैसे प्रतीकों के माध्यम से आजादी की यह प्रथम चिनगारी सम्पूर्ण देश में फैल सकी थी। इसमें हिन्दू, मुसलमान दोनों समुदायों का योगदान था। यह भी एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि गाय की चर्बी से बनी काग पर हिन्दू, मुसलमान दोनों समान मात्रा में आक्रोशित हुए थे। एक सौ पचासवाँ वर्ष बीतने को है पर इतिहास की इस सांस्कृतिक धारा को पुष्ट आधार अभी तक मिल सका है। इतिहास चिन्तकों और विद्वानों को इस तथ्य पर अपनी लेखनी चलानी होगी तभी इतिहास की वस्तुपरपता प्रकट हो सकेगी। अंग्रेजों ने इस तथ्य को सदैव नकारने की कोशिश की है। परिणामतः हिन्दू-मुसलमान के बीच का ऐतिहासिक भावात्मक तन्तु निरन्तर कमजोर होता रहा। परस्पर एकता और सद्भाव का बिम्ब ही नहीं उभर सका। एकता का यह तन्तु अनेक सांस्कृतिक सामाजिक संदर्भों से सम्पृक्त है। क्या इतिहास लेखकों ने ऐसी दृष्टि विकसित की है? क्या इतिहासकारों को ऐसी परंपरा संबलित दृष्टि नहीं विकसित करनी चाहिए?

जिस राष्ट्र और जाति के पास जितना बड़ा इतिहास समुन्नत, संस्कृति, धार्मिक उदात्त दृष्टि एवं श्रेष्ठ सांस्कृतिक साहित्य होता है उसके दो ही परिणाम हुआ करते हैं। या तो हम सामान्य व्यक्ति की भाँति अपने अतीत का गौरवगान करते हुए अपनी हीनता को छुपाते रहें अथवा अतीत की उस महिमामंडित महाद्वीपता के समकक्ष अपना भी कोई यशद्वीप समानान्तर रूप से निर्मित करें। दूसरा वाला कार्य कठिन है। यही इतिहास चिंतन एवं लेखक की दृष्टि होनी चाहिए। अतीत की सांस्कृतिक विरासत को वर्तमान ढाँचे में ढालकर भविष्य के लिए प्रस्तुत कर देना ही वर्तमान इतिहास चिन्तन और लेखक की आवश्यकता है। वैसे तो सभी राष्ट्रों, जातियों और सभ्यताओं के पास या तो अतीत की पौराणिकता है या तो मध्यकालीन एतिहासिकता की कुछेक ऐसी परंपराएं हैं जिन पर उचित-अनुचित गर्व कर सकते है। इतिहास के क्रम में अधिकांश सभ्यताएं और संस्कृतियाँ अपने अतीत से कट गई है। इसलिए उनका प्रेरणात्मक स्वरूप नागरिकों के लिए शेष हो चुका है। परन्तु हमारी कठिनाई यह है कि एक तरफ तो हम बहुमत तथा बहुविध परंपराओं से मण्डित है और दूसरी ओर हमारी जातीय अस्मिता पर गत दो हजार वर्षों से क्षारपरतें निरन्तर पड़ते-पड़ते इतनी कड़ी पड़ गयी है कि रामकृष्ण, विवेकानंद, अरविन्द और गाँधी द्वारा किये जाने वाले मोहभंग से भी मारा ऐतिहासिक स्वत्व जाग्रत नहीं होता।

इतिहास को उसी प्रकार नहीं बदला जा सकता जिस प्रकार किसी राष्ट्र की भौगोलिकता को बदलना संभव नहीं है। पश्चिम की भूमि में आम नहीं होता क्योंकि वह पूर्वी भूमि की भौगोलिकता की ही विशेषता है। तब हमें धर्म की ऐतिहासिकता क्यों असुविधा जनक लगती है? सांस्कृतिक परंपराओं में साम्प्रदायिकता की गन्ध कैसे उत्पन्न हो सकती है? वन्देमातरम जैसे गीत प्रश्नांकित क्यों होते है? क्या यह हमारी अर्धविकसित एवं अधकचरी इतिहास दृष्टि नहीं है? क्या इतिहास लेखन की यह दृष्टि सामी धर्म दृष्टि से अनुप्राणित नहीं है? सच तो ये है कि हमने अपनी स्वतंत्र इतिहास दृष्टि दो हजार वर्ष में कभी निर्मित ही नहीं की फिर उसका विकास कैसे सम्भव है? इसलिए हमारे इतिहासकार सामी दृष्टि को ही ऐतिहासिक, वैज्ञानिक तथा एक अर्थ में आधुनिक दृष्टि स्वीकार कर जीवन को देखने परखने और रचने की अंतिम दृष्टि मान बैठे। यह मानकर अपनी दृष्टि को तिलांजलि दे देना कितना खतरनाक है उसका परिणाम आज हमारे समक्ष भयंकर रूप से उपस्थित है। जब हमने इतिहास दृष्टि निर्मित ही नही किया तो सामी जातियों की दुरभिसन्धियों, कूटताओं को कैसे पहचानेंगे? वस्तुतः सामी जातियाँ धर्म परिवर्तन के कारण अपने अतीत की गौरवशाली परम्पराओं, वैचारिक सम्प्रदाओं

तथा पूजा आस्थाओं से कट गयी। यह बात अलग है कि सामान्य ज्ञान इनका दुष्परिणाम नहीं समझा करता है। इस प्रकार की ऐतिहासिक दुर्घटनाओं से जातीय सृजनात्मकता में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ जाते हैं। किसी भी राष्ट्र या जाति की जातीयता उसकी मिथकता है। सामी धर्मों ने धर्म परिवर्तन करने वाली जातियों, राष्ट्रों और सभ्यताओं को उनके अपने विचार दर्शन, पूजा आस्थाओं और मिथकों से सदा के लिए काट दिया फलतः समय के साथ गहनतर होते जाने वाली संस्कृति के विकास को जो धर्म को भी विकसित करती है, दिशा ही अवरुद्ध हो गयी। जब धर्म या दर्शन अपने जाति अस्मिता और इतिहास प्रक्रिया की उपज नहीं होता तब वह जातिय रचनात्मकता में सहयोगी नहीं बनता। अतीत की ऐसी मिथकता क्या पश्चिम क्याा मिश्र क्या ईरान सभी के लिए मृतप्राय है। परन्तु ऐसा हमारे साथ नही है। राम, कृष्ण, शिव और इन्द्र की मिथकहीनता के बाद क्या भारतीय सृजनात्मक मानस वैसा ही निष्प्रभ नहीं हो जायेगा जैसा कि सामी देशों में है। क्या यह साधारण अन्तर है कि भारतीय संदर्भ में समस्त महत्त्वपूर्ण कविता धार्मिक महाभाव प्रधान ही है। परन्तु सामी साहित्यों में धर्म, काव्य और इतिहास में ऐसी कोई युति नही है। हमें इतिहासलेखन व चिन्तन में इन दृष्टि बिन्दुओं को भी ध्यान में रखना होगा।

जाति उर्धोन्मुखी अस्मिता की वाहिका धर्म एवं संस्कृति दृष्टि हुआ करती है। धर्म एवं संस्कृति दृष्टि प्रकृति की भारतीय उदार एवं असंग होते है। शिव, राम, कृष्ण हमारी सांस्कृतिक थाती हैं। हम जितनी तेजी से बिना अपनी भौगोलिकता, जलवायु एवं वैचारिक सम्बध्दता तथा पारंपरिकता का विचार के भारतीयता के स्थान पर पश्चिमी विचार दृष्टि विकसित करते जा रहे हैं वह हमारे इतिहास-लेखन के लिए एक भयंकर खतरा है। प्राचीनकाल में जैसे चार ठगों ने किसी ब्राम्हण के बछड़े को बार-बार स्वान कहकर ठग लिया था उसी तरह इतिहास लेखन के क्षेत्र में आज हम भी ठगे जा रहे हैं। उस कथा को केवल पौराणिक आख्यान मानकर हम दृष्टि ग्रहण करते रहे और हमारे ऐतिहासिक अस्मिता का चीरहरण होता रहा। यही कारण है कि हम आज भी इतिहास पुरुषों को काल्पनिक कथा एवं चरित्र मानकर इतिहास की परिधि से दूर फेंकते जाते है।

यह अत्युक्ति न होगी कि जैसे भारतीय भौगोलिकता का सिंचन मुख्य रूप से हिमालय, विन्ध्य और सहयाद्रि पुत्रियों से होता है उसी प्रकार भारतीय मानसिकता व मनीषा का सिचन, पल्लवन, वेंद रामायण- महाभारत पुराण इत्यादि आकर स्रोतों से सम्बन्ध है। धर्म, संस्कृति और इतिहास का भी पौधशाला में पलने वाले वृक्ष नहीं है। हमारा भारतीय चिंतन मानस जब मूल स्रोतों से कट जायेगा तो उसकी दुर्दशा अवस्यंभावी है। भारतीय इतिहास लेखन-चिंतन आकर स्रोतों से कटकर दीर्घजीवी नहीं बन सकता। हमारे इतिहास लेखन की प्राणवत्ता का मूल स्रोत प्राचीन ग्रंथों और अति प्राचीन सभ्यता से ही प्रवहमान हुआ है। इसी में भारतीय आत्मा मुखरित हुई है। यदि इन दृष्टियों का विचार नही किया गया तो हम वैचारिक उपनिवेश से घिरते जायेंगे और हमारे इतिहास दृष्टि धुँधली होती जायेगी।

पर्वत राज हिमालय हमारे लिए जड़ नहीं, अपितु चेतना का महत्त्वपूर्ण धरोहर है। धर्म एवं संस्कृति दृष्टि बदल जाने से पवित्र गंगा जल कुछेक के लिए गंदे जल से अधिक नहीं है। अपने सांस्कृतिक मिथकों से कट जाने के कारण ही देवात्मा हिमालय तथा अनेक पवित्र सरिताओं के मध्य घाटों में गाय, भैंस चराता कश्मीरी मुस्लिम अहीर को न पर्वत, न जल, न प्रकृति किसी से कोई रागात्मक संबन्ध नही रहता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीयता शेष मानवता से इसी अर्थ में विशिष्ट है कि हमारी विकास यात्रा घोर हिंसा से परम अहिंसा की ओर रही है। जबकि शेष समुदायों की यात्रा हिंसा से हिंसा की ओर रही है। हमारी चिंतन पद्धति ने धूर जड़ता को भी चेतनत्व प्रदान किया है जब कि शेष ने मनुष्य को भी जड़ बना देने का सतत् प्रयत्न किया है।

संस्कृति, उज्ज्वल परंपरा, धार्मिक महाभाव की व्यापकता मिथकों की सुत्रबद्धता तथा जनमन की लोकाभिव्यक्तियों को भी इतिहास के आयामक` अन्तर्गत ही परखना होगा। यदि भारतीय इतिहासकारों में उक्त आयामों का समुचित विकास हो सके तो शायद हमारा इतिहास आज नवीन रुपों में दिखायी पड़े। नवीनता की इस आभा में बहुत सी अस्पष्ट और भ्रमित मान्यताओं की क्षार पर्तें अपने आप निष्प्रभ हो सकेगी। जब तक इन बातों को आधार बनाकर इतिहास दृष्टि निर्मित नहीं की जायेगी तब तक हम गलत निर्णयों पर पहुँचते रहेंगे।

पराजित और हताश मानसिकता का इतिहास नयी पीढ़ी का प्रेरणा स्रोत नहीं बन सकता। स्वाभिमान की भावना से परिपुष्ट और पराक्रम की ऊर्जा से सम्बलित इतिहास ही हमारा इतिहास है। चिंतन की आकाश धर्मी ऊँचाई और सागर की तलस्पर्शी गहराई हमारे पूर्वजों की विशेषता नहीं है। समरसता का चिंतन और शांति का पैगाम भारतीय चिन्तन के आयाम रहे हैं। रक्तहीन क्रान्ति द्वारा सत्ता के प्रति अनासक्ति का भाव यहाँ इतिहास का महत्त्वपूर्ण पक्ष रहा है। युद्धों के तुमुल नाद और रक्तों की वेगवती धारा से मनुष्यता का सृजन सम्भव नहीं।

भारतीय इतिहास के इन बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित कर ही सही और संतुलित इतिहास लिखना संभव हो सकेगा।

❋

बी.एफ.एस., 13, हरनारायण विहार, सारनाथ वाराणसी, (यू0पी0) पिन कोड-221007 मो. 9415787367 E mail - dr.udaipratapsinghvns@gmail.com

भारतीय संस्कृति का लोकधर्म

प्रो. उमापति दीक्षित

> *मनुष्य के जीवन में कई बार ऐसी प्रतिकूलताएँ आ जाती हैं, जो उसकी सभ्यता की कसौटी बन जाया करती हैं। राम कृष्ण की मानवता जब तीव्र ताप में झुलसी है, तभी हमारी संस्कृति और लोककल्याण का एक नया अध्याय बना है। इस प्रकार की स्वस्थता, तटस्थता एवं व्यवहार-कुशलता हमारी संस्कृति को ही प्रदान हो सकती है, भारतीय संस्कृति की यही विशालता और महानता है, जिसके लिये वह समस्त विश्व में अपना स्थान एक अलग और पहचान बनाने में कामयाब रही है।*

भारतीय संस्कृति का अध्ययन करते समय जो प्रमुख समस्या आती है, तो सर्वप्रथम प्रत्यक्षीकरण सामाजिक सम्बन्धों एवं लोक धर्म से उद्घाटित भूतकाल का व्यवहारिक रूप सांस्कृतिक विकास प्रविधियाँ विडम्बनापूर्ण तमाम समस्याओं का समावेष हमारी भारतीय संस्कृति के भीतर उपस्थित हैं। भारतीय सभ्यता का प्रमाण है कि हमारी संस्कृति हमारा धर्म हैं, लोक संस्कृति की एक नयी पद्धति का अवलोकन हमको ऐतिहासिकता से ज्ञात होता है, पुरातनकाल में किस प्रकार की लोकधर्मी कथाओं एवं सभ्यताओं से हमारा समाज निरंतर विकास की ओर बढ़ा है, धर्म की जो छाप समय के साथ हमारे देश और परिवेश में है, वह हमें एक भविष्य निर्माण का पथ देता है, जिसमें तमाम तरह के अभिज्ञान की पूर्ति होती है।

भारतीय संस्कृति की परंपरा प्राचीनतम साहित्य वेद से लेकर वर्तमान भारतवंशीय साहित्य तक एक क्षेत्र एक जाति या एक काल का लोकधर्मी भाषावैज्ञानिकों मुनियों, विद्वानों ज्ञानियों की बहुजातीयता को लेकर रचा गया इतिहास है। डॉ. रामविलास शर्मा का कथन हमारी संस्कृति के प्रति लोकमंगल की भावना को दर्शाता एवं उसको प्रतिपादित करता है- ''संस्कृति एवं लोक धर्म एकता का प्रतिपादन कर भारतीय जनजीवन के अध्ययन की आवश्यकता पर विशेष बल दिया है, संस्कृति के जानकार एवं विद्वानों ने भारत की राष्ट्रीयता के स्थान पर बहुजातीयता एवं बहुप्रचलन का सवाल उठाया है। संस्कृति की लोक सभ्यता व एकता का प्रतिपादन सैद्धान्तिक आधार पर हुआ है।''[1] लोक संस्कृति का आशय समझने के लिए इसी पंक्ति का आश्रय लेना पड़ता है, विविधता का जिसमें दर्शन हो -

''रूचीनांवैचित्रयवाद ऋजुकुटिलनानापथजुशां

नृणाम्येकोगम्य: त्वमसिपयसामर्णव इव।।''[2]

भारतीय समाज की परम्परागत धर्म-संस्कृति भारत की सनातन संस्कृति का अभिन्न अंग है। वेदों में वर्णित इस जीवन पद्धति लोक संस्कृति तथा इसके आधार पर आनादिकाल से विश्वबन्धु सनातन समाज की रीढ़ है। भारतीय समाज में सूर्य, चन्द्र, नवग्रह, नदी, वृक्ष, नाग, धरती आदि में देवतुल्य धर्म देवत्व दर्शन कर श्रद्धा संस्कृति परंपरा प्राचीन समाज में विद्यमान है, जिसका प्रतिपादन आध्यात्मिक ढंग से किया गया है।

सत्य का अस्तित्व है, यह परिलक्षित करने के लिए अपनी संस्कृति का ज्ञान होना आवश्यक है, भारतीय मनीषा ने सत्य की प्रतीति का माध्यम शिवत्व को चुना एवं पाया कि वह है, इसका आभास इसका अनुभव इसकी अनुभूति तभी होगी जब स्वंय को शिव रूप में प्रकट करेगा। भारतीय चेतना एवं संस्कृति की जो सर्वाधिक रहस्यमय 'उपलब्धि' है उसे अभिव्यक्ति के स्तर पर भारतीय संस्कृति एवं लोक

धर्म का केन्द्रबिन्दु है। शिवत्व को आत्मसात् किए बिना अंतस् का पशुत्व दूर हो ही नहीं सकता, सर्वकल्याण के जो विरोधी हैं, उन्हें पराजित करने के लिए भक्ति का प्रयोग अनिवार्य है। शिव की अराधना का अर्थ है प्राणिमात्र के प्रति आत्मभाव जाग्रत करना। सृष्टि में जो भी ज्ञात-अज्ञात है, सभी के प्रति हमारे लोक धर्म में प्रेम व सद्भावना की कृतार्थ वास्तविकता एवं संस्कारवान् सर्वकल्याणकारी सद्वृत्ति है- ''भारतीय दर्शन संस्कृति व जीवन में ओम की अनुत महिमा है। यह प्रणव सभी को स्वीकार है, वह चाहे किसी क्षेत्र, किसी भाषा किसी पंथ या संप्रदाय का हो। भारत को सांस्कृतिक इकाई बनाने में 'ओम' का विशेष महत्व है। यदि भारतीय संस्कृति एवं लोकधर्म को एक शब्द में व्यक्त करने की बात हो तो वह शब्द होगा-ओम।''[3] प्राचीन भारत की अपनी एक विशिष्ट पहचान यह रही है बड़े-बड़े ऋषियों के विचारों को प्रवाहमान बनाये रखने के लिए उनके नामों से भिन्न-भिन्न पीठ बनाये गये हैं, जो हमारी संस्कृति में एक और विशेषता को जन्म देता है। जैसे-जैसे सभ्यता और संस्कृति का विकास होता गया। समयानुसार नये-नये ज्योतिपुज छोटे-छोटे तुच्छ वृत्तियों पर आधारित साम्प्रदायिक कार्य होते हैं।

विशषेतः संस्कृति को दो व्यापक हिस्सों में विभाजित करके इसे समझा जा सकता है, भौतिक संस्कृति, अभौतिक संस्कृति। भौतिक जीवन में व्यक्ति की आवश्यकताएँ बढ़ती है, साथ ही गैर-भौतिक संस्कृति में भाषा मूल्य, विश्वास परंपराओं को स्थान दिया जाता है। लोक और संस्कृति एक समूह द्वारा पालन किए जाने वाले रीति-रिवाजों, विश्वासों, मूल्यों, पीढी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होती है। धर्म को आम तौर पर एक सामाजिक संस्था भी माना जाता है, जो समाज में कई कार्य करता है, समुदाय की भावना प्रदान करना नैतिक मूल्यों को स्थापित करना और लोगों के इतिहास को बताना ही संस्कृति का मूल्य कर्तव्य है। हमारी परंपरा और रीति सबसे प्राचीन और जटिल है। भारत नास्तिकों और अज्ञेयवादियों की भी बड़ी आबादी का, धर्म का, प्रार्थना से भरपूर सामाजिक न्याय का देश है।

भारतीय परंपरा हमें धर्म की एवं लोककल्याणकारी विषयक विविधता को प्रदान करने की स्वतंत्रता देता है, जिसमें बहुत से लोग किसी भी धर्म का पालन नहीं करते हैं। यह भारत को बहुत सहिष्णु एवं खुले विचारों वाला देश बनाता है, उदाहरण के लिए हिन्दू बहुसंख्यक आबादी को जन्म देता है, इस बीच मुसलमान एक बड़े अल्पसंख्यक हैं, इस्लाम का भी भारतीय संस्कृति पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालता है। मानवता का महाकाव्य नामक पुस्तक में हमारी ज्ञान सरिता का लाभ और पुण्य दोनों को बताया गया है-

''वाल्मीकिगिरि-सम्भूता राम-सागर-गामिनी।
पुनाति भुवनं पुण्या रामायण महानदी।।''[4]

भारतीय संस्कृति का लोकधर्म तथा उसका वैशिष्ट्य यह भी है कि यहाँ दो नदियों का संगम स्थल, अपने आप तीर्थ में बदल जाता है, भारतवर्ष में जहाँ सुन्दर, नदी तट, घाटी, शिवालय, देवस्थल, झीलों, का दर्शनीय स्थलों का जमावड़ा है। यहां की उत्तुंग गिरिमालाओं में जितनी भी गुफाएँ हैं उनमें एक भी ऐसी गुफा नहीं होगी कि जिसमें हमारे किसी तपस्वी का वहां तपस्थल न हो।

''पुराना सब कुछ अच्छा है
यह बात नहीं, और जो
आधुनिक काव्य या शास्त्र है
वह दोषमुक्त ही होगा
ऐसा भी नहीं है।''[5]

मनुष्य के जीवन में कई बार ऐसी प्रतिकूलताएँ आ जाती हैं, जो उसकी सभ्यता की कसौटी बन जाया करती हैं। राम कृष्ण की मानवता जब तीव्र ताप में झुलसी है, तभी हमारी संस्कृति और लोककल्याण का एक नया अध्याय बना है। इस प्रकार की स्वस्थता, तटस्थता एवं व्यवहार-कुशलता हमारी संस्कृति को ही प्रदान हो सकती है, भारतीय संस्कृति की यही विशालता और महानता है, जिसके लिये वह समस्त विश्व में अपना स्थान एक अलग और पहचान बनाने में कामयाब रही है।

वास्तव में हमारे हिन्दी का साहित्य इतना वृहद है, और इसकी संस्कृति पर कार्य करने वाले इसको निरंतर जागृत की ओर ले जाने वाले कवियों में भी अलग गुण रहा है, साहित्य की यह विशेषता है कि उसमें लोकनायक ही कथानायक हुआ है। रीतिकाल में भूषण आचार्यत्व राष्ट्रनायक के तौर पर सभी मनीषियों ने लोकनायक की भांति अपने संस्कृति को बचाने का कार्य किया। शिवेतरक्षतये की शास्त्रीय कल्पना के साथ सांस्कृतिक मूल्यों की समुच्चय, परम्परा से सम्पृक्ति एवं जीवन मूल्यों की सुरक्षा हमारी भारतीय संस्कृति की विशेषता और उसके धर्म की रक्षा इसका परम ध्येय है।

भारतीय संस्कृति में ललित कलाओं के लिए प्रमुख स्थान है, कला चाहे दृश्य हो या श्रव्य, सभी का एक विशेष उद्देश्य व अर्थ होता है। इस संदर्भ में एक-एक मुद्रा एक-एक भावभंगिमा और हर स्वर व आकृति का अपना सर्वकल्याण के भाव में तृप्ति एवं संतुष्टि का दर्शन हो ही जाता है। इसीलिए भारतीय मनीशा की संस्कृति की मान्यता उसके परिवेश और वातावरण लोकधर्म की नीति से की जाती हैं।

रामधारी सिंह दिनकर

मेरे नगपति! मेरे विशाल!
साकार, दिव्य, गौरव विराट्,
पौरुष के पुंजीभूत ज्वाला!
मेरी जननी के हिम-किरीट!
मेरे भारत के दिव्य भाल!
मेरे नगपति! मेरे विशाल!

युग-युग अजेय, निर्बंध, मुक्त,
युग-युग गर्वोन्नत, नित महान्,
निस्सीम व्योम में तान रहा
युग से किस महिमा का वितान?
कैसी अखंड यह चिर-समाधि?
यतिवर! कैसा यह अमर ध्यान?

तू महाशून्य में खोज रहा
किस जटिल समस्या का निदान?
उलझन का कैसा विषम जाल?
मेरे नगपति! मेरे विशाल!

इस प्रकार भारतीय संस्कृति मानव जनित मानसिक पर्यावरण से सम्बन्ध रखती है, जिसमें सभी अभौतिक उत्पाद एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्रदान की जाती है। सामाजिक वैज्ञानिकों में एक सामान्य सहमति है कि संस्कृति में मनुष्यों द्वारा प्राप्त सभी आंतरिक एवं बाह्य व्यवहारों के तरीके समाहित हैं। यहां की लोक परंपरा एवं धार्मिक कार्यों में, मनोरंजन एवं आनंद प्राप्त करने के तरीकों व अभिव्यक्ति को भी सभ्यता का अर्थ में आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इसके अन्तर्गत समाजों सुपरिभाषित वर्गों में संगठित करना एक भौतिक एवं अभौतिक शक्तियों की यह प्रगति हमारी सभ्यता कहलाती है।

निष्कर्ष- संस्कृति एवं हमारा लोकधर्म हमारे अभिवादन की विधियों में, हमारे वस्त्रों में, खाने की आदतों में, पारिवारिक सम्बन्धों में, सामाजिक एवं धार्मिक रीति-रिवाजों में पश्चिम से भिन्न है। सच कहें तो, किसी भी देश के लोग अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक परम्पराओं के द्वारा पहचाने जाते हैं। हमारी धार्मिक लोक अवधारणा वह सूक्ष्म संस्कार है, विचार हैं, जो सभ्यता की अभिवृत्यिों का ज्ञान कराते हैं। भारतीय सीमाओं का जहां तक फैलाव है, वहां तक लोककल्याण की भावना एवं संस्कृति के प्रति लगाव की स्थिति विशेष बनती है, तथा इसकी प्रगति में भी एक विशेष प्रकार का विश्वास और उसकी परिकल्पना का निर्माण होता है। मानव सभ्यता के विकास के प्रारंभिक सोपान का वह कालखंड जिज्ञासा उत्सुकता या आशंका से भरा हुआ है, उस समय की अनुभुति के लिए कुशाग्र बृद्धि प्रचंड मेधा एवं तार्किक शक्ति की जरूरत के बदले हृदय की संवेदना अनुभव शक्ति उदारता एव विशालता चाहिये।

संदर्भ-

1. भारतीय साहित्य - पृ. 5, प्रमिला अवस्थी, लोकभारती प्रकाशन दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद 2016 संस्करण 211002
2. भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति - पृ. 69, प्रो. अरविन्द कुमार 'वनबंधु', विकास प्रकाशन कानपुर, जवाहर नगर, संस्करण 2009
3. गायत्री यज्ञ - पृ. 365, हवन का महत्व, आचार्य श्रीराम शर्मा ईशा ज्ञानदीप शालीमार बाग, नई दिल्ली 2001
4. मानवता का महाकाव्य - पृ. 62, रामायण की अर्थसहित व्याख्या, गुणवन्त शाह, भारतीय ज्ञानपीठ, संस्करण-2012
5. वही पृ. 50

विभागाध्यक्ष, नवीकरण एवं भाषा प्रसार विभाग, केंद्रीय हिंदी संस्थान (शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार), आगरा-282005, मो. 7355116538

भारतीयता के वैश्विक प्रसार में योग दर्शन

डॉ. मृदुल कीर्ति

कालचक्र की क्रमिक प्रक्रिमायित नियमावली के अनुसार सत, रज और तम गुणों की प्रधानता का युग क्रम से आता ही है, कदाचित कलयुग में सात्विकता का प्रथम चरण 'योग' के पुनर्जागरण के रूप में परिलक्षित हो रहा है। वही योग जो चिरकाल से इस भूलोक में लुप्तप्राय हो चुका था, उसे उजागर करने का प्रथम शंखनाद प्रधान मंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी द्वारा 14 सितम्बर 2014 में पहली बार प्रस्तावित किया गया। प्रस्ताव को 11 दिसंबर 2014 को प्रस्तावित किया गया --यूनाइटेड नेशंस की आम सभा ने प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए 21 जून को 'अंतरराष्ट्रीय योग दिवस' के रूप में घोषित कर दिया। इस प्रस्ताव का समर्थन 193 देशों में से 177 देशों ने निर्विरोध किया।

ॐ !

भारत एक आध्यात्मिक राष्ट्र है।

भारत की संस्कृति, सभ्यता और संस्कार की जड़ें वैदिक युगीन ऋषियों की अंतःदृष्टि से अनुप्राणित हैं।

भारतीय संस्कृति और अध्यात्म में योग का आदि कल्प से पुरातन और सनातन जीवन दर्शन समाहित है।

गीता में श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं --

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययं।

विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाक्वेब्रवीत।

भगवद्गीता ४/१

यह अविनाशी योग कल्प के आरम्भ में मैंने सूर्य को बताया, सूर्य ने अपने पुत्र मनु और मनु ने अपने पुत्र इच्छवाकु को बताया।

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।

स कालेनेह महत्ता योगो नष्टः परंतप।

भगवद्गीता ४/२

इस प्रकार परम्परानुसार यह योग राजर्षियों ने जान लिया, लेकिन हे परंतप अर्जुन! चिरकाल से यह योग इस भूलोक में लुप्तप्रायः हो चुका था।

स एवायं मया तेद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।

भक्तोअसि में सखा चेति रहस्यं होतदुत्तमं।

भगवद्गीता ४/३

वही यह पुरातन योग अब मैंने तुझे बताया है क्योंकि तू मेरा भक्त व् प्रिय सखा है। यह रहस्य परम गोपनीय और अत्युत्तम है।

गीता में कथित वासुदेव के वचनों को विस्तार से देने का यही प्रयोजन है -- हम जान सकें योग कितना पुरातन है, आदि कल्प क्या है? सनातन है और शाश्वत है। चिरकाल से भू लोक में लुप्तप्राय होने का सत्य इस श्लोक से स्पष्ट उद्भासित होता है। भारतीय संस्कृति और अध्यात्म में सांख्य योग और योग दर्शन आदि कल्प से पुरातन जीवन दर्शन हैं। भारतीय दर्शन वस्तुतः ऋषियों की अंतर्दृष्टि और त्रिकालदर्शिता का परिणाम है। भारतीय सांस्कृतिक, दार्शनिक, यौगिक और आध्यात्मिक चिंतन ने विश्व को जो तत्व दृष्टि प्रदान की है, उससे विश्व अचंभित और लाभान्वित हो रहा है। योग के प्रति आकर्षण और वैश्विक प्रसार इसी गुणवत्ता का परिणाम है और साक्ष्य भी। योग का भू लोक में पुनर्जागरण इस काल का शुभ संकेत है।

कालचक्र की क्रमिक प्रक्रिमायित नियमावली के अनुसार सत, रज और तम गुणों की प्रधानता का युग क्रम से आता ही है, कदाचित

कलियुग में सात्विकता का प्रथम चरण 'योग' के पुनर्जागरण के रूप में परिलक्षित हो रहा है। वही योग जो चिरकाल से इस भूलोक में लुप्तप्राय हो चुका था, उसे उजागर करने का प्रथम शंखनाद प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी द्वारा 14 सितम्बर 2014 में पहली बार प्रस्तावित किया गया। प्रस्ताव को 11 दिसंबर 2014 को प्रस्तावित किया गया --युनाइटेड नेशंस की आम सभा ने प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए 21 जून को 'अंतरराष्ट्रीय योग दिवस' के रूप में घोषित कर दिया। इस प्रस्ताव का समर्थन 193 देशों में से 177 देशों ने निर्विरोध किया।

आज इस सनातन योग संस्कृति के "विश्व संस्कृति" की ओर बढ़ते पग हमें गौरवान्वित कर रहे हैं। इस सनातन योग को पुनः जनमानस तक लाने के वैसे तो अनेकों भारतीय योगियों, मनीषियों, चिंतकों द्वारा भारत और विदेशों में पुनर्जागरण के प्रयास हुए हैं किन्तु अंतरराष्ट्रीय मान्यता के अंतर्गत 177 देशों का अनुमोदन अनुपमेय है और 21 जून 2015 को योग दिवस की घोषणा श्रीकृष्ण के शंखनाद से कम तो नहीं। मानवीय क्षमता का इससे अधिक विस्तार भी तो संभव नहीं। आज योग दिवस पर 200 देशों द्वारा योग दिवस मनाया जाना विश्व की अद्भुत घटना है।

भारतीय संस्कृति

वस्तुतः भारतीय संस्कृति आदि कल्प की एक विराट संस्कृति है, जिसमें जीवन के समग्र सत्यों का समावेश है। सृष्टि के आदि से ही आधि - व्याधि दैविक, दैहिक और भौतिक तापों से त्रस्त होने के संताप प्रकृति की नियमावली के प्रारूप हैं जो प्रकृति में होते रहे हैं। साथ ही प्राणियों की इन तापों से त्राण की भी स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ हैं। इन तापों से एकांतिक मुक्ति नहीं वरन आत्यंतिक मुक्ति का ज्ञान भारतीय संस्कृति के दर्शन ग्रंथों के मुख्य प्रतिपाद्य विषय हैं। इन ग्रंथों का ज्ञान वैदिक ऋषियों का बुद्धि वैभव नहीं वरन सृष्टि के आधारभूत प्रकृति के नियमों का स्पंदन है। ब्राह्मी चेतना में प्रदत्त ये ज्ञान सामयिक नहीं, ये सामयिक ज्ञान के अद्भुत और कालजयी उदहारण हैं, जो कालजयी तत्वज्ञान देते हैं और --ज्ञाते तत्वा कः संसारा। अर्थात तत्ववेता के जगत के सभी प्रपञ्च अर्थहीन हो जाते हैं क्योंकि भारतीय दर्शन का ज्ञान निहित शक्तियों को जागृत करने का और शाश्वती का ज्ञान देने का अद्भुत विज्ञान है। सर्व भूतहिते रताः -इसका प्राण है। धी (शुद्ध बुद्धि), धृति (धारण करना) और स्मृति (अपने स्वरूप में रहना) के प्राञ्जल ज्ञान का उद्बोधन भारतीय संस्कृति का अपरिमेय, अद्भुत, शाश्वत और मूल ज्ञान है।

योग दर्शन का वैश्विक प्रसार

इस सनातन ऋषि धर्म से भारत का वैभव "योग" आज विश्व में युग धर्म का नेतृत्व कर लोगों के व्यवहार और आचरण में आ रहा है।

त्रिविध तापों से संतप्त विश्व के सभी प्राणी व्याधि से मुक्ति और समाधि से युक्ति का आधार पाने को आतुर हैं। भौतिकता से त्रस्त मानवता, आंतरिक ज्ञान के अभाव में अवसाद, निराशा और नकारात्मक विचारों से आहत है। शांति और आत्मिक ज्ञान को आतुर पश्चिमी देश भारत के यौगिक आध्यात्मिक ज्ञान की ओर जिज्ञासा से, तीव्रता से उन्मुख हो रहे हैं। स्वस्थ तन, मन और आंतरिक शांति सबको प्रियता है। योग से निरोगी तन और योगी मन के आकर्षण ने इसे विश्व व्यापी बना दिया है। आज योग दिवस पर विश्व के 200 देशों द्वारा योग

दिवस मनाया जाना योग के प्रति आकर्षण और प्राप्त लाभ के अकाट्य प्रमाण हैं।

इजराइल और अन्य मुस्लिम देशों ने भी योग को अपनाया। कुछ संकीर्ण और कट्टरपंथी मानसिकता के लोग तो हर युग में रहे हैं जो अपनी हठधर्मिता को ही अपनी शक्ति मानते हैं। उनकी बात न कर योग की शक्ति, योग से स्वस्थ जीवन पद्धति, असाध्य बीमारियों से लाभ, अवसाद और निराशा से मुक्ति को प्रमाण सहित मान चुके हैं। योग वस्तुतः स्वस्थ तन, प्रबुद्ध मन और विशुद्ध आत्मा से आत्मदर्शन की श्रेष्ठ आध्यात्मिक विद्या है।

योग से तन, मन और अंतर्मन के रूपांतरण को विश्व्यापी स्तर पर स्वीकार किया जा चुका है। योग अंतस का जागरण है।

नाभि चक्रे काय कोष ज्ञानं।

योग जीवन का नाभिकीय तंत्र है।

योग हमारा मूल स्वभाव, प्रवृत्ति, प्रकृति और संस्कृति है। इसे भूलने के कारण ही जीवन में विकृति और विकार आये। योग शब्द वस्तुतः समग्रता को समेटे हुए 'दर्शन' का नाम है। जीवन के समग्र सत्यों का समागम ही योग है। योग तन, मन और चेतना तीनों का अर्थात शारीरिक, मानसिक और आत्मिक तीनों का ज्ञान विज्ञान योग में समाहित है। तन के लिए आयुर्वेद, मन के लिए योग और चेतना के लिए अध्यात्म से तीनों का क्रमशः रूपांतरण योग का लक्ष्य है।

शरीर माद्यं खलु धर्म साधनं -देह में रहकर ही कर्म और साधना होती है अतः निरोग स्वस्थ देह जीवन की अति प्रथम शर्त है, क्योंकि व्यक्ति सबसे पहले अपने तन से ही हारता है। प्राणो ब्रह्मेति --देह का प्राण तत्व मूल तत्व है, आधार है। प्राण परमेश्वर का माध्यम है "प्राणायामा परमं तपः" देह की शुद्धिकरण और सशक्तिकरण के लिए प्राणायाम को प्रधानता देते हुए योग का आध्यात्मिक, वैज्ञानिक और दार्शनिक विज्ञान का मूल आधार प्राणायाम है। एक बृहत्तम, एक महत्तम, एक अनन्यतम प्राण विज्ञान जो प्राण वायु से प्राणाधार तक ही पूर्ण होता है। अथर्ववेद के प्राण सूक्त में -

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे। अथर्ववेद -प्राणसूक्त -१

प्राण के आधीन सकल ब्रह्माण्ड है उस प्राण को मेरा नमन है।

यही प्राण प्राणायाम का आधार है। "अष्टांग योग" की अद्भुत क्रमिक विकास यात्रा है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान और समाधि। प्रथम पाँच दैहिक, इन्द्रिय संयम दिनचर्या के बाह्य संयम क्षेत्र है, धारणा, ध्यान, समाधि, प्रज्ञा लोक तक योग का अतीन्द्रिय क्षेत्र है। यह नित्य योग तत्व, आत्मतत्व का ज्ञान कराते हुए क्रमशः ब्रह्म तत्व तक साधक को ले जाता है। मन के मनीषी होने तक दैहिक, मानसिक, आंतरिक और आध्यात्मिक विज्ञान का नाम योग है। प्रेय-श्रेय का ज्ञान, प्रवृत्ति से निवृत्ति, अभ्युदय से निःश्रेयस, संकल्प, साधना सिद्धि और अहर्निश पुरुषार्थ युक्त योग साधना का नाम योग है। व्याधि से मुक्ति और समाधि से युक्ति का नाम योग है।

वस्तुतः योग पहले हमारा निर्माण, अंततः निर्वाण तक ले जाता है।

अध्यात्म के संग भौतिकता के संयोजन का अनूठा संयोग योग दर्शन की विशेषता है, जो बाहर से प्रवृति और पुरुषार्थ, अंदर से निवृति और अभ्युदय से निःश्रेयस तक की आंतरिक यात्रा है। ऐसी अद्भुत जीवन शैली का अंतर्बोध, यौगिक दर्शन की एक विलक्षण देन अखिल विश्व को मानवता के कल्याण के लिए प्रदत्त है।

योग के साथ-साथ आरोग्य और स्वस्थ जीवन शैली के लिए आयुर्वेद के प्रति विश्व में विश्वास बढ़ता जा रहा है। विश्व आश्वस्त हो चुका है कि योग व्याधिमुक्त व समधियुक्त जीवन की संरचना है। आयुर्वेद आरोग्य की सम्पूर्ण संकल्पना है जिस पर पाश्चात्य वैज्ञानिक बड़ी गहराई से शोध कर रहे हैं। इनमें से अधिकतर जड़ी बूटियों के नाम हिंदी और संस्कृत में यथावत लिए जाते हैं। नीम, शतावर, आँवला, त्रिफला आदि को यथावत ही बोलते और लिखते हैं। यह सच है कि योग और यौगिक शब्दों का वैश्वीकरण न हुआ होता यदि इंटरनेट पर योग के प्रचार और प्रसार के विकल्प न होते। किसी भी लिंक पर जाओ विश्व के हर समुदाय के लोग रंग-बिरंगी योग की चटाइयों पर पूरे मनोयोग से योग करते मिलेंगे। विदेशों में योग केंद्र बहुतायत से खुले हैं। न्यूयार्क से YOGA शीर्षक से मासिक पत्रिका निकलती है।

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में योग शब्द अब इतना विराट हो गया है जो हिंदी या संस्कृत की भाषा सीमा को पार कर नाद तत्व हो गया है। योग में प्रयुक्त होने वाले शब्द अब सबके अपने होते जा रहे हैं, क्योंकि सबको योग से आंतरिक शांति के संकेत मिलते हैं। जहाँ सुख मिलता है इन्द्रियाँ वहाँ ठहर जाती हैं, मन उसे आत्मसात कर लेता है। ॐ! अर्थात योग अध्यात्म की मूल ध्वनि, यौगिक क्रियाओं और आसनों में संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दों का ही उच्चारण करते हैं। ॐ ! अर्थात दिव्य भाव, नमस्ते अर्थात सद्भाव, समर्पण और संस्कार का भाव, इनका आरम्भ हमारी भाषा के वैश्वीकरण के शुभ संकेत हैं। ये भाषा के बीज हैं, वृक्ष के लिए समय चाहिए। योग प्रक्रिया में प्राणायाम के द्वारा स्वस्थ तन के जो अकाट्य सूत्र दिए हैं, उन पर विज्ञान भी आज नतमस्तक हो गया है। यही कारण है आज अधिकांश विश्व में योग दर्शन का प्रसार हो रहा है। भारत पहले भी विश्व गुरु था, अब योग की सिद्धि से पुनः विश्व गुरु बनेगा। विदेशों में योग के माध्यम से हिंदी और संस्कृत के भाषायी पक्ष को भी प्रबल बल मिला है।

❋

1, Crimson Avenue, Blackburn, South Vic 3130
+61450057557

भारतीय संविधान भारतीय जीवन दर्शन का ग्रंथ है

डॉ. सौरभ मालवीय

भारतीय संविधान "हम भारत के लोगों" के लिए हमारी अद्वितीय सांस्कृतिक विरासत जनित स्वतंत्रता एवं समानता के आदर्श मूल्यों के प्रति एक राष्ट्र के रूप में हमारी प्रतिबद्धता का परिचायक है। आधुनिक भारत की संकल्पना के समय संविधान निर्माताओं ने इसी सांस्कृतिक विरासत को उसके मूल स्वरूप में अक्षुण्ण रखने के ध्येय से भारतीय संविधान की मूल प्रतिलिपि में सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्व के रुचिकर चित्रों को स्थान दिया, जो मूलत: भारतीय संविधान के भारतीय चैतन्य को ही परिभाषित करते हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा के आलोक में निर्मित भारतीय संविधान भारत की ऋषि परम्परा का धर्मशास्त्र है। भारतीय जीवन दर्शन का ग्रंथ है।

किसी भी देश के लिए एक विधान की आवश्यकता होती है। देश के विधान को संविधान कहा जाता है। यह अधिनियमों का संग्रह है। भारत के संविधान को विश्व का सबसे लम्बा लिखित विधान होने का गौरव प्राप्त है। भारतीय संविधान हमारे देश की आत्मा है। इसका देश से वही संबंध है, जो आत्मा का शरीर से होता है।

संविधान दिवस का इतिहास

भारत का संविधान 26 नवम्बर 1949 को बनकर पूर्ण हुआ था। चूँकि डॉ. भीमराव आम्बेडकर संविधान सभा की प्रारूप समिति के अध्यक्ष थे, इसलिए भारत सरकार द्वारा उनकी 125वीं जयंती वर्ष के रूप में 26 नवम्बर 2015 को प्रथम बार संविधान दिवस संपूर्ण देश में मनाया गया। उसके पश्चात 26 नवम्बर को प्रत्येक वर्ष संविधान दिवस मनाया जाने लगा। इससे पूर्व इसे राष्ट्रीय विधि दिवस के रूप में मनाया जाता था। संविधान सभा द्वारा देश के संविधान को 2 वर्ष 11 माह 18 दिन में पूर्ण किया गया था। इस पर 114 दिन तक चर्चा हुई तथा 12 अधिवेशन आयोजित किए गए। भारतीय संविधान को बनाने में लगभग एक करोड़ की लागत आई थी। भारतीय संविधान में डॉ. राजेंद्र प्रसाद को 11 दिसंबर 1946 में स्थाई अध्यक्ष मनोनीत किया गया था। भारतीय संविधान पर 284 लोगों ने हस्ताक्षर किए थे। यह 26 नवम्बर 1949 को पूर्ण कर राष्ट्र को समर्पित किया गया। इसके पश्चात 26 जनवरी 1950 से देश में संविधान लागू किया गया। इससे पूर्व देश में भारत सरकार अधिनियम-1935 का कानून लागू था। कोई भी वस्तु पूर्ण नहीं होती है। समय के अनुसार उसमें परिवर्तन होते रहते हैं। भारतीय संविधान लागू होने के पश्चात इसमें 100 से अधिक संशोधन किए जा चुके हैं। ऐसा भविष्य में भी होने की पूर्ण संभावना है।

भारतीय संविधान में सरकार के अधिकारियों के कर्तव्य एवं नागरिकों के अधिकारों के बारे में विस्तार से बताया गया है। संविधान सभा के कुल सदस्यों की संख्या 389 थी। इनमें 292 ब्रिटिश प्रांतों के 4 चीफ कमिश्नर थे, जबकि 93 सदस्य देशी रियासतों के थे। विशेष बात यह है कि देश की स्वतंत्रता के पश्चात संविधान सभा के सदस्य ही देश की संसद के प्रथम सदस्य बने थे। देश की संविधान सभा का चुनाव भारतीय संविधान के निर्माण के लिए ही किया गया था। भारतीय संविधान के अनुसार केंद्रीय कार्यपालिका का संवैधानिक प्रमुख राष्ट्रपति होता है। भारतीय संविधान का निर्माण करने वाली संविधान सभा का गठन 19 जुलाई 1946 को किया गया था। संविधान के कुछ अनुच्छेदों को 26 नवंबर 1949 को पारित किया गया, जबकि शेष अनुच्छेदों को 26 जनवरी 1950 को लागू किया गया।

संविधान की विशेषता

भारत एक विशाल देश है। इसमें विभिन्न संस्कृतियों के लोग निवास करते हैं। यहाँ विभिन्न संप्रदायों, पंथों, जातियों आदि के लोग हैं। उनके, रीति-रिवाज, भाषाएँ, रहन-सहन एवं खान-पान भी भिन्न-भिन्न हैं। इस सबके मध्य वे आपस में मिलजुल कर रहते हैं। वास्तव में यही

भारत का स्वभाव है। भारतीय संविधान में भारत के नागरिकों को छह मौलिक अधिकार प्रदान किए गए हैं, जिनका वर्णन अनुच्छेद 12 से 35 को मध्य किया गया है। इनमें समानता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार, संस्कृति और शिक्षा से संबंधित अधिकार एवं संवैधानिक उपचारों का अधिकार सम्मिलित है। उल्लेखनीय है कि पहले संविधान में सात मौलिक अधिकार थे, जिसे '44वें संविधान संशोधन- 1978 के अंतर्गत हटा दिया गया। सातवाँ मौलिक अधिकार संपति का अधिकार था।

ऋषि परम्परा का धर्मशास्त्र

भारतीय संविधान "हम भारत के लोगों" के लिए हमारी अद्वितीय सांस्कृतिक विरासत जनित स्वतंत्रता एवं समानता के आदर्श मूल्यों के प्रति एक राष्ट्र के रूप में हमारी प्रतिबद्धता का परिचायक है। वर्तमान के आधुनिक भारत की संकल्पना के समय संविधान निर्माताओं ने इसी सांस्कृतिक विरासत को उसके मूल स्वरूप में अक्षुण्ण रखने के ध्येय से भारतीय संविधान की मूल प्रतिलिपि में सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्व के रुचिकर चित्रों को स्थान दिया, जो मूलतः भारतीय संविधान के भारतीय चैतन्य को ही परिभाषित करते हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा के आलोक में निर्मित भारतीय संविधान भारत की ऋषि परम्परा का धर्मशास्त्र है। भारतीय जीवन दर्शन का ग्रंथ है।

भारत एक लोकतांत्रिक देश है। यहाँ सबका सम्मान किया जाता है। वसुधैव कुटुम्बकम भारतीय संस्कृति का मूल आधार है। यह सनातन धर्म का मूल संस्कार है। यह एक विचारधारा है। महा उपनिषद सहित कई ग्रंथों में इसका उल्लेख मिलता है।

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां वसुधैव कुटुम्बकम्।।

अर्थात यह मेरा अपना है और यह नहीं है, इस तरह की गणना छोटे चित्त वाले लोग करते हैं। उदार हृदय वाले लोगों की तो संपूर्ण धरती ही परिवार है। कहने का अभिप्राय है कि धरती ही परिवार है। यह वाक्य भारतीय संसद के प्रवेश कक्ष में भी अंकित है।

निसंदेह भारत के लोग विराट हृदय वाले हैं। वे सबको अपना लेते हैं। विभिन्न संस्कृतियों के पश्चात भी सब आपस में परस्पर सहयोग भाव बनाए रखते हैं। एक-दूसरे के साथ मिलजुल कर रहते हैं। यही हमारी भारतीय संस्कृति की महानता है।

उल्लेखनीय है कि भारत का संविधान बहुत ही परिश्रम से तैयार किया गया है। इसके निर्माण से पूर्व विश्व के अनेक देशों के संविधानों का अध्ययन किया गया। तत्पश्चात उन पर गंभीर चिंतन किया गया। इन संविधानों में से उपयोगी संविधानों के शब्दों को भारतीय संविधान में सम्मिलित किया गया। आजादी के बाद भारत का वैचारिक दृष्टिकोण भारतीय ज्ञान परम्परा के आलोक में विकास के पाठ पर खड़ा करने का प्रयास होना चाहिए था।

भारतीय संविधान की उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय,

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता,

प्रतिष्ठा और अवसर की समता, प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन सब में,

व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित कराने वाली, बंधुता बढ़ाने के लिए,

दृढ़ संकल्पित होकर अपनी संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर 1949 ई० (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत दो हजार छह विक्रमी) को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

भारतीय संविधान की इस उद्देशिका में भारत की आत्मा निवास करती है। इसका प्रत्येक शब्द एक मंत्र के समान है। हम भारत के लोग- से अभिप्राय है कि भारत एक प्रजातांत्रिक देश है तथा भारत के लोग ही सर्वोच्च संप्रभु है। इसी प्रकार संप्रभुता- से अभिप्राय है कि भारत किसी अन्य देश पर निर्भर नहीं है। समाजवादी- से अभिप्राय है कि संपूर्ण साधनों आदि पर सार्वजनिक स्वामित्व या नियंत्रण के साथ वितरण में समतुल्य सामंजस्य। 'पंथनिरपेक्ष राज्य' शब्द का स्पष्ट रूप से संविधान में कोई उल्लेख नहीं है। लोकतांत्रिक- से अभिप्राय है कि लोक का तंत्र अर्थात जनता का शासन। गणतंत्र- से अभिप्राय है कि एक ऐसा शासन जिसमें राज्य का मुखिया एक निर्वाचित प्रतिनिधि होता है। न्याय- से आशय है कि सबको न्याय प्राप्त हो। स्वतंत्रता- से अभिप्राय है कि सभी नागरिकों को स्वतंत्रता से जीवन यापन करने का अधिकार है। समता- से अभिप्राय है कि देश के सभी नागिरकों को समान अधिकार प्राप्त हैं। इसी प्रकार बंधुत्व- से अभिप्राय है देशवासियों के मध्य भाईचारे की भावना।

विचारणीय विषय यह है कि भारतीय संविधान ने देश के सभी नागरिकों को समान अधिकार प्रदान किए हैं तथा उनके साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया। किन्तु देश में आज भी ऊंच-नीच, अस्पृश्यता आदि जैसे बुराइयां व्याप्त हैं। इन बुराइयों को समाप्त करने के लिए कानून भी बनाए गए, परन्तु इनका विशेष लाभ देखने को नहीं मिला। ग्रामीण क्षेत्रों में यह समस्या अधिक देखने को मिलती है। सामाजिक समरसता भारतीय समाज की खूबसूरती है, अस्पृश्यता से संबंधित अप्रिय घटनाएं भी चर्चा में रहती हैं। इन बुराइयों को समाप्त करने के लिए जागरूक लोगों को ही आगे आना चाहिए तथा सभी लोगों को देश के संविधान का पालन करना चाहिए।

❋

(लेखक-मीडिया शिक्षक एवं राजनीतिक विश्लेषक है)

हिंदी प्रदेश की रामलीला परम्परा

डॉ. अवंतिका सिंह

"रामलीला की कई शैलियाँ प्रचलित हैं। उसका मंचन भी कई रूपों में होता है। संवादात्मक, काव्यात्मक, पुतुल नाट्य आदि। 'रामलीला' की झाँकी, दृश्यों और शोभा यात्रा से युक्त अभिनयपरक पद्धति में मानस-पाठ होता रहता है और अभिनेता बीच-बीच में अभिनय करते रहते हैं। इनके संवाद संक्षिप्त होते हैं। कुछ दृश्यों के प्रस्तुतीकरण में दृश्यात्मक रूप से सजे हुए यानों (विमानों) पर जुलूस निकाला जाता हैं।'[5] अभिनय रामकथामय रामलीला की प्राणशक्ति है। रामकथा के विभिन्न प्रसंगों की संवाद पुस्तिका व्यास के हाथ में रहती है। पुस्तिका के आधार पर पात्र संवाद बोलते हैं और कथा आगे बढ़ती रहती है। बीच-बीच में मानस-पाठ रामलीला का अनिवार्य अंग बना रहता है।"

नाटक शताब्दियों से मनुष्य को प्रभावित करने का शक्तिशाली माध्यम रहा है। प्राचीन काल से दृश्य और श्रव्य काव्य की परम्परा में नाटकों का विशिष्ट महत्व है। भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' से काव्य प्रतिमानों का निर्धारण और कई प्रकार के शास्त्रीय सिद्धान्तों का सृजन भी हुआ। अनुभूति का आभास, का आस्वादन और दर्शक के हृदय में तात्कालिक प्रभाव को स्थापित करने में नाटकों की अहम भूमिका है। इस दृष्टि से हिंदी भाषी प्रांतों और हिंदीपन की संस्कृति से लबरेज स्थलों पर लोकनुरंजक नाट्यशैलियों का प्रादुर्भाव समय-समय पर होता रहा है। हिंदी के अतिरिक्त मराठी, तमिल, बंगला, कन्नड़ इत्यादि में भी लोकनाट्य शैलियाँ अपने प्रभाव की कहानी कहती रही हैं। इनके क्षेत्र सुनिश्चित तथा विस्तार निकट के जनपदों में लोक-संस्कृति के संवाहक बने हुए हैं। लोकवाही संस्कृति की ये नाट्य-शैलियाँ भाषा, प्रांत, दिशा, धर्म इत्यादि की सीमा को अतिक्रमित करती हुई 'लोक' का एक अनोखा संसार रचती हैं। इस रचाव में सद्भाव, उदारता, धार्मिकता, राष्ट्रप्रेम, साहित्यिक कलाएँ, व्यंग्य, सामाजिक सुधार के प्रयत्न स्पष्टतः देखे जा सकते हैं। हिंदी-प्रदेश की नाट्य-शैलियों में उनका स्वरूप अधिक स्पष्टता के साथ दिखायी पड़ता है। भारतीय उपमहाद्वीप में लोकनाट्य शैलियों का स्वतंत्र विकास हुआ है। जैसे जात्रा (बंगाल) अंकियानाट (असम) भवई (गुजरात), तमाशा (महाराष्ट्र), भांडपथर (कश्मीर) चविट्ट कुटियट्टम (केरल) यक्षगान (कर्नाटक) भावत मेल, तेरुकुत्तू (तमिलनाडु), कुचिपुड़ी (आन्ध्र-प्रदेश) तथा हिंदी-प्रदेश में प्रचलित रामलीला, रासलीला, ख्याल, स्वांग, नौटंकी, कीर्तनिया नाट, बिदेसिया, धोबी नृत्य माच, नाचा, रम्मत नकल, फँड़, करियाला, पंडवानी, गवरी, रम्मत आदि पर गायन, वादन, नृत्य, संगीत परलोक परम्पराओं, लोककथाओं और लोकनायकों का व्यापक प्रभाव दिखता हैं। इन लोकनाट्य शैलियों का वर्गीकरण डॉ. दशरथ ओझा -'कथा-वस्तु के आधार पर' करते हैं तो डॉ. महेन्द्र भानावत 'शिल्प प्रक्रिया के आधार पर।

हिंदी प्रदेश या **हिंदी क्षेत्र** शब्द का उद्भव व प्रयोग **'हिंदी जाति'** की अवधारणा के सामानांतर हुआ है। डॉ. रामविलास शर्मा ने 'हिंदी जाति' शब्द का प्रयोग बिरादरी या प्रचलित जाति के अर्थ में न करके राष्ट्रीयता के संदर्भ में किया है। अवधी, ब्रजभाषा, भोजपुरी, मगही, बुंदेलखण्डी, राजस्थानी आदि बोलियों के बीच अंतर जनपदीय स्तर पर हिंदी की प्रमुख भूमिका को देखते हुए उन्होंने 'हिंदी जाति' की अवधारणा सामने रखी। इस अवधारणा के पीछे उनका एक खास उद्देश्य था। इन बोलियों का प्रयोग करने वाले जनपदीय या क्षेत्रीय पृथकता की भावना से ऊपर उठ कर हिंदी को अपनी जातीय भाषा के रूप में स्वीकार करें। **निराला की साहित्य-साधना (द्वितीय खण्ड)** में विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि- भारत में अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं। इन भाषाओं के अपने-अपने प्रदेश हैं। इन प्रदेशों में रहने वाले लोगों को 'जाति' की 'संज्ञा' दी जाती है। वर्ण-व्यवस्था वाली जाति-पाँति से इस 'जाति' का अर्थ बिल्कुल भिन्न है। किसी भाषा को बोलने वाली, उस भाषा क्षेत्र में बसने वाली ईकाई का नाम जाति है।[1]

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी, फॉदर कामिल बुल्के तथा राहुल सांकृत्यायन इत्यादि विद्वान् 'हिंदी प्रदेश' शब्द का प्रयोग पहले ही करते रहे हैं।

डॉ. रामविलास शर्मा का मत था कि जिस प्रकार भाषा के आधार पर बांग्ला, गुजराती, मराठी आदि जातियों की पहचान बनी है, ठीक उसी प्रकार हिंदी-प्रदेश की जनता भी जनपदीय बोलियों के आधार पर पहचाने जाने के बजाय एक हिंदी भाषी जाति के रूप में पहचानी जाऐ। हिंदी-प्रदेश या हिंदी-क्षेत्र के अन्तर्गत उत्तर-प्रदेश, उत्तराखण्ड, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, बिहार, दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश सम्मिलित हैं। यहाँ लोकनाट्य शैलियों की अत्यन्त समृद्ध परम्परा मिलती है। रामलीला नाट्यशैली उसमें अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। रामचरित का अभिनय ही रामलीला है। राम के जीवन से सम्बन्धित विभिन्न प्रसंगों का पारम्परिक ढंग से मंचन रामलीला की प्रमुख विशेषता है। उल्लेखनीय है कि राम, सीता और दशरथ का नामोल्लेख ऋगवेद की ऋचाओं में भी प्राप्त होता है। सम्भवतः लोक में रामकथा की शुरुआत के साथ ही रामचरित का अभिनय भी अस्तित्व में आया होगा। कुछ विद्वानों का मत है कि राम के जीवन काल में ही रामचरित का अभिनय उनके पुत्रों द्वारा सम्पन्न किया जाने लगा था।[2] इसके अतिरिक्त अनेक ग्रन्थों जैसे उत्तररामचरितम्, हरिवंश पुराण, हनुमन्नाटक, जैन काव्य आदि में इस लोकनाट्य शैली का उल्लेख मिलता है। भारतीय उपमहाद्वीप में प्रचलित अनेक लोकनाट्य शैलियों में प्रमुख व लोकप्रिय नाट्यशैली के रूप में रामलीला की उपस्थिति इसके महत्व को प्रतिपादित करती है।[3]

अकबर का राज्यकाल (सन् 1556 से1605 ई.) रासलीला और रामलीला दोनों का उत्कर्षकाल रहा है। गोस्वामी तुलसीदास की रचना ' श्रीरामचरितमानस' ने रामलीला व रामकथा को व्यवस्थित रूप प्रदान किया। पंजाबवासी और गो. तुलसीदास के मित्र मेघा भगत के प्रयास से रामलीला का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। अयोध्या और काशी में रामलीला का प्रचलन तेजी से बढ़ा। रामलीला के इस विकास में रामकथा के महत्व को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है।

भागवत धर्म में प्रचलित अनेक कथाएँ विभिन्न लोकनाट्य शैलियों का हिस्सा बनीं। ये नाटक, धर्म व संस्कृति के अस्तित्व को संरक्षित करने तथा भक्ति की परम्परा को प्रबल बनाने के सशक्त माध्यम थे। प्रारंभ में रामलीला क्षेत्र सीमित था। कालांतर में इसका विस्तार सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं में दिखने लगा। गोस्वामी तुलसीदास और उनके ग्रंथ 'श्रीरामचरितमानस' की ख्याति दक्षिण भारत तक फैली चुकी थी। इसकी पुष्टि कर्नाटक के अत्यन्त प्राचीन लोकनाट्य दोड्डाटट्टा के 'रामकथे' से होती है। इसका उल्लेख सम्मान के साथ हुआ है। इनमें चौपाइयाँ और संवादों को भी सम्मिलित किया गया है।[4]

रामलीला की कई शैलियाँ प्रचलित हैं। उसका मंचन भी कई रूपों में होता है। संवादात्मक, काव्यात्मक, पुतुल नाट्य आदि। 'रामलीला' की झाँकी, दृश्यों और शोभा यात्रा से युक्त अभिनयपरक पद्धति में मानस-पाठ होता रहता है और अभिनेता बीच-बीच में अभिनय करते रहते हैं। इनके संवाद संक्षिप्त होते हैं। कुछ दृश्यों के प्रस्तुतीकरण में दृश्यात्मक रूप से सजे हुए यानों (विमानों) पर जुलूस निकाला जाता हैं।''[5] अभिनय रामकथामय रामलीला की प्राणशक्ति है। रामकथा के विभिन्न प्रसंगों की संवाद पुस्तिका व्यास के हाथ में रहती है। पुस्तिका के आधार पर पात्र संवाद बोलते हैं और कथा आगे बढ़ती रहती है। बीच-बीच में मानस-पाठ रामलीला का अनिवार्य अंग बना रहता है। संवाद पुस्तिका के निर्माण में राम-साहित्य का कुछ महत्त्वपूर्ण अंश सम्मिलित किया जाता है। ये संवाद नाटकीय होते हैं। लगभग समस्त उत्तर भारत में रामलीला का मंचन इसी पद्धति पर होने लगा था। व्यास और रामायणी दल इसका अभिन्न अंग हैं। विभिन्न आकार-प्रकार के मुखौटों का प्रचलन भी रामलीला में रुचि उत्पन्न करता है। मुकुट और मुखौटा-पूजन रामलीला के पूर्वरंग का हिस्सा है। 'रामलीला के प्रारंभ में पूर्वरंग की निश्चित विधि का पालन किया जाता है जिसमें स्थान भेद के कारण प्रकार-भेद भी देखा जाता है। कहीं यह लीला भगवान के मुकुटों के पूजन से आरम्भ होती है और कहीं इसी प्रकार के अन्य कर्मकांडों से।'[5] रामलीला का मंच सादगी भरा होता है। कोई तड़क-भड़क नहीं। लीला प्रसंग मन्दिरों में कुछ जलाशय के आस-पास तथा कुछ मैदानों में मंच तैयार कर किये जाते हैं। मैदानों में बनने वाले मंच कहीं छोटे तो कहीं अत्यधिक बड़े बनाये जाते हैं। 'उत्तर प्रदेश और दिल्ली में रामलीला का जो प्रदर्शन होता है, उसकी रंगस्थली अधिक विशाल होती है, प्रेक्षकों की संख्या भी उसी अनुपात से अधिक होती है। उत्तर प्रदेश में रामलीला के लिए लगभग पाँच सौ गज की आयताकार भूमि के चारों ओर खेमे लगा दिये जाते हैं, इसे बाड़ा कहते हैं। बाड़े के अन्दर चित्रकूट, लंका, पंचवटी इत्यादि के लिए अलग-अलग स्थान नियत होते हैं। इस तरह नाट्य गति और व्यापार का एक विविध और प्रभावकारी चित्र दर्शक के सामने आ जाता है। दिल्ली की परम्परागत रामलीला में छह फुट से ऊँचा मंच बनाया जाता है। मंच लगभग सौ गज लम्बे और तीस गज चैड़े पथ के रूप में होता है। बल्लियों पर तख्त आदि बाँधकर इसका निर्माण किया जाता है। एक सिरे पर लंका और दूसरे सिरे पर चित्रकूट। प्रेक्षक लम्बाई के दोनों ओर खड़े या बैठे रहते है।[6] रामलीला का क्षेत्र विस्तार बहुत तेजी से हुआ। उत्तर प्रदेश की रामलीलाओं में शोभायात्रा का सर्वाधिक महत्व है। कुछ स्थानों पर पात्रों को 'स्वरूप' कहा जाता है। पात्रों का श्रृंगार साधु-संतों द्वारा सम्पन्न होता है। विश्व प्रसिद्ध रामलीला रामनगर (बनारस) की होती है। एक माह पूर्व से ही लोग उसके संवाद को याद करते हैं तथा मंचन की बारीकियों की समझ विकसित करते हैं। यह परंपरा प्रायः दो सौ वर्षों से चल रही है। आज भी वहाँ आधुनिक रोशनी (बिजली) का प्रयोग वर्जित है। अत्याधुनिक युग में अपार भीड़ का उमड़ना रामलीला के महत्व को प्रदर्शित करता है। श्रृंगार पारम्परिक रूप से होता है- काजल, गेरू, मुर्दाशंखी तथा विभिन्न प्रकार के फूलों से श्रृंगार किया जाता है। कुछ स्थानों की लीला पर आधुनिकता का प्रभाव बढ़ा है। लोककथाएँ बच सकती हैं। इनका सुरक्षित रहना संस्कृति को बचाना है। इन सभी लोकनाट्य शैलियों का विशिष्ट महत्व है। इनका प्रभाव लोकमानस को प्रभावित करता है।

सन्दर्भ

1. निराला की साहित्य साधना, भाग-2, डॉ. रामविलास शर्मा, पृ.68
2. हिंदी नाटक: उद्भव और विकास- डॉ. दशरथ ओझा, पृ.31
3. इन्दुजा अवस्थी का एक लेख- रामनाट्य दक्षिण में हिन्दुस्तान, 11 अक्टूबर 1981
4. हिंदी रंगमंच की लोकधारा- जावेद अख्तर खाँ, पृ90
5. हिंदी नाट्य साहित्य और रंगमंच, कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह, पृ.141
6. परम्पराशील नाट्य- श्री जगदीशचन्द्र माथुर, पृ.64

एफ-802, गोल्फ एवेन्यू -1, सेक्टर-75,गौतम बुद्ध नगर (नोएडा), उत्तर प्रदेश पिन कोड -201301 दूरभाष -7834976223

भारत में सांस्कृतिक विषयों पर एनिमेटेड फ़िल्में

डॉ. गुंजन अग्रवाल

पहली भारतीय थ्री-डी कंप्यूटर एनिमेटेड फिल्म, उमा गणेश राजा द्वारा निर्देशित 'पाण्डव : द फाइव वॉरियर्स', वर्ष 2000 में रिलीज़ हुई थी। इसके बाद तो एनिमेशन-फ़िल्मों की मानो झड़ी ही लग गयी। वर्ष 2003 में कार्टून नेटवर्क पर अंग्रेजी और हिंदी-भाषाओं में तेनालीराम के जीवन और कहानियों पर आधारित 'द एडवेंचर्स ऑफ़ तेनालीराम' नाम से एनिमेटेड श्रृंखला प्रसारित हुई। यह भारत की पहली एनिमेटेड टेलीविजन-श्रृंखला है। यह 'टूंज एमिनेशन स्टूडियो' द्वारा निर्मित किया गया था। इसके तमिळ और कन्नड़-संस्करण भी प्रसारित किए गए। इसे बच्चों ने काफ़ी सराहा। 2005 में क्षितिज सिंह द्वारा निर्देशित फ़िल्म 'हनुमान' ने तो सफलता के झंडे ही गाड़ दिए।

एनिमेशन आज एक उभरता हुआ उद्योग है। इसने विभिन्न क्षेत्रों, जैसे— ई-शिक्षा, चिकित्सा, मैकेनिकल जानकारी, वास्तुकला-दृश्य, वेब-डिजाइनिंग और मनोरंजन (टीवी-प्रसारण, एनिमेटेड फ़िल्में, कार्टून, कंप्यूटर-गेम), आदि में पैर पसार लिए हैं। इनमें से ज्यादातर एनिमेशन कंप्यूटर की सहायता से किया जा रहा है और कंप्यूटर-ग्राफिक्स का इस्तेमाल करके एनिमेटेड छवियाँ उत्पन्न की जाती हैं। इनमें भी एनिमेशन-फ़िल्में मुझे काफ़ी पसन्द हैं। पहले केवल बच्चे ऐसी फ़िल्में देखते थे, पर अब सभी उम्र के भारतीय दर्शक ऐसी फ़िल्में पसन्द कर रहे हैं और इसकी लोकप्रियता दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। इसी लोकप्रियता ने इस क्षेत्र में निवेश के लिए प्रोडक्शन हाउस स्थापित करने के लिए प्रेरित किया है।

इतिहास के पन्ने उलटें, तो पता चलता है कि अमेरिकी तकनीकी सहयोग मिशन के तहत देश की पहली एनिमेशन स्टूडियो को स्थापित करने और भारतीय एनिमेटरों को प्रशिक्षित करने के लिए, फ़िल्म्स डिवीजन ऑफ़ इण्डिया ने 'वाल्ट डिज़नी स्टूडियो' के एनिमेटर, भारतीय मूल के श्री क्लेयर वीक (1911-1996) को आमंत्रित किया था। वीक द्वारा प्रशिक्षित भारतीय एनिमेटर के मुख्य समूह ने 1957 में विजया मुळे (1921-2019) के निर्देशन में 'द बनयान डियर', और 1974 में 'एक अनेक और एकता' (एकता के मूल्यों पर आधारित लघु शैक्षिक फ़िल्म) बनाई, जो फ़िल्म डिवीज़न ऑफ़ इण्डिया द्वारा निर्मित एनिमेटेड फ़िल्मों में मील का पत्थर थी। इस फ़िल्म का डिजाइन, एमिनेशन और निर्माण भीमसेन खुराना (1936-) ने किया था जो 'भारतीय एनिमेशन के पिता' माने जाते हैं। यह फ़िल्म दूरदर्शन पर प्रसारित हुई और बच्चों के बीच बेहद लोकप्रिय हुई। इस फ़िल्म ने सर्वश्रेष्ठ शैक्षिक फ़िल्म के लिए राष्ट्रीय फ़िल्म पुरस्कार जीता था। मैंने सन् 90 के दशक में दूरदर्शन पर सोनी के अपने पुराने ब्लैक एण्ड ह्वाइट टेलीविजन पर इसे कई बार देखा था। आज भी इस फ़िल्म को बड़े चाव से देखा जाता है।

ऐसा नहीं है कि 'द बनयान डियर' से पहले भारत में एनिमेशन फ़िल्म ही नहीं बनी थी। बहुत कम लोग जानते हैं कि भारतीय सिनेमा के पिता दादा साहिब फाळके (1870-1944) ने ही सर्वप्रथम इसकी शुरुआत की थी। 1915 में उन्होंने 'अगकाद्यांची मौज़' नाम से एक शॉर्ट एनिमेशन-फ़िल्म बनाकर इस क्षेत्र में कदम रख दिया था। कहा जाता है कि श्री फाळके को कार्टून और वृत्तचित्रों के निर्माण-जैसे काम करने के लिए मज़बूर किया गया था; क्योंकि यूरोप में युद्ध के दौरान फ़िल्म सहित आयातों को कम कर दिया था। दुर्भाग्यवश, फाळके द्वारा निर्मित एनिमेटेड कार्य, जैसे— 'अगकाद्यांची मौज़' और 'विचित्र शिल्प' समय के विनाश से नहीं बच सके।

गुनमॉय बनर्जी ने साढ़े तीन मिनट की पहली ब्लैक एण्ड ह्वाइट एनिमेशन-फ़िल्म 'द पी ब्रदर्श' बनाई थी। यह सिनेमाघर में दिखाई गई पहली एनिमेटेड फ़िल्म थी, जो 1934 में कलकत्ता में सिनेमाघर में दिखाई गई। उसी वर्ष पूना की प्रभात फ़िल्म कम्पनी ने 'जम्बू काका' नामक एनिमेशन फ़िल्म बनाई थी। इस अवधि की अन्य शॉर्ट एनिमेशन-फ़िल्में हैं: कोलापुर सिनेटून्स' द्वारा निर्मित 'बाकम भट्ट', मोहन भवानी द्वारा निर्देशित 'लफंगा लंगूर' (1935), जी.के. गोखळे द्वारा निर्देशित 'सुपरमैन्स मिथ' (1939), मन्दार मलिक द्वारा निर्देशित 'आकाश-पाताल' (1939), इत्यादि। पर ये फ़िल्में चर्चा का विषय न बन सकीं। वर्ष 1986 में प्रसारित पहली भारतीय एनिमेटेड टेलीविजन श्रृंखला, सुधासात्व बसु द्वारा निर्देशित 'घायब आया' थी।

सन् 1992 में जापान के सहयोग से 'रामायण : द लेजेण्ड ऑफ़ प्रिंस राम' निर्मित हुई। इस फ़िल्म के दृश्य और संवाद इतने धीर-गम्भीर और सजीव हैं कि आँखों से हटते नहीं हैं। इस फ़िल्म के सैकड़ों संवाद मुझे कण्ठस्थ हो गए हैं। इस फ़िल्म में श्री अरुण गोविल (1958-) ने राम और श्री अमरीश पुरी (1932-2005) ने रावण की आवाज़ दी थी। इस फ़िल्म ने 2000 में सं.रा. अमेरिका के सांता क्लारिया इंटरनेशनल फ़िल्म फेस्टिवल में 'बेस्ट एनिमेशन फ़िल्म' का पुरस्कार जीता था।

पहली भारतीय थ्री-डी कंप्यूटर एनिमेटेड फिल्म, उमा गणेश राजा द्वारा निर्देशित 'पाण्डव : द फाइव वॉरियर्स', वर्ष 2000 में रिलीज़ हुई थी। इसके बाद तो एनिमेशन-फ़िल्मों की मानो झड़ी ही लग गयी। वर्ष 2003 में कार्टून नेटवर्क पर अंग्रेजी और हिंदी-भाषाओं में तेनालीराम के जीवन और कहानियों पर आधारित 'द एडवेंचर्स ऑफ़ तेनालीराम' नाम से एनिमेटेड श्रृंखला प्रसारित हुई। यह भारत की पहली एनिमेटेड टेलीविजन-श्रृंखला है। यह 'टूंज एमिनेशन स्टूडियो' द्वारा निर्मित किया गया था। इसके तमिळ और कन्नड़-संस्करण भी प्रसारित किए गये। इसे बच्चों ने काफ़ी सराहा। 2005 में क्षितिज सिंह द्वारा निर्देशित फ़िल्म 'हनुमान' ने तो सफलता के झण्डे ही गाड़ दिये। यह अकेली फ़िल्म बॉक्स ऑफ़िस पर बेहद लोकप्रिय और सुपर-डुपर हिट हो गई थी। इस फ़िल्म में जाने-माने अभिनेता श्री मुकेश खन्ना (1958-) ने सूत्रधार के रूप में अपनी आवाज़ दी थी। इस फ़िल्म की सफलता के बाद एनिमेशन-फिल्म उद्योग ने गति पकड़ी।

'हनुमान' के बाद 'दी लेजेण्ड ऑफ़ बुद्ध' (2005), 'बाल हनुमान' (2006), 'किट्टू' (2006), 'कृष्ण' (2006), 'इनिमे नंगथन' (2007), 'रिटर्न ऑफ़ हनुमान' (2007), 'बाल गणेश' (2007), 'रोडसाइड रोमियो' (2008), 'दशावतार' (2008), 'घटोत्कच : दी मैजिक ऑफ़ मास्टर' (2008), 'चींटी चींटी भाग भाग' (2008), 'जम्बो' (2008), 'बाल गणेश-2' (2009), 'पंगा गंग (2010), 'बाल हनुमान-2' (2010), 'बाल हनुमान : रिटर्न ऑफ़ द डेमन' (2010), 'बर्ड आइडोल' (2010), 'लव-कुश : दी वॉरियर ट्विन्स' (2010), 'बारू: द वण्डर किड' (2010), 'टूनपुर का सुपरहीरो' (2010), 'रामायण : द इपिक' (2010), 'क्रैकर्स' (2011), 'अलीबाबा और 41 चोर' (2011), 'अर्जुन : दी वॉरियर प्रिंस' (2012), 'रामायण : प्रिंस ऑफ़ अयोध्या' (2012), 'दिल्ली सफ़ारी' (2012), 'सन्स ऑफ़ राम' (2012), 'महाभारत' (2013), 'कोचाडाइयान' (2014), 'घटोत्कच-2' (2014), 'चार साहिबज़ादे' (2014), 'महायोद्धा राम' (2016), 'हनुमान : द दमदार' (2017), आदि एनिमेशन-फ़िल्में भी उल्लेखनीय हैं।

पहली भारतीय 3-डी एनिमेटेड फ़िल्म 2008 में जुगल हंसराज (1972-) द्वारा लिखित और निर्देशित 'रोडसाइड रोमियो' थी, जो यशराज फ़िल्म और वाल्ट डिजनी कम्पनी के भारतीय प्रभाग के बीच

एक संयुक्त उपक्रम था। इस फ़िल्म को बेस्ट एनिमेटेड फ़िल्म के नेशनल फ़िल्म एवार्ड से सम्मानित किया गया था।

वर्ष 2011 में बीएपीएस स्वामी नारायण संस्था ने श्रीस्वामीनारायण चरित' नाम से 4 भागों में स्वामी नारायण की गुजराती, हिंदी एवं अंग्रेज़ी में 3-डी एनिमेशन फ़िल्म बनायी, जो बच्चों में लोकप्रिय है। इसी तरह बीएपीएस स्वामीनारायण संस्था ने 'मिस्टिक इण्डिया' फ़िल्म, जो दिल्ली के स्वामीनारायण अक्षरधाम मन्दिर में दिखाई जाती है, का भी 3-डी एनिमेशन-संस्करण तैयार कर लिया है।

वर्ष 2012 में अर्णव चौधरी द्वारा निर्देशित और यूटीवी मोशन पिक्चर्स तथा वाल्ट डिज़नी पिक्चर्स द्वारा 2-जी एनिमेशन तकनीक से निर्मित 'अर्जुन : दी वॉरियर प्रिंस' ने भी मुझे काफ़ी आकृष्ट किया। यह फ़िल्म महाभारत के पात्र अर्जुन को केन्द्र में रखकर बनाई गई है। इस फ़िल्म में खाण्डवप्रस्थ, द्रौपदी-स्वयंवर, मार्शल आर्ट, आदि के दृश्य अत्यन्त नयनाभिराम और संवाद अत्यन्त शानदार हैं, जो मंत्रमुग्ध कर देते हैं। कुल मिलाकर 'रामायण : दी लेजेण्ड ऑफ़ प्रिंस राम' के बाद यह फ़िल्म मुझे सर्वाधिक पसन्द आयी। इस फ़िल्म को दुनिया के सबसे बड़े और सबसे पुराने एनिमेशन फ़िल्म उत्सव : 'एनीसी इंटरनेशनल एनिमेटेड फ़िल्म फेस्टिवल' में 'क्रिस्टल एवार्ड फॉर बेस्ट फ़िल्म' के लिए नामित किया गया।

वर्ष 2013 में कौशल कांतिलाल गदा एवं धवल जयन्तीलाल गाडा (1989-) ने 'महाभारत' के नाम से एनिमेशन-फ़िल्म निर्मित की। इस फ़िल्म की ख़ास बात यह थी कि इसमें महाभारत के पात्रों का चित्रण बॉलीवुड के सुपरस्टारों को लेकर किया गया था। उदाहरण के लिए भीष्म, कृष्ण, भीम, अर्जुन, द्रौपदी, युधिष्ठिर, शकुनि, कुन्ती, दुर्योधन का अभिनय क्रमशः अमिताभ बच्चन, शत्रुघ्न सिन्हा, सनी देओल, अजय देवगन, अनिल कपूर, माधुरी दीक्षित, विद्या बालन, मनोज वाजपेयी, अनुपम खेर, दीप्ति नवल और जैकी श्राफ के एनिमेटेड पात्रों ने किया है और आवाज़ भी उन्हीं कलाकारों ने दी है। यह फ़िल्म उस समय बॉलीवुड की सबसे महंगी एनिमेटेड फ़िल्म मानी गई थी।

वर्ष 2012 में स्वामी विवेकानन्द (1863-1902) की 150वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में रामकृष्ण मठ (चेन्नई) और रामकृष्ण मिशन (दिल्ली) ने उनकी शिकागो-यात्रा और वहाँ विश्व धर्म संसद में दिए गए उदबोधन पर आधारित 15 मिनट की शॉर्ट 3-डी एनिमेशन फ़िल्म '9/11 : दी अवेकनिंग' का निर्माण किया। इस फ़िल्म को वर्तमान में चेन्नई के विवेकानन्द हाउस 3-डी थियेटर और दिल्ली के रामकृष्ण मिशन में प्रदर्शित किया गया है। अगले वर्ष शिवाजी महाराज के जीवन पर आधारित एनिमेशन टीवी-श्रृंखला 11 कड़ियों में मराठी में निर्मित हुई, परन्तु बेहतर एनिमेशन तकनीक का प्रयोग न किए जाने के कारण इसे सराहना न मिल सकी।

वर्ष 2014 में हैरी बावेजा (1956-) द्वारा गुरु गोविन्द सिंह (1666-1708) के चार पुत्रों— अजीत सिंह, जुझार सिंह, फतेह सिंह और जोरावर सिंह के बलिदान की ऐतिहासिक वीरगाथा पर पंजाबी और हिंदी में निर्मित 3-डी एनिमेशन-फ़िल्म 'चार साहिबजादे' को भी दर्शकों ने काफ़ी पसन्द किया गया। उल्लेखनीय है कि सिख-सम्प्रदाय के नियमानुसार सिख-गुरुओं का किरदार कोई जीवित व्यक्ति नहीं कर सकता, इसलिए बॉलीवुड में सिख-इतिहास पर फ़िल्म बनाना काफ़ी चुनौतीपूर्ण था। बन जाने पर उसे पास कराना असम्भव था। ऐसे में निर्देशक ने इतिहास में काफ़ी छान-बीन करके और शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमिटी के अधिकारियों से मिलकर इस फ़िल्म के निर्माण में आनेवाली रुकावटों को दूर किया। फ़िल्म में गुरु के स्थिर चित्रों का ही प्रयोग किया गया और बाकी पात्रों के लिए भी आवाज़ देने वाले कलाकारों के नाम गुप्त रखे गये। केवल सूत्रधार के रूप में आवाज़ देने वाले श्री ओम पुरी (1950-2017) ही सामने आये। 26 करोड़ रुपये से निर्मित इस फ़िल्म ने काफ़ी सुर्खियाँ बटोरीं।

वर्ष 2016 में निर्मित और भारी-भरकर बज़ट वाली 'महायोद्धा राम' में कुणाल कपूर (1977-) ने राम की और गुलशन ग्रोवर (1955-) ने रावण की आवाज़ दी है। लेकिन रामायण की मूल कथा से काफ़ी छेड़छाड़ और रावण पर केन्द्रित होने के कारण यह फ़िल्म लोकप्रिय न हो सकी।

इस तरह हम देखते हैं कि भारत में निर्मित ज़्यादातर एनिमेशन-फ़िल्में हिंदू पौराणिक कथाओं पर आधारित हैं। हम जानते हैं कि भारतीय समाज में दादी-नानी की कहानियों की जगह तेजी से वीडियो गेम्स, स्मार्ट फ़ोन गेम और यू-ट्यूब चैनल लेते जा रहे हैं। ऐसे में एनिमेशन-फ़िल्में भारतीय पौराणिक गाथाओं, रामायण और महाभारत-जैसे

भारतीय महाकाव्यों को बच्चों को परिचित कराने का एक बेहतर और स्वागत योग्य तरीक़ा हैं।

हम यह भी देख रहे हैं कि संजय लीला भंसाली-जैसे पेशेवर निर्देशक भारतीय इतिहास से जुड़ी फ़िल्मों के निर्माण में ख़ासी दिलचस्पी तो लेते हैं, लेकिन मनोरंजन के नाम पर तथ्यों से तोड़-मरोड़ करने में ये आसुरी सुख की अनुभूति करते हैं। इनकी निगाह में मध्यकालीन भारतीय योद्धा खलनायक और अलाउद्दीन और औरंगज़ेब राष्ट्रनायक थे। इसलिए ऐसे फ़िल्मकारों द्वारा निर्मित फ़िल्मों में ऐतिहासिकता, तथ्यपरकता, वस्तुनिष्ठता और राष्ट्रीय गौरव का पूर्णतया अभाव दिखता है।

ऐसे में एनिमेशन-फ़िल्मों से ही थोड़ी आशा बँधती है, जिसके माध्यम से बच्चों के बीच राष्ट्रीय गौरव को परोसा जा सकता है। जिस प्रकार इतिहास की पाठ्य-पुस्तकों में राष्ट्रीय गौरव को खंडित रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है, उस छवि को समाप्त करने के लिए एनिमेटेड फिल्म एक बेहतरीन माध्यम हो सकते हैं। बच्चे कार्टून (एनिमेशन फ़िल्में) पसन्द करते हैं और ये फ़िल्में उनको शैक्षिक तरीके से मनोरंजन के साथ इतिहास-बोध भी करा सकती हैं। आवश्यकता है कि हमारे फ़िल्मकार पौराणिक विषयों से बाहर निकलकर अन्य प्राचीन और मध्यकालीन ऐतिहासिक चरित्रों, घटनाओं पर भी एनिमेशन-फ़िल्में बनाने के लिए आगे आयें। भारतीय इतिहास में ऐसी घटनाओं और कहानियों की कोई कमी नहीं है जिनपर फ़िल्में बनाई जा सकती हैं। उदाहरण के लिए चाणक्य और चन्द्रगुप्त के विषय में एक बहुत अच्छी एनिमेशन फ़िल्म बनाए जाने की आवश्यकता है। सिकन्दर के भारतीय अभियान और पुरु द्वारा उसकी पराजय पर भी फ़िल्म बनाने के लिए काफ़ी मसाला प्रतीक्षा कर रहा है। इसी प्रकार एक फ़िल्म ऐसी बने, जिसमें वैदिक युग का सटीक चित्रण हो। हम प्रायः इतिहास में वैदिक युग के विषय में बढ़ते समय गिरि-कन्दराओं में रहनेवाले साधु-संन्यासियों के विषय में पढ़ते हैं। क्या उस समय नगरीय सभ्यता नहीं थी? यदि इस तरह की कोई बढ़िया फ़िल्म बनती है, तो उससे 'आर्य आक्रमण सिद्धान्त' के उन्मूलन में भी सहायता मिलेगी।

इसी तरह भारत की सन्त-परम्परा (आद्य शंकराचार्य, सन्त ज्ञानेश्वर, स्वामी रामानन्दाचार्य, स्वामी रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य), भारत की संसार को वैज्ञानिक देन (भारद्वाज, वराहमिहिर, आर्यभट्ट, भास्कराचार्य, आदि), मुस्लिम आक्रमणकारियों का प्रतिरोध करते भारतीय वीरों (बाप्पा रावल, पृथ्वीराज चौहान, महाराणा सांगा, महाराणा कुम्भा, महाराणा प्रताप, सुहेलदेव, शिवाजी आदि) पर एनिमेटेड फ़िल्में बनने पर संजय लीला भंसाली जैसे दुष्ट फ़िल्मकार त्राहि-त्राहि कर उठेंगे। हम पहले 'चार साहिबज़ादे' के बारे में बता चुके हैं। तमाम मुश्किलों के बाद भी यह फ़िल्म इतिहास के साथ न्याय करने में सफल रही।

दुर्भाग्यवश भारत में एक पूर्ण विशेषताओं वाली एनिमेटेड फ़िल्म बनाने में फ़िल्मकारों को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। विकसित बाज़ार का अभाव, निवेशकों की अरुचि से इस असीम सम्भावनाओं वाले उद्योग को ग्रहण लग रहा है। बकौल राजीव चिलका ('छोटा भीम' के निर्माता), 'कार्टून फ़िल्म बनाना और रिलीज़ करना बहुत चुनौतीपूर्ण है। फ़िल्म प्रदर्शित करो तो सिनेमाघरवाले पूछते हैं कि इन फ़िल्मों को देखने कौन आता है। उन्हें बताना पड़ता है कि भीम की फ़िल्म चलती है। तभी तो चौथी फ़िल्म आ रही है। उन्हें बताना पड़ता है कि बच्चे भी फ़िल्म देखने आएँगे। वे ऑड शो टाइम देते हैं और हमें यह स्वीकारना पड़ता है। पहले हम यह फ़िल्म 18 दिसम्बर को रिलीज़ करना चाहते थे ताकि क्रिसमस की छुट्टियों का फ़िल्म को लाभ मिले, लेकिन उस दिन 'बाजीराव मस्तानी' और 'दिलवाले' रिलीज़ हुई तो हमें सिनेमाघर उपलब्ध नहीं थे। हमें फ़िल्म की रिलीज़ डेट आगे करनी पड़ी। हम जानते हैं कि बच्चों की फ़िल्म से बहुत ज़्यादा लाभ नहीं होता है, लेकिन हम बदलाव लाने की कोशिश में जुटे हुए हैं।'

उपर्युक्त समस्याओं को प्राथमिकता के आधार पर दूर किया जाना चाहिये, ताकि इस उद्योग को बड़ी सफलता के रास्ते पर लाया जा सके। इसके अलावा हमें उस मानसिकता को भी बदलना होगा जो भारतीय दर्शकों को एनिमेशन-फ़िल्में देखने के लिए सिनेमाघर जाने से रोकता है। इसके उलट पश्चिम में ऐसी फ़िल्में देखने में लोग काफ़ी दिलचस्पी लेते हैं। दूसरी ओर क्योंकि इस उद्योग को सरकार द्वारा कोई सब्सिडी नहीं है, इसलिए भारत में स्थानीय एनिमेटेड कंटेंट बहुत कम तैयार हो रहे हैं। यही कारण है कि बच्चों द्वारा देखे जाने वाले ज्यादातर कार्यक्रम अमेरिका या जापान से हैं और भारत में वे डब किए जाते हैं।

❋

पं. मदनमोहन मालवीय सम्पूर्ण वाङ्मय परियोजना, महामना मालवीय मिशन, 52-53, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नयी दिल्ली-110 002
दू : +91 9654669293; ई-मेल : gunjanaggrawala@gmail.com

स्वामी विवेकानंद का विश्व-बोध

नन्दकुमार झा

शिकागो में 11 सितम्बर 1893 ईस्वी में अपने प्रथम संभाषण 'Response to welcome' में उन्होंने अपने हिन्दू होने के गर्व का विस्तार से वर्णन किया तथा 17 सितम्बर 1893 को अपने लिखित प्रपत्र 'Paper on Hinduism' में इन्होंने हिन्दू राष्ट्र की परिभाषा ही दे डाली। सुश्री भगिनी निवेदिता ने लिखा है,.....उन्होंने कभी भी एक विद्वान की भाँति नहीं बल्कि एक आधिकारिक व्यक्ति के तौर पर अपनी सत्यानुभूति का उपदेश दिया जिसे वह अक्षरश: जीते थे। महर्षि श्री अरविंद ने भी इनके मौलिक विचारों को 'The Renaissance in India with the Defence of Indian Culture' में विस्तार से वर्णित किया है। स्वामी जी ने वेदों को अपौरुषेय माना तथा उपनिषदों को ऐतिहासिक साहित्य के रूप में स्थापित किया। पुराणों को स्वामी जी इतिहास मानते हैं तथा 'अल्लोपनिषद' को अकबर कालीन रचना मानते हैं।

भगिनी निवेदिता बतलाती हैं कि "ग्रीन द्वारा विशाल दस खंडों में लिखित 'यूरोप का संक्षिप्त इतिहास' स्वामी जी बचपन में ही तीन दिनों में आत्मसात कर चुके थे। आठ वर्ष की छोटी आयु में खेल-खेल में समाधि लगाना भी सीख चुके थे तथा वेद-उपनिषदों का अध्ययन चौदह वर्ष की अवस्था तक पूर्ण कर चुके थे। कोलकाता प्रेसीडेंसी कॉलेज एवं जेनरल एसेम्बलीज में दाखिला लेते समय स्वामी जी भारत एवं विश्व के ज्ञान-विज्ञान पर अधिकार प्राप्त कर चुके थे।"

उनके मन की पीड़ा ज्ञान से शांत होने वाली नहीं थी। भारत में सर्वत्र व्याप्त गरीबी, दीनता, दुर्भिक्ष एवं आत्म-पतन उनके मन को निरंतर मथते रहते थे। इसलिए जब से उन्होंने होश संभाला था तब से ईश्वर की खोज में लगे हुए थे। 1881 ईस्वी में 18 वर्ष की आयु में जब रामकृष्ण परमहंस से इनकी भेंट हुई तो गुरुदेव ने प्रभावित होकर इन्हें दक्षिणेश्वर आने का आमंत्रण दिया परंतु ये उस भेंट से अधिक प्रभावित नहीं थे। बाद में जेनरल एसेम्बलीज के आचार्य डॉक्टर विलियम हेस्टी की सलाह पर वे अपने कुछ मित्रों के साथ दक्षिणेश्वर परमहंस से मिलने पहुँचे। परमहंस ने इन्हें नर के रूप में नारायण कहा तथा ईश्वर की तरह इनकी अभ्यर्थना की परंतु ये फिर भी असमंजस की मानसिक स्थिति में थे। जब गुरुदेव ने अपने स्पर्श से ईश्वर का साक्षात्कार स्वामी जी को अनुभूतियों के माध्यम से करवाया तब कठोपनिषद् में वर्णित सूत्र----

"एषु सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते। दृश्यते त्वग्रयया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभि:।।"

प्रेरणा एव लक्षणम् प्रमाणम् प्रयोजनम् च जस्य चोदना लक्षण स एव ज्ञान, ज्ञान एव ईश्वरः।।

अर्थात्- "ईश्वर ज्ञान स्वरूप हैं इसलिए उन्हें केवल चेतना या एहसास के द्वारा ही पाया जा सकता है। और जो शक्ति हमारी चेतना में घुलकर अखिल विश्व के सम्पोषण हेतु हमें प्रेरित करती रहती है वही प्रेरणा एकमात्र ईश्वर के होने का प्रमाण एवं लक्षण तथा प्रयोजन है।" कुछ ही पलों के आत्म-साक्षात्कार में नरेंद्र ने विवेक (आत्म-बोध) से आनंद (सत्य रूपी ईश्वर का व्यक्त रूप) तक की यात्रा पूर्ण कर ली। यह नाम तो बाद में मिला परंतु स्वामी जी का रूपांतरण हो चुका था। स्वामी विवेकानंद ने अधिकारीवाद के दोष को सिरे से नकारते हुए नव्य-वेदान्त को जन्म दिया। नव्य-वेदान्त के हिरण्यगर्भ से मानव रूपी ईश्वर का जन्म हुआ। इस पुण्य स्थल पर बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय से भी इसी वर्ष भेंट हुई तथा सुपरिणाम स्वरूप अगले वर्ष 'आनंद मठ' नाम का वह ऐतिहासिक उपन्यास उन्होंने स्वामी जी के समक्ष गुरुदेव को अर्पित किया। उस उपन्यास में संन्निहित 'वंदे मातरम्' गीत भारत की आत्मा का स्वर बना।

1885 ई. में गुरुदेव कर्क रोग से पीड़ित हो गये तो कोलकाता का बगीचे वाला मकान स्वामी जी एवं इनके ग्यारह गुरु भाईयों के लिए ज्ञान-विज्ञान का केन्द्र बन गया। गुरुदेव ने एक दिन जल शास्त्र का एक विशद् ग्रन्थ स्वामी जी को दिया तथा उसे निचोड़ने का आदेश दिया, और पुनः प्रश्न किया इस पुस्तक में जल के संबंध में सभी बातें लिखी हैं पर क्या इसे निचोड़ने से जल का एक भी बूँद प्राप्त हो सका !! ठीक उसी प्रकार से जीवन में समस्याओं के हल केवल शास्त्र चर्चा से नहीं अपितु उस अर्जित ज्ञान पर सुचारु रूप से कार्य करने पर ही प्राप्त हो सकता है। 1886 ईस्वी में गुरुदेव समाधिस्थ हो गये तथा स्वामी जी ने 1887 से आगामी छह वर्षों के लिए परिव्राजक का जीवन प्रारंभ किया। स्वामी जी ने उन सबको परिवर्तित किया जो उनके संपर्क में आए। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध का पुनर्जागरण भारत वर्ष में स्वामी जी के पदचिन्हों की यश गाथा कहती है। खेत्री, अलवर, लिम्बडी, मैसूर, रामनाड, पोरबंदर, केरल, तमिलनाडु से लेकर समग्र भारत वर्ष तक अनेक राजा-महाराजा उनके सम्पर्क से परिवर्तित हुए जिसमें इनके सबसे प्रिय शिष्य एवं सखा महाराज अजीत सिंह थे। स्वामी रामतीर्थ, चैतम्बी स्वामी, श्रीनारायण गुरु, स्वामी योगानंद, स्वामी शिवानंद, स्वामी चिन्मयानंद, गोलवरकर जी, हेडगेवार जी आदि आध्यात्मिक महापुरुष परिवर्तित हुए। स्वामी जी अक्सर यह कहते थे

'मैं उस ईश्वर का सेवक हूँ जिसे अज्ञानी लोग मनुष्य कहते हैं।' इसी बीच मद्रास से निकलने वाले समाचार पत्र 'द हिन्दू' से शिकागो (अमेरिका) में होने वाली 'वर्ल्ड पार्लियामेन्ट ऑफ रिलीजन' के बारे में पता चला।

भारत की दुर्दशा से मुक्ति हेतु स्वामी जी ने कन्याकुमारी के शिलाखंड पर बैठ कर विश्वप्रयाण का संकल्प लिया। कन्याकुमारी में भारत पतन के जिन कारणों पर स्वामी जी ने चिन्तन किया उसमें प्रथम स्थान पर आत्म विस्मृति थी और उसका कारण मैकाले की शिक्षा पद्धति एवं पाश्चात्य जीवन शैली का अंधानुकरण था। 1893 ईस्वी में जहाज़ से दो महीने की यात्रा के उपरांत अमेरिका की धरती पर पहुँचे थे परंतु मार्ग में कर्नाटक के राजा श्रीकृष्ण राव व उद्योगपति जमशेद जी टाटा उनके सहयात्री बने तथा लंबी यात्रा के मध्य स्वामी जी के विचारों से प्रभावित होकर राजा श्रीकृष्ण राव ने कर्नाटक राज्य के बेंगलूरु में लगभग चार सौ एकड़ भूमि देने का प्रण किया तथा जमशेद जी टाटा ने उस पर "भारतीय विज्ञान संस्थान" बनाने का वचन दिया ताकि भारत विश्व के विज्ञान का केन्द्र बिन्दु बन सके और भारतीय विश्व को ज्ञान की नैसर्गिक प्राच्य संपदा से समृद्ध करे। स्वामी जी का कहना था कि भारत के युवाओं का सौभाग्य विज्ञान की उन्नति पर निर्भर करेगा क्योंकि सदियों से यह क्षेत्र भारत की आनुवांशिकी का आधार रहा है। जमशेद जी टाटा ने 1909 ईस्वी में बेंगलूरु में राजा के द्वारा प्रदत्त भूमि पर 'Indian institute of science" का भव्य निर्माण किया। इस संस्थान के

माध्यम से भारत ने संगणन, अंतरिक्ष तथा नाभिकीय प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विश्व में अपना उल्लेखनीय योगदान दिया है। स्पेस टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में भारत अभी विश्व में बड़ी संभावनाओं के रूप में उभर कर सामने आया है। जुलाई के महीने में जब स्वामी जी शिकागो पहुँचे तो श्रीमती केट सैनबर्न के साथ प्रोफेसर ब्राईट से मिले। ब्राईट इनसे इतने प्रभावित हुए कि अनुशंसा पत्र में उन्होंने लिखा,.... 'ये वो व्यक्ति हैं जिनकी बौद्धिकता हमारे सभी प्राध्यापक बन्धुओं की इकट्ठी बौद्धिकता से भी बहुत अधिक है, इनकी योग्यता के बारे में प्रश्न करना सूर्य को उसके चमकने के अधिकार को सिद्ध करने के लिए कहने के बराबर है।'

शिकागो में 11 सितम्बर 1893 ईस्वी में अपने प्रथम संभाषण 'Response to welcome' में उन्होंने अपने हिन्दू होने के गर्व का विस्तार से वर्णन किया तथा 17 सितम्बर 1893 को अपने लिखित प्रपत्र 'Paper on Hinduism' में इन्होंने हिन्दू राष्ट्र की परिभाषा ही दे डाली। सुश्री भगिनी निवेदिता ने लिखा है,.....उन्होंने कभी भी एक विद्वान की भाँति नहीं बल्कि एक आधिकारिक व्यक्ति के तौर पर अपनी सत्यानुभूति का उपदेश दिया जिसे वह अक्षरशः जीते थे। महर्षि श्री अरविंद ने भी इनके मौलिक विचारों को 'The Renaissance in India with the Defence of Indian Culture' में विस्तार से वर्णित किया है। स्वामी जी ने वेदों को अपौरुषेय माना तथा उपनिषदों को ऐतिहासिक साहित्य के रूप में स्थापित किया। पुराणों को स्वामी जी इतिहास मानते हैं तथा 'अल्लोपनिषद' को अकबर कालीन रचना मानते हैं। स्वामी जी ने अंग्रेजों के द्वारा लिखित भ्रामक इतिहास को सिरे से नकारते हुए कहा कि 'ये सभी मनगढ़ंत बातें हैं तथा विकृत मानसिकता के दुष्परिणाम हैं। बिना भारतीय संस्कृति को जाने भारत के इतिहास को न जाना जा सकता है न ही उसे सत्यापित किया जा सकता है।' वह भारत के अतीत के विषय में प्रश्न करते हुए कहते हैं- "क्या भारत पीछे रहा? क्या वह मंदबुद्धि है? क्या वह कौशल में कम है? आप उसकी कला को देखें, उसके गणित को देखें, उसके दर्शन को देखें! शास्त्रों का उद्गम भारत में है ... गणित शास्त्र, रसायन शास्त्र, चिकित्सा शास्त्र, संगीत शास्त्र, विमान शास्त्र, न्याय शास्त्र सभी यहाँ ही सर्वप्रथम उपजे हैं तथा यूरोपीय सभ्यता के निर्माण में आर्यों का योगदान किसी भी अर्वाचीन जाति से अधिक रहा है। न्यूटन के जन्म से हजारों वर्ष पहले से भारतीयों को गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत ज्ञात था। भारत एक आध्यात्मिक राष्ट्र है। प्राचीन भारतीय जाति में ही सर्वप्रथम सभ्यता की किरणें उदित हुईं। जब यूनान का अस्तित्व नहीं था, रोम भविष्य के गर्भ में छिपा था, आधुनिक यूरोप वासियों के पूर्वज जंगलों में रहते थे और अपने शरीर को नीले रंग से रंगा करते थे उस समय भी भारत एक साधन संपन्न एवं आध्यात्मिक चेतना से युक्त अति विकसित राष्ट्र था। एक समय ऐसा भी आया जब ग्रीक सेनाओं के संचालन की ध्वनि से धरती काँपती थी परन्तु आज उसका अस्तित्व मिट गया। रोम का नाम लेते ही विश्व थर्रा उठता था। आज उसी रोम का कौपिटोलिन पर्वत खंडहरों का ढेर बन गया है। जहाँ पहले सीज़र राज्य करता था, आज वहाँ मकड़ी जाल बुनती हैं। इस प्रकार से कितने ही वैभवशाली राष्ट्र उठे और ध्वस्त हो गए परंतु कोई भी शताब्दियों तक कायम नहीं रह सके। किन्तु भारत की अपनी वर्णात्मक संस्थाएँ अपनी गुणवत्ता के कारण युगों की कसौटियों पर खरी उतरी हैं।

अन्य राष्ट्रों से भारत की तुलना मैं ईश निन्दा के समान मानता हूँ, क्योंकि भारत एक आध्यात्मिक एवं नैतिक राष्ट्र है। सर्वप्रथम हूण जाति के राजा मिहिरकुल ने भारत पर अधिकार करने का प्रयास किया, किन्तु इसके कुछ ही समय के बाद मध्य एशिया से आए निष्ठुर एवं बर्बर जातियों ने आक्रमण कर अपने घृणित रीति रिवाज भारत में प्रचलित किये। मुसलमानों का शासन काल आया तो पुरोहितों की शक्ति का समूल नाश हो गया। मनुस्मृति पर कुरान की दण्ड नीति लागू की गयी। पुरोहितों को वैवाहिक कार्यों तक सीमित कर दिया गया तथा वे पूर्ण रूप से मुसलमानों की कृपा दृष्टि पर निर्भर थे। संसार के इतिहास का अनुशीलन करने से यह पता चलता है कि प्राकृतिक नियमों के अनुसार चारों वर्ण क्रमानुसार पृथ्वी का उपभोग करेंगे .... भारत की भाँति चीनी, सुमेरी, बेबीलोनी, मिस्र, कैल्डिनवासी, ईरानी, यहूदी और अरब जातियों ने समाज की बागडोर प्रथम युग में पुरोहितों के हाथों में सौंपी थी परन्तु मिस्र में अधिक दिनों तक यह टिक न सकी तथा यहूदियों में यह सत्ता अपने पाँव कभी न जमा सका। आगामी युग में क्षत्रिय राजाओं का उदय हुआ, मिस्र शीघ्र ही राज्य शक्ति के अधीन हो गया। चीन में कन्फ्यूजियस की प्राचीन धर्म और प्रतिभा द्वारा गठित राज्य शक्ति 2500 वर्षों से अधिक तक चली। मिस्र, बेबीलोनी और चीनी साम्राज्य के बाद भारत में भी यह साम्राज्य स्थापित हुआ। यहूदी भी ईसाई सम्प्रदायों के संघर्षों से और बाहर रोमन साम्राज्य के दबाव से मृतप्राय हो गया। भारत में तथा अखिल विश्व में इंग्लैण्ड की विजय तीसरी वैश्य शक्ति का उदय है। यद्यपि प्राचीन ट्राय और कार्थेज तथा उनकी अपेक्षा अर्वाचीन वेनिस एवं छोटे-छोटे व्यापार करने वाले देश बड़े ही प्रतापी होकर उभरे थे फिर भी वैश्य का यथार्थ उदय इन देशों में न हो सका। चौथा युग शूद्र शक्तियों का है और भारत आज शूद्र देश बन चुका है। सेवा ही इसका मूल गुण-धर्म और पेशा बन चुका है, परंतु वर्तमान समय में इसका विस्तृत विवेचन संभव नहीं है।" भारत पर मुस्लिम आक्रांताओं के प्रभाव के विषय में स्वामी जी का कहना

था—"फ़ारसी इतिहासकार फरिश्ता (1560-1620) के आकड़ों के अनुसार 18वी सदी में हिन्दुओं की संख्या 60 करोड़ थीं जो 19वी सदी में घटकर 20 करोड़ रह गयीं।" स्वामी जी ने अपने जन्म से कुछ वर्ष पूर्व घटित 1857 की जनक्रांति को मानवता एवं दानवता के मध्य युद्ध बतलाया तथा महारानी लक्ष्मी बाई की तुलना रण चण्डी से की तथा यह भी बतलाया कि ब्रिटिश साम्राज्य का कुत्सित चेहरा इस युद्ध में इस प्रकार से उजागर हो चुका है कि अब उसका यह विश्व व्यापी साम्राज्य इसी कारण से जल्द ही विनष्ट हो जाएगा।

स्वामी जी ने दृढ़ता तथा विश्वास के साथ कहा,...."मानव की सेवा ही ईश्वर की पूजा है, पहले देवता देश के वो लोग हैं जो दरिद्र नारायण के रुप में रास्तों पर घूम रहे हैं।" स्वामी जी ने भारत में साधुओं का आह्वान किया तथा उन्हें आधुनिक विज्ञान के साथ-साथ भारतीय प्राच्य विद्याओं की भी शिक्षा प्रदान की तथा उन्हें यह आदेश दिया कि आधुनिक उपकरण यथा- प्रोजेक्टर, ग्लोब तथा अन्य गजट के साथ भारत के ग्रामों में घर-घर जाकर सभी लोगों को समग्रता के साथ निशुल्क शिक्षा दें, क्योंकि संन्यासियों का यह वास्तविक धर्म है इसके इतर उनका अस्तित्व महत्व नहीं रखता है। स्वामी जी ने भारतीय महिलाओं की स्थिति को दुनिया में सर्वश्रेष्ठ बतलाया तथा बतलाया कि भारतीय नारी का आदर्श माता सीता हैं, भारतीय नारी जगत का उद्धार करने की क्षमता रखती हैं, केवल शिक्षा के अधिकार से उन्हें सुशोभित कर दिया जाय बस इतनी ही आवश्यकता है। हर भारतीय को योगेश्वर कृष्ण के युद्ध भूमि में निर्लिप्त भाव से गीता का उपदेश करनेवाले रूप को अपने हृदय में आत्मसात् करना चाहिए, क्योंकि यह चरित्र भारत के धर्म संस्कृति की रीढ़ की हड्डी है। मैं मानव निर्माण के लिए धर्म सिखलाना चाहता हूँ—"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः। अस्ति ब्रह्म वदसि चेदस्ति भविष्यसि, नास्ति ब्रह्म वदसि चेन्नास्त्येव भविष्यसि।।"

जो स्वयं को दुर्बल समझता है वह कभी भी शक्तिशाली नहीं बन सकता। प्राणि मात्र की आत्मा में सब कुछ विद्यमान है, जो उसे सर्वज्ञ बना सकता है। जो स्वयं को मुक्त समझता है वही मुक्त होगा। जो यह समझता है कि मैं बद्ध हूँ वह सदा बद्ध ही रह जाएगा। स्वयं को दीन-हीन समझना पाप है अज्ञानता है।"

भारत के अग्रिम वैज्ञानिक जगदीश चंद्र बसु तथा सर सी.वी. रमन के साथ-साथ स्वामी जी ने थामस अल्वा एडिशन तथा टेस्ला एवं आइन्सटीन समेत विश्व के तमाम क्वान्टम वैज्ञानिकों को अत्यधिक प्रभावित किया। 19वीं सदी में भारत को सांप-सपेरों का देश तथा वेद को देहाती गीत कहने वाले देश के सभी छोटे-बड़े वैज्ञानिकों की वेद के विज्ञान के माध्यम से विश्व भर के विज्ञान के सृजन की बात पर बीसवीं सदी में एक राय हो गयी। यही था विवेकानंद का विश्व बोध जिसके कारण आज नासा में आवश्यक रूप से मयासुर का सूर्य सिद्धांत, भारद्वाज का विमानन शास्त्र तथा आर्यभट्ट के गणितीय सूत्र आधिकारिक तौर पर पढाए जाते हैं। भारत की आज़ादी के विषय में स्वामी जी का एक ही कथन था,--"बिना आर्थिक स्वतंत्रता के राजनैतिक आजादी का भला क्या अर्थ हो सकता है? अतः हमें सर्वप्रथम आर्थिक आजादी चाहिए और इसके लिए सांस्कृतिक संक्रान्ति एवं भारतीय आर्थिक संरचना के संरक्षण के लिए क्रांति की आवश्यकता है।" इन्हीं विचारों को किशोर वय में ही आत्मसात कर चुके सुभाषबाबू ने कांग्रेस के अध्यक्ष पद का चुनाव भारी मतों से जीतने के साथ ही पहले सत्र में अपना आर्थिक प्रस्ताव रखा जो पूर्ण बहुमत से पास हो गया परंतु इसके विरुद्ध गाँधी जी के अनशन पर उतर जाने के कारण सुभाषबाबू को कांग्रेस के साथ-साथ देश भी छोड़ना पड़ा। स्वामी जी के अनुयायियों में बाल गंगाधर तिलक, बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, रविन्द्रनाथ टैगोर, एनी बेसेन्ट, रोमा रोला, विपिन चंद्र पाल, एमा कैल्व, स्टीवेंस मैक्सिम, प्रफुल्ल चन्द्र रे, रोमन रोलैण्ड, विलियम हाकिंग, आर्थर बाशम, बराक ओबामा, ईशरवुड, राजगोपालाचारी, सी एफ एन्ड्रूज, दलाई लामा, माईकल टालबाट और न जाने कितने हैं जिनका लिखित ब्यौरा यदि तैयार करें तो वह कई खंडों में विशद् ग्रन्थ का स्वरूप ले लेगा। स्वामी जी यह भली भाँति जानते थे कि पंथों में सैद्धांतिक दोष नहीं हैं परंतु इसके अनुयायियों के बीच में आने वाले ठेकेदार सदैव बड़गलाकर सत्ता के निमित्त मानवता का खून करते रहेंगे, इसलिये सार्वभौमिक धर्म के रूप में उन्होंने विश्व की उन्नति के लिए मानव सनातन धर्म की स्थापना के लिए अपने लघु मगर संघनित जीवन काल के 39 वर्ष 5 महीने एवं 23 दिनों के प्रतिपलों का अर्पण कर दिया। सुख की समृद्धि से त्याग का वैभव बड़ा होता है, तथा त्याग की शक्ति से परमानंद स्वरूप ईश्वर की स्थापना होती है। जैसे जेल की कोठरी में निराशा के अंधकार में डूबे महर्षि अरविंद को विवेकानंद ने पराचेतना के अतिमन का उपदेश दिया था, आज भी विश्व के कोने-कोने में रहने वाले हम जैसे करोड़ों मानवों को कभी स्वप्न में तो कभी जागृत अवस्था में स्वामी जी के घन-गंभीर स्वर में स्वाधीनता का यह मंत्र सुनाई देता है,....."उत्तिष्ठत! जाग्रत! प्राप्य वरान्निबोधत!!"

उठो, जागो और लक्ष्य की प्राप्ति किये बिना मत रुको!!

'कवि' (लेखक, चिंतक, अध्यक्ष 'अमृताङ्ग समाज) ई-मेल: kavivansh05@gmail.com, संपर्क संख्या : 9971206938 आवासीय पता: ई-3/578, सोनिया विहार, दिल्ली-90

प्राचीन भारतीय सिक्कों की कलात्मक प्रगति

डॉ. मीना सिंह

भारत में कुषाण राजवंश का विशिष्ट स्थान है। यह एक विदेशी राजवंश था, जिसमें भारत भूमि को मध्य एशिया के साथ जोड़कर सांस्कृतिक समन्वय की एक नयी भूमि तैयार की गई थी। इस राजवंश के सूत्रों से धर्म, संस्कृति, कला, अर्थव्यवस्था आदि के क्षेत्रों में नवीन प्रवृत्तियों का जन्म हुआ। मुद्रा कला की दृष्टि से भी यह काल अत्यन्त प्रभावकारी था। कुषाणों ने सोने व तांबे के सिक्के बड़ी मात्रा में चलाए। इस समय तक प्राचीन भारत में सिक्के के निर्माण प्रक्रिया को एक निश्चित आधार प्राप्त हो चुका था। कुषाणों के समय भारत में विदेशी और आन्तरिक दोनों के व्यापार एवं वाणिज्य में बहुत प्रगति हुई। भारत का अनेक देशों के साथ जैसे कि रोम, मध्य एशिया के देश व नगर आदि के साथ व्यापारिक सम्बन्ध प्रगाढ़ हुए। कुषाण शासकों द्वारा प्रचलित स्वर्ण सिक्के, भारतीय सिक्कों के इतिहास में विशिष्ट स्थान रखते हैं।

प्राचीन भारतीय मनीषियों की कला दृष्टि अद्भुत व अनोखी रही है। हमारे कलावशेष इस अमूल्य कलात्मक दृष्टि की निशानी है। भारतीय कलावशेषों में मूर्तिकला, स्थापत्यकला, चित्रकला एवं मुद्रा कला का केन्द्रीय स्थान है। प्राचीन भारतीय मुद्राएँ हमें आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन से सम्बन्धित उद्विकासीय प्रक्रिया को समझने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। मूलतः सिक्कों का उद्भव वस्तुओं के लेन-देन को सुविधाजनक बनाने हेतु हुआ। प्रारम्भ में सिक्कों के वजन को महत्व दिया गया। आकार एवं अंकन उनके लिए उतना महत्त्वपूर्ण नहीं था। इसके साथ ही उनमें इतनी तकनीकी सूझबूझ भी नहीं थी कि सिक्कों की गुणवत्ता को समरूपता के साथ एक बड़े क्षेत्र में लागू किया जा सके। केवल औसत समरूपता एवं कुछ चिन्हों के माध्यम से प्राचीन भारत में सिक्कों के निर्माण की प्रक्रिया आरम्भ हुई। बाद में निश्चित चिन्ह, आकृतियों एवं लेखों के माध्यम से निश्चित पहचान वाले सिक्कों के निर्माण की प्रक्रिया बनी। सिक्कों की बनावट, उन पर किए गए अंकन, उन पर लिखे लेख व उपाधियों आदि को देखकर सिक्कों के प्रचलनकर्ता की अभिरुचि, उस समय की तकनीकी दक्षता आदि का ज्ञान होता है। प्राचीन भारत में ललित कलाओं का विविधतापूर्ण विकास हुआ। इनके अनेक पक्षों की अनुकृतियाँ इस काल के सिक्कों पर भी प्राप्त होती हैं। प्रस्तुत लेख में गुप्त काल तक प्राचीन भारतीय सिक्कों के कलात्मक विकास की रूपरेखा प्रस्तुत किया जायेगा।

आहत सिक्के भारत के प्राचीनतम सिक्के हैं (चित्र संख्या 1)। ये दीर्घकाल तक भारत के एक बड़े हिस्से में प्रचलन में रहे। इनका प्रचलन काल ई.पू. छठी शती से लेकर दूसरी शती ई. तक माना जाता है। आहत सिक्के आकार की दृष्टि से चार प्रकार के मिलते हैं- चौकोर, गोल, दीर्घ (चौड़ाई में कम तथा लम्बाई में अधिक) तथा अनियमित आकार वाले। आहत सिक्के पूर्व मौर्य काल से मिलने लगते हैं, किन्तु इनका सर्वाधिक निर्माण मौर्य काल में हुआ। मौर्य काल में सिक्कों का निर्माण विभिन्न नगरों में हुआ जहाँ कि राज्य की ओर से छोटी टकसालें बनवाई गयी थीं। आहत सिक्कों में राजा का नाम नहीं मिलता और न ही राजा की आकृति मिलती है। इस कारण इनको विशिष्ट राज्य अथवा स्थान से पहचानने में दिक्कत होती है। इन सिक्कों की पहचान इन पर अंकित प्रतीकों के आधार पर की जाती है। ये प्रतीक सिक्कों के असली होने तथा धातु की शुद्धता व निश्चित भारमान का मापक भी होते थे। सिक्कों के अग्रभाग पर प्रायः पाँच चिन्ह अंकित किए जाते थे। अग्रभाग पर अंकित चिन्हों में सूर्य, षडरचक्र, पर्वत, पशुओं आदि की प्रमुखता है। पृष्ठ भाग प्रारम्भ में सादा रखे जाते थे। बाद में उन पर कुछ हल्के चिन्ह बनाए गए। ये चिन्ह हल्के होते थे ताकि अग्रभाग के चिन्हों की सुन्दरता

बनी रहे। ये सिक्के भारतीय उपमहाद्वीप के प्राचीनतम सिक्के थे। इस कारण इनके तकनीक एवं सौन्दर्य का स्तर अत्यन्त सामान्य था।

आहत सिक्कों के पश्चात स्थानीय एवं जनपदीय सिक्कों का क्रम आरम्भ होता है। ये सिक्के ई.पू. द्वितीय शती से लेकर चौथी शती ई. के मध्य तक प्रचलित रहे (चित्र संख्या 2)। जनपदों ने प्रायः तांबे के सिक्के चलाए। कुछ जनपदों जैसे औदुम्बर, कुणिन्द और यौधेयों ने चाँदी और तांबे दोनों धातुओं के सिक्के चलाये। ये सिक्के ठप्पा और साँचा पद्धतियों से बनाये गये हैं। ये प्रायः गोलाकार थे। इन सिक्कों पर अनेक प्रकार के प्रतीक चिन्हों का अंकन हुआ है, जिसमें वेदिका वृक्ष सर्वाधिक प्रचलित चिन्ह है। बाद में देवी-देवताओं का भी अंकन आरम्भ हो गया। शिव, कार्तिकेय, लक्ष्मी आदि देवी-देवताओं को प्रमुखता दी गयी है। इन देवी देवताओं के वाहन, विभिन्न भौगोलिक एवं माँगलिक चिन्ह भी अंकित किए गए हैं। जनपदीय सिक्कें पर लेख भी अंकित हुए हैं। लेख काफी संक्षिप्त होता था जिसमें जनपद, राजा या देवी-देवता का नाम अंकित होता था। अधिकांश लेख ब्राह्मी में हैं। परन्तु औदुम्बर और कुणिन्द के कुछ सिक्कों पर खरोष्ठी में भी लेख हैं। इन मुद्राओं पर अंकित आकृतियों में क्रमशः कला परिष्कार होता दिखता था। इसे मुद्रा कला की 'बाल्यावस्था' भी कहा जा सकता है। ये आहत सिक्कों से कलात्मक दृष्टि से उत्कृष्टता की ओर अग्रसर थे किन्तु इनके आकार-प्रकार में अनेक अनियमितताएँ थीं।

जनपदीय सिक्कों के उत्तरकाल में सातवाहन सिक्को का क्रम आरम्भ होता है (चित्र संख्या 3)। यह पश्चिम एवं दक्षिण भारत में शासन करने वाला मजबूत राजवंश था। सातवाहन शासकों ने तांबा, सीसा, प्रोटीन एवं चांदी के सिक्के जारी किए। ये सिक्के साँचा एवं ठप्पांकित पद्धतियों द्वारा निर्मित हैं। इसमें वृत्ताकार एवं आयताकार दोनों ही प्रकार के सिक्के मिले हैं। इस वंश के उन्नीस शासकों के सिक्के प्राप्त हुए हैं। इन सिक्कों पर अनेक प्रकार के धार्मिक एवं प्राकृतिक चिन्ह अंकित हैं। पशुओं में वृषभ, गज, सिंह एवं अश्व का अंकन प्रमुखता से मिलता है, जो वैदिक-पौराणिक धर्म की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्रतीक चिन्हों में चक्र, उज्जैनचिन्ह, वेदिकावृक्ष, श्रीवत्स, नदी में मछली, स्वास्तिक, इन्द्रध्वज, शंख आदि प्रतीक भी सिक्कों पर अंकित हैं। देवी-देवताओं में लक्ष्मी का अंकन मिलता है। सातवाहन सिक्कों पर राजा का नाम ब्राह्मी लिपि में अंकित मिलता है। सातवाहन सिक्के कलात्मक दृष्टि से प्रौढ़ता नहीं प्राप्त कर सके थे। इनके आकार-प्रकार में नियमितता का अभाव है।

भारतीय सिक्कों के इतिहास में हिन्द-यूनानी सिक्के निर्णायक परिवर्तन के प्रतीक माने जा सकते हैं (चित्र संख्या 4)। हिन्द-यूनानी सिक्कों से 37 शासकों के नाम ज्ञात होते हैं। ये सिक्कें अपनी सुन्दरता एवं तकनीकी की दृष्टि से विशिष्ट पहचान रखते हैं। राजा के स्वरूप को सिक्कों पर अंकित करना वास्तव में भारतीय सिक्कों के इतिहास में अनूठी खोज थी। कालान्तर में इसका अनुकरण कुषाण एवं गुप्त शासकों ने किया। राजा के आकृति को बड़े ही सौम्य एवं बारीकी से हिन्द-यवन सिक्कों पर अंकित किया गया है। इन सिक्कों पर उत्कीर्ण चित्रों में अद्भुत जीवन्तता का आभास होता है। वस्तुतः हिन्द-यवन टकसालों में प्रशासनिक देखरेख में सिक्कों का निर्माण किया जाता था। प्रशासनिक अधिकारी इस बात का पर्याप्त ध्यान देते थे कि निश्चित आकार, भार व आकृतियों से युक्त सिक्के ही प्रचलित हों। हिन्द- यवन शासकों ने स्वर्ण, रजत और ताँबा धातुओं के सिक्के चलाए। स्वर्ण सिक्के 'स्टेटर' कहलाते थे। ये बैक्ट्रिया क्षेत्र में प्रचलित थे। चांदी के सिक्के 'ड्रेक्स' या 'द्रम्म' कहलाते थे। इनकी संख्या सर्वाधिक थी। तांबे के सिक्के भी काफी मात्रा में जारी किए गए। ये सिक्के गोलाकार, चौकोर एवं कभी-कभी त्रिभुजाकार आकृति में हैं। इन्हें ठप्पांकित प्रणाली द्वारा तैयार किया जाता था। शासकों ने विविध आकृतियों एवं प्रकारों के सिक्के जारी किए। इन सिक्कों के पुरोभाग पर राजा के वक्षस्थल तक की आकृति को संतुलित एवं आकर्षक रूप में तैयार किया गया है। सिक्कों पर राजा के महत्व एवं देवत्व को दर्शाने हेतु राजा के चित्र को हमेशा बड़ा उत्कीर्ण किया गया है। राजा के चित्र में गाल एवं माथे को बड़े ही चिकने एवं गहराई से तथा आँखों को सजीवता से तैयार किया गया है। राजा के शरीर में मांसलता के उभार को भी सिक्कों पर दिखाने का प्रयास किया गया है। राजा के बाल को भी वास्तविकता के काफी निकटता से चित्रित किया गया है। भावों के प्रदर्शन में अत्यन्त सावधानी रखी गई है। युवा शासकों की आकृतियों में मुस्कारता और ओजस्वी चेहरा प्रस्तुत किया गया है। वृद्ध शासकों के चेहरे पर गंभीर भावों को चित्रित करने का प्रयास किया है। इन सिक्कों के पृष्ठभाग पर यूनानी देवी-देवताओं को अंकित किया गया है। इनमें हेराक्लीज, ज्यूस, अपोलो, अर्तेमिस, हर्मेस, पल्लस, जियोस आदि प्रमुख हैं। पृष्ठ भाग पर यूनानी लिपि में राजा का नाम उसकी उपाधि के साथ लिखा गया है। भारतीय क्षेत्र में चलाए गए सिक्कों में अग्रभाग पर यूनानी लिपि में तथा उसका अनुवाद पृष्ठ भाग पर खरोष्ठी लिपि में अंकित है।

विदेशी शासकों द्वारा जारी किए सिक्कों की अगली कड़ी में शक-पहलव शासकों के सिक्के आते हैं (चित्र संख्या 5)। इस परम्परा के अनेक शासकों ने विविध प्रकार के सिक्के जारी किए। इनके सिक्के कलात्मक दृष्टि से हिन्द- यवन सिक्कों से थोड़ा कमतर थे। इसका एक बड़ा कारण यह था कि यह मध्य एशिया की एक घुमन्तू जनजाति थी। इनके सिक्कों पर रोमन प्रभाव दिखायी देता है क्योंकि आवक्ष अंकन

रोमन तकनीकी में ही तैयार किया गया है। सिक्कों पर यूनानी प्रभाव भी दिखायी देता है, क्योंकि इनके सिक्कों पर यूनानी देवता जियस, पैल्लास, हेराक्लीज आदि का अंकन पाया जाता है। यूनानी सिक्कों की ही भाँति पुरोभाग पर यूनानी लिपि तथा शैली में लेख ''बेसीलिऑस वेसीलियऑन...'' तथा पृष्ठ भाग पर खरोष्ठी लिपि में लेख ''रजतिरजस महतस...'' अंकित है। सिर पर हाथी की सूड़ वाली टोपी को अत्यन्त कलात्मक ढंग से तैयार किया गया है। उनके सिक्कों पर कुछ भारतीय पशु, प्रतीक व अस्त्र-शस्त्र जैसे भारतीय वृषभ, गज, मेरू, त्रिशूल, गदा आदि अंकित हैं। अश्व के अंकन में अत्यन्त नवीनता प्रदर्शित करते हुए उसका गतिमान एवं जीवन्त रूप दिखाया गया है। वोनोन्स, स्पेलिरिसेस, एवं स्पलगदम के सिक्कों पर तेजी से दौड़ते घोड़े पर राजा को भाला लिए हुए अंकित किया गया है। इन मुद्राओं पर चित्र का संयोजन, उनके मुख्य चित्र एवं पृष्ठभूमि का अनुपात, चित्र में संतुलन आदि में कलाकार अत्यन्त सफल रहा है।

भारत में कुषाण राजवंश का विशिष्ट स्थान है। यह एक विदेशी राजवंश था, जिसमें भारत भूमि को मध्य एशिया के साथ जोड़कर सांस्कृतिक समन्वय की एक नयी भूमि तैयार की गई थी। इस राजवंश के सूत्रों से धर्म, संस्कृति, कला, अर्थव्यवस्था आदि के क्षेत्रों में नवीन प्रवृत्तियों का जन्म हुआ। मुद्रा कला की दृष्टि से भी यह काल अत्यन्त प्रभावकारी था (चित्र संख्या 6)। कुषाणों ने सोने व तांबे के सिक्के बड़ी मात्रा में चलाए। इस समय तक प्राचीन भारत में सिक्के के निर्माण प्रक्रिया को एक निश्चित आधार प्राप्त हो चुका था। कुषाणों के समय भारत में विदेशी और आन्तरिक दोनों के व्यापार एवं वाणिज्य में बहुत प्रगति हुई। भारत का अनेक देशों के साथ जैसे कि रोम, मध्य एशिया के देश व नगर आदि के साथ व्यापारिक सम्बन्ध प्रगाढ़ हुए। कुषाण शासकों द्वारा प्रचलित स्वर्ण सिक्के, भारतीय सिक्कों के इतिहास में विशिष्ट स्थान रखते हैं। कुषाण शासक विम कडफिमेस, कनिष्क प्रथम, हुविष्क आदि शासकों ने प्रभूतमात्रा में स्वर्ण सिक्के चलाए। इन सिक्कों के अग्रभाग पर राजा की आकृति बनायी गयी है। राजा को हवन करते हुए दिखाया गया है अथवा राजा को आवक्ष आकृति बनी है। राजा को पालथी मारकर बैठे हुए, गजारूढ़, रथारूढ़ आदि मुद्राओं में भी प्रदर्शित किया गया है। राजा को लम्बा कोट, पायजामा, ऊँचे बूट आदि पहने हुए दिखाया गया है। उस समय मध्य एशिया के शासकों की यही वेश-भूषा थी। सिक्कों के पृष्ठभाग पर देवी-देवता का अंकन मिलता है। कुषाण शासकों का देव समूह अत्यन्त व्यापक था। उनके सिक्कों पर ईरान, यूनान, रोम तथा भारतीय देवों का अंकन हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि धार्मिक दृष्टि से कुषाण शासक वर्ग अत्यन्त उदार था। कुषाणों ने अपने सिक्कों पर यूनानी लिपि को प्रमुखता दी। क्योंकि उस समय रोम, मध्य एशिया एवं अफगानिस्तान में यह लिपि प्रचलित थी तथा उन देशों के साथ व्यापार बढ़ाने के लिए सिक्कों पर इस लिपि का अंकन आवश्यक था। कुषाण सिक्कों पर बनी हुई आकृतियों में विदेशी और भारतीय दोनों प्रकार की कला के समन्वय देखा जा सकता है। राजा की आकृति अथवा ईरानी, यूनानी व रोमन देवी-देवताओं के अंकन में बैक्ट्रिया तथा गंधार क्षेत्र की कला का प्रभाव था। अण्डाकार मुख, खुले हुए विस्फारित नेत्र, दाढ़ी का प्रचुर प्रयोग, वस्त्रों पर अनेक सलवटें आदि प्रदर्शित हुए हैं। किन्तु शिव, कार्तिकेय जैसे देवता के अंकन में मथुरा की कला का प्रभाव है।

कुषाण शासकों के पश्चात मुद्रा निर्माण में तकनीकी और सुन्दरता दोनों ही दृष्टियों से गुप्त काल के सिक्कों में अभूतपूर्व प्रगति देखी जाती है। गुप्त सिक्के जीवन शक्ति एवं मौलिकता से परिपूर्ण है। गुप्तों के पूर्व हिन्द-यूनानी एवं कुषाण शासकों ने कलात्मक दृष्टि एवं सौन्दर्य युक्त सिक्कें प्रचलित किए थे किन्तु उनमें अभारतीय परम्पराओं को ज्यादा महत्व मिला था। किन्तु गुप्त सिक्कों पर क्रमशः बाहरी प्रभाव कम करते हुए स्थानीय देव समूह एवं कलात्मक प्रतीकों के संयोजन का प्रयास किया गया और एक उत्कृष्ट शृंखला के अनेक प्रकार के सिक्के गुप्त शासकों द्वारा जारी किये गये। चन्द्रगुप्त प्रथम के बाद के सभी गुप्त सम्राटों ने अनेक प्रकार की कलात्मक विशिष्टता वाले सिक्के जारी किए (चित्र संख्या 7 व 8)। समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय एवं कुमारगुप्त प्रथम ने क्रमशः छ, आठ और चौदह प्रकार के स्वर्ण सिक्के प्रचलित किए। यह मुद्रा निर्माण तकनीकी, मुद्रा की कलात्मक प्रगति, टकसाल के अधिकारियों की सजगता, शासक की सांस्कृतिक अभिरुचि आदि को व्यक्त करता है। गुप्त कलाकारों ने क्रमशः भारतीय कलात्मक प्रतिमानों को गुप्त सिक्कों पर व्यक्त किया।

कुषाण मुद्रा कलाकारों द्वारा राजा को लम्बा कोट, पतलून एवं बूट में दिखाया जाता था। प्रारम्भिक गुप्त सिक्कों में इसे अपनाया गया लेकिन बाद के गुप्त सिक्कों में राजा को धोती, पगड़ी, हार, भुजबन्ध, कुण्डल आदि भारतीय वस्त्र एवं आभूषण पहने हुए दिखाया गया है। देवी-देवताओं में भारतीय देव वर्ग की प्रमुखता मिली। कुषाणों के नना देवी के स्थान पर सिंहवाहिनी दुर्गा तथा अर्द्रोक्षों देवी के स्थान पर कमलधारिणी लक्ष्मी देवी को दिखाया गया है। धोती तथा साड़ी की मनोहारी चुन्नटें, ओढ़नी अथवा दुपट्टा के पहनावे के तरीके व कमरबंद की सुन्दर गाठें भी मनमोहित करने वाली है। सिक्कों पर अंकित राजा अथवा देवी का केश विन्यास भी विविधतापूर्ण एवं आकर्षक हैं।

गुप्त सिक्कों पर तत्कालीन प्रचलित सारनाथ एवं मथुरा प्रस्तर कला शैली का प्रभाव परीलक्षित होता है। प्रस्तर कला की तरह

ही गुप्त कालीन मुद्रा कलाकारों ने पूर्वकालिक रूढ़ियों को हटाकर मानवाकृतियों, पशु-पक्षियों एवं अन्य कलात्मक प्रतीकों को नैसर्गिक एवं संतुलित रूप में अंकित करने का प्रयत्न किया। राजा की आकृति को पतली किन्तु मांसल एवं स्नेह युक्त देहयस्टि के साथ दिखाने का प्रयत्न किया गया। देवी या रानी की आकृति को पतली, कोमल एवं आकर्षक रूप में दिखाने का प्रयत्न किया है। गुप्त सिक्कों पर अंकित पशुओं की आकृतियाँ न केवल सुरूचिपूर्ण, लालित्यमय एवं जीवंत हैं बल्कि उनकी सहज रूपरेखा उनके विस्तार का परिचायक है। सिक्कों पर सिंह, गज एवं गैंडा का अंकन इन पशुओं के शक्ति का आभास कराते हैं। कुमारगुप्त के कार्तिकेय प्रकार के सिक्के पर अंकित मयूर की आकृति अत्यन्त ही नैसर्गिक एवं आकर्षक हैं।

अतः प्राचीन भारत में मुद्रा की कलात्मकता में क्रमशः प्रगति दिखायी देती है और यही इतिहास का स्वाभाविक गति होती है। आहत मुद्राओं से आरम्भ हुआ यह यात्राक्रम गुप्तकाल तक एक स्वाभाविक क्रम में विकसित होता हुआ आगे बढ़ता है। आहत सिक्के, अपने तकनीकी और कलात्मक दृष्टि से विकास की प्रथम सीढ़ी थे। उनके आकार एवं प्रतीकों में अनगढ़पन की छाप है। किन्तु आगे चलकर हिन्द-यूनानी सिक्कों एवं कुषाण सिक्कों में कलात्मक प्रौढ़ता आ जाती है। उल्लेखनीय है कि इन सिक्कों में अभारतीय प्रवृत्तियों की प्रधानता है। गुप्त काल में अन्य कलाओं की भाँति सिक्कों के निर्माण में भी हम भारतीय प्रतिमानों को स्थापित होते हुए देख सकते हैं। अपने तकनीकी और सौन्दर्य दोनों ही दृष्टियों से गुप्त कालीन सिक्कों का प्राचीन भारत के सर्वोत्कृष्ट सिक्कों में स्थान प्राप्त है।

चित्र:

चित्र सं. 1- मगध का आहत सिक्का

चित्र सं. 2- यौधेय सिक्का

चित्र सं. 3- वाशिष्ठीपुत्र श्री शतकर्णी का सिक्का

चित्र सं. 4-अपोलोडोटस प्रथम का सिक्का

स्रोत: सभी सिक्के राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली से साभार।

संदर्भ ग्रंथ

1. मुखर्जी, बी.एन. (1969), ए प्ली फार स्टडी ऑफ आर्ट इन क्वायनेज, वाराणसी, पृ. 1-37; चक्रवर्ती एस.के. (1931), ए स्टडी ऑफ एंशियंट इण्डियन न्यूमिस्मेटिक्स, मेमन सिंह, पृ. 105-126.
2. एलन, जॉन (1936) कैटलॉग आफ दी क्वायन्स ऑफ एंशियन्ट इण्डिया, आक्सफोर्ड, पृ. xix.lxxiv चक्रवर्ती एस.के.; पूर्वोद्धृत, पृ. 16-36; वाल्स, इ.एच.सी. (1939, पुर्नमुद्रित 1999), पंचमाकर्ड क्वायन्स फ्रॉम तक्षशिला, नई दिल्ली, पृ. 1-35
3. एलन जॉन, पूर्वोद्धृत, पृ. lxxix.cliii शास्त्री, अजयमित्र (1970) सिम्बल्स ऑन ट्राइबल क्वायंस ऐन इन्टरप्रिटेटिव स्टडी (सेमिनार पेपर्स ऑन दी ट्राइबल क्वायंस ऑफ एशियन्ट इण्डिया, संपा. सिंह, जयप्रकाश एवं अहमद, निसार), वाराणसी, पृ. 87-101.
4. रैप्सन, ई.जे. (1908), कैटलॉग ऑफ दी क्वायन्स ऑफ दी आन्ध्र डायनस्टी, दी वेस्टर्न क्षत्रप, दी त्रैकूटक डायनेस्टी एण्ड दी बोधि डायनेस्टी, लन्दन, पृ. lxx.xcvi

सहायक क्षेत्रीय निदेशक (वरिष्ठ वेतनमान), इग्नू क्षेत्रीय केन्द्र, दिल्ली-2, आई.ए.ई.ए. हाउस ए, 17-बी, इंद्रप्रस्थ इस्टेट, महात्मा गांधी मार्ग,

फ़ीजी की लोक संस्कृति

डॉ. ऐश्वर्या झा

फ़ीजी की लोक संस्कृति एक बड़े परिवर्तन से गुज़री है। फ़िज़ियों के लिए सबसे बड़ी सामाजिक इकाई यवुसा है, जिसे आरए डेरिक द्वारा परिभाषित किया गया है। "एक कलौ-वू के प्रत्यक्ष एगनेट वंशज" (पूर्वज) के रूप में। मुख्य रूप से उत्तराधिकार उनके पिता/माता की मृत्यु के बाद बड़े भाई/बहन से छोटे भाई/बहन को होता था। जब सबसे छोटे भाई/बहन की मृत्यु हो गई, तो सबसे बड़े भाई/बहन का सबसे बड़ा बेटा/बेटी मुखिया बन गया।"[4] यह परंपरा आज भी फ़िज़ियन समाज को प्रभावित करती है, हालांकि आजकल ज्येष्ठाधिकार की प्रवृत्ति अधिक है। फ़ीजी में आग पर चलने (firewalker) और चाकुओं पर नंगे पॉव चलने का उत्सव भी होता है। फ़ीजी में भारतीय मूल के लोगों ने अपनी संस्कृति एवं लोक परंपरा को भारत से अधिक सहेज कर रखा है।

फ़िजी द्वीप समूह दक्षिण प्रशान्त महासागर के मेलानेशिया में न्यूज़ीलैण्ड के नॉर्थ आईलैण्ड से करीब 2000 किमी उत्तर-पूर्व में स्थित है। विश्व के भूगोल में फ़िजी देश का एक विशिष्ट स्थान है| भाषा, रहन सहन, वेश-भूषा, लोक संस्कृति, धर्म, व्यवसाय फ़ीजी को अन्य देशों से अलग करती है| इस देश के द्वीपसमूह में कुल 322 द्वीप हैं, जिनमें से 106 स्थायी रूप से बसे हुए हैं। इसके समीपवर्ती पड़ोसी राष्ट्रों मे पश्चिम की ओर वनुआतु, पूर्व में टोंगा और उत्तर में तुवालु हैं। 'विती लेवु' फ़ीजी का मुख्य द्वीप है और इसी नाम का उच्चारण इनके पड़ोसी द्वीप टोंगा के निवासी "फिसी" के रूप में करते थे, जिसके कारण इसका नाम फ़ीजी पड़ा है।[1] ऐसा माना जाता है कि फ़िजी के अधिकांश द्वीप 15 करोड़ वर्ष पूर्व हुए ज्वालामुखीय गतिविधियों से बने है । इसके अतिरिक्त यहाँ लगभग मिट्टी के बर्तनों की खुदाई से पता चलता है कि 1000 ई.पू के आसपास भी फ़ीजी में निवासी रहा करते थे। 17वीं और 18वीं शताब्दी के दौरान डच एवं अंग्रेजी खोजकर्तओं ने फ़िजी की खोज की थी। 1874 में ब्रिटेन ने इस द्वीप को अपने नियंत्रण मे लेकर इसे अपना एक उपनिवेश बना लिया। यह देश 1874 से 1970 तक ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन रहने के बाद 10 अक्टूबर 1970 (विजय दशमी के दिन) आजाद हो गया | प्रचुर मात्रा में वन, खनिज एवं जलीय स्रोतों के कारण फ़िजी प्रशान्त महासागर के द्वीपों मे प्रगतिशील राष्ट्र है। फ़िजी डॉलर मुद्रा वाले इस देश में पर्यटन एवं चीनी का निर्यात इसके विदेशी मुद्रा के सबसे बड़े स्रोत हैं। यहाँ मुख्यतया गन्ने की खेती होती है।

फ़ीजी के मूल निवासी पोलिनेशियाई और मेलाशियाई लोगों का मिश्रण है, जो सदियों पहले दक्षिण प्रशांत के मूल स्थान से यहाँ आये थे। फ़ीजी और भारत पर अंग्रेजों ने कब्ज़ा किया, तो जबरन भारतीयों को मजदूर बनाकर फ़ीजी भेजा जाने लगा। 15 मई 1879 में पहली बार ब्रिटिश जहाज लेओनिदास 464 भारतीयों को कलकत्ते से फ़ीजी लाया था, ताकि वो यहाँ के ब्रिटिश हुकूमत के चीनी के फैक्टरी में काम करे। भारतीय मजदूर अधिकांश बिहार, उत्तर प्रदेश से थे, कुछ आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु और उत्तर पश्चिमी सीमांत के थे। 1879 से 1916 के बीच ब्रिटिश 61000 से अधिक मजदूरों को भारत से फ़ीजी भेजा गया। गन्ने की खेतों में काम करने के लिए पांच वर्ष के अनुबंध पर लाये गए किंतु अधिकांश उसी देश में गिरमिटिया मज़दूर फ़िजियन हिन्दुस्तानी बन के रहने लगे। अपने परिश्रम से भारतीय मूल के लोगों ने इस देश के प्रगति में बढ़ चढ़ कर योगदान दिया एवं संभावनाओं की अनंत यात्रा के सहभागी बने । आज भारतीय मूल के लोग फ़ीजी के अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं।

इस मुल्क की राजव्यवस्था की बात करें तो आज़ादी के बाद फ़ीजी में बहुदलीय संसदीय लोकतांत्रिक गणराज्य की स्थापना हुई। फ़ीजी के संविधान में चार वर्षों की अवधि के लिए 50 सदस्यों वाली संसद की व्यवस्था की गई है। फ़ीजी के संविधान में परिकल्पित तीन महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त-धर्मनिरपेक्ष राज्य, भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और निष्पक्ष न्यायपालिका है। प्रधानमंत्री सरकार का प्रमुख और राष्ट्रपति राष्ट्र का मुखिया होता है। कार्यकारी शक्तियों का प्रयोगाधिकार सरकार के पास है। विधायी शक्तियाँ सरकार और संसद दोनों में निहित हैं। न्यायपालिका विधायिका और कार्यपालिका से स्वतंत्र है। आजादी के बाद से अब तक फ़ीजी मे चार बार लोकतंत्र के मार्ग में बाधा आयी किंतु फ़ीजी की महान जनता ने उस पर विजय प्राप्त की है। 50 वर्षों में सीमित संसाधनों के रहते हुए भी फ़ीजी द्वारा राष्ट्र निर्माण का प्रयास प्रशंसनीय है।[2]

किसी भी देश का राष्ट्रीय ध्वज, उसके लोक संस्कृति, इतिहास एवं देश के गौरव का प्रतीक होता है। इस महासागरीय गणराज्य का झंडा हल्के नीले रंग के कपड़े से बना है, जिसमें ब्रिटिश झंडा है। टेसा मैकेंज़ी द्वारा डिज़ाइन किये गए इस ध्वज के दाईं ओर देश के कोट ऑफ आर्म्स का एक सरलीकृत संस्करण है, जिसमें एक शेर, कुछ हथेलियां, एक कबूतर, एक गन्ना और एक नारियल का पेड़ शामिल है। फ़ीजी का झंडा फ़ीजी के समावेशी संस्कृति का परिचायक है।

जनसांख्यिकी के अनुसार, 9 लाख के जनसंख्या वाले देश का 64.4% ईसाई, जबकि 27.9% हिंदू, 6.3% मुस्लिम, 0.8% गैर-धार्मिक, 0.3% सिख और शेष 0.3% अन्य धर्मों के हैं।[3] धर्म के नाम पर यहाँ विवाद नही है किंतु राजनीति जरूर शुरू हो गयी है। फ़ीजी की जनता में सभी धर्मों के प्रति आदर का भाव है। आम जन सभी धार्मिक स्थल मन्दिर, मस्जिद और चर्च सबका सम्मान करते है। दक्षिणी गोलार्ध में सबसे प्रसिद्ध हिंदू मंदिर श्री शिव सुब्रमण्य नाडी में स्थित है। फ़ीजी की सामासिक संस्कृति में काईवीती, भारतीय ,ऑस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड के निवासी हैं। काईवीती अनेक देवी देवताओं के उपासक थे उनके देवताओं में टापू का देवता, इलाके का देवता, बस्ती का देवता, नाग देवता इत्यादि प्रमुख थे लेकिन इन सभी में नागदेवता ही सर्वाधिक लोकप्रिय थे जिसकी पूजा आज भी इसाई धर्म अपनाने पर होती है।

फ़ीजी की लोक संस्कृति एक बड़े परिवर्तन से गुज़री है। फ़िज़ियों के लिए सबसे बड़ी सामाजिक इकाई यवुसा है, जिसे आरए डेरिक द्वारा परिभाषित किया गया है। "एक कलौ-वू के प्रत्यक्ष एगनेट वंशज" (पूर्वज) के रूप में। मुख्य रूप से उत्तराधिकार उनके पिता/माता की मृत्यु के बाद बड़े भाई/बहन से छोटे भाई/बहन को होता था। जब सबसे छोटे भाई/बहन की मृत्यु हो गई, तो सबसे बड़े भाई/बहन का सबसे बड़ा बेटा/बेटी मुखिया बन गया।"[4] यह परंपरा आज भी फ़िज़ियन समाज को प्रभावित करती है, हालांकि आजकल ज्येष्ठाधिकार की प्रवृत्ति अधिक है। फ़ीजी में आग पर चलने (firewalker) और चाकुओं पर नंगे पॉव चलने का उत्सव भी होता है। फ़ीजी में भारतीय मूल के लोगों ने अपनी संस्कृति एवं लोक परंपरा को भारत से अधिक सहेज कर रखा है। अधिकांश हिन्दू शादी विवाह अपने ही धर्म में पुराने रीति रिवाज में करते हैं जाति प्रथा लगभग खत्म हो चुकी है ज्यादातर लोग सम्मान के तौर पर अपने पूर्वज का नाम अपने नाम के साथ लगाते हैं। साधारणतया भारतीय मूल का खानपान आचार विचार वही है जो हमारा है। वहाँ के लोग गोश्त और भुनी मछली शौक से खाते थे परन्तु हिन्दू ज्यादातर गोमांस नहीं खाते। पूर्व ईसाई युग में फ़ीजी की लोक संस्कृति में नरभक्षण भी किया जाता था जिसे बाद इस परंपरा को त्याग दिया गया। फ़ीजी में विवाह को लेकर माता-पिता की स्वीकृति आवश्यक है किंतु प्रेम विवाह का भी चलन है। इससे संबंधित तबुआ नामक परंपरा भी चलती है। इसमें अपनी पसंद की लड़की से विवाह के लिए व्हेल मछली के दांत तोड़कर लड़की के पिता को देना होता है तभी विवाह की स्वीकृति मिलती है।

फ़ीजी के लोक संस्कृति में संगीत की बात करें तो स्थानीय फ़िज़ियन, चर्च संगीत, कव्वाली, भजन, कीर्तन, लोकजीत आदि जैसे संगीत पसंद करते हैं।

भौगोलिक रूप से मेलानेशियन, फ़ीजी का संगीत चरित्र में पोलिनेशियन अधिक है। फिर भी, फ़ीजियन लोक शैली पॉलिनेशियन और मेलानेशियन परंपराओं के अपने संलयन में अलग हैं। चर्च संगीत के साथ ही साथ ड्रम की तरह स्लिट ड्रम या प्राकृतिक सामग्रियों से बने समृद्ध और सुस्त सामंजस्य और जटिल टकराव की विशेषता वाले नृत्य भी शामिल हैं। भारतीय फ़ीजी में संगीत ग्रामीण उत्तर भारतीय और भारत के कुछ दक्षिणी राज्यों जैसे संगीत का प्रचलन है। सबसे लोकप्रिय भजन है, इसमें हारमोनियम और ढोलक (ढोल) के साथ एक भक्ति संगीत के माध्यम से भारतीय फ़ीजी भगवान को ध्यान करते हैं। कव्वाली भी फ़ीजी के पसंद आने वाले संगीत में है। 1900 के दशक के अंत में फ़ीजी में आने वाले शास्त्रीय रूप से प्रशिक्षित तबला वादकों की कमी के कारण कुछ कव्वाली संगीतकारों ने ढोलक वादकों के साथ खेलना शुरू कर दिया, जो केवल भजन जानते थे, और इसलिए संगीत

की एक नई शैली विकसित हो गयी। नाडी में जन्मे ढोलक वादक शशि रॉय ढोलक वादन के प्रमुख कलाकार हैं जिन्होंने "ढोलक तरंग" शैली को निभाने की एक नई तकनीक को शामिल किया है- एक साथ कई नोटों को अलग-अलग स्वरों में एकसूत्र में पिरोते हुए और इस कला के रूप में सबसे अधिक मान्यता प्राप्त एकल कलाकारों में से एक हैं। यहाँ ग़ज़ल भी पसंद किया जाता है। मुश्तरी बेगम पहली भारतीय ग़ज़ल गायिका थीं, जिनके पिता उस्ताद अमजद अली भारत के लखनऊ से आए थे। बिहारी तत्वों को भी लोक संगीत में जग़ह मिली, विशेष कर "फगुआ गायकी", जो भारत के बिहार राज्य में एक प्राचीन भजन गायन शैली है। सांस्कृतिक क्षितिज व्यापक होने से यहाँ जैज म्यूजिक भी तेजी से लोकप्रिय हो गया है।[5]

फ़ीजी में तीन प्रमुख भाषाएँ है अंग्रेजी, फ़िजी और हिंदी। 'फ़ीजी हिंदी' फ़ीजी में बोली जाने वाली प्रमुख भाषा है जिसे 'फ़ीजियन हिंदी 'या 'फ़ीजियन हिंदुस्तानी' भी बोलते हैं। फ़ीजी के संविधान के अनुसार हिंदी भाषा को आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त है। इसे देवनागरी एवं रोमन दोनों में लिखा जाता है। फ़ीजी हिंदी अवधी सहित अन्य हिंदी बोलियों से प्रभावित होने के साथ साथ दूसरी भारतीय बोलियों से भी प्रभावित है। फ़ीजी में रह रहे भारतीयों की पहली पीढ़ी इस बोलचाल की भाषा को 'फ़ीजी बात' कहते थे। लगभग सत्तर प्रतिशत लोग इस भाषा का प्रयोग करते हैं। मानक हिंदी का प्रयोग पठन -पाठन, पूजन, सभा आदि अवसरों पर किया जाता है। भाषा के प्रचार में सं 1957 से फ़ीजी साहित्य समिति लगातार अपना योगदान दे रही है। फ़ीजियन साहित्य की प्रारंभिक रचनाओं में हिंदी में विवेकानंद शर्मा, रेमंड पिल्लई और सुब्रमणि की लघु कथायें अंग्रेजी में और फ़ीजियन में पियो मनोआ की कवितायें आती हैं। तोताराम सनाढ्य, जोगिंदर सिंह कवल, सत्येंद्र नंदन जैसे कई हिंदी साहित्यकार हैं जो फ़ीजी में रहकर प्रवासी हिंदी साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं।

फ़ीजी के खेलों की संस्कृति में भी आधुनिकता और परंपरा का सम्मिश्रण मिलता है "प्रामाणिक फ़िज़ियन खेल गतिविधियों में रोटुमा द्वीप पर महिलाओं की डोंगी दौड़, कुश्ती और डिस्क पिचिंग, शफ़लबोर्ड का एक पॉलिनेशियन-मेलनेशियन रूप है। बिलिबिली, एक लकड़ी का बेड़ा, पारंपरिक रूप से निम्न-श्रेणी की सफेद पानी वाली नदियों को पार करने के लिए उपयोग किया जाता है। फ़ीजी में आउटरिगर कैनोइंग की भी एक लंबी परंपरा है, और यह देश की संस्कृति में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।"[6] अन्य लोकप्रिय खेलों में स्कूबा डाइविंग, रग्बी, फुटबॉल आदि प्रमुख हैं।

फ़ीजी की संस्कृति भारतीय संस्कृति के समान ही है, समाज पारंपरिक भारतीय समाज के जैसा ही है। माता-पिता, भाई-बहन, दादा -दादी आदि रिश्ते फ़ीजी समाज में सम्मानीय हैं। सनातन धर्म सभा मुख्यतः अपने पूर्वजों के द्वारा लाये गए रामचरित मानस, रामायण, सत्यनारायण की कथा, सूर्य पुराण का प्रचार प्रसार करती है। पूरे देश में इस सभा के कई विद्यालय, महाविद्यालय और रामायण मंडलियां हैं। रामचरित मानस तुलसी रामायण के रूप में आज भी फ़ीजीवासियों के जीवन का अभिन्न हिस्सा बनी हुई है। फ़ीजी संस्कृति भारतीय, यूरोपीय संस्कृति के साथ साथ प्रशांत महासागर के अन्य द्वीपों की संस्कृति का मिला-जुला रूप है। तोंगन और रोटूमन संस्कृतियों ने भी फ़ीजियन संस्कृति को प्रभावित किया है। फ़ीजी में स्त्री और पुरुषों के कला और शिल्प अलग-अलग होते हैं। तापा कपडा बनाना महिलाओं से जुड़ा शिल्प है हथियारों की नक्काशी पुरुषों का। फ़ीजी का स्वदेशी कला रूप मेके है जिसे अलग-अलग तरीकों से स्त्री पुरुषों द्वारा किया जाता है। आधुनिक फ़ीजी की राष्ट्रीय पोशाक 'सुलु' और राष्ट्रीय पेय 'याकोना' है। इसे पारंपरिक और महत्त्वपूर्ण समारोहों में विशिष्ट तरीके से ही पिया जाता है।

वस्तुतः फ़ीजी अपने छोटे से कलेवर में सभ्यता, संस्कृति के विशाल फलक को समेटे हुए है। धरती पर सूर्य की पहली किरण फ़ीजी पर पड़ती हैं और छोटा सा देश संसार को बाधाओं में चमकते रहने का मार्ग दिखाता है। फ़ीजियन संस्कृति पर भारतीय और चीनी संस्कृति के, साथ ही यूरोपीय संस्कृति का भी काफी प्रभाव है। इस सभ्यताओं के मिश्रण ने फ़ीजी की लोक संस्कृति को एक अद्वितीय और वैश्विक पहचान दिलाई है।

सन्दर्भ -सूची

1. http://ipublisher.in/I/a/231927#:
2. https://icwa.in/show_content.php?lang=2&level=3&ls_id=3066&lid=2369
3. https://data.worldbank.org/indicator/SP.POP.TOTL?locations=FJ
4. https://en.wikipedia.org/wiki/Culture_of_Fiji
5. https://prarang.in/lucknow/posts/2866/Music-of-India-on-Fiji-Island
6. https://www.britannica.com/place/Fiji-republic-Pacific-Ocean/Cultural-life

विभाग प्रभारी, हिंदी विभाग, स्वामी श्रद्धानंद कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय), मोबाइल नंबर -9810407023, ईमेल : aishwarya@ss.du.ac.in

प्रवासी कुंभ

गगनांचल
साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

वर्ष 46 अंक 1-2 जनवरी - अप्रैल 2023
12वां विश्व हिंदी सम्मेलन विशेषांक

हिंदी

क्या मही हीन बिद्धवानों से। माँ तेरे पूत सपूत नहीं।।
होती प्रशंसा तेरी है, पर धरता कोई ध्यान नहीं ।।१।।
ताल और स्वर जिसमें हैं, अक्षरों की कोई कमी नहीं।
उस विद्या को तज दोगे, तो फिर सुधरोगे कभी नहीं।।२।।
उस विद्या पर गर्व मैं करता, जिस का मरियादा मिटा नहीं।
जड़ जिस का पाताल में है, अब तक पाया कोई अंत नहीं।।३।।

कुँवर सिंह हिंदी की बिंदी, मेटे से है मिटी नहीं।।
जिस का बल था चक्रवर्ति, राज्य कोई है हुआ नहीं।।४।।

-कुँवर सिंह (फीजी)

प्रवासी साहित्य: संघर्ष, संस्कृति और यथार्थ बोध

सुश्री कोमल

> *भारत में जब यूरोपीयन जातियों का आधिपत्य हो गया तो उन्होंने भारत के साथ अन्य देशों में अपने उपनिवेश स्थापित किए और वे अपने-अपने उपनिवेशी देशों में भारतीयों को छल-कपट से मजदूर बना कर ले गए। इनमें से अधिकांश भारतीयों को यह मालूम नहीं था कि उन्हें कहां और किस वास्तविक उद्देश्य से जहाज में बैठा कर ले जाया जा रहा है। यह भारतीयों का ऐसा यातनामय प्रवास था कि उन्हें मॉरीशस, फ़ीजी, सूरीनाम, त्रिनिडाड, दक्षिण अफ्रीका, ब्रिटिश गुयाना आदि देशों में पहुँचकर ही पता चलता था कि उन्हें धोखे से खेतों में काम करने के लिए मजदूर बनाकर लाया गया है। अंग्रेजों ने इन मजदूरों को बताया कि एक ऐसे देश को हमने ढूँढ़ा है जहाँ जमीन से सोना निकलता है, ऐसे देश में ले जाने के लिए अंग्रेजों ने उनसे एग्रीमेंट किया। पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार की अधिकांश जनता इस शब्द का प्रयोग ठीक तरह से नहीं कर पाती थी जो अपभ्रंश में होकर 'गिरमेंट' बन गया और इसी से "गिरमिटिया" शब्द की उत्पत्ति हुई।*

प्रवास, प्रवास के प्रकार, प्रवासी लेखन को समझने के लिए पहले 'प्रवासी' शब्द पर ध्यान देना पड़ेगा। समय के साथ इस शब्द का अर्थ बदलता रहा है। पहले अपने ही देश में जो गरीब- मजदूर रोजी-रोटी की तलाश में इधर से उधर भटकते रहते थे, उन्हें प्रवासी कहा जाता था। आजादी के पूर्व 'पूरबिया' मजदूरों का पलायन कलकत्ता होता था। कलकत्ता में वे बाहरी लोग थे। उन्हें आज भी देशाबर कहा जाता है। एक रूप में 'लोक साहित्य' भी होता है। 'पूरविया लोकगीतों' में यह दर्द सुना जा सकता है परंतु आज प्रवासी शब्द विदेश में रह रहे भारतीयों के लिए रुढ़ हो गया है।

प्रवास में अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करना, नस्लभेद, रंगभेद, संस्कृतियों की टकराहटों, युद्ध की विभीषिका, भाषा का अजनबीपन इत्यादि विषयों की खुलकर प्रस्तुति है। वहीं दूसरी ओर भारतीयता के प्रति एक आत्मसजगता है। भारतीय संस्कृति के प्रति सम्मोहन मात्र नॉस्टैल्जिया है या सांस्कृतिक मूल्यों की ओर लौटने की व्यवस्था? संभवत: इसी कारण प्रवासी हिंदी साहित्य में भारतीयता की अवधारणा गढ़ी भी जाती है।

"संस्कृति जीवन मूल्यों में बसी हैं, इसे जीवन पद्धति भी कहा जा सकता है। जीवन की गतिशीलता के साथ-साथ संस्कृति भी गतिशील है। हमारे सांस्कृतिक मूल्य कभी जड़ स्थिर नहीं रहे इसलिए हमेशा वेध्य और क्षरण की कगार पर रहते हैं। समझदार और जिम्मेदार सृजनधर्मी लोग इस अनवरत संकट को समझते और उनसे जूंझते हैं, आज भी ऐसा ही हो रहा है।"[1]

अशोक वाजपेयी की ये पंक्तियाँ प्रवासी हिंदी साहित्य में सांस्कृतिक मूल्यों के विश्लेषण के लिए इसलिए आवश्यक है क्योंकि प्रवासी लेखक केवल नॉस्टैल्जिया की स्थिति में ना होकर आत्ममंथन और आत्मालोचन के भी नए गवाक्ष खोलता नजर आता है।

संस्कृति में धर्म, मूल्य, दृष्टि, भाषा, कला, साहित्य सब निहित है। विशेष जीवन दर्शन के बिना किसी संस्कृति की कल्पना नहीं की जा सकती। विकास की उन्नत से उन्नत व्यवस्था में पहुँच जाने के बाद भी मनुष्य के शरीर और उसके अंतर जगत के मूल तत्त्व नहीं बदलते हैं। संस्कृति के साथ भी यही बात है, संस्कृति के मूल तत्त्व जीवन के मूल तत्त्वों से जुड़े होते हैं। यही कारण है कि लेखक देश में हो या प्रवास में, संस्कृति उसके जीवन के मूल तत्त्वों से जुड़ी होती है। संस्कृति ही उसकी अस्मिता की लड़ाई में संबल प्रदान करती है।

भारतीय संस्कृति जीवन के प्रति समग्रता का बोध लेकर आगे बढ़ती है। पश्चिम जीवनशैली में इसका अभाव है इसलिए संस्कृतियों का द्वंद्व यहाँ दिखाई देता है। पद्मेश गुप्ता की कहानी 'कशमकश' में भी सागर और चांदनी के माध्यम से द्वंद्व को भावनात्मक रूप से उभारा गया है। सुरेश चंद्र शुक्ल की कहानी 'मंजिल के करीब' में अकेलेपन और

भेदभाव के बीच अपनेपन का जो नवीन अंकुर नॉर्वे में फूटता है, वही मृत्यु के बाद भी संबंधों की जीवंतता को बनाए रखता है।

प्रवासी हिंदी साहित्य में भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को गढ़ने, तोड़ने और नव निर्माण की ओर अग्रसर करने की अपार संभावनाओं के साथ वैश्विक स्तर पर हिंदी साहित्य को एक नई सबल पहचान दिलाने में और भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को प्रचारित प्रसारित करने की प्रबल क्षमता दिखाई देती है।

यूनेस्को रिपोर्ट के अनुसार विश्व के लगभग 137 देशों में हिंदी भाषा विद्यमान है। हिंदी भाषियों की कुल संख्या 100 करोड़ के पार है। भूमंडलीकरण के कारण देश-विदेश और हिंदी भाषा के स्वरूप और प्रवृत्ति में परिवर्तन हो रहा है। अब हिंदी मात्र साहित्य, संस्कृति, धर्म आदि का माध्यम ही नहीं बल्कि विज्ञान, राजनीति, अर्थनीति की भाषा बनती जा रही है।

आज लगभग 100 से अधिक देशों में भारत के लोग निवास करते हैं। यह सभी लोग अपनी रोजी-रोटी और बेहतर जीवन शैली की उम्मीद में विदेश गए और बस गए। इन सभी लोगों को 'इंडियन डायस्पोरा' की संज्ञा दी जाती है।

मोटे तौर पर प्रवासी साहित्य के दो प्रकार देखने को मिलते हैं। इसमें पहला आता है गिरमिटिया पक्ष।

1. गिरमिटिया पक्ष (साहित्य)-

जिसका संबंध मॉरीशस, सूरीनाम, वेस्टइंडीज, त्रिनिडाड एंड टोबागो, फ़ीजी आदि देशों के साथ रहा है। गिरमिटिया साहित्य पर चर्चा करने से पहले चार बिंदुओं को जानना अत्यंत आवश्यक है जिस पर पूरा गिरमिटिया साहित्य केंद्रित है- 1. विस्थापन 2. यंत्रणा 3. दासता 4. भारतीय जीवन शैली को बचाकर रखने के लिए किया गया संरक्षण।

मानव जाति के इतिहास में प्रवास पर जाने के दो प्रमुख कारण रहे हैं- (1) विवशता से किया गया प्रवास, (2) स्वेच्छा से किया गया प्रवास

(1) विवशता में किए गए प्रवास के उदाहरण भी इतिहास में भरे पड़े हैं। इनमें प्राकृतिक आपदाओं के साथ मनुष्य द्वारा निर्मित आपदाओं का भी योगदान रहा है।

भारत में जब यूरोपियन जातियों का आधिपत्य हो गया तो उन्होंने भारत के साथ अन्य देशों में अपने उपनिवेश स्थापित किए और वे अपने-अपने उपनिवेशी देशों में भारतीयों को छल-कपट से मजदूर बना कर ले गए। इनमें से अधिकांश भारतीयों को यह मालूम नहीं था कि उन्हें कहां और किस वास्तविक उद्देश्य से जहाज में बैठा कर ले जाया जा रहा है। यह भारतीयों का ऐसा यातनामय प्रवास था कि उन्हें मॉरीशस, फ़ीजी, सूरीनाम, त्रिनिडाड, दक्षिण अफ्रीका, ब्रिटिश गुयना आदि देशों में पहुँचकर ही पता चलता था कि उन्हें धोखे से खेतों में काम करने के लिए मजदूर बनाकर लाया गया है। अंग्रेजों ने इन मजदूरों को बताया कि एक ऐसे देश को हमने ढूँढ़ा है जहाँ जमीन से सोना निकलता है, ऐसे देश में ले जाने के लिए अंग्रेजों ने उनसे एग्रीमेंट किया। पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार की अधिकांश जनता इस शब्द का प्रयोग ठीक तरह से नहीं कर पाती थी जो अपभ्रंश में होकर 'गिरमेंट' बन गया और इसी से "गिरमिटिया" शब्द की उत्पत्ति हुई। गिरमिटिया देशों में से मॉरीशस भी एक है जहाँ हिंदी के अंतरराष्ट्रीय स्वरूप को देखा जा सकता है।

"ऐसी कठिन परिस्थितियों में मॉरीशस में जा बसे भारतीय प्रवासियों के पास जिजीविषा के तौर पर उनकी भाषा, उनका धर्म और सांस्कृतिक प्रेम था जो गीता, रामचरितमानस आदि धार्मिक ग्रंथों से प्रस्फुटित होता रहा। उस समय साहित्य के रूप में भारतीय अप्रवासी समाज के पास ये ही धर्म ग्रंथ थे लेकिन उनके बीच भोजपुरी और हिंदी भाषा बोलने वालों की एक बड़ी संख्या होने के कारण हिंदी भाषा का प्रचार और साहित्य लेखन हो पाया।"[2]

1968 में मॉरीशस को आजादी मिली। आजादी के बाद ढेर सारे रचनाकार हिंदी में रचनाएँ करने लगे। इनमें अभिमन्यु अनत का नाम सर्वोपरि है। अभिमन्यु अनत ने लगभग 75 पुस्तकों की रचना की। उनकी रचनाओं में भारतीय प्रवासी के खूनी और गूंगे इतिहास का हृदयद्रावक वर्णन है। उनकी कविता की पंक्ति है -

''हिंद महासागर की लहरों से तैरकर आई / गंगा की स्वर लहरी को सुन / फिर याद आ गया मुझे वह काला इतिहास / उसका बिसरा हुआ / वह अनजान अप्रवासी।"[3]

इसके पूर्व 1949 में कवि 'मधुकर' अपनी कविता 'प्रवासी की राम कहानी' में लिखते हैं -

''परवासी ने आशा छोड़ी / छूटा नाता प्यारा / भैया ने बहना को छोड़ा / माता बिटिया रानी। / मातृभूमि की चाह प्रेम में / बहा नैन से पानी / दुख से भरी है इनकी बातें / दर्द भरी है वाणी / सुनो - सुनो ऐ भारत वालो / परवासी की राम कहानी।"[4]

इस प्रकार प्रवासी साहित्य ने हिंदी साहित्य में एक नया रंग घोला और इसे विस्तृत किया। मॉरीशसवासी भारतवंशी अभिमन्यु अनत के शब्दों में- ''मॉरीशस की हिंदी अपनी माटी की सौंधी खुशबू की गंध को आत्मसात करके ही अपना एक निजी स्थान बना सकी है और हिंदी के शब्द सरोवर में अपने हिस्से की चंद बूँदें जोड़ पाई है।" [5]

अभिमन्यु अनत का नाम बड़े ही आदर एवं सम्मान के साथ लिया जाता है जिन्होंने अपने साहित्य में भारतीय प्रवासी मजदूरों की पीड़ा एवं उनके संघर्ष का बखान खुलकर किया है | इनके साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है- साहित्य में निहित भाषा की कलात्मक पकड़ जिसमें सामान्य से सामान्य एवं सहज से सहज खड़ीबोली हिंदी तथा भोजपुरी भाषा का प्रयोग किया गया है। वास्तव में देखा जाए तो अभिमन्यु अनत

के साहित्य में भाषा के प्रति जागरूकता एवं प्रवासियों के प्रति निरंतन चिंतन की भावना जरी है। सदैव ही उन्होंने प्रवासियों की पीड़ा का बखान अपने साहित्य में उकेरा है।

अभिमन्यु अनत अपने नाम के अनुरूप ही चक्रव्यूह में घुसना तो जानते थे परंतु उन्हें भी उस चक्रव्यूह से निकलने का रास्ता नहीं पता था, अर्थात विस्थापन, दासता, यातना और उसके बाद अपने मूल संस्कृति की रक्षा के लिए किया जाने वाला संघर्ष। उनका महत्त्वपूर्ण उपन्यास 'लाल पसीना' उसी महाद्वंद्व की कहानी है जिसे अभिमन्यु अनत ने खुद भोगा, अनेक यातनाओं को झेला तथा अपनी दासता की पराकाष्ठा को शब्द दिया और अपने मूल संस्कृति को बचाए रखने के लिए जीवन पर्यंत संघर्ष किया।

'लाल पसीना' के मुख्य पात्र किशन सिंह के रूप में खुद अभिमन्यु अनत उपस्थित है। किशन सिंह के माध्यम से उस परिदृश्य का चित्रण है जो भारत से एक मजदूर एग्रीमेंट के अंतर्गत मॉरीशस गया था और उसके बाद उसके साथ ऐसी घटना घटती है कि किस तरह की यातनाओं को उसे झेलना पड़ा, किस तरह की दासता से हो कर उसे गुजरना पड़ा और अपनी मूल अस्मिता से किस तरह के समझौते उन्हें करने पड़े हैं। इसका मार्मिक चित्रण उन्होंने अपने इस उपन्यास में किया है। इन विकट परिस्थितियों में उनकी मानसिक और सांस्कृतिक लड़ाई चलती रहती हैं। उनका अन्य चर्चित उपन्यास 'लहरों की बेटी' है - इसमें अभिमन्यु ने भारतीय अस्मिता की रक्षा संवेदना के किस स्तर पर जाकर की गई है यह दिखलाने का प्रयास किया है।

इनका अन्य प्रसिद्ध उपन्यास 'गांधीजी बोले थे' हैं जिसकी कथा कुछ ऐसे चलती है। सन उन्नीस सौ एक में गांधीजी मॉरीशस गए थे और उन्होंने कहा था कि भारतीयों को शिक्षित करना अत्यंत जरूरी है और जहाँ तक हो सके भारतीयों को राजनीति में हिस्सा लेना चाहिए। इन्हीं दो विषयों के संवेदनात्मक पक्ष को अभिमन्यु अनत ने बहुत ही खूबसूरती के साथ अपने उपन्यास 'गांधीजी बोले थे' में अंकित किया है।

अत: देश के बाहर या यूँ कहे भारतेत्तर देशों में हिदी का अंतरराष्ट्रीय स्वरूप को विस्तार प्रदान करने में प्रवासी साहित्यकारों ने सेतु का काम किया है। इस प्रकार, गिरमिटिया देशों में हिंदी की दशा एवं दिशा को जानने के लिए निम्न बिन्दुओं पर विचार करना अति आवश्यक है, जो इस प्रकार से हैं- "मॉरीशस में 1834 ई. से 1920 ई. के मध्य 75000 भारतीय गिरमिटिया का उत्प्रवास करवाया गया।"[6]

यही कारण है कि मॉरीशस में उत्तर एवं दक्षिण भारत से ले जाए गए लोगों की जनसंख्या में बढ़ोतरी पाई गयी। मूल रूप से 12 मार्च 1968 ईसवी को मॉरीशस में धोखे से जा बसे भारतीय मजदूरों को इस गिरमिटिया जीवन से मुक्ति मिली। जिसके परिणामस्वरूप उन गरीब, पीड़ित, शोषित मजदूरों को मॉरीशसवासीय गोरे सरकारों की औपनिवेशिक नीति एवं अधीनतापूर्वक दास्ता से पूर्णत: आजादी मिली।

"सभी प्रवासी भारतीय विदेश में अपनी भाषा की रक्षा, सुरक्षा एवं भाषा के प्रति सचेष्ट है, यही कारण है कि सर्वत्र विदेश में जहाँ- जहाँ भारतीय, प्रवासी या अप्रवासी के रूप में गए हैं वे हिंदी बोलने का प्रयत्न करते हैं और अपनी भाषा एवं संस्कृति पर उन्हें गर्व है। वे अपनी अगली पीढ़ी को हिंदी सिखाना चाहते हैं, क्योंकि वही हिंदी उन्हें विदेश में जोड़ने वाली ताकत है।" [7]

वास्तव में कहा जा सकता है कि प्रवास में निवास कर रहे भारतवंशी अंग्रेजी नीति के शिकार होने के साथ ही साथ उनकी औपनिवेशिक नीतियों के दंश को भी झेल रहे थे। वे गरीब भारतवंशी शोषित, पीड़ित, प्रताड़ित एवं अपमानित होते हुए भी अपनी संस्कृति एवं मानवीय मूल्यों को बचाए रखने में सफल रहे। साथ ही वे अपनी भाषागत एकता के मूल्यों को भी बनाए रखने में सार्थक सिद्ध हुए है।

गिरमिटिया मजदूरों के इतिहास के माध्यम से यह स्पष्ट रूप से जाना जा सकता है कि वहाँ निवास कर रहे भारतवंशी को विभिन्न प्रकार के मौलिक अधिकारों से वंचित रखा गया। यहाँ तक कि भोजपुरिया समाज खुल कर अपनी भाषा में वार्तालाप भी नहीं कर सकते थे। इस संदर्भ में मॉरीशस के सर्वश्रेष्ठ एवं लोकप्रिय रचनाकार अभिमन्यु अनत ने अपनी सर्वश्रेष्ठ प्रसिद्ध रचना 'लाल पसीना' में लिखा है- ''जिस दिन गोरे सरदारों की ड्यूटी की बदली की जाती उस दिन सारे भारतीय मजदूर खुलकर बातें कर पाते।" [8]

वस्तुत: वर्तमान समय में स्थिति यह है कि मॉरीशस क्रियोली और भोजपुरी को छोड़कर वहाँ सभी भाषाएँ पढ़ने लिखने के लिए ही सीखी जाती हैं। जबकि फ़ीजी में गिरमिटिया हिंदी के नव विकसित भाषा के रूप में श्री जितेन्द्र कुमार मित्तल ने अपनी पुस्तक 'मॉरीशस देश और निवासी' में लिखा है - ''भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व मॉरीशस में स्थिति यह थी कि भारतीय मूल के सभी मॉरीशसवासियों की साहित्य की भाषा खड़ीबोली हिंदी थी, किन्तु भारत के स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद वहाँ से आने वालों में प्रांतीयता की भावना और भाषा का उन्माद उत्पन्न हुआ है। फलस्वरूप अब हिंदी केवल हिंदी भाषी राज्यों से आये हुए लोगों तक सिमटती जा रही है।"[9]

अत: वे अपनी भाषा हिंदी के प्रति निष्ठा को बचाए हुए है। हिंदी के प्रति उत्कृष्ट लालसा को दर्शाते हुए मॉरीशस के कवि मुनीश्वर लाल चिंतामणि के शब्दों में-

"उस आदमी से जाकर कहो कि / मेरी हिंदी भाषा / एक ऐसी खूबसूरत चीज है / जिसने मेरी संस्कृति को / अब भी बचाए रखा है..।"[10]

प्रवासी भारतीयों के समक्ष 'गिरमिट काल' में हिंदी का जो स्वरूप बना था वह उनकी अपनी बोलियों एवं भाषाओं का समिश्रित रूप था जिसमें स्थानीय बोलियों के शब्द थे। इन मिश्रित रूपों में फ़ीजी में अवधी, कयिबिती, और अंग्रेजी भाषा का तथा सूरीनाम में अवधी, नेपाल में भोजपुरी के साथ अफ्रीकांस का मिश्रण हुआ और नई हिंदी भाषा का उदय हुआ जो फ़ीजी, सूरीनाम आदि नामों से इन देशों को जाना जाने लगा।

वर्षों पूर्व भारत से गए गिरमिटिया मजदूर भारत से दूर रहकर भी अपनी भाषा एवं संस्कृति की लड़ाई अनवरत लड़ते रहे। साथ ही अपने पूर्वजों के द्वारा बनाई गई अस्मिता को बनाये रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे।

एक शतक से लेकर आज तक यह देखा जा सकता है कि किस तरह भोजपुरिया समाज आज भी बोलचाल की भाषा के रूप में हिंदी के साथ-साथ भोजपुरी, मगही एवं मैथिली आदि विभिन्न बोलियों को बोलचाल की भाषा के रूप में प्रयोग में ला रहे हैं। भोजपुरिया समाज बड़े ही गर्व से कहा करते- "हम भोजपुरी जानी ला, बोली ला, बूझी ला, त अंग्रेजी में काहे के गिटर-पिटर करीं।"

इस प्रकार देखा जा सकता है कि विदेशों में हिंदी का विस्तार स्वरूप केवल भाषाई आधार पर ही नहीं विकसित हो रहा है बल्कि बोलचाल के साथ-साथ पढ़ने-लिखने के लिए भी आधार का माध्यम है- हिंदी।

प्रवासी देशों में हिंदी का प्रचार-प्रसार बड़ी तीव्र गति से देखा जा सकता है। इसके पीछे मुख्य योगदान मुख्य रूप से प्रवासी देशों में अर्थात् विदेशों में हिंदी भाषा में रचना कर रहे रचनाकारों की। उनमें से मुख्य है- दीपचंद बिहारी, रामदेव धुरंधर, वेणी माधव, रामखेलावन, भानुमती राजदान, पुजानंद नेमा, केशवदत्त चिंतामणि और राज हीरामन इत्यादि। साथ ही मॉरीशस के लोकप्रिय रचनाकार अभिमन्यु अनत जिन्होंने अपनी मातृभाषा के प्रलोभन को त्याग कर बड़ी निष्ठा और धैर्य के साथ एक लम्बी शती से हिंदी में रचना कर रहे हैं। साथ ही साथ हिंदी को विस्तार स्वरूप प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रदान भी कर रहे हैं। सोमदत्त बखोरी के शब्दों में- "भाषा की लडाई में / ऊँचा किया नाम अपना / और अपने देश का / ऊँचा किया नाम अपने पूर्वजों का / और उनके देश का।"

मॉरीशस की तरह 'सुरीनाम' भी गिरमिटिया देश के रूप में जाना जाता है पर वहाँ के साहित्य की चर्चा इतनी नहीं होती है जितना मॉरीशस ने अपने आप को सिद्ध और प्रसिद्ध किया है। पुष्पिता अवस्थी ने अपना लेखन कार्य सूरीनाम से ही शुरू किया था और आगे चलकर वह हालैंड यानी नीदरलैंड में बस गई। पुष्पिता अवस्थी के उपन्यास का नाम है छिन्नमूल। इस उपन्यास में दो संस्कृतियों के द्वंदात्मक अवधारणा को ही चित्रित किया गया है।

डच कॉलोनी नीदरलैंड में रहने वाले बेटे के घर में जब उसकी मां तेरे नाम से आती है तो उसका मन वहाँ नहीं लगता है और वह बहुत सारे उधेड़बुन में पड़ जाती है कि किस तरह हमारे परिवार में सूरीनाम में खेतों में काम किया। कैसे अपनी सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा की आदि-आदि।

उपन्यास के माध्यम से सूरीनाम में भारत के बसे हुए भारतवंशियों के चार पीढ़ियों के संघर्ष और संवेदना को उन्होंने समेट करके रख दिया है। शायद यह विश्व का पहला ऐसा उपन्यास है जो भारतीय संस्कृति की मूलभूत भावनाओं को बहुत ही संवेदनशील तरीके से अथाह व्यथा वाले संघर्ष को सामने लाता है। इस उपन्यास को सूरीनाम के भारतीय जीवन के संवेदनात्मक पक्ष के लिए एक महाकाव्य की तरह देखा जाता है।

इसके अलावा इसी क्रम में अगला देश आता है - 'त्रिनिडाड'।

प्रवासी हिंदी साहित्य के अंतर्गत कविताएँ, उपन्यास, कहानियाँ, नाटक, एकांकी, महाकाव्य, खंडकाव्य, अनूदित साहित्य, यात्रा वर्णन, आत्मकथा आदि का सृजन हुआ है। प्रवासी साहित्यकारों की संख्या भी श्लाघनीय है। इन साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं द्वारा नीति- मूल्य, मिथक, इतिहास, सभ्यता के माध्यम से 'भारतीयता' को सुरक्षित रखा है। इन रचनाकारों ने 'हिंदी' को प्रवाहित रखा, जिंदा रखा। इन साहित्यकारों में प्रमुख नाम हैं- साहित्यकार 'हरिशंकर आदेश'। उनकी लगभग तीन सौ से अधिक रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। वे 1966 से 1976 ई. तक वेस्टइंडिज़ में भारत के उच्चायुक्त के रूप में कार्यरत रहे थे। वेस्टइंडिज़ में अपने कार्यकाल के दरमियान उन्होंने अवलोकन किया कि चर्च द्वारा वहाँ बसे हुए भारतीयों (जिन्हें वर्षों पहले ब्रिटिश मजदूर बनाकर ले गए थे) पर धर्मांतर के लिए दबाव डाला जा रहा है।

महाकवि आदेश ने इस बात को गंभीरता से लिया। उन्होंने इसे रोकने के लिए नामकरण से लेकर मृत्युसंस्कारादि धार्मिक कार्य के लिए वहाँ के निवासियों को प्रशिक्षित किया। आदेश जी के कारण वहाँ के लोगों को राहत मिली। सुरक्षा महसूस हुई इसलिए उन्हें उनका कार्यकाल खत्म होने के बाद भी किसी ने भारत लौटने नहीं दिया। लगभग 50 वर्ष हो गए वे वहीं के होकर रहे हैं। उन्होंने वेस्टइंडिज़ में 'भारतीय विद्या संस्थान' की स्थापना की है। इस संस्था द्वारा उन्होंने बी.ए. स्तर के हिंदी पाठ्यक्रम सीखने का प्रावधान किया है।

इतना ही नहीं उन्होंने 'भारतीय आभिजात्य संगीत' का पाठ्यक्रम भी शुरू कर रखा है। उन्होंने भारत और हिंदी संबंधी गीत लिखे हैं। उनकी हिंदी की तीन सौ से अधिक रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। उनमें महाकाव्य,

खंडकाव्य, भगवतगीता का हिंदी और अंग्रेजी पद्यानुवाद, तीस नाटक, एकांकी, जीवनियाँ आदि हैं। संगीत और साहित्य के माध्यम से उन्होंने 'भारतीयता' को जिंदा रखा है। 'हिंदी' के प्रचार-प्रसार में प्रवासी भारतीय साहित्यकार हरिशंकर आदेश का नाम अग्रणी है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि मॉरीशस, फ़ीजी, सूरीनाम, गुयाना, त्रिनिडाड और टोबैगो आदि विभिन्न प्रवासी देशों में भारतीय मूल के लोगों ने जो संघर्ष किया और बाद में मॉरीशस में या यूँ कहा जाय कि विदेशों में अपनी प्रतिभाओं के झंडे गाड़े। साथ ही उन्होंने हिंदी की मशाल को वहाँ जलाए रखा है।

चूँकि, प्रवासी साहित्यकारों को उनकी रचनाओं के माध्यम से जाना जा सकता है एवं उनके सतत प्रयास के परिणामस्वरूप ही विदेशों में हिंदी के विस्तार स्वरूप को महत्ता मिल पाई है। हिंदी को विकसित रूप प्रदान कर पाने में इन प्रवासी साहित्यकारों का सफल योगदान रहा है। अत: हम भारतवंशी को हिंदी के प्रति जागरूकता लाने की आवश्यकता है। साथ ही पूरी दृढ़ता के साथ विदेशी पटल पर अपनी बात को रखते हुए हमें अपनी भाषा 'हिंदी' के स्वरूप को प्रकाश में लाना चाहिए, जिससे हिंदी केवल हिंदी प्रदेशों की भाषा बन कर न रह जाए बल्कि हिंदीतर एवं विदेशों की भाषा भी बन सके।

(2) दूसरे भाग में उन साहित्यकारों का नाम आता है जो गिरमिटिया देशों को छोड़कर विश्व के अन्य देशों में स्वेच्छा से गए। इनमें ज्यादातर लोगों ने अपने आप को सुव्यवस्थित करने के लिए पश्चिम का रुख किया। स्त्री या पुरुष के प्रवास पर जाने के कारण हो सकते हैं-

* कई रोजगार की तलाश में गए * कई बेहतर जिंदगी की तलाश में गए * कई पश्चिम के आकर्षण से आकर्षित होकर गए * कई गए बाजार बाढ़ की चपेट में आकर धन कमाने की लालसा से * कई भारत या किसी भी देश से स्त्री प्रवास पर गई क्योंकि उसकी शादी वहाँ हुई थी। * कई गई मजबूरी में ... (मजबूरी में प्रवास पर जाने के भी अनेक कारण हो सकते हैं। कुछ स्त्रियाँ बेच दी जाती हैं। भारत से, वेस्ट बंगाल से, आसाम से, पूर्वोत्तर के कुछ राज्यों से जिस्मफरोशी की धंधे के लिए इन्हें मजदूर कहकर बेच दिया जाता है। यह स्त्रियाँ कुछ दिनों बाद वहाँ के परिदृश्य में ढल जाती हैं। कुछ समय, दिन, साल उनको अवसाद रहता है। कुछ अवसादग्रस्त होकर मर भी जाती हैं लेकिन कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी होती है जो इन सारे अवसादों को पार करके वे भी सशक्तिकरण की बात करती हैं।)

इन सभी प्रकार के लोगों में एक बात समान थी वह थी उनकी शिक्षा अर्थात ज्यादातर मध्यम वर्ग निम्न मध्यम वर्ग या फिर उच्च वर्ग के लोग भी गए तो वह इन देशों में शिक्षित लोग गए।

(1) इसलिए इनके सोचने का दायरा अलग था

(2) इनकी सांस्कृतिक चेतना अलग थी

(3) इनकी मान्यताएँ अलग थीं

(4) जीवन का मूल्यांकन अलग था

(5) इनकी सामाजिक परिस्थितियाँ अलग थीं

(6) इनकी आर्थिक और शैक्षणिक स्तर भी अलग थे

(7) इसलिए इनकी मजबूरियाँ भी अलग थीं

(8) इनकी जीवनशैली अलग थी

(9) इनकी अभिलाषाएँ अलग थीं

(10) इनकी अस्मिता की लड़ाई अलग थी

इसी कारण ये लोग पश्चिम के प्रभाव में भी थे और भारतीयता के अभाव में भी जी रहे थे इसलिए इन देशों के प्रवासी साहित्य के लेखन का कलेवर और फ्लेवर भी बिल्कुल अलग है। प्रवासी साहित्य में एक ओर अपनी जड़ों से कटे हुए लोगों का दुख-दर्द है, वही दूसरी ओर, दूसरी संस्कृति से सामंजस्य बिठाने की ललक भी है। यह प्रवासी साहित्य हमारे मुख्यधारा के साहित्य की कसौटी पर कितना खरा उतरता है, यह अलग बात है परंतु इसमें कोई दो राय नहीं है कि इन प्रवासी लेखकों ने हिंदी साहित्य का विस्तार दुनिया के कोने-कोने तक किया और उसे अंतरराष्ट्रीय भाषा के समकक्ष लाकर खड़ा कर दिया।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. अशोक वाजपेयी, बहुवचन पत्रिका, संपादक राजेंद्र कुमार, अंक - 20, जनवरी - फरवरी, 2009, पृष्ठ - 81

2. वैश्वीकरण के दौर में, संपादक - रामशरण जोशी

3. वह अनजान अप्रवासी, अभिमन्यु अनत

4. प्रवासी की राम कहानी, मधुकर

5. उपन्यासकार अभिमन्यु अनत, श्री चित्रा वी. एस., पृष्ठ - 93

6. इंडियन एंड आइडियल लेबर आर स्लेव, अरुणाचल कृष्ण, पेंटागन प्रेस, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 32

7. विमलेश कांति वर्मा, गगनांचल, वर्ष- 40, अंक- 1-2, जनवरी-अप्रैल, 2019

8. लाल पसीना, अभिमन्यु अनत, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - 124

9. मॉरीशस देश और निवासी, श्री जितेंद्र कुमार मित्तल, पृष्ठ - 71

10. मेरी हिंदी, मुनीश्वर लाल चिंतामणि, गगनांचल, वर्ष-40, अंक-1-2, जनवरी-अप्रैल, 2019, पृष्ठ -21

सी-56 वेस्ट ज्योति नगर एनक्लेव, लोनी रोड, शाहदरा दिल्ली - 110094
मोब - 7859926773

प्रवासी भारतीय साहित्य : बदलता परिदृश्य

प्रो. संतोष चौबे

"प्रवासी साहित्य को अक्सर 'नॉस्तेल्जिया' का साहित्य भी कह दिया जाता है। अगर आप पहली पीढ़ी के प्रवासियों को देखे तो जिन परिस्थितियों में उनका विदेश गमन हुआ उसमें देश की गहरी याद, हमारे धर्म ग्रंथ और परंपरा से दूर होने की गहरी टीस और उससे जुड़े रहने की आकांक्षा, देश वापसी की उम्मीद, उनके मन में और उनकी रचनाओं में आना स्वाभाविक था। गिरिराज किशोर ने अपने बहुपठित उपन्यास 'पहला गिरमिटिया' में इस टीस को पूरी करुणा के साथ उभारा है। लेकिन स्वतंत्रता के बाद, साठ और सत्तर के दशकों में और हाल ही के वर्षों में प्रवासित भारतीयों का दृष्टिकोण पूरी तरह बदला है। अब वे अपने-अपने देश में, उनके नागरिकों के साथ बराबरी से व्यवहार कर पाते हैं।"

विश्वरंग के प्रारंभ से ही प्रवासी भारतीय साहित्यकार उसका प्रमुख अंग रहे हैं। पहले विश्व आयोजन में अमेरिका से सुषम बेदी, अशोक सिंह एवं अनूप भार्गव; इंग्लैंड से दिव्या माथुर, तेजेन्द्र शर्मा एवं जय वर्मा; आस्ट्रेलिया से रेखा राजवंशी एवं भावना; रूस से लुडमिला खाखालीवा; कजाकिस्तान से देरीगा कोकोयेवा एवं आमोनिया से रिप्सिमे नेसिसमान; हॉलैंड से रामा तक्षक एवं पुष्पिता अवस्थी; फ़ीजी, श्रीलंका, तिब्बत नेपाल, बांग्लादेश, अफगानिस्तान, जर्मनी, इटली आदि देशों के लगभग पचास से अधिक साहित्यकार कवि शामिल हुए थे और सबका एक ही आह्वान था-प्रेम और विश्व बंधुत्व। टैगार की सीमाविहीन विश्व की कल्पना को उन्होंने करीब पाँच सौ से अधिक भारतीय कलाकारों के साथ साझा किया और प्रवासी भारतीय साहित्य पर हुए सत्रों में उस पर विचार-विमर्श की गंभीर शुरुआत की। विश्वरंग 2019 एक ऐसी शुरुआत थी जिसमें विभिन्न देशों के प्रवासी भारतीय लेखकों को एक-दूसरे के तथा उन सभी को भारतीय लेखकों के और निकट ला दिया।

आगामी दो वर्षों यानी 2020 एवं 21 में वैश्विक महामारी-जिसे मानवीय त्रासदी कहना ज्यादा उचित होगा- के चलते विश्वरंग आभासी दुनिया में चला गया लेकिन उसने वहाँ भी धूम मचाई। अब वह भारत के साथ-साथ पंद्रह और देशों में समानांतर रूप से आयोजित हुआ, लगभग एक हजार कलाकारों ने उसमें हिस्सा लिया और शैलजा सक्सेना (कनाडा), शार्दूला नौगजा (सिंगापुर), पदमेश गुप्त (यू.के.) एवं रामा तक्षक (नीदरलैंड्स) के नेतृत्व में नये क्षेत्रीय समूहों का उदय हुआ, नये लोग और नये देश उससे जुड़े - नव गति, नवलय, ताल-छंद जैसा कुछ अनुभव था। इस बार दुनिया भर में डेढ़ करोड़ से अधिक लोगों ने उसे देखा। नई पत्रिकाएँ भी प्रारंभ हुई। रोहित कुमार हैप्पी (न्यूजीलैंड) तो लंबे समय से 'भारत दर्शन' पत्रिका का संपादन कर ही रहे हैं। रामा तक्षक ने 'साहित्य का विश्वरंग' और अनूप भार्गव ने विश्व हिंदी सचिवालय तथा वैश्विक हिंदी परिवार के साथ मिलकर 'हिंदी से प्यार है जैसे नये प्रयास शुरू किये। जवाहर कर्नावट ने विभिन्न देशों से निकलने वाली हिंदी पत्रिकाओं का विहंगावलोकन प्रस्तुत किया जो अब पुस्तकाकार उपलब्ध हैं। कमल किशोर गोयनका जो केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा के उपाध्यक्ष रहे हैं, ने तीन खंडों में प्रवासी भारतीय साहित्य का संपादन किया, कनाडा के मित्रों के कविता और कहानी संग्रह आये और इस विरासत को डा. अनिल जोशी ने संस्थान के पत्र-पत्रिकाओं द्वारा आगे बढ़ाया। 'गर्भनाल' का प्रकाशन तो सतत रूप से जारी है ही, भाषा शिक्षण की प्रविधियों पर भी नये उत्साह से काम शुरू हुआ है। बालेंदु दधीच ने अनेकों कार्यशालाओं के माध्यम से तकनीक के उपयोग का प्रशिक्षण दिया है तो अनिल जोशी के प्रयासों से उच्च शिक्षा में हिंदी के उपयोग को बढ़ावा मिला है।

रवींद्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय ने भी पिछले तीन वर्षों में विश्वरंग के आयोजन के साथ-साथ कुछ महत्त्वपूर्ण कदम उठाये हैं।

विश्वविद्यालय में भाषा शिक्षण केंद्र, अनुवाद केंद्र, प्रवासी भारतीय साहित्य शोध केंद्र, टैगोर अंतरराष्ट्रीय साहित्य एवं कला केंद्र तथा प्राच्य भाषा केंद्र की स्थापना की गई है, जिन्होंने पूरी गंभीरता के साथ अपने-अपने क्षेत्रों में काम शुरू कर दिया है। विश्वविद्यालय में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की स्थापना भी की गई है। भाषा शिक्षण केंद्र ने एक डिजिटल प्रायमर का निर्माण किया है जिससे करीब एक करोड़ लोगों को हिंदी शिक्षण से जोड़ने का लक्ष्य है।

वैश्विक परिदृश्य में 'विश्वरंग' पत्रिका के चार अंक अब तक प्रकाशित हुए हैं और उन्हें व्यापक सराहना मिली है. 'वनमाली सृजन पीठ' की कथा केंद्रित मासिक पत्रिका 'वनमाली' का प्रकाशन भी अब शुरू हुआ है जिसके प्रत्येक अंक में प्रवासी कथा साहित्य को स्थान दिया जा रहा है। टैगोर अंतरराष्ट्रीय साहित्य एवं कला केंद्र पिछले 10 वर्षों से कला केंद्रित पत्रिका 'रंग संवाद' का प्रकाशन कर रहा है और हिंदी में भारत की एकमात्र विज्ञान पत्रिका 'इलेक्ट्रॉनिकी' है जो पिछले 35 वर्षों से विज्ञान आकाश पर छाई हुई है। देश के प्रतिष्ठित वनमाली कथा सम्मानों में इस वर्ष से प्रवासी कथा साहित्य को भी जोड़ा गया है और पहला वनमाली कथा सम्मान (प्रवासी साहित्य) प्रख्यात कथा लेखिका दिव्या माथुर को दिया गया।

प्रवासी भारतीय साहित्यकारों को सबसे पहली आपत्ति 'प्रवासी' शब्द से ही रही है। वे अपने आप को, विदेशों में लंबे समय तक रहने के बावजूद, पूरी तरह से भारतीय ही मानते हैं और अपने साहित्य को 'भारतीय'। वे तथाकथित मुख्य धारा के साहित्य में शामिल रहना चाहते हैं, समालोचना के लिये वहीं आधार खोजते हैं तथा उनकी शिकायत रही है कि उन्हें मुख्य धारा में शामिल नहीं किया जा रहा। 'प्रवासी' कहकर न सिर्फ उनकी अलग श्रेणी बना दी गई है बल्कि उस श्रेणी को न जाने किस आधार पर, मुख्य धारा के लेखकों से नीचा भी मान लिया गया है। लेकिन यह बात अब पुरानी पड़ चुकी 'विश्वरंग' के इस अंक में शामिल कहानीकारों नासिरा शर्मा, तेजेंद्र शर्मा, रामदेव धुरंधर, कृष्ण बिहारी, अर्चना पेन्यूली, जकिया जुबैरी, दिव्या माथुर, रोहित कुमार हैप्पी तथा शैल अग्रवाल की कहानियाँ इस बात का प्रमाण हैं। वे अपने कथ्य में अलग हो सकती हैं लेकिन रूप में, कहानी कला की दृष्टि से किसी भी तरह अन्य भारतीय कहानियों से कमतर नहीं। नासिरा शर्मा तो बहुमान्य साहित्य अकादमी पुरस्कार से विभूषित कथाकार है ही, अन्य सभी कथाकार भी अपनी तरह के श्रेष्ठ रचनाकार हैं।

प्रवासी साहित्य को अक्सर 'नॉस्तेल्जिया' का साहित्य भी कह दिया जाता है। अगर आप पहली पीढ़ी के प्रवासियों को देखे तो जिन परिस्थितियों में उनका विदेश गमन हुआ उसमें देश की गहरी याद, हमारे धर्म ग्रंथ और परंपरा से दूर होने की गहरी टीस और उससे जुड़े रहने की आकांक्षा, देश वापसी की उम्मीद, उनके मन में और उनकी रचनाओं में आना स्वाभाविक था। गिरिराज किशोर ने अपने बहुपठित उपन्यास 'पहला गिरमिटिया' में इस टीस को पूरी करुणा के साथ उभारा है। लेकिन स्वतंत्रता के बाद, साठ और सत्तर के दशकों में और हाल ही के वर्षों में प्रवासित भारतीयों का दृष्टिकोण पूरी तरह बदला है अब वे अपने-अपने देश में, उनके नागरिकों के साथ बराबरी से व्यवहार कर पाते हैं। ज्ञान-विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में कई बार उन पर भारी पड़ते हैं और भारत की सुमधुर यादें भले ही उनके मन में हों, पर उनके प्रवास का देश भी अब उनकी रचनाओं में, परिवेश में और कथ्य में संपूर्णता

के साथ झलक जाता है। कनाडियन रचनाकारों के संग्रह की भूमिका में शैलजा सक्सेना कहती हैं कि 'नॉस्तेल्जिया' भले ही प्रथम पीढ़ी के साहित्यकारों की मूल प्रवृत्ति रहा हो पर आज की पीढ़ी अपने परिवेश से पूरी तरह परिचित है और उसकी स्थानिकता, उसके संघर्ष, उसके मूल्य जो एक तरह से वैश्विक मूल्य ही है- उनकी रचनाओं में जीवंतता से उपस्थित होते हैं।

प्रवासी साहित्य के संदर्भ में तीसरी बात उसे पर्याप्त समालोचना का न मिलना है। कमल किशोर गोयनका ने तीन खंड़ों में उसका संग्रह तो किया है, और चयन ही रचनाकारों की विशिष्टता भी सिद्ध करता है, पर उसमें आलोचनात्मक आलेख अनुपस्थित हैं। केंद्रीय हिंदी संस्थान की पत्रिका 'प्रवासो जगत' या भोपाल से निकलने वाली 'गर्भनाल' में रचनाएँ तो प्रकाशित होती हैं पर आलोचना लगभग न के बराबर है। जरूरत इस बात की है कि देशों या क्षेत्रीय आधारों पर प्रवासी संग्रह प्रकाशित हों और भारत के प्रख्यात आलोचकों द्वारा उन पर आलोचनात्मक आलेख लिखवाये जायें। प्रवासी लेखक भी भारतीय साहित्य की समालोचना कर सकते हैं। इससे जो पर्यावरण बनेगा वह शायद प्रवासी साहित्य को देखने की एक दृष्टि प्रदान करे।

मुझे लगता है कि प्रवासी साहित्य को समझने का एक अनिवार्य कदम प्रवासन की ऐतिहासिक परिस्थितियों को समझना है. इस दृष्टि से महात्मा गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में हिंदुस्तानियों के आगमन पर एक दिलचस्प आलेख लिखा है. वे कहते हैं,

'इकरारनामें में (भारत से दक्षिण अफ्रीका भेजे गये मजदूरों के इकरारनामे में) इस बात का पूरा खयाल तो नहीं ही रखा गया कि इस प्रकार सुदूर देश में जाने वाले अनपढ़ मजदूरों पर यदि कोई दुख या संकट आ पड़े तो उससे वे कैसे मुक्ति पा सकेंगे। और इन प्रश्नों पर तो बिल्कुल नहीं सोचा गया कि हिंदुस्तानी मजदूरों के धर्म का वहाँ क्या होगा अथवा वे अपनी नीति की रक्षा वहाँ कैसे करेंगे? हिंदुस्तान के अंग्रेज अधिकारियों ने यह भी नहीं सोचा कि कानून से भले ही गुलामी की प्रथा का अंत आ गया हो, परंतु मालिकों के हृदय से दूसरों को गुलाम बनाने का लोभ तो दूर नहीं हुआ है... अधिकारियों को यह बात समझनी चाहिए थी, परंतु वे समझे नहीं, कि ये मजदूर सुदूर देश में जाकर एक निश्चित अवधि के लिए गुलाम बन जाएँगे। सर विलियम विल्सन हंटर ने, जिन्होंने इन मजदूरों की स्थिति का गहरा अध्ययन किया था, इस स्थिति की तुलना करते हुए दो शब्दों का या शब्द समूह का प्रयोग किया था। नेटाल के ही हिंदुस्तानी मजदूरों के बारे में एक बार उन्होंने लिखा था कि वे अर्द्ध-गुलामी की स्थिति में रहते हैं, दूसरी बार अपने एक पत्र में उन्होंने लिखा था कि नेटाल के हिंदुस्तानी मजदूरों की स्थिति लगभग गुलामी की हद तक पहुँच गई है। और नेटाल के एक कमीशन के समक्ष साक्षी देते हुए वहाँ के बड़े-से-बड़े यूरोपियन, श्री एस्कंल ने भी यही बात स्वीकार की थी...लेकिन जो जहाज इन मजदूरों को हिंदुस्तान से नेटाल ले गया, वही जहाज मजदूरों के साथ सत्याग्रह के महान वृक्ष का बीज भी नेटाल ले गया।'

इन मजदूरों के हालात पर गांधीजी की अगली टिप्पणी दुख पैदा करने वाली है, 'इन मजदूरों को नेटाल से संबंधित हिंदुस्तानी दलालों ने कैसे लुभाया, कैसे दलालों के भुलावे में आकर ये लोग नेटाल गए, नेटाल पहुँचने पर इनकी आँख कैसे खुली, आँख खुलने पर भी ये लोग नेटाल में क्यों रहे, क्यों दूसरे हिंदुस्तानी भी इनके बाद वहाँ गए, वहाँ जाकर इन्होंने धर्म और नीति के समस्त, बंधन कैसे तोड़ डाले अथवा ये बंधन कैसे टूट गए, कैसे इन अभागे मजदूरों में विवाहित स्त्री और वेश्या के बीच का भेद बिल्कुल मिट गया, यह सारी कहानी इस छोटी सी पुस्तक में लिखी ही नहीं जा सकती।'

पर हिंदुस्तानी मजदूरों तथा व्यवसायियों ने नेटाल तथा अन्य स्थानों में अपनी जड़ें जमाई और स्थापित सत्ता के लिये चुनौती बन गये, गांधीजी बताते हैं,

'जब नेटाल में गिरमिटियों के जाने के समाचार मॉरीशस में फैले तब ऐसे मजदूरों से संबंध रखने वाले हिंदुस्तानी व्यापारी नेटाल जाने को ललचाए। मॉरीशस नेटाल और हिंदुस्तान के बीच में पड़ता है। मॉरीशस द्वीप में हजारों हिंदुस्तानी व्यापारी और मजदूर रहते हैं, उनमें से एक व्यापारी स्व. अबूबकर अहमद ने नेटाल में अपनी पेढ़ी खोलने का विचार किया। उस समय नेटाल के अंग्रेजों को भी इसकी कल्पना नहीं थी कि हिंदुस्तानी व्यापारी क्या-क्या करने की शक्ति रखते हैं, न उन्हें इस बात की परवाह ही थी। अंग्रेजों ने गिरमिटियों की मदद से गन्ना, चाय, कॉफी वगैरा की बड़ा मुनाफा देने वाली फसलें पैदा कीं, गन्ना से शक्कर तैयार की और इतने कम समय में वे थोड़ी-थोड़ी मात्रा में ये तीनों चीजें दक्षिण अफ्रीका को मुहैया कराने लगे। उन्होंने इतना धन कमाया कि अपने लिए बड़े-बड़े महल खड़े कर लिए और जंगल में मंगल कर दिया। ऐसे समय सेठ अबूबकर जैसा सरल, प्रामाणिक और चतुर व्यापारी उनके बीच आकर बसा, यह उन्हें अखरा नहीं। इतना ही नहीं, परंतु एक अंग्रेज भी साझेदार के नाते उनके साथ पेढ़ी में जुड़ गया! अबूबकर सेठ ने व्यापार चलाया, जमीन खरीदी और उनकी बहुत बड़ी कमाई की अफवाहें हिंदुस्तान में पोरबंदर तथा उसके आस-पास के

गाँवों में फैलीं। इसके फलस्वरूप दूसरे मेमन नेटाल पहुँचे। उनके पीछे-पीछे सूरत के बोहरे भी वहाँ जा पहुँचे। और इन व्यापारियों को मुनीमों की जरूरत तो थी ही इसलिए गुजरात और काठियावाढ़ (सौराष्ट्र) के हिंदू मुनीम भी नेटाल पहुँच गए।' यही वह पृष्ठभूमि था जिसमें गोरों से बराबरी हासिल करने का आंदोलन अफ्रीका में फैला।

अमित अहलावत द्वारा लिखी 'फ़ीजी गिरमिट गाथा' भी लगभग इसी तरह की है. वे बताते हैं,

'फ़ीजी पहुँचे अधिकतम गिरमिटिया बिहार, उत्तरप्रदेश एवं दक्षिण भारत से थे। इन गिरमिटियों को कुली कहा जाता था। और इनके निवास स्थान को कुली लाइन, जिसमें कुलियों को रहने के लिये 12x8 फीट की एक छोटी सी कोठरी दी जाती थी। हवा और प्रकाश के नाम पर कोठरी की छत से कुछ नीचे एक छोटा सा झरोखा बना होता था। एक कोठरी में 3 लोगों को रहना पड़ता था, उसी में रहना सोना खाना पकाना और अगर कोई बकरी या कुत्ता पाला होता तो उसे भी धूप बारिश से बचाने के लिये ये कोठरी ही बस एक सहारा थी। आवास की स्थिति, सीमित स्वास्थ्य सुविधायें, स्वच्छता की कमी, कम भोजन, लंबे घंटों तक कार्य और अंग्रेज ओवरसियरों द्वारा कठोर व्यवहार के कारण इन गिरमिटियों की मृत्यु की संख्या भी बहुत अधिक होती थी। वो निस्सहाय गिरमिटिया सुबह 3 बजे उठकर खाना बनाकर 4:30 से 5 बजे के बीच घर से निकल जाते, दिन भर गन्ना के खेतों में कठिन परिश्रम करते, कष्ट सहते अनेक उत्पीड़न सहते और उसके बदले में उन्हें मिलता बहुत ही कम वेतन, गालियाँ, कोड़ों की मार और फटकार। उन अभागे गिरमिटियों की परिस्थितियाँ कठिन ही नहीं बल्कि अत्यंत अपमानजनक भी थीं परन्तु उन भारतीय श्रमिकों ने श्रम से कभी मुँह नहीं चुराया और अपने गाढ़े पसीने से फ़ीजी की धरती को निरन्तर सींचते रहे।

इस तरह 37 वर्षों (1879 से 1916) तक भारत से 42 जहाजों द्वारा 87 यात्राओं में 60965 श्रमिकों को फ़ीजी लाया गया जिसमें से कुछ की बीमारी के कारण अकाल मृत्यु हो गयी, कुछ ने भय से या उत्पीड़न के कारण आत्महत्या कर ली। कुछ शिशुओं ने भी जन्म लिया और इस प्रकार 60553 गिरमिटिया श्रमिक फ़ीजी पहुँचे। गिरमिट मुक्ति के बाद भी वो श्रमिक इतनी धनराशि नहीं जुटा पाते थे कि जहाज से वापस जाने का किराया चुका सकें इसलिये वो वहीं किसी दूसरे व्यापारी के अधीन हो जाते और जैसे-तैसे अपना जीवन बसर करने लगते।

लियोनिदास जहाज से आये गिरमिटिया अपने खान-पान, कपड़े-लत्ते, अन्य वस्तुओं के साथ-साथ 4 रामचरितमानस; 2 हस्तलिखित सूर्यनारायण कथा, 1 सुख सागर, 1 आल्हा खंड, 16 ढोलकें व अन्य कुछ वाद्ययंत्र भी अपने साथ धरोहर के रूप में लाये थे। सभी श्रमिकों पर रामचरितमानस का गहन प्रभाव था, क्योंकि वो अपने इस गिरमिटिया जीवन को कहीं ना कहीं श्री रामचंद्र जी के वनवास से तुलना करते थे। दिन भर अंग्रेजों के कोड़ों और गालियों की बौछारों में कठिन श्रम करते और रात में अपनी-अपनी कुली लेन के आसपास इकट्ठे होकर रामायण की चौपाइयाँ, भजन, कीर्तन, आल्हा खंड इत्यादि के सहारे दिन भर की थकान उतारते और अगले दिन के लिये अपने आप को तैयार कर लेते, इन सब भजन कीर्तन से प्राप्त आध्यात्मिक एवं ओजपूर्ण प्रेरणा, उस संकट के समय में श्रमिकों में अटूट धैर्य, विश्वास एवं संघर्ष करते रहने की शक्ति का संचार करती थी। जब साथ में बैठते तो अपने और अपने परिवार के भविष्य, बच्चों की शिक्षा, गिरमिट मुक्ति के बाद व्यवसाय इत्यादि के बारे में विचार विमर्श करते थे।

धीरे-धीरे हिंदी भाषा, रामायण, रामलीला, भजन, कीर्तन इत्यादि के सहारे अलग-अलग जाति व अलग-अलग प्रान्त से आये सभी श्रमिकों में संपर्क और एकजुटता बनने लगी और स्थानीय समाज एवं अंग्रेजों के प्रति उनके मन का भय भी टूटने लगा। गिरमिट मुक्ति के बाद, पंडित तोताराम सनाढ्य ने 1914 में "फ़ीजी में मेरे 21 वर्ष" नाम की एक पुस्तक लिखकर फ़ीजी में गिरमिटियों की परिस्थितियों को दर्शाया और फ़ीजी में श्रमिकों के जीवन सुधार की विनती महात्मा गाँधी तक पहुँचाई।

निराशाओं की चरम स्थितियों में अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ने वाले उन भोले भाले श्रमिकों ने कभी सोचा भी ना होगा कि खेतों में गन्ना रोपते - रोपते वो श्रमिक, भारत से बारह हजार किलोमीटर दूर भारतीय भाषा और संस्कृति का ऐसा बीज भी रोपण कर देंगे, जिसकी फसल फ़ीजी सदैव काटता रहेगा। आज फ़ीजी की उन्नति, समृद्धि एवं खुशहाली उन गिरमिटियों के श्रम एवं संघर्ष का ही परिणाम है।

प्रवासी भारतीय साहित्य के परिप्रेक्ष्य को समझने के लिये डॉ. पुष्पिता अवस्थी का एक अन्य आलेख अत्यंत उपयोगी है। वे कहती हैं,

'विश्व के प्रवासी साहित्य का ताना-बाना मूलतः विस्थापन और निर्वासन की दारुण यातना से निर्मित हुआ है। जिसमें इस निष्करुण त्रासदी के दौर में देश, जाति, धर्म और भाषा के बंधन शिथिल हुए हैं। जीवन और जीविका के दबाव में मनुष्य आश्चर्यजनक रूप से वैश्विक हुआ है, जिसमें जिजीविषा, प्रेम, स्वाधीनता, सुखोपभोग और स्त्री की अहम् भूमिका है। इस दृष्टि से विश्व की विभिन्न भाषाओं के साहित्य के अन्तरंग से गुजरे तो निर्वासन और प्रवासन से संघर्षशील कई पीढ़ियों के संवेदनशील साहित्य से साक्षात्कार हो सकेगा जिससे प्रवासी संघर्ष की वैश्विक विसंगतियों को सूत्रबद्ध किया जा सकेगा।

वर्तमान समय में प्रवासी भारतीय विश्वव्यापी है। भारतीयों ने लगभग हर देश में अपने प्रवास से जड़ें भी जमा ली हैं। पीढ़ियों के प्रवास से वे उस देश की अस्मिता का हिस्सा हो गये हैं। बहुत

देशों में उनका प्रभुत्व सा स्थापित होने लगा है। अमेरिका, सूरीनाम, नीदरलैंड्स, कनाडा, मैक्सिको, इंग्लैंड, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड देश इसके उदाहरण हैं, जहाँ उन्होंने अपनी कर्मशीलता से अपना अस्तित्व स्थापित किया हुआ है। प्रवासी भारतीय डायस्पोरा दो रूप में दर्शित है। भारतीय मूल के भारतवंशी या हिन्दुस्तानी लोग (पीपुल ऑफ इंडियन ओरिजिन) प्रवासी भारतीय (नॉन रेसीडेन्ट या ओवरसीज इंडियन्स)। विश्व के देशों में दास प्रथा और उपनिवेशी संस्कृति ने प्रवासन की दिशा में वैश्विक स्तर पर नेतृत्व किया। कोलोनाइजिंग ने हिन्दुस्तानियों को विश्व के देश-द्वीपों में उलीचकर 'व्हाइट गोल्ड' के पैलेस खड़े किये। विश्व के कई देश आज भी धन के प्रमाण औपनिवेशिक सत्ता समृद्धि से पाते हैं। आज भी ब्रिटेन 'ग्रेट ब्रिटेन' और डच 'रॉयल डच' और सोने की चिड़िया वाला भारत देश गरीब भूखा बेबस किसान भर बचा है। संस्कृतिशाली देश- कोलोनाइजिंग के अहंकारी मुंह से कुली और कुत्ता के रूप में दुनिया के बीच प्रचारित किये गये, जबकि जहाँ-जहाँ भारतीयों ने प्रवास किया वहाँ सभ्यता और संस्कृति का सूरज दीपित किया था।

भारत से निकले प्रवासी भारतीयों ने फारस से लेकर यूरोप तक के देशों में प्रवास करना प्रारंभ किया था। ऐसा विश्वास है कि भारत से जाकर भारतीयों ने सर्वप्रथम मिस्र देश में शरण ली। ब्रंग्सवे-जिन्हें मिस्र देश के सम्बन्ध में प्रामाणिक ज्ञान था, ने लिखा है- उस समय जब भारतीयों का इतिहास उपलब्ध न था, भारतीय श्वेज के मुहाने से विदेशों में गये, नील नदी के तटवर्ती देशों में भारतीयों ने प्रवास किया। रामायण में जावा द्वीप की विशेषता का वर्णन महर्षि वाल्मीकि ने किया। लंका या सुमात्रा की भाषाएँ भी भारतीय थी। सुमात्रा का श्री भोज नामक प्रान्त संस्कृत और पाली भाषा के साहित्य के लिए प्रसिद्ध था। भारत के पूर्वीय किनारे से बहुत से भारतीय कम्बोडिया पहुँचे और भारतीयता का प्रचार किया. दसवीं शताब्दी से यहाँ बौद्ध-धर्म का प्रचार होने लगा। बाली द्वीप में रहने वाले भारतीय शैव धर्म के अनुयायी थे। दक्षिण अफ्रीका 1860 ई. में भारतीय पहुँचे, मॉरीशस, फ़ीजी, सूरीनाम, गयाना ट्रिनीडाड और अमेरिका आदि में शताब्दियों से भारतवंशी बहुत देशों के अंतर्गत अपनी पहचान बनाये हुए हैं। कर्नल टॉड के कथन की चर्चा बनारस दास चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक 'प्रवासी भारतवासी' में कही है- 'कितने ही मुसलमान बादशाहों ने धर्मान्धता और अनुदारता के कारण हमारे यहाँ के अमूल्य ग्रन्थों को नष्ट करवा डाला था'। संभवतया इसमें प्रवासी भारतीयों का भी इतिहास था। मिस्र देश के एलेग्जैण्ड्रिया का पुस्तकालय जला देने के कारण मानव सभ्यता की उन्नति एक सहस्र साल पीछे चली गई है मुसलमान शासकों ने बोध गया और नालन्दा के पुस्तकालयों में संचित ज्ञान को नष्ट कर दिया था। ऐसे में उल्लिखित प्रवासी भारतीयों का इतिहास साहित्य प्रामाणिक रूप से सिलसिलेवार अनुपलब्ध है। लेकिन उस काल खण्ड के वैश्विक प्रवासी भारतीयों का साहित्य श्रृंखला की दस्तावेजी इतिहास के रूप में अपनी महती भूमिका निभायेगा।

संसार को अपनी कर्मशीलता से आलोकित कर उन्हें इन तीनों तरह के प्रवासी भारतीयों में एक तत्व की गुण सूत्रीय समानता है। हिन्दुस्तानी विरासत के ऐतिहासिक प्रमाण जेनेटिक कोड की समानता जो मिस्र के प्रवासी भारतीय - भारतवंशी और हिन्दुस्तानियों तक में एक समान रूप से विद्यमान है और सदैव रहेगा क्योंकि यह उसकी मातृभूमि की माटी का जेनेटिक कोड है जो विश्व संस्कृतियों और समाज से सहभाग से बावजूद अपनी अलग अस्मिता बनाये हुए है।

भूमंडलीकरण के दौर में जब संचार क्रान्ति के कारण दुनिया एक गाँव के रूप में बदल चुकी है। इसलिए डायस्पोरा साहित्य के वैशिष्ट्य का वैदुष्यपूर्ण तर्क संगत विश्लेषण आवश्यक है, कोई भी समाज अपने स्वत्व में ही अपनी नियति को पहचान पाता है। ब्रिटिश आधिपत्य और उससे उत्पन्न औपनिवेशिक मानसिकता ने भारत को उसकी आत्मा से विलग करने के प्रभावी प्रयास किये हैं, यह भारतीय चित्त की अन्तर्निहित ऊर्जा ही है जिसके कारण वैश्विक प्रवासी साहित्य की अपनी अस्मिता बरकरार है जो भावी साहित्य की सिद्धि के लिए नींव की भूमिका अदा करेगी। एशियाई प्रेरित दक्षिण एशियाई देशों में प्रवासी भारतीयों में संघर्ष को लेकर साहित्य लिखा जा रहा है। वैश्विक स्तर पर प्रवासी भारतीय साहित्य की खोज पूरी नहीं हुई है, उस खोज के शोध के स्रोत होना जितना अनिवार्य है उतना ही उनके निकष का निर्धारण भी आवश्यक है जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जाति, धर्म, भाषा, संस्कृति के प्रवासियों के परिप्रेक्ष्य में उनके सन्दर्भों और प्रसंगों के साथ सन्निहित और समायोजित रहें।

'प्रवासी' शब्द के लिए अंग्रेजी में डायस्पोरा शब्द का भी प्रयोग होता है इस शब्द की उत्पत्ति यूनानी शब्द से हुई हैं। जिसका अर्थ फैलाना या बीज छींटना है। मातृभूमि और संस्कृति से सघन लगाव प्रायः आदर्शवादी सामूहिक चेतना, सामूहिक जाति आस्मिता को प्रकट करने के लिए किया जाता है। प्रवास का प्रभाव वहाँ रचे जा रहे साहित्य पर भी पड़ता है क्योंकि संदर्भ बदल जाते हैं. सामाजिक संघर्ष के परिवर्तित प्रभाव से संवेदनाएँ भी प्रभावित होती हैं। प्रसिद्ध विचारक प्रो. नामवर सिंह जी बहुत पहले ही 'नयी कहानी' में कह चुके हैं- 'संवेदनाओं और अनुभूतियों का चित्रण हवा में नहीं होता है, संवेदनाएँ किसी मूर्त मानव व्यक्ति का आधार लेकर खड़ी होती हैं और एक निश्चित सन्दर्भ में पैदा होती हैं। यह संदर्भ चाहे सामाजिक हो, चाहे प्राकृतिक, सामाजिक संघर्ष के सिलसिले में ही व्यक्ति की संवेदनाएँ छिटकती हैं। व्यक्ति के सामाजिक संघर्ष का रूप बदलता है. तो संवेदनाओं के ढाँचे में भी परिवर्तन आता है। नई संवेदनाएँ व्यक्ति और उसके समाज के नवीन संघर्ष की सूचक होती हैं। इसलिए प्रवासी

साहित्य होते हुए भी उसकी अपनी-अलग संवेदनशील पहचान बनती है और वह अन्य साहित्य से भिन्न प्रकृति और चरित्र का होता है।'

डॉ. पुष्पिता अवस्थी द्वारा प्रस्तावित यह विषद् विवेचना प्रवासी भारतीय साहित्य के मूल्यांकन का आधार भी बन सकती है।

भारतीय साहित्य के विस्तार के साथ-साथ हिंदी भाषा के पठन पाठन में भी नवाचार पूरे विश्व में जारी हैं। नीदरलैंड्स में हिंदी के प्रसार में भारतीय संस्कृति के उपयोग के बारे में मोहन कांत गौतम ने रोचक टिप्पणी की है, 'सूरीनाम की स्वतंत्रता के बाद नीदरलैंड्स में एक-डेढ़ लाख भारतवासी (हिन्दुस्तानी) आजकल हैं। उनकी स्वयं चलित संस्थाएँ हैं जिनमें महात्मा गाँधी जी की 'हिंदी राष्ट्र भाषा प्रचार समिति', वर्धा के पाठ्यक्रमों को पढ़ाया जाता है। अभी तक कोई 24000 विद्यार्थियों को हिंदी की सनदें मिल चुकी हैं। मैंने ही संस्थाओं को बनाने में बहुत सहायता दी है। अब पढ़ना-पढ़ाना नागरी ही में होता है। यहाँ विश्वविद्यालयों में बहुत से विद्यार्थियों ने भारतीय साहित्यकारों पर शोध किया है मेरे ही मित्र श्री वान हेबोकान और श्री फ्रांसिस मास्त्रिरत ने हिंदी का डच टीवी और रेडियो से प्रचार-प्रसार किया। जर्मनों की तरह मैं भी हिंदी व्याकरण के कारक, प्रत्यय और उपसर्गों पर काम कर रहा हूँ। हिंदी यहाँ उन्नति कर रही है। सरनामी हिन्दुस्तानी इसे 'अपना धर्म' और 'अपनी भाषा' अपने दादा-दादी, नाना-नानी की मानते हैं।'

इसी तरह 'शिकागो से हिंदी के नाम पत्र' में अशोक सिंह लिखते हैं, 'शिकागो के सभी मंदिर धार्मिक पूजा और आस्था के प्रतीक तो है ही साथ ही साथ यह सांस्कृतिक केंद्र भी है इसलिए हमने हिंदी की प्राथमिक शिक्षा मंदिरों से ही प्रारम्भ की बच्चों को गीतों, कहानियों, चित्रकथाओं और विभिन्न रोचक गतिविधियों के माध्यम से उनके संग सहज होने का मौका दिया और उनको हिंदी लिखने, बोलने और पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया। छात्रों, अभिभावकों और संस्थाओं को बताया गया कि तुम केवल किसी पाठ्यक्रम या परीक्षा का विषय नहीं अपितु हमारे विचारों, मूल्यों और संस्कृति की संवाहक हो तुम, हमारी आत्मा हो और हमारे अस्तित्व की अमिट पहचान हो और यदि तुम हमारे जीवन से लुप्त जाओगी तो एक पूरी सांस्कृतिक व बौद्धिक विरासत लुप्त हो जाएगी। बस फिर क्या था धीरे-धीरे कारवां बनने लगा और लोग हिंदी से जुड़ने लगे, मंदिर से पुस्तकालय और फिर पुस्तकालयों से विद्यालयों में तुम्हरी सुन्दर छवि दिखने लगी।'

अनुवाद के महत्व को स्थापित करते हुए मास्को से इंद्रजीत सिंह डॉ. मदन लाल 'मधु' का परिचय देते हैं जो हम सबके लिये नया साबित होगा, आलोचना के क्षेत्र में जो स्थान नामवर सिंह का है, सरोद वादन में जो मुकाम अमजद अली खान का है, फिल्म निर्देशन में जो प्रतिष्ठा सत्यजीत राय की है, रूसी साहित्य को अनुवाद के माध्यम से हिंदी पाठकों तक पहुँचाने में वही मान-सम्मान डॉक्टर मदनलाल 'मधु' का है। जिस प्रकार कहानी लिखते-लिखते प्रेमचंद खुद हिंदी कहानी का पर्याय बन गए उसी तरह सोवियत साहित्य विशेष रूप से रूसी साहित्य को अनुवाद के जरिए हिंदी पाठकों तक पहुँचाकर मदनलाल 'मधु' स्वयं हिंदी में रूसी साहित्य का पर्याय बन गए. डॉ. मधु ने रूसी साहित्य की गंगा को हिंदी पट्टी के पाठकों तक पहुँचाकर भगीरथ जैसा काम किया है। भीष्म साहनी, मुनीश सक्सेना, नरोत्तम नागर, वरयाम सिंह और अनिल जनविजय जैसे अनुवादकों ने भी रूसी साहित्य को हिंदी पाठकों तक पहुँचाकर जनहित का काम किया है लेकिन इन सभी के अनुवाद कार्य को संयुक्त रूप से मिलाकर भी देखा जाए तो मदनलाल 'मधु' का अनुवाद कार्य विविधता और व्यापकता की दृष्टि से बहुत आगे है।'

प्रवासी कथानक और दृश्य चित्रों पर आधारित बॉलीवुड फिल्मों के बारे में हरिमृदुल ने एक सुंदर आलेख लिखा है, 'अमेरिका, ब्रिटेन, कनाडा, कुवैत, ओमान, कतर, सउदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात, फ्रांस, ताइवान, जर्मनी, फ़ीजी, मॉरीशस आदि देशों में हिंदी फिल्मों का कारोबार इसलिए बढ़ा कि इस बीच प्रवासी कथानक वाली भव्य फिल्में बनीं। इन फिल्मों में भारतीय त्यौहारों का उत्सव था, संयुक्त परिवारों की धमाचौकड़ी थी और पारंपरिक मूल्यों का बखान था। खूब संपत्ति अर्जित कर चुके विदेश में रह रहे भारतीय अपनी जड़ों से इसी तरह जुड़ सकते थे। अब उनका विदेशी संस्कृति से कोई द्वंद्व नहीं था। एक नई मिश्रित संस्कृति दिखने लगी थी परिवारों में, जिनमें खान-पान, बोली-भाषा, पर्व-त्यौहार, रीति-रिवाज का एक चकित करने वाला कॉकटेल था। विदेशों में जन्मी भारतीय मूल को नई पीढ़ी में सबको समेटने का भाव था, तिरस्कार नहीं था। इसी नई पीढ़ी के बीच मीरा नायर, दीपा मेहता और गुरिंदर चड्ढा आदि का सिनेमा आया। इन फिल्मकारों ने 'मान वेटिंग', 'बेंड इट लाइक बेकहम', 'ब्राइड एंड प्रिज्युडिस', 'द नेमसेक', 'बॉलीवुड हॉलीवुड', 'वाटर', 'मिडनाइट्स चिल्ड्रन' जैसी कितनी ही फिल्में दीं। इन फिल्मों ने प्रवासी भारतीयों ही नहीं, दुनियाभर के सिनेमा प्रेमियों के बीच प्रशंसा पाई। यह प्रवासी कथानक वाली फिल्मों में फिर एक नया मोड़ था। यह महज अतीत को याद करता भावुक कर देने वाला सिनेमा नहीं था, बल्कि यह प्रवासियों के बीच से निकला जबर्दस्त कंटेंट था। लेकिन गौर करने वाली बात यह है कि इन्हें उतना बड़ा दर्शक वर्ग नहीं मिला, जितने की उम्मीद की जा रही थी। न वैसी लोकप्रियता ही मिली कि इन्हें देखने के लिए लोग क्रेजी हो जाएँ। इसकी वजह यह थी कि इन फिल्मों में बॉलीवुड फिल्मों की तरह न उत्सवधर्मिता थी और न ही मेलोड्रामा।'

22/E-7, अरेरा कालोनी, SBI, भोपाल-462016, 9826256733, e-mail: choubey@aisect.org

गिरमिटिया साहित्य में भारतबोध

डॉ. अंशु यादव

"भारतीय जीवन मूल्यों को संरक्षित करने में एकरूपता, समरूपता की मान्यता के आधार पर निर्मित उनकी पहचान उन्हें अन्यों से अलग करती है, विशिष्टता प्रदान करती है। भारत निर्मित विशिष्टता ही उनकी सांस्कृतिक अस्मिता का आधार है। भारत में न होकर भी भारत को अपने जीवन में जी रहे हैं। हिंदी के प्रवासी लेखन की परंपरा में अभिमन्यु अनत सबसे महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं। उनके उपन्यास 'लाल पसीना' से हिंदी साहित्य को वैश्विकता प्राप्त हुई है। वह निश्चित रूप से प्रवासी साहित्य के लिए मील का पत्थर है। अभिमन्यु अनत ने मॉरीशस की भौगोलिक लघुता को लांघकर सांस्कृतिक रूप से मॉरीशस की हिंदी सीमाओं को तोड़ते हुए विश्व पटल पर प्रतिमान स्थापित कर दिया। उपन्यास के क्षेत्र में मॉरीशस में अभिमन्यु अनत अकेले ऐसे लेखक हैं जिन्होंने इतनी बड़ी संख्या में उपन्यासों की रचना की है। वे उपन्यास सम्राट हैं और मॉरीशस के प्रेमचंद हैं।"

हिंदी साहित्य और भाषा का विस्तार समस्त भौगोलिक सीमाओं का अतिक्रमण कर विश्व में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर चुका है। प्रवासी साहित्य की प्रसिद्धि इस तथ्य को पुष्ट करती है। अपने देश, अपनी परंपरा और अपनी संस्कृति को वैश्विकता प्रदान करने का श्रेय प्रवासी साहित्य को प्राप्त है। आज से वर्षों पूर्व औपनिवेशिक काल में प्रवासी लेखन की जिस परंपरा का आरंभ हुआ वह आज नई ऊँचाइयों की ओर अग्रसर है। अंग्रेज़ों द्वारा भारतीय मज़दूरों के शोषण ने गिरमिटिया साहित्य के जन्म के लिए पृष्ठभूमि निर्मित की थी, क्योंकि जिन भारतीय मज़दूरों को उन्होंने दूसरे देशों में भेजा था वे अत्यंत अमानवीय और यातनादायक परिस्थितियों में जी रहे थे। गिरमिटिया साहित्य के रूप में विख्यात उन्हीं भारतवंशियों का साहित्य भारतीय सांस्कृतिक चेतना की वैश्विक अभिव्यक्ति है। "प्रवासी भारतवंशी साहित्य के सृजन स्रोत के रूप में एक ओर कबीर और तुलसी हैं तो दूसरी ओर उनकी अपनी लोक संस्कृति और लोक जीवन तथा लोक गीत हैं। इन दोनों तथ्यों को भारतवंशियों ने अपने जीवन में साधा और उनकी साधना सिद्ध हुई। यूरोप और पाश्चात्य देशों में भारतवंशी बहुल देशों के अनेक साहित्यकारों ने विश्व प्रसिद्धि हासिल की है। जिसमें मॉरीशस के अभिमन्यु अनत, राष्ट्रकवि ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर', प्रहलाद रामशरण, इंद्रदेव भोला, सूरीनाम से जीत नारायण और श्रीनिवास तथा अन्य देशों के भी लेखकों और कवियों की लंबी सूची है जिन्होंने प्रवासी साहित्य के पार को विस्तृत किया है। प्रवासी भारतवंशियों के सिर्फ़ साहित्य संवेदना और विचार फ़लक ही आएगा। अपनी मातृभूमि या स्वदेश से विलग होने की स्थिति में रचे गए साहित्य की मन:स्थिती की बुनियाद स्वदेश में रह रहे रचनाकारों से भिन्न होती है जिसमें दूसरे देश की संस्कृति और देशजता से संघर्ष करने की करुण यात्रा का दर्द भी स्पंदित रहता है।"[1]

वास्तव में, प्रवासी साहित्य विशेषकर भारतवंशियों के लिए प्रयुक्त 'गिरमिटिया' शब्द अपने आप में विशिष्ट है। यह शब्द चुनकर निर्धारित नहीं किया गया है। इस शब्द के प्रचलन में आने के कारण भिन्न हैं। अंग्रेज़ों ने अमानवीयता की सभी सीमाओं को शर्मसार करते हुए भारतीयों का शोषण किया। उन्होंने भारतीय मज़दूरों को अनुबंध अर्थात् अंग्रेज़ी के एग्रीमेंट के अंतर्गत ग़ुलामी की शर्तों के आधार पर विदेश भेजा। यह सरकारी अनुबंध हुआ करता था जिसे बाद में अनेक प्रयासों के बाद समाप्त किया गया। धीरे-धीरे इसी शब्द को गरीब मज़दूरों ने उच्चारण की कठिनाईयों के चलते गिरमिट कहना शुरू कर दिया। कुछ समय पश्चात् यह गिरमिटिया के नाम से प्रचलित हो गया। वास्तव में, यह अंग्रेज़ी के एग्रीमेंट शब्द का अपभ्रंश रूप है और बाद में यह इसी में प्रचलित हो गया। कालांतर में भारतीय उच्चायुक्त लक्ष्मीमल सिंघवी ने गिरमिटिया मज़दूरों को 'भारतवंशी' नाम दिया और आज हम गिरमिटिया साहित्य को भारतवंशियों के साहित्य के नाम से भी जानते हैं।

अंग्रेज़ों ने छल-कपट और बलपूर्वक ऐसे असंख्य भारतीय मॉरीशस, फ़ीजी,सूरीनाम, त्रिनिडाड, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में मज़दूर बना कर भेजे थे। ये लोग विशेषकर पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार से ले जाए गए

थे, कुछ लोग दक्षिण भारत और महाराष्ट्र के भी थे। "उन्नीसवीं शताब्दी के चौथे दशक से भारतीयों का हज़ारों-लाखों की संख्या में गिरमिटिया मज़दूर के रूप में मॉरीशस, फ़ीजी, सूरीनाम, दक्षिण अफ़्रीका आदि देशों में, छल-प्रलोभन में फाँसकर ले जाना शुरू हुआ। मॉरीशस में सन् 1834 से 1910 के बीच 4,50,000 भारतीय प्रवासी पहुँचे और इसी प्रकार गुयना में 1838, त्रिनिदाद में 1845, दक्षिण अफ़्रीका में 1860, फ़ीजी में 1870 और सूरीनाम में 1873 भारतीय मज़दूरों का पहला जत्था पहुँचा।"[2] अत्यंत कठिन परिस्थितियों में जानवरों की तरह इन्हें लादकर, ठूँस कर गंतव्य तक पहुँचाया जाता था। वहाँ पहुँचकर भी अत्यंत यातनादायक जीवन उन्हें जीना पड़ता था। यात्रा के मध्य हुए किसी भी तरह के संक्रमण को फैलने से रोकने के लिए उन्हें 'क्वारंटाइन' करते थे। जिस घाट पर उन्हें 'क्वारंटाइन' किया जाता था उसे अप्रवासी घाट कहा जाता था जो आज विश्व धरोहर है।

'मर्यादा' पत्रिका के 'प्रवासी अंक' से इस शब्द का भारतीय समाज से साक्षात्कार हुआ।बनारसी दास चतुर्वेदी के संपादन में 'चाँद' पत्रिका का 'प्रवासी अंक' भी प्रकाशित हुआ। 'चाँद' पत्रिका के विशेषांक में मॉरीशस के यातनादायक यथार्थ पर आधारित प्रेमचंद की कहानी 'शुद्रा' भी प्रकाशित हुई। यह भारत के प्रवासियों पर लिखी गई पहली कहानी थी। बनारसीदास चतुर्वेदी ने पं तोताराम सनाढ्य जो इक्कीस वर्ष फ़िजी में रहकर लौटे थे उनके फ़िजी अनुभवों को कलमबद्ध किया और उनके संस्मरण 'मेरे इक्कीस वर्ष'नाम से पुस्तक में प्रकाशित हुए।

इनकी अपनी विशेषता यह थी कि ये स्वयं भोजपुरी भाषी थे लेकिन अपने साथ में अवधी भाषा के रामचरितमानस् और हनुमानचालीसा, आल्हा, गीता, सत्यनारायण कथा, महाभारत आदि धार्मिक ग्रंथों को लेकर गए थे और धीरे-धीरे उन्होंने वहाँ अपनी ही बोली-बानी,लोक संस्कृति, पर्व आदि का ऐसा परिवेश निर्मित किया कि वहाँ सब कुछ अपना-सा ही लगता है। "एक सदी से अधिक का समय बीत गया किंतु इस देश के साथ हमारे सांस्कृतिक संबंध कुछ ऐसे सुदृढ़ हैं कि सूरीनाम आकर ऐसा नहीं लगता है कि हम किसी अजनबी देश में आ गये हैं। वहाँ पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के गीत-संगीत, खान-पान, वेश-भूषा और पूरी जीवन शैली पर अवधी-भोजपुरी क्षेत्र का अमिट प्रभाव है।"[3]

ये ग्रंथ उनके लिए बड़ा संबल थे, यही कारण है कि कठिन परिस्थितियों और संकटों का सामना करते हुए भी अपनी भीतरी शक्ति और ऊर्जा का, अपनी भारतीयता का संरक्षण कर सके। आजीवन राम उनके तारणहार की भूमिका में रहे, उनके करुणानिधान बने रहे। हनुमान चालीसा का पाठ उनके समस्त संकटों को हर रहा था।अपने देश की परिस्थितियों से एकदम भिन्न परिवेश और भिन्न जीवन शैली को देखते हुए ये ग्रंथ उनके जीवन जीने का आधार बने।

लेकिन वे अपने साथ लेकर गए इन ग्रंथों को पढ़ नहीं सकते थे क्योंकि वे वाचिक परंपरा के लोग थे। इसलिए उन्होंने इन रचनाओं के वाचन की परंपरा वहाँ जाकर पुनः आरंभ की, वहाँ पर आपस में मिल बैठकर बतियाने की परिपाटी ने एक नई संस्कृति को जन्म दिया,एक दूसरे को आत्मीयता के धागे में पिरोती इन बैठकों ने उनके आपसी संबंधों को और अधिक प्रगाढ़ किया, उनके बीच संबंध तीव्र गति से विकसित हुए,उनके गायन में उनके जीवन की वेदना, त्रासदी, संघर्ष, दर्द, लोक-लाज सब अभिव्यक्त हो रहे थे। भारत और मॉरीशस इन दो भूखंडों पर सांस्कृतिक चेतना का अद्भुत संगम दिखाई दिया जिसने प्रमाणित कर दिया कि सांस्कृतिक चेतना को जीने के लिए पढ़ा- लिखा होना आवश्यक नहीं है।

भारतवंशियों का साहित्य इस बात का प्रमाण है कि विषम परिस्थितियों का सामना करने के बाद भी उन्होंने अपने भीतर भारत को जागृत रखा।उनके स्वदेश प्रेम का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि उन्हीं के प्रयासों से मॉरीशस में गंगा की पवित्रता और पावनता धारण किए हुए, 'गंगा तालाब' नाम से गंगा का जल संग्रहित किया गया है। 'गंगा तालाब' के निर्माण की प्रक्रिया भी अद्भुत और प्रेरणादायी है।भारतवंशियों ने भारत से आने वाले अपने हर एक परिचित से कहा कि वह अपने सामर्थ्य भर जितना भी गंगाजल ला सकता है एक लोटा, एक घड़ा, वह लाए। वहाँ उन्होंने एक गड्ढा निर्मित किया और भारत से प्राप्त सारा जल धीरे-धीरे वहाँ संग्रहित करते गए, जिसने बाद में 'गंगा तालाब' का रूप धारण किया। यह जल गंगाजल के समान ही एकदम शुद्ध है। यह स्थान वहाँ के पवित्र स्थलों में से एक है जिसके चारों ओर मंदिरों का, शिव और दुर्गा की विशाल प्रतिमाओं का निर्माण किया गया है। यह स्थल धार्मिक नगरी के रूप में विकसित हो चुका है। महाशिवरात्रि वहाँ का राष्ट्रीय पर्व है और इस दिन श्रद्धालु गंगा तालाब तक पैदल यात्रा करते हैं। यह स्थान मॉरीशस में हिंदू धर्म और आस्था के प्रतीक के रूप में विकसित होकर सभी धर्मों, संप्रदायों और वर्ण के लोगों के लिए एक पवित्र भूमि बन चुका है। यह नॉस्टेल्जिया नहीं था अपितु अपने देश, अपनी संस्कृति से उनके अपरिमित प्रेम का ही परिचायक था।वहाँ आज भी भारतीय परंपरा और रीति-रिवाज़ों के अनुसार ही शादी-ब्याह किये जाते हैं। तुलसी चौरा की स्थापना भारतीय संस्कृति से उनके अभिन्न जुड़ाव को प्रकट करता है। भारतवंशियों ने हज़ारों मील की दूरी तय करने के बाद भी, विभिन्न संकटों का सामना करते हुए भी भारत को अपनी चेतना से अदृश्य नहीं होने दिया अपितु भारतीय भाषा, संस्कृति, सोच-विचार, जागृति, पर्व-त्योहारों के रूप में, छठ और शिवरात्रि के रूप में समस्त भारत को अपनी चेतना में मूर्तिमान किया है,अपने भीतर जिया है। इसीलिए भारतवंशियों के लेखन में सुरक्षित संरक्षित भारत उनके द्वारा निर्मित एक लघु भारत के रूप में विकसित हुआ है। मॉरीशस की लगभग 12 लाख की आबादी में से लगभग 8 लाख की आबादी भारतवंशियों के भाव और अनुभूति को जी रही हैं।

भारतीय जीवन मूल्यों को संरक्षित करने में एकरूपता, समरूपता मान्यता के आधार पर निर्मित उनकी पहचान उन्हें अन्यों से अलग करती है, विशिष्टता प्रदान करती है। भारत निर्मित विशिष्टता ही उनकी

सांस्कृतिक अस्मिता का आधार है। भारत में न होकर भी भारत को अपने जीवन में जी रहे हैं। हिंदी के प्रवासी लेखन की परंपरा में अभिमन्यु अनत सबसे महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं। उनके उपन्यास 'लाल पसीना' से हिंदी साहित्य को वैश्विकता प्राप्त हुई है। वह निश्चित रूप से प्रवासी साहित्य के लिए मील का पत्थर है। अभिमन्यु अनत ने मॉरीशस की भौगोलिक लघुता को लांघकर सांस्कृतिक रूप से मॉरीशस की हिंदी सीमाओं को तोड़ते हुए विश्व पटल पर प्रतिमान स्थापित कर दिया। "उपन्यास के क्षेत्र में मॉरीशस में अभिमन्यु अनत अकेले ऐसे लेखक हैं जिन्होंने इतनी बड़ी संख्या में उपन्यासों की रचना की है। वे उपन्यास सम्राट हैं और मॉरीशस के प्रेमचंद हैं। उनमें महाकाव्यात्मक प्रतिभा है और वे अपने समाज के बंधन तथा मुक्ति एवं अपनी संस्कृति अस्मिता अस्तित्व तथा स्वाधीनता के महान संघर्ष के गायक हैं। वे उपनिवेशवादियों के क्रूर नृशंस से तथा अमानवीय अत्याचारों के बीच अपनी भारतीयता, भाषा और संस्कृति को जीवित रखते हैं। अनत ने अपने देश के गूंगे एवं चीखते इतिहास को 'लाल पसीना', 'गांधी जी बोले थे' तथा 'और पसीना बहता रहा' कि उपन्यास त्रयी में प्रस्तुत किया। जो महाकाव्यी चेतना, संघर्ष तथा ऊर्जा के कारण 'काव्यात्मक उपन्यास' की संख्या को सार्थक करते हैं।" अभिमन्यु अपने देश के भूमिपुत्र हैं तथा अपनी जातीय परंपरा के राष्ट्र- उपन्यासकार हैं। मॉरीशस की भूमि, भूमि संतान, भू-संस्कृति, भू-श्रमिक तथा वहाँ का भू जीवन सभी अनत की आत्मा के अंग हैं।" ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर' मॉरीशस के राष्ट्रकवि के रूप में स्थापित होते हैं वहीं दूसरी ओर मॉरीशस के हिंदी साहित्यकार के रूप में वैश्विक प्रतिष्ठा पाने वाले अभिमन्यु अनत हैं।"[4]

भारतवंशी कहलाए इन मज़दूरों ने भारतीय धर्म, संस्कृति, आचार,व्यवहार, संस्कार सबको अपने भीतर जीवित रखने के साथ-साथ बैठक, सत्संग, मिलन द्वारा भारतीय सांस्कृतिक चेतना की एक ऐसी अंत:सलिला प्रवाहित की कि वहाँ रहने वाला हर भारतीय सराबोर हो गया। उनका अपने परिवेश, अपने धर्म, अपनी संस्कृति से लगाव और जुड़ाव दोनों अक्षुण्ण रहे। इस रूप में भारतवंशियों का साहित्य भारतीय चेतना और संस्कार का ही विस्तारित रूप है। भारतवंशियों द्वारा रचित साहित्य के माध्यम से भारतीयता और हिंदी भाषा के आंतरिक विस्तार का सर्वोत्तम प्रयास हुआ। उन्होंने विदेशी भूमि पर भी अपने लिए एक लघु भारत निर्मित कर लिया था जहाँ वे भौगोलिक रूप से पीछे छूटे हुए भारत को जी रहे थे। भारतीय सांस्कृतिक चेतना से आच्छादित 'लघु भारत' उनका अपना भारत था।

संदर्भ

1. प्रवासी हिंदी साहित्य: अस्तित्व और अस्मिता- प्रो. पुष्पिता अवस्थी, पृष्ठ-xv, xiv, प्रवासी हिंदी साहित्य: दशा और दिशा-संपा- प्रो.प्रदीप श्रीधर

2. वसंत त्रैमासिक, आप्रवासी विशेषांक, अंक-41, वर्ष:1984, पृष्ठ-1, प्रो. उत्तम विष्णुदयाल के वक्तव्य से।

3. वही-पृष्ठ-66

4. प्रवासी हिंदी साहित्य-कमल किशोर गोयनका, पृष्ठ-31

मकान नं -246 हस्तसाल गांव, उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059
मो. नं-9212647276

फ़ीजी के प्रमुख हिंदी रचनाकार

सुश्री ममता गोयनका

महेंद्र चंद्र शर्मा 'विनोद' फ़ीजी के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हिंदी साप्ताहिक 'शांतिदूत' के संपादक बने। 1982-1986 तक उन्होंने 'शांतिदूत' का संपादन किया तथा अनेक हिंदी लेखकों की रचनाएं प्रकाशित करके उन्होंने प्रोत्साहित किया। उन्होंने स्वयं कविताएँ तथा लेख आदि तो लिखे ही, उनका सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान 'शांतिदूत' में नियमित रूप से तिरलोक तिवारी के छद्म नाम से 'थोरा हमरो भी तो सुनो' स्तंभ के अंतर्गत फ़ीजी की विशिष्ट हिंदी शैली में देश तथा समाज की समस्याओं पर व्यंग्य लेखन किया। यह स्तंभ पाठकों के बीच विशेष लोकप्रिय हुआ था। उनकी शैली प्रभावपूर्ण, तीखी तथा व्यंग्य की धार लिए है। विनोद जी ने फ़ीजी में हिंदी पत्रकारिता को प्रतिष्ठा दिलाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

फ़ीजी की भूमि हिंदी भाषा और साहित्य की दृष्टि से उर्वर रही है। यहां अनेक ऐसे साहित्यकार रहे हैं, जिनकी पहचान न केवल फ़ीजी में, बल्कि फ़ीजी की भौगोलिक-राजनैतिक सीमाओं से बाहर हिन्दी के वैश्विक पटल पर भी रही है। ऐसे ही कुछ यशस्वी साहित्यकारों से हम आपका परिचय करा रहे हैं-

रामानारायण

रामानारायण फ़ीजी के एक सम्मानित कवि हैं। कवि होने के साथ-साथ उनकी पहचान हिंदी भाषा के प्रचारक के रूप में भी है। इनका जन्म फ़ीजी के बीतोलेऊ द्वीप के 'बा' नगर में हुआ। इन्होंने भारत सरकार की छात्रवृत्ति पर भारत में रहकर हिंदी भाषा और साहित्य का अध्ययन किया। वे फ़ीजी के शिक्षा मंत्रालय में उच्च हिंदी अधिकारी के रूप में हिंदी पाठ्यक्रम निर्माण से लंबे समय तक जुड़े रहे। रामानारायण ने हिंदी की अनेक पाठ्य पुस्तकें तैयार कीं। इन्होंने हिंदी शिक्षण तथा हिंदी अध्यापक प्रशिक्षण का आयोजन तथा संयोजन भी किया। वे आजीवन हिंदी के एक सशक्त पक्षधर रहे। फ़ीजी में हिंदी के प्रचार-प्रसार में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। मृदुभाषी, शालीन तथा आकर्षक व्यक्तित्व के धनी रामानारायण ने हिंदी के अनेक नाटकों में स्वयं अभिनय किया, कवि-सम्मेलनों में स्वरचित कविताएँ सुनाई तथा शासकीय स्तर पर हिंदी अध्ययन तथा अध्यापन के विस्तार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

रामानारायणजी ने विपुल मात्रा में नहीं लिखा, किंतु उनकी कविताएँ हिंदी प्रेमियों के बीच लोकप्रिय थीं। फ़ीजी के हिंदी लेखकों में वे विशेष सम्मानित व्यक्ति थे। फ़ीजी में राष्ट्रव्यापी स्तर पर हिंदी दिवस मनाने की प्रथा प्रचलित करने में उनकी निर्णायक भूमिका रही है। रामानारायणजी की लंबी कविताएँ- गिरमिट, सागरिका, हाँ मंथरा हूँ आदि उच्चकोटि की रचनाएँ है।

काशीराम कुमुद

श्री काशीराम कुमुद फ़ीजी के प्रतिष्ठित हिंदी साहित्यकारों में से एक हैं। वे सिंगातोका के निवासी थे और समर्पित हिंदी प्रेमी तथा हिंदी सेवी थे। वे हिंदी के अच्छे विद्वान तथा विवेकसंपन्न संपादक भी थे। उन्होंने 'प्रवासिनी' नामक पत्र प्रारंभ किया तथा लंबे समय तक उसका संपादन किया। 'किसान मित्र' तथा 'नव किरण' जैसी विशिष्ट पत्रिकाओं का भी कुमुद जी ने संपादन किया। कुमुद जी ने कहानियाँ तथा कविताएं दोनों लिखीं। उनकी रचनाएँ भारत की प्रसिद्ध पत्रिका 'चाँद' में भी प्रकाशित हुई थीं। इनकी भाषा आम जीवन से जुड़ी बोलचाल की भाषा है जो अत्यंत सहज और प्रवाहमयी है। कुमुदजी आजीवन हिंदी सेवा के पथ पर अविचल लगे रहे तथा 1987 ई. में उनका देहावसान हो गया।

पहचान ले

साथी मुझे पहचान ले।
क्षितिज के नव भोर में

उगते हुए रवि बाल में
सिंदूरी उषा उजियार में
पक्षियों की सामूहिक गुंजन में
साथी मुझे पहचान ले।

इस हार में उस जीत में,
उलटी जगत की रीति में,
इन कुचलियों की भोर में
अपना पराया चीन्ह ले
साथी मुझे पहचान ले!

बंसी न दे वीणा न दे,
स्वर माधुरी में भर ले सुधा,
मुझ से सुनहला गीत ले।
साथी मुझे पहचान ले।

स्वार्थियों के भूचाल में,
इस छल-कपट के जाल में,
मृत्यु भय विकराल में,
अरे! जीवन नहीं है मान ले।
साथी मुझे पहचान ले!

- काशीराम कुमुद

कुँवर सिंह

नौसों के निवासी हिंदी साहित्यसेवी बाबू कुँवर सिंह धार्मिक विषयों पर छंदबद्ध कविता लिखने के लिए प्रसिद्ध हैं। उन्होंने मुख्य रूप से पारंपरिक शैली में रचना की है, जो मंच पर सुनाने की दृष्टि से बहुत उपयुक्त थीं। यही कारण है कि वे बड़े मंचों के एक सुविख्यात कवि थे। बाबू कुंवर सिंह ने परिमाण की दृष्टि से पर्याप्त रचनाएँ की हैं किंतु फ़ीजी में उस समय हिंदी में प्रकाशन की समुचित सुविधाओं के अभाव के कारण उनकी रचनाएँ प्रकाशित नहीं हो सकीं। उन्होंने निजी प्रयासों से कुछ लघु पुस्तिकाएँ साइक्लोस्टाइल रूप में निकालीं और काव्य रसिकों को भेंट कीं। उनका शब्द-भंडार विशाल था, इसलिए उनकी रचनाओं में शब्द-क्रीड़ा भी पर्याप्त दिखाई देती है। कुंवरजी स्वयं को फ़ीजी का राष्ट्रकवि भी मानते थे। उनकी अनेक रचनाएँ 'शांतिदूत' में प्रकाशित हुआ करती थीं।

बुनियाद

बु - बुंदा बुंदा का छाप देख।
परदे पर मन टकराता है।
बात तर्क की सुन कर के।
बच्चों का मन घबड़ाता है।।1।।

नि - निद्रा को दूर भगा देता।
मन रंग तरंग में लाता है।।
सायरी डायरी के अंदर।
भूले को याद दिलाता है।।2।।

या - यारी दुनियादारी है।
दुश्मन को मार भगाती है।।
गुन ज्ञान का दीपक जलता है।
तो अंधकार मिट जाता है।।3।।

द - दया धर्म मरियाद जमाता।
कुँवर सिंह दर्शाता है।।
भाग्योदय का चमत्कार।
दुनिया में चलता आता है।।4।।

- कुँवर सिंह

कमला प्रसाद मिश्र

फ़ीजी के हिंदी कवियों में सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि कमला प्रसाद मिश्र हैं। लौटाका निवासी श्री कमला प्रसाद मिश्र का जन्म 1913 में फ़ीजी में हुआ, लेकिन उनकी शिक्षा-दीक्षा भारत में हुई। उन्होंने वृंदावन में रहकर हिंदी, संस्कृत तथा अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने अरबी, फारसी तथा पंजाबी का भी अध्ययन किया। मिश्र जी ने विपुल काव्य साहित्य की रचना की है। उनकी भाषा शुद्ध परिष्कृत तत्सम प्रधान हिंदी है। श्री कमला प्रसाद मिश्र फ़ीजी के सम्मानित कवि होने के साथ-साथ सिद्धहस्त पत्रकार भी थे।

क्या मैं परदेसी हूँ?

धवल सिंधु-तट पर मैं बैठा अपना मानस बहलाता
फीजी में पैदा होकर भी मैं परेदसी कहलाता
यह है गोरी नीति, मुझे सब भारतीय अब भी कहते
यद्यपि तन-मन-धन से मेरा फीजी से ही है नाता
भारत के जीवन से फीजी के जीवन में अंतर है
भारत कितनी दूर वहाँ पर कौन सदा जाता आता
औपनिवेशिक नीति गरल है, नहीं हमें जीने देती

कमला प्रसाद मिश्र

वे उससे ही खुश रहते हैं जो उनका यज्ञ है गाता
भारतीय वंशज पग-पग पर पाता है केवल कंटक
जंगल को मंगल करके भी दो क्षण चैन नहीं पाता
साहस है, हम सब सह लेंगे हम भयभीत नहीं होंगे
पता नहीं कब गति बदलेगा कालचक्र जग का त्राता।।

- कमला प्रसाद मिश्र

महेंद्र चंद्र शर्मा 'विनोद'

महेंद्र चंद्र शर्मा 'विनोद' हिंदी, उर्दू तथा अंग्रेजी भाषाओं के ज्ञाता थे। वे फ़ीजी में लेखक, कवि और पत्रकार के रूप में विख्यात हैं। उनका जन्म 1921 ई. में हुआ। वे कृषि विज्ञान के विशेषज्ञ थे। 1940 से 1976 तक वे फ़ीजी कॉलेज ऑफ एग्रीकल्चर के प्रिंसिपल भी रहे। वहाँ से अवकाश प्राप्त कर वे फ़ीजी के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हिंदी साप्ताहिक 'शांतिदूत' के संपादक बने। 1982-1986 तक उन्होंने 'शांतिदूत' का संपादन किया तथा अनेक हिंदी लेखकों की रचनाएं प्रकाशित करके उन्होंने प्रोत्साहित किया। उन्होंने स्वयं कविताएँ तथा लेख आदि तो लिखे ही, उनका सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान 'शांतिदूत' में नियमित रूप से तिरलोक तिवारी के छद्म नाम से 'थोरा हमरो भी तो सुनो' स्तंभ के अंतर्गत फ़ीजी की विशिष्ट हिंदी शैली में देश तथा समाज की समस्याओं पर व्यंग्य लेखन किया। यह स्तंभ पाठकों के बीच विशेष लोकप्रिय हुआ था। उनकी शैली प्रभावपूर्ण, तीखी तथा व्यंग्य की धार लिए है। विनोद जी ने फ़ीजी में हिंदी पत्रकारिता को प्रतिष्ठा दिलाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। फ़ीजी की राजनीतिक विषमताओं से असंतुष्ट होकर वे न्यूजीलैंड चले गए और स्थायी रूप से वहीं बस गए।

शिव प्रसाद

फ़ीजी के साहित्यकारों में शिवप्रसाद का नाम भी विशिष्ट पहचान रखता है। फ़ीजी के शिक्षा मंत्रालय में प्रमुख शिक्षा अधिकारी का दायित्त्व निभाते हुए शिवप्रसाद ने 'गिरमिट', 'नगीना', 'सीरिया', 'फ़ीजी की जय' जैसी अनेक विचारपूर्ण तथा सुंदर कविताएँ रचीं। अपनी एक लघु कविता 'फ़ीजी के किसान' में उन्होंने प्रवासी भारतीयों के बलिदान का हृदयस्पर्शी चित्र खींचा है।

गिरमिट की याद

आती है याद मुझे अब भी,
कुछ छोटा था मैं घूम रहा था।
माँ पिता मनाते थे मुझ को,
मैं उनसे एकदम रूठ गया था।

मन ऊबा था दिल करता था,
चल दूं 'बस्ती' से दूर कहीं।
जहाँ सुख भोगूँ माँ रूठे,
धिक्कारें घर के लोग नहीं।

मिल गया सिपाही अरकाटी,
बीबी को लिया अँधेरे में।
चल दिये सफर को हम दोनों,
गाड़ी में छिपकर कोने में।

दिन बीते फिर रातें आई,
आखिर 'हबड़ा' टेशन पहुँचा।
हम सुबह किये दर्शन सितला' का,
रुकसत का दिन भी आ हुँचा।

थे सजल नेत्र डगमगे पाँव
दिल की धड़कन है याद अभी।
हम छोड़ चले थे भारत मों,
और घर के बस लोग सभी।

- शिव प्रसाद

E-16/362, सैक्टर-8, रोहिणी, नयी दिल्ली -110085,
मो॰ 9212012231

फ़ीजी में हिंदी और हिंदुस्तानी : भाषा और संस्कृति के उभरते आयाम

डॉ. कमल किशोर मिश्र

"इतिहास, संस्कृति एवं सभ्यतागत स्मृतियों का मिश्रण करने वाले प्रवासी भारतीय श्रमिकों का जीवन समुद्र पार की यात्रा की महागाथा है। दक्षिण प्रशांत महासागर में हजारों मील दूर स्थित लगभग 800 से अधिक चकित कर देने वाले नयनाभिराम मूंगा द्वीप समूहों की एक श्रृंखला से बना हुआ फ़ीजी देश, आज भारतीय मूल के व्यक्तियों के जरिये भारत से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है, जिन्होंने इस प्रशांत राष्ट्र को सदियों पूर्व अपना घर बना लिया था। इन प्रवासी भारतीयों का संबल गोस्वामी तुलसीदास की "रामायण" और "हनुमान चालीसा" थे जिसे ये साथ ले कर फ़ीजी आये थे। इनकी दशा में धीरे–धीरे सुधार आया और घर द्वार बन गये। अगली पीढ़ी ने शिक्षा की ओर ध्यान दिया। ये लोग अवधी, भोजपुरी और हिंदी बोलते हैं और अंग्रेजी का प्रचलन होने पर भी अपनी संस्कृति और उसकी विरासत को कभी नहीं भूलते।"

भौगोलिक रूप में फ़ीजी गणराज्य, दक्षिण प्रशांत महासागर में स्थित 322 द्वीपों का एक समूह है। यहाँ के मूल निवासी काईबीती समुदाय के हैं। देश की पूरी आबादी लगभग 8 लाख है। इसमें 50 प्रतिशत काईबीती, 44 प्रतिशत भारतीय तथा 6 प्रतिशत अन्य समुदाय के लोग हैं। फ़ीजी में भारत से दो तरह के प्रवासन हुए : सन् 1919 के पहले गिरमिटिया के रूप में तथा बाद में व्यवसाय के लिए व्यापारियों का, जिसमें गुजराती मूल के भारतीयों की संख्या सर्वाधिक है। तदनन्तर, डाक्टर, इन्जीनियर, विश्वविद्यालय के अध्यापक, सूचना और संचार के विशेषज्ञ इत्यादि के रूप में भी प्रवासन हुआ है, जो आज की देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने में सकारात्मक सहयोगी बन रहे हैं।

ब्रिटिश राज के दौरान भारत में गरीबी का यह हाल था कि लोग रोजी रोटी की खोज में अपना देश छोड़ने के लिए विवश थे। सन् 1889 से 1916 के बीच अंग्रेज ठेकेदारों ने 61000 मजदूरों को यह आशवासन दे कर पानी के जहाजों से लेकर गये थे कि बस पास के ही द्वीप पर जाना है, अच्छा काम और आमदनी दोनों ही संभव होगी। अंग्रेज भी यह अच्छी तरह जानते थे कि भारतीय बड़े परिश्रमी होते हैं और इसी कारण वे मजदूरों के रूप में उन्हें ले जाना चाहते थे। यह ऐसी यात्रा थी जो खत्म होने का नाम ही नहीं ले रही थी, जहाज में एक दूसरे का दुःख सुनते–बाँटते सभी यात्री जहाजी भाई बन गये। आज फ़ीजी में भारतीय मजदूरों की पाँचवीं पीढ़ी रहती हैं।

14 मई, 1879 को भारत से पहली बार गिरमिटिया श्रमिकों के साथ "लियोनिडास" जहाज फ़ीजी के समुद्रतट पर पहुँचा। बाद में भारत से अधिक जहाजों के आगमन के साथ उनकी संख्या में वृद्धि हुई। कलकत्ता से चलकर 'लियोनिडास' में 471 भारतीयों को लेकर फ़ीजी की धरती के निकट पहुँचा। उन दिनों भारतवर्ष और फ़ीजी दोनों ही देश ब्रिटिश उपनिवेश के अधीन थे। गन्ने की खेती के लिए सस्ते मजदूरों को, पाँच वर्षों के लिए विशेष अनुबंध पर फ़ीजी लाया गया था। इस अनुबंध से लेकर फ़ीजी तक की पंचवर्षीय यात्रा कारुणिक, कठिन और संघर्ष से भरी थी। चुनौतियाँ और संघर्ष, इन प्रवासी भारतीय श्रमिकों की नियति थी और उन्हें अपने परिश्रम और बुद्धिमता से इन चुनौतियों और संघर्षों को संभावनाओं में तब्दील करना था।

अनुबंध-गिरमिट प्रथा के अंतर्गत आए प्रवासी भारतीयों ने फ़ीजी देश को जहाँ अपने खून-पसीने से आबाद किया वहीं हिंदी भाषा और रामायण जैसे धार्मिक ग्रन्थों की ज्योति भी प्रज्वलित की, जो आज भी फ़ीजी में अपना प्रकाश फैला रही है। इस दौर में स्पंदनशील भारतीय-फीजियन समुदाय के लिए, जो दोनों देशों के बीच सेतु निर्माता के रूप में कार्य करता है, एक विशेष भावनात्मक अनुगूँज सुनी गई। गिरमिटिया श्रमिकों के रूप में भारतीय ब्रिटिश शासन द्वारा गन्ने की रोपाई के काम के लिए ले जाए गए भारतीय मूल के लोगों की संख्या अब 8,49,000 हो गई है। भारतीय - फीजियन अब फ़ीजी में जीवन के हर क्षेत्र में अपना स्थान बना चुके हैं और अपनी बहुमुखी प्रतिभा से अपनी अपनाई हुई

मातृभूमि को समृद्ध किया है। व्यवसाय, राजनीति, संस्कृति, मनोरंजन, हर क्षेत्र में भारतीय - फीजियनों ने अपनी अमिट छाप छोड़ी है।

इन श्रमिकों की सन्तान जो अब पाँचवीं पीढ़ी है, जनसंख्या का लगभग 38% है और देश के आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक ताने-बाने का हिस्सा है। श्री महेंद्र पाल चौधरी ने 1999 के चुनावों को जीतने के बाद फ़ीजी के प्रथम भारतीय - फीजियन प्रधान मंत्री बनने की विशेष उपलब्धि प्राप्त की थी। यह समुदाय फ़ीजी जीवन-शैली में भली-भाँति घुल-मिल गया है, परंतु इसने उस भारत भूमि के साथ भी अपने महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक रिश्तों को बनाए रखा जिसे उनके पूर्वजों ने दशकों पहले छोडा। फ़ीजी में बसे भारतीयों की उपस्थिति से दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय संबंधों में बहुत योगदान मिला है।

फ़ीजी के मूल निवासी पूरी तरह प्रकृति से जुड़े थे, वहाँ समुद्र-संसाधन और वन सम्पदा की कमी नहीं थी।

भारत से दूर एक और भारत

इतिहास, संस्कृति एवं सभ्यतागत स्मृतियों का मिश्रण करने वाले प्रवासी भारतीय श्रमिकों का जीवन समुद्र पार की यात्रा की महागाथा है। दक्षिण प्रशांत महासागर में हजारों मील दूर स्थित लगभग 800 से अधिक चकित कर देने वाले नयनाभिराम मूंगा द्वीप समूहों की एक श्रृंखला से बना हुआ, फ़ीजी देश, आज भारतीय मूल के व्यक्तियों के जरिये भारत से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है जिन्होंने इस प्रशांत राष्ट्र को सदियों पूर्व अपना घर बना लिया था। इन प्रवासी भारतीयों का संबल गोस्वामी तुलसीदास की "रामायण" और "हनुमान चालीसा" थे जिसे ये साथ ले कर फ़ीजी आये थे। इनकी दशा में धीरे–धीरे सुधार आया और घर द्वार बन गये। अगली पीढ़ी ने शिक्षा की ओर ध्यान दिया। ये लोग अवधी, भोजपुरी और हिंदी बोलते हैं और अंग्रेजी का प्रचलन होने पर भी अपनी संस्कृति और उसकी विरासत को कभी नहीं भूलते। भारतीय मूल के लोग, शादी-विवाह अपने ही लोगों में करना चाहते हैं। जाति प्रथा लगभग समाप्त हो चुकी है और ज्यादातर लोग सम्मान के तौर पर अपने पूर्वज का नाम अपने नाम के साथ लगाते हैं। बड़े उच्च पद पर आसीन होने पर भी, ब्राह्मण होने के नाते पंडिताई भी बिना हीन भाव के करते हैं। फ़ीजी में इनका बहुत मान है। संस्कारों का ही फल है कि लोग भारतीय रीति रिवाज के अनुसार शादी कर अपने परिवार को भारत की सनातन संस्कृति से जोड़ना चाहते हैं, जबकि परिवार में हर संस्कृति और हर जाति के रिश्तेदार हुआ करते हैं। विवाह में भी वे कोई रस्म छोड़ना नहीं चाहते। परिवार के बुजुर्गों से पूछकर हर रस्म मनोयोग से सम्पन्न करते हैं। सभी रस्मों को कैमरों में उतारा जाता है। फ़ीजी के मन्दिरों में लगाने के लिए देवी की मूर्ति मँगवाई गई तथा सुनहरे रंगों से पेंटिंग की गयी।

उल्लेखनीय है कि फ़ीजी की अर्थव्यवस्था पर भारतीय मूल के लोगों का अधिकार था। भारतीय मूल के लोग कुल जनसंख्या का 44 थे। वहाँ के मूल निवासियों का मानना है कि हमारे वंशजों ने श्रीराम और रावण के बीच हुए युद्ध में भगवान राम का साथ दिया था और हमें भी युद्ध के लिए श्रीराम जी के पक्ष से युद्ध के लिए आमंत्रित किया गया था। भारतीय मूल के लोगों का खानपान वही है जो भारत में प्रचलित है स्थानीय कंदमूल भी प्रयोग में लाते हैं जो प्रोटीन युक्त भोजन का श्रोत है।

जिन्दगी में रिश्तों का महत्व कुछ ऐसा ही जैसे हमें हवा, पानी, खाना आदि, जीवन जीने के लिए जरुरी है। वैसे ही रिश्तों का होना भी बहुत जरुरी है। जन्म लेते ही हम रिश्तों की डोर में बँध जाते हैं। माँ-बाप, भाई-बहन, दादा-दादी, नाना-नानी आदि जैसे रिश्तों को फ़ीजी समाज में आदर दिया जाता है। फ़ीजी का समाज भी मूल एवं पारंपरिक भारतीय समाज जैसा ही है।

फ़ीजी की संस्कृति एक सामासिक संस्कृति है, जिसमें काईबीती, भारतीय, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड के निवासी शामिल हैं। इनकी भाषा काईबीती (फीजियन) हिंदी तथा अंग्रेजी है। भारतीय बच्चे पढ़ाई की ओर बहुत ध्यान देते हैं, विदेश जा कर पढने के इच्छुक रहते हैं, शिक्षा के क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा बढ़ गई है। जब फ़ीजी में रम्बूका का मिलिटरी कू हुआ, बहुत सारे लोग न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया और अमेरिका बस गये।

हिंदी भाषा की प्रगति

आरम्भ में अंग्रेजों द्वारा भारत के उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों तथा बिहार से श्रमिक फ़ीजी में लाये गये थे। वे लोग अपने मूल निवास स्थान की हिंदी की बोली बोलते थे। इसे आगे की सारिणी में दर्शाया गया है:

श्रमिकों द्वारा बोली जाने वाली बोलियाँ

भाषा/बोली	संख्या	अनुपात%
बिहारी	17,868	39.3%
पूर्वी हिंदी	16,871	37.1%
पश्चिमी हिंदी	6,903	15.2%
राजस्थानी	1,111	2.4%
अन्य भाषाएँ	1,546	3.4%
अन्य उपनिवेशों के लोग	640	1.4%
अज्ञात	500	1.1%
कुल योग	**45,439**	**100%**

इस समय 'फ़ीजी हिंदी' फ़ीजी में बोली जाने वाली प्रमुख भाषा है। इसे 'फ़िजियन हिंदी या 'फ़िजियन हिन्दुस्तानी' भी कहते हैं। यह फ़ीजी की आधिकारिक भाषाओं में से एक है। फ़ीजी हिंदी देवनागरी और रोमन दोनों ही लिपियों में लिखी जाती है।

फ़ीजी हिंदी मुख्य रूप से अवधी और हिंदी की अन्य बोलियों से व्युत्पन्न है, जिसमें कई अन्य भारतीय भाषाओं का भी समावेश है। इसमें फ़ीजी और अंग्रेजी से बड़ी संख्या में शब्द लिए गए हैं। फ़ीजी हिंदी में

बड़ी संख्या में ऐसे अनूठे शब्द भी हैं, जो फ़ीजी में रह रहे भारतीयों के नए माहौल में ढलने के लिए जरूरी थे। फ़ीजी भारतीयों की पहली पीढ़ी, जिसने इस भाषा को बोलचाल के रूप में अपनाया इसे 'फ़ीजी बात' कहते थे। भाषाविदों के अध्ययन से इस बात की पुष्टि हुई है कि फ़ीजी हिंदी भारत में बोली जाने वाली हिंदी भाषा पर आधारित एक विशिष्ट भाषा है, जिसमें फ़ीजी के अनुकूल विशेष व्याकरण और शब्दावली हैं।

ध्यान रखने योग्य है कि भोजपुरी, जिसे लगभग 35.4% उत्तर भारतीय प्रवासी बोलते थे, और अवधी, जिसे लगभग 32.9% लोग बोलते थे, को 'पूर्वी हिंदी' कहा गया है। अवधी उत्तर प्रदेश में "अवध क्षेत्र" में बोली जाती है। इसके अतिरिक्त इसकी एक शाखा बघेलखंड में 'बघेली' नाम से प्रचलित है। 'अवध' शब्द की व्युत्पत्ति "अयोध्या" से है। तुलसीदास ने अपने "मानस" में अयोध्या को 'अवधपुरी' कहा है। संसार के विभिन्न देशों- फ़ीजी मॉरीशस, त्रिनिदाद एवं टुबैगो, गुयाना, सूरीनाम सहित आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड व हॉलैंड में भी लाखों की संख्या में अवधी बोलने वाले लोग हैं।

फ़ीजी हिंदी अवधी भाषा, भोजपुरी और उत्तरप्रदेश तथा बिहार की अन्य बोलियों पर आधारित है। लगभग 70% लोग यह भाषा बोलते हैं। फ़ीजी की अन्य भाषाओं में सामान्य हिंदी, उर्दू, गुजराती, तमिल, तेलुगु, पंजाबी और मलयालम शामिल है।

शीघ्र ही फ़ीजी में एक ऐसी भाषा का जन्म हुआ, जो इन सभी बोलियों की मेल थी। इसमें फ़ीजी और अंग्रेजी से बड़ी संख्या में शब्द उधार लिए गए हैं। फ़ीजी हिंदी में बड़ी संख्या में ऐसे अनूठे शब्द भी हैं, जो फ़ीजी में रह रहे भारतीयों के नए माहौल में ढलने के लिए जरूरी थे।

फ़ीजी का भारतीय समुदाय हिंदी में कहानी और कविताएँ भी लिखता है। हिंदी प्रेमी लेखकों ने हिंदी समिति तथा हिंदी केन्द्र बनाए हैं जो वहाँ के प्रतिष्ठित लेखकों के निर्देशन में गोष्ठियाँ, सभा तथा प्रतियोगिताएँ आयोजित करते हैं। इनमें हिंदी कार्यक्रम होते हैं कवि और लेखक अपनी रचनाएँ सुनाते हैं। फ़ीजी में औपचारिक एवं मानक हिंदी का प्रयोग पाठशाला के अलावा शादी, पूजन, सभा आदि के अवसरों पर होता है। शिक्षा विभाग द्वारा संचालित सभी बाह्य परीक्षाओं में हिंदी एक विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। फ़ीजी के संविधान में हिंदी भाषा को मान्यता प्राप्त है। कोई भी व्यक्ति सरकारी कामकाज,अदालत तथा संसद में भी हिंदी भाषा का प्रयोग कर सकता है। हिंदी के प्रचार-प्रसार में पत्र-पत्रिकाओं तथा रेडियो कारगर माध्यम हैं। हिंदी के प्रचार-प्रसार में फ़ीजी हिंदी साहित्य समिति वर्ष 1957 से बहुमूल्य योगदान दे रही है। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य है हिंदी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति को बढ़ावा देना।

फ़ीजी के हिंदी रचनाकारों में प० विवेकानन्द शर्मा का बहुत आदर है और उनकी रचनाओं से इनमें जागृति आई। भवानी प्रसाद मिश्र की रचनाओं ने भी बहुत ही प्रेरित किया है। फ़ीजी के रचनाकारों में श्री तोताराम सनाढ्य, डॉ ब्रिजलाल, डा सुब्रहमणी, जोगिन्दर सिंह कवल, सत्येन्द्र नन्दन, डा ब्रजलाल, सात्विक दास तथा किरणबाला प्रमुख हस्ताक्षर हैं। आजकल फ़ीजी में हिंदी अत्यंत लोकप्रिय है। फ़ीजी नेशनल यूनिवर्सिटी, यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ पैसेफिक तथा यूनिवर्सिटी ऑफ फ़ीजी में हिंदी विभाग अकादमिक सक्रिय है। जन जीवन में हिंदी पत्रकारिता भी लोकप्रिय है। उनमें, साप्ताहिक शांतिदूत, एफ बी सी, फ़ीजी-वन, तथा अन्य स्थानीय टेलीविजन संस्था आदि हिंदी को जीवंत बना रहे हैं। हिंदी सिनेमा भी वहाँ के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

समुद्र केन्द्रित प्रकृति यहाँ के जन जीवन को समृद्ध करती है। यहाँ मुख्यतया गन्ने की खेती होती है। पर्यटन के लिहाज से फ़ीजी में बड़ी मात्रा में पर्यटक आते हैं। यह प्रकृति की निराली छटा, सुंदर वनों और खूबसूरत समुद्री किनारों की वजह से पर्यटकों का मन मोह लेता हैं। वन सम्पदा की भी कमी नहीं हैं। नाव लेकर समुद्र में दूर तक निकल जाना यहाँ के लोगों का प्रिय मनोरंजन हैं।

यहाँ के भारतीय डायस्पोरा में "भारतीय भाषा और संस्कृति "जीवन की मूल धारा है। इसके बिना यहाँ जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। हिंदी यहाँ की धडकन है, पर तमिल भाषा और भरतनाट्यम के प्रति यहाँ दक्षिण भारत के मूल निवासियों में एक विशेष प्रकार का प्रेम और अनुग्रह है।

सामाजिक-सांस्कृतिक संस्थाएँ

फ़ीजी में भारतवंशियों की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक संस्थाएँ सार्थक कार्य कर रही हैं। समाज में इन संस्थाओं का सक्रिय योगदान अविस्मरणीय है, कालक्रम से इन्हें समझा जा सकता है, यथा : ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन (1911), इण्डियन इम्पीरियल एसोसिएशन (1918), आर्य प्रतिनिधि सभा ऑफ फ़ीजी (1918), इण्डियन केन ग्रोवर एसोसिएशन (1919), इण्डियन एसोसिएशन ऑफ फ़ीजी (1920), इण्डियन रिफॉर्म लीग (1924), देन इण्डिया सन्मार्ग ईक्या संगम (1926), हिन्दू महासभा ऑफ फ़ीजी (1926), फ़ीजी मुस्लिम लीग (1926), फ़ीजी नेशनल कांग्रेस (1929), फ़ीजी टीचर्स एसोसिएशन (1929), फ़ीजी भारतीय मजदूर संघ (1930), अहमदिया अन्जुमन इस्हट-ए-ईस्लाम (1933), फ़ीजी किसान संघ (1937), फ़ीजी इण्डियन फुटबॉल एसोसिएशन (1938), दक्षिण इण्डिया आंध्र संगम (1941), मौनतुल ईस्लाम एसोसिएशन ऑफ फ़ीजी (1941), रेवा प्लांटर्स यूनियन(1943), साऊदर्न डिविजन किसान संघ (1946), फ़ीजी विशाल संघ(1946), लम्बासा किसान संघ (1950), फेडरेशन ऑफ केन ग्रोवर्स (1959), अहमदिया मुस्लिम कम्यूनिटी (1960), फ़ीजी सीटीजन फेडरेशन (1964), नेशनल कांग्रेस ऑफ फ़ीजी (1965),

उपर्युक्त संस्थाओ में से कुछ आज भी सक्रिय हैं और फ़ीजी के समाज निर्माण में उनका विशेष महत्व है। संयोगवश भारत के उच्चायोग के भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र के निदेशक के रूप में, अपने चार वर्षों के कार्यकाल में सभी लोगों के साथ काम करने का अवसर प्राप्त हुआ था, विशेषकर सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा ऑफ फ़ीजी, आर्य समाज ऑफ फ़ीजी, देन इण्डिया सन्मार्ग ईक्या संगम ऑफ फ़ीजी, सिख- गुरूद्वारा समाज ऑफ फ़ीजी, रामकृष्ण मिशन ऑफ फ़ीजी, गुजरात समाज ऑफ फ़ीजी, प्रजापति बह्मकुमारी समाज ऑफ फ़ीजी, रामलीला कमेटी फ़ीजी, फ़ीजी मुस्लिम लीग जैसी संस्थाएँ खूब सक्रिय हैं। देन इण्डिया सन्मार्ग ऐक्य संगम फ़ीजी, की व्यापकता पूरे देश में है। यह अत्यंत संगठित संस्था है। इनके 100 से अधिक शिक्षण संस्थान हैं और "संगम यूनिवर्सिटी ऑफ फ़ीजी" के निर्माण हेतु संस्था प्रयासरत है।

आर्य प्रतिनिधि सभा ऑफ फ़ीजी (1918) को महात्मा गाँधी की प्रेरणा पर डाक्टर मणिलाल ने स्थापित किया था। इसके प्रथम अध्यक्ष स्वामी मनोहरानंद सरस्वती थे। यूनिवर्सिटी ऑफ फ़ीजी इनका उच्च शिक्षा संस्थान है। इसके अतिरिक्त अनेक विद्यालय और महाविद्यालय भी देशभर में सुचारु रूप से चल रहे हैं।

सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा ऑफ फ़ीजी (1958),की स्थापना श्रीधरमहाराज ने की थी। वास्तव मे यह सनातन धर्म सभा (1920) का विस्तार है जिसकी स्थापना में तोताराम सनाढ्य, पं वशिष्टमुनी, पं. रामचंद्र शर्मा, पं. मुरारीलाल शास्त्री थे। सभा मुख्य रूप से अपने गिरमिटिया पूर्वजों के द्वारा लाये गये रामचरितमानस, वाल्मीकीय रामायण, सत्यनारायण की कथा, तथा सूर्य पुराण का प्रचार और प्रसार करती है। पूरे फ़ीजी देश में इस सभा के 117 प्राथमिक और उच्च विद्यालय, सरस्वती कालेज, श्रीधरकालेज, 85 मंदिर, हजारों रामायण मण्डलिया हैं। ब्राह्मण सभा, एजुकेशन बोर्ड, बाल विकास: मानवीय मूल्यों मे शिक्षा, interfaith search of fiji, हिंदी संस्कृत शिक्षण, पौरोहित्य एवं कर्म काण्ड शिक्षण प्रशिक्षण का नियमित कार्य भी सभा के द्वारा संचालित किया जाता है।

भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र, भारत का उच्चायोग

भारत के उच्चायोग का भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र, इस दिशा में 1972 से सक्रिय है। भारतीय सांस्कृतिक केंद्र (आईसीसी), सुवा भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा विदेश में 1972 में स्थापित पहला सांस्कृतिक केंद्र था। आई.सी.सी., सुवा कर्नाटक स्वर संगीत, कथक और भरतनाट्यम नृत्य, भारतीय शास्त्रीय वाद्य यंत्र –सस्वर तबला, हारमोनियम, योग और हिंदी में पाठ्यक्रम संचालित करता है। आईसीसी उपकेन्द्र, लौतोका भरतनाट्यम नृत्य, भारतीय शास्त्रीय वाद्य यंत्र – सस्वर तबला/ हारमोनियम और योग में पाठ्यक्रम संचालित करता है। सभी विषयों का संचालन शुरुआती, मध्यवर्ती और उन्नत - तीन समूहों में प्रत्येक मानकीकृत पाठ्यक्रम के साथ, अंशकालिक स्थानीय शिक्षकों द्वारा किया जाता हैं। सभी कक्षाएँ नि:शुल्क हैं। आइसीसी नियमित कक्षाओं की गतिविधियों के साथ-साथ, सांस्कृतिक संध्या, प्रदर्शनियों, फिल्म शो, नृत्य और संगीत का प्रदर्शन, सेमिनारों और कार्यशालाओं का आयोजन भी करता है। आईसीसी, सुवा भारतीय संस्कृति और विरासत के पहलुओं पर व्याख्यान एवं प्रदर्शन के साथ ही पुस्तकों एवं संगीत वाद्ययंत्रों का उपहार देने जैसी सेवा की गतिविधियाँ भी चलाता है। वर्ष 2011 में फ़ीजी में भारतीय सांस्कृतिक केंद्र के अस्तित्व के 40 साल हो चुके हैं। आईसीसी द्वारा इस अवसर पर एक साल के लंबे उत्सव का आयोजन किया गया।

राजनीति और उसका फीजियन परिदृश्य : कल, आज और कल

फ़ीजी एक विकासशील देश है। 1970 में फ़ीजी आजाद हो गया और राष्ट्र मंडल का सदस्य बन गया। ब्रिटिश सरकार ने भारतीय मूल के लोगों को आश्वासन दिया था कि किसी समस्या के आने पर उन्हें ब्रिटिश नागरिकता भी दी जाएगी। 1987 तक फ़ीजी में लोकतान्त्रिक शासन था। 1987 के चुनाव में महेंद्र चौधरी के दल की सरकार चुनी गई लेकिन जल्दी ही सरकार को अपदस्त कर दिया गया। कर्नल रम्बूका ने बिना रक्तपात के तख्ता पलट दिया, महेंद्र चौधरी और उनकी सरकार को बंधक बना कर रखा गया। 1990 में नये संविधान का गठन किया गया। नये संविधान के अंदर चुनाव हुए। 1992 में रम्बूका देश के प्रधान मंत्री बने। यह दो सैनिक विद्रोह थे एक भारतीयों के प्रभुत्व के खिलाफ, दूसरा ब्रिटिश गवर्नर जनरल के स्थान पर कार्य पालिका अध्यक्ष की नियुक्ति की गई और फ़ीजी का नाम फ़ीजी गणराज्य कर दिया गया। लेकिन जनमत के दबाब में संविधान के लिए एक आयोग का गठन किया गया और इस नये संविधान को भारतीय मूल और स्वदेशी समुदाय के नेताओं ने स्वीकार किया। फ़ीजी को फिर से राष्ट्र मंडल की सदस्यता मिल गई। 1997 में फ़ीजी को फ़ीजी द्वीप समूह गण राज्य कर दिया गया। अंतरराष्ट्रीय समुदायों ने भी तख्ता पलट का विरोध किया था परन्तु महेंद्र चौधरी की मदद के लिए कोई प्रयास नहीं किया। 1997 के चुनाव में महेंद्र चौधरी की फिर सरकार बनी लेकिन 2000 में उन्हें जार्ज स्पीत ने हटा दिया, एक बार फिर से सैनिक विद्रोह हुआ। 2001 में उच्च न्यायालय के आदेश से फिर से संविधान को लागू किया, फिर से चुनाव हुए इन कू से भारतीय मूल के लोग फ़ीजी में अपने भविष्य के प्रति चिंतित हो गये। सम्पन्न भारतीय मूल के लोगों ने आस्ट्रेलिया न्यूजीलैंड और अमेरिका के लिए पलायन करना शुरू कर दिया। फ़ीजी की आर्थिक दशा को झटका लगा, पर्यटन भी कम हो गया।

फ़ीजी में संसदीय प्रणाली की सरकार है। राष्ट्रपति कार्यपालिका अध्यक्ष और राष्ट्र का अध्यक्ष है। प्रधान मंत्री सरकार का प्रमुख। फ़ीजी की जनसंख्या के हिसाब से आर्मी है परन्तु इनकी सुरक्षा का आस्ट्रेलिया ध्यान रखता है, चीन की इस क्षेत्र में सदैव निगाह रहती है।

भारत की तरह ही, आज, नये संविधान के अनुसार फ़ीजी भी गणराज्य है और राजनीति में बहुदलीय व्यवस्था है। यहाँ की मुख्य राजनीतिक दल और उसके मुख्य नेता का विवरण निम्नवत् है :

फ़ीजी फर्स्ट पार्टी (FijiFirst) : वराक वेनिमरामा, (देश के प्रधानमंत्री हैं)

फ़ीजी फेडरेशन पार्टी (NFP) : प्रो विमान प्रसाद

फ़ीजी लेबर पार्टी (FLD) : महेन्द्र चौधरी

सोशल डेमोक्रेटिक लिबरल पार्टी (SODELPA): सी. रबुका

फ़ीजी यूनाइटेड फेडरेशन पार्टी (FULP): जगन्नाथ करूणारत्ने

पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी (PDP) : फीलिक्स ऐन्थोनी

यूनिटी फ़ीजी पार्टी (UFP) : स. नलबे

इन दिनों, फ़ीजी फर्स्ट पार्टी की सरकार है और प्रधानमंत्री वराक वेनिमरामा हैं। 2013 के पूर्व, जब भारत सरकार के महत्त्वपूर्ण प्रतिनिधि के रूप में मैं वहाँ कार्य कर रहा था, तब वराक वेनिमरामा, मिलिटरी शासक के रूप में फ़ीजी को विकास और शान्ति के पथ पर अग्रसर कर रहे थे। हमारे भारतीय लोक राजनयिक कार्य से वे भली भाँति परिचित थे और अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रमों मे उनसे मिलना भी हुआ। हमने यह अनुभव किया कि फ़ीजी के प्रधानमंत्री का भारतीय सांस्कृतिक विरासत के साथ गहरा रिश्ता बन चुका था। तत्कालीन राजदूत विनोद कुमार जी के सहयोग से फ़ीजी के उन तमाम छोटे बडे द्वीपों मे जहाँ भारतवंशी सदियों से रह रहे हैं, उन सबसे मिलना और भारतीय सांस्कृतिक विरासत के साथ जोड़ना संभावनाओं और चुनौतियाँ से भरपूर एक अद्भुत अवसर था। भारत सरकार के सांस्कृतिक प्रतिनिधि के रूप में फ़ीजीवासियों को वर्त्तमान भारत में उपलब्ध शिक्षा और संस्कृति के लाभ से परिचित कराने में सब के सहयोग से अद्भुत सफलता मिली थी, जिससे पूरा फ़ीजी परिचित हो चुका था। मुझे वह दिन भी याद है, जब मै अपने दायित्व को समाप्त कर वापस भारत वर्ष लौटने के लिये तैयार हो रहा था, और पूरे फ़ीजी में अलग-अलग शहरों, गाँवों मे लोगों के द्वारा विदाई समारोह आयोजित किया गया और अंततः एयरपोर्ट पर अश्रुपूर्ण नेत्रों में सैकडों लोग वहाँ विदाई के लिये उपस्थित थे। भावनाओं से भरा यह क्षण स्मरणीय और प्रेरक था। ग्राउंड वर्क तैयार हो चुका था। कुछ ही दिनों के पश्चात, फ़ीजी के प्रधानमंत्री वराक वेनिमरामा ने हमारे यशस्वी प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी को आमंत्रित किया। भारत और फ़ीजी के बीच बहु-रंगी रिश्तों को नई चमक मिली, जब फ़ीजी की राजधानी सुवा में 19, नवंबर 2014 को भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी का स्वागत किया गया। 33 वर्ष पहले 1981 में जब इंदिरा गांधी ने इस प्रशांत राष्ट्र का दौरा किया था, उसके बाद से भारत के प्रधान मंत्री की यह पहली फ़ीजी यात्रा रही। मोदी जी ने फ़ीजी संसद में भाषण दिया। उनका भारतीय मूल के लोगों ने हार्दिक स्वागत किया। वहाँ के प्रधान मंत्री वेनिमरामा से द्विपक्षीय वार्तालाप में अंतरराष्ट्रीय मुद्दों, रक्षा सहयोग निवेश एवं व्यापार पर सहमति बनी। भारत अन्तरिक्ष, आईटी के क्षेत्र में फ़ीजी की मदद करने का इच्छुक है, फ़ीजी के ग्रामीण उद्योग को मदद देने के लिए ५० लाख डालर, एक बिजली संयंत्र के ७० मिलियन डालर की मदद का आश्वासन दिया। बीजा के नियमों को भी सरल बनाने का प्रयत्न किया जाएगा। फ़ीजी एक प्रकार से छोटा भारत रहा है। वहाँ के लोग अपने को सदा भारत भूमि से जुड़ा महसूस करते हैं।

सुवा में भारत - फ़ीजी संबंधों की नवीन गरमाहट महसूस की जा सकती है। फ़ीजी के प्रधान मंत्री वोरेक (फ्रेंक) वेनीमरामा ने भारतीय नेता को शीघ्र फ़ीजी आने का निमंत्रण देते हुए कहा था, ''मुझे विश्वास है कि हमारे दोनों देशों और अपनी जनता के बीच अटूट रिश्ता बनाने वाली मित्रता और सहयोग की भावना आने वाले वर्षों में और मजबूत होगी।'' श्री मोदी ने अपने दौरे से पहले एक उत्साहपूर्ण टिप्पणी भी की है जिसमें कहा है कि प्रशांत महासागर के इस राष्ट्र में इस वर्ष के चुनावों के शीघ्र पश्चात् फ़ीजी का दौरा करना विशेष लाभकारी होगा। उन्होंने कहा, ''हम अपने चंद्र मिशन के सहयोग के रूप में उस द्वीपसमूह पर हमारे वैज्ञानिकों की मेजबानी करने के लिए उनके आभारी हैं। हम प्रशांत द्वीपसमूह में हमारे मित्र देशों के साथ अंतरराष्ट्रीय और बहुपक्षीय मंचों में मजबूत आर्थिक सहयोग एवं घनिष्ठ भागीदारी बढ़ा सकते हैं।''

2014 में भारत के प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी की फ़ीजी यात्रा के दौरान प्रशांत समुदाय तक भारतीय कूटनीति के मधुर पहलू देखने को मिले। भारत के साथ प्रथम शिखर सम्मेलन में, दक्षिण प्रशांत द्वीप समूह के सभी 14 देशों, जिनकी निराली संस्कृति और जीवन-शैली है, के नेताओं के साथ भारत के प्रधानमंत्री की सार्थक बैठक हुई। इन प्रशांत देशों के साथ भारत के विशेष संबंध हैं। भारत के विदेश मंत्रालय के तत्कालीन सचिव (पूर्व) श्री अनिल वाधवा कहते हैं, ''भारत और प्रशांत द्वीपसमूह की जलवायु परिवर्तन संबंधी चुनौतियाँ समान हैं परंतु हमारे विकास के प्रयासों में सहयोग के लिए बड़े अवसर भी मौजूद हैं। हम संयुक्त राष्ट्र से संबंधित निकायों के साथ-साथ इस द्वीपसमूह के देशों के प्रशांत क्षेत्र के मंचों पर भागीदारी करते रहे हैं और हमारे बीच अच्छी समझ भी है। वे हमें नीतियों, विकास सहायता और क्षमता-निर्माण के लिए नेतृत्व प्रदान करने वाले देश की भूमिका में देखना चाहते हैं। इस बैठक में कूटनीति के अभाव के मुद्दों का समाधान होने और प्रशांत द्वीपसमूह के राष्ट्रों के साथ भारत के संबंधों में सुधार के लिए महत्वाकांक्षी रोडमैप हुई है, जिसने एक विशाल एशियाई पड़ौसी देश का ध्यान भी आकर्षित किया है। एक समावेशी वैश्विक व्यवस्था को प्राप्त करने की दिशा में, भारत अपने सभी छोटे और बड़े देशों के साथ भागीदारी को आकार दे रही और उसे बढ़ा भी रही है।

सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता, पिन कोड 700073, फोन न.7003851415

फ़ीजी में भारतीय समुदाय : इतिहास, संस्कृति एवं पहचान

डॉ. मुन्नालाल गुप्ता

फ़ीजी की समृद्ध संस्कृति में स्वदेशी, भारतीय, चीनी और यूरोपीय परंपरा का मिश्रण है। संस्कृति अनेक पहलुओं से मिलकर बनी है, जिनमें सामाजिक व्यवस्था, परंपरा, भाषा, भोजन, वेशभूषा, विश्वास प्रणाली, वास्तुकला, कला, शिल्प, संगीत, नृत्य और खेल आदि शामिल हैं। आबादी का अधिकांश फ़ीजीयन मूल की संस्कृति से प्रेरित है और इसका दर्शन दिन प्रतिदिन के जीवन में होता है। फ़ीजीयन संस्कृति पर भारतीय और चीनी संस्कृति के, साथ ही यूरोपीय संस्कृति का भी काफी प्रभाव है। सभ्यताओं के इस मिश्रण ने फ़ीजी की संस्कृति को एक अद्वितीय और राष्ट्रीय पहचान दिलाई है।

भारतीय संस्कृति को बनाये रखने के लिए फ़ीजीवासियों के साथ मिलकर फ़ीजी में मनोरंजन का कार्यक्रम करते हैं जिससे वहाँ पर अपनी संस्कृति की पहचान बनी रहे। भारत और फ़ीजी गणराज्य ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संबंधों से जुड़े हुए हैं।

1833 ई. में यूरोप में दास प्रथा के उन्मूलन के बाद यूरोपीय साम्राज्य के कोलोनियों में यूरोपीय बागान मालिकों ने वाणिज्यिक फसलों के उत्पादन के लिए सस्ते और खेती कार्य में कुशल श्रमिकों की जरूरत को पूरा करने के लिए ब्रिटिश शासित भारत से मजदूरों को अनुबंध श्रमिकों के रूप में मॉरीशस (1834 ई.), त्रिनिदाद और टोबागो (1845 ई), सूरीनाम (1873 ई.), दक्षिण अफ्रीका (1860 ई.), फ़ीजी (1879 ई.), गयाना (1838 ई.) भेजा। (ब्रिज, लाल. वी. 2004)। अनुबंधित (इन्डेंचर) श्रमिक का अर्थ- लिखित अनुबंध/एग्रीमेंट/ग्रीमेंट/गिरमिट के आधार पर निश्चित समय के लिए किसी मजदूर का मजदूरी में प्रवेश करना होता है। मरिना कार्टर (1996) के शब्दों में 'अनुबंध पर प्रवासित वे व्यक्ति थे जिन्होंने अपने प्रवासन यात्रा के लिए कोई खर्च स्वयं वहन नहीं किया, परंतु किसी उपनिवेश में जाने और किसी निश्चित समय के लिए मजदूरी करने के समझौते पर हस्ताक्षर किये।

फ़ीजी का भौगोलिक परिदृश्य

फ़ीजी द्वीप समूह दक्षिण पश्चिम प्रशांत महासागर, भूमध्य रेखा के दक्षिण, न्यूजीलैंड की राजधानी आकलैंड से 1770 कि.मी. उत्तर और आस्ट्रेलिया की राजधानी सिडनी से 2730 कि.मी. उत्तर-पूर्व में स्थित है। इसके समीपवर्ती पड़ोसी राष्ट्रों में पश्चिम की ओर वनुआतु, पूर्व में टोंगा और दक्षिण में तुवालु है। फ़ीजी को आधिकारिक रूप से फ़ीजी द्वीप समूह गणराज्य के नाम से जाना जाता है। दक्षिण प्रशान्त महासागर के मेलानेशिया में एक द्वीपीय देश है। फ़ीजी कुल चार प्रभागों में विभाजित है-मध्य, पूर्वी, उत्तरी, पश्चिम। इन प्रभागों को 14 जिलों में बांटा गया है। अनुबंधित श्रमिक व्यवस्था के तहत लाये गए भारतीय श्रमिक फ़ीजी के कुछ प्रमुख क्षेत्रों लंबासा, राबी, तनेऊनी, नाड़ी, लौटोका, तवेऊ, नवुआ में निवास करते थे। (ब्रिज, लाल. वी. 2004 : 370-382)

फ़ीजी में भारतीयों का आगमन

14 मई, 1879 ई. को भारत से पहली बार गिरमिटिया श्रमिकों के साथ "लेओनिडास" जहाज फ़ीजी के समुद्रतट पर पहुँचा। 1833 ई. में दास प्रथा की समाप्ति के बाद बगानों में कार्य करने के लिए मजदूरों की आवश्यकता थी। इनकी पूर्ति अनुबंध के तहत लाए जाने वाले भारतीय, चीनी मजदूरों द्वारा पूरे किए जाने के लिए फ़ीजी के गवर्नर सर अर्थर हेमिल्टन गार्डन (1875-80) ने 1876 ई. में भारतीयों को अनुबंधित श्रमिक प्रणाली के अंतर्गत फ़ीजी लाने का प्रस्ताव रखा था। (ब्रिज, लाल. वी. 2004: 370-382, शालिनी, 2014: 24-24) साम्राज्यवादी/ उपनिवेशवादी इतिहासकारों जैसे: ए.यंग (1989), पी.सी.इमर (1997), के. एल. गीलियन (1958) आदि के अनुसार भारतीय, भारत में खेती की खस्ता हालत, कुटीर उद्योगों का विनाश, गरीबी, बदहाली, भूख, अकाल आदि से परेशान होकर अच्छी जिन्दगी की तलाश में स्वेच्छा से विदेश जाने के लिए प्रेरित तथा लालायित हुए।

ख़राब आर्थिक अवस्था से छुटकारा पाने के लिए भी प्रवासित होने के लिए तैयार हुए। इसे प्रवासन का 'पुल फैक्टर' कहा जाता है।

जबकि राष्ट्रवादी इतिहासकारों, चिंतकों और नवमार्क्सवादी इतिहासकारों जैसे: दादा भाई नौरोजी (1876) महात्मा गांधी, गोपाल कृष्ण गोखले, बाल गंगाधर तिलक, जवाहरलाल नेहरू, दीनबंधु एंड्रूज, तोताराम सनाढ्य (1893-1947), मणिलाल डॉक्टर (नपाल, डी, 1963, प्रसाद, डी, 1992), मदनमोहन मालवीय (1972), हग टिंकर (1974), मरीना कार्टर (1996) का मानना है कि भारतीय मजदूरों का प्रवासन के लिए तैयार होने के पीछे का एक महत्त्वपूर्ण कारण था, घरेलू आर्थिक व्यवस्था का विनाश हो जाना। अंग्रेजों के भू-राजस्व, लगान और प्रशासनिक व्यवस्था के कारण किसान तबाह हो गये। 1765 ई. में दीवानी अधिकार प्राप्त करने के बाद शोषण की प्रक्रिया प्रारंभ हो चुकी थी। इसके पश्चात बंगाल, बिहार क्षेत्र में 1793 ई. में लागू स्थायी भू-व्यवस्था, मद्रास की रैय्यतवारी बंदोबस्त तथा महलवारी बंदोबस्त ने शोषण की अनेक प्रक्रिया को जन्म दिया, जिसने प्रवासन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। इंग्लैंड के औद्योगिक उत्पादित वस्तुओं के भारतीय बाजार में आगमन के कारण घरेलू, कुटीर, लघु, दस्तकारी उद्योगों का विनाश हो गया। फलस्वरूप, भारतीय मजदूर, किसान अपने जीवन को चलाने के लिए प्रवासन को मजबूर हुए। इसे प्रवासन का 'पुश फैक्टर' कहा गया।

1879 ई. से 1916 ई. के बीच ब्रिटिश प्रशासकों ने लगभग 61000 अनुबंधित/ गिरमिटिया श्रमिक फ़ीजी में गन्ने के खेतों में काम करने के लिए भारत से लाये। इसके बाद 1920 ई. और 1930 ई. के दशक में हजारों भारतीय स्वेच्छा से यहाँ आये। आज यही इंडो-फ़ीजीयन/ भारतीय फ़ीजी की अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं।

फ़ीजी में भारतीयों की स्थिति

सी.एफ. एंड्रूज और डब्ल्यू पियर्सन (1918), तोताराम सनाढ्य (1883-1947) ने 'फ़ीजीद्वीप में मेरे 21 वर्ष' नामक आत्मकथात्मक वृत्तान्त में फ़ीजी गए भारतीय श्रमिकों की सामाजिक, आर्थिक, मानसिक परिस्थिति पर विस्तार से बताया है। मजदूरों को रहने के लिए कोठरिया मिलती थी जो 12 फुट लंबी 8 फुट चौड़ी होती थी। यदि किसी पुरुष के साथ उसकी विवाहिता स्त्री हो तो उसे यह कोठरी दी जाती थी, नहीं तो तीन पुरुषों या स्त्रियों को एक साथ रहने के लिए कोठरी मिलती थी। पहले छ: महीने तक स्टेट से रसद मिलता था उसके लिए 2 शिलिंग 4 पेंस प्रति सप्ताह के हिसाब से काट लिए जाते थे। प्रतिदिन 10 छटाँक आटा, 2 छटाँक अरहर की दाल और आधी छटाँक घी के हिसाब से सप्ताह भर का रसद मिलता था। परंतु जो लोग 10 घंटा फावड़ा चलाकर परिश्रम करते थे उनके लिए यह चार या साढ़े चार दिन का रसद था बाकी दिन भूखे पेट रहना पड़ता था। सब लोगों को प्रतिदिन 4 बजे उठा दिया जाता था जिससे रोटी बनाकर 5 बजे सभी खेत पर पहुँच जाय। जो स्त्रियाँ बच्चे वाली होती थीं, वे अपने बच्चों को खेत पर ले जाती थीं। लगभग प्रत्येक मनुष्य को 1200 फुट से लेकर 1300 फुट लंबी और 6 फुट चौड़ी गन्ने की लेन कुदाली से दिन भर में नराने के लिए दी जाती थी। (लाल, ब्रिज वी.1983, 1992, 2012, शालिनी, 2014:37)

महत्मा गांधी, तोताराम सनाढ्य, बाबा रामचंद्र, मणिलाल डॉक्टर, गोपाल कृष्ण गोखले (04 मार्च, 1912), दीनबंधु एंड्रूज एवं डब्ल्यू पियर्सन (1918), मदनमोहन मालवीय और जवाहरलाल नेहरू (1961) आदि के प्रयासों, आन्दोलनों के दबाव से अनुबंध श्रमिक भर्ती प्रथा को 1, जनवरी 1920 ई. में समाप्त कर दिया गया परंतु फ़ीजी

में भारतीयों की राजनीतिक और आर्थिक दशा अभी भी दास की ही थी। हग टिंकर (1974) ने अनुबंधित श्रमिक प्रणाली को 'ए न्यू सिस्टम ऑफ़ सिलेवरी' कहा। फ़ीजी का तत्कालीन ब्रिटिश शासन भारतीयों को राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता देने के लिए तैयार नहीं था। इसके खिलाफ भारतीय श्रमिकों ने हड़ताल की। भारतीय महिलाओं ने इसे पूरे महीने तक जारी रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। मणिलाल डॉक्टर ने अप्रत्यक्ष रूप से हड़ताली कार्यकर्त्ताओं के साथ थे, परंतु उनकी पत्नी महिलाओं के साथ सक्रिय थी। (शालिनी, 2014:101)

10 अक्तूबर 1970 ई. में फ़ीजी को स्वतंत्रता मिली। भारतीयों ने अपनी पहचान को मजबूत बनाया। फ़ीजी के आर्थिक परिदृश्य में भारतीय लोगों में से 37% इंडो-फ़ीजीयन अभी भी गन्ना के खेतों में गन्ना उत्पादक के रूप में काम करते हैं और कुछ नारियल बागान मालिक और मछुआरे के रूप में भी काम करते हैं। अंबाला, रतिलाल, रुप्सी, महारानी, पारीख और पटेल जैसे कई सौ ऐसे नाम हैं जिनकी सुवा की सड़कों पर दुकानें और गोदाम (स्टोर) हैं। ये सभी नाम प्रशांत महासागर के 300 से अधिक द्वीपों के गणराज्य के सभी छोटे तथा प्रमुख शहरों में देखे जा सकते हैं। आर. बी. पटेल, कुन्दन सिंह, वाजपेयी और कुमार नाम से प्रमुख डिपार्टमेन्टल स्टोर और सुपरमार्केट हैं।

फ़ीजी की राजनीतिक व्यवस्था (इंडो-फ़ीजीयन संदर्भ)

1999 ई. के चुनाव में महेंद्र पाल चौधरी पहले भारतीय मूल के फ़ीजी के प्रधानमंत्री बने। मॉरीशस के बाद फ़ीजी ही ऐसा देश है, जहाँ भारतीय मूल के नागरिक वहाँ की लोकतांत्रिक व्यवस्था के सर्वोच्च पद 'प्रधानमंत्री' तक पहुँचे। फ़ीजी की जनता चौधरी में एक ऐसे राजनेता को देखती है जो प्रजातंत्र और क़ानून व्यवस्था के प्रति समर्पित हैं। कुछ मामलों में वे भारत में भारतीयों की तुलना में अधिक भारतीय हैं क्योंकि उन्होंने भारतीय विरासत और परंपराओं को संरक्षित रखा है। पहली पीढ़ी के भारतीयों का फ़ीजी में कठिन जीवन था, क्योंकि इंडेचर्ड मजदूर के रूप में खेतों में मनमाना काम करावाया जाता था। अनुबंध प्रथा समाप्त होने के बाद उनके पास जमीन नहीं थी जिससे उन्हें रोजगार प्राप्त हो सके। इसलिए पैसे कमाने के लिए इन लोगों ने कॉलोनियल शुगर रिफाइनिंग (सी.एस. आर) के खेतों तथा सी.एस. आर शुगर कंपनी में काम जारी रखा और कुछ समय पश्चात उन भारतीयों को अतिरिक्त भूमि भी प्रदान की गई। (अली, अहमद. 1962, चौहान, एस. 1991)

फ़ीजी में भारतीय धार्मिक जीवन एवं संस्थाएँ (इंडो-फ़ीजीयन संदर्भ)

तोताराम सनाढ्य की 'फ़ीजीद्वीप में मेरे इक्कीस वर्ष'(1972) और ब्रिज.वी.लाल की पुस्तक 'चलो जहाजी' (2012) के अध्ययन से फ़ीजी में सनातन हिन्दू धर्म एवं कुछ लोकप्रिय धार्मिक पंथों जैसे- कबीरपंथ, नाथपंथ, नानकपंथ, सतनामी, दादूपंथ, रामानंदी और आर्यसमाज की जानकारी मिलती है। फ़ीजी में अपनी पहचान बनाए रखने तथा भारतीयों के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक और राजनैतिक विकास के लिए कई संगठनों की स्थापना की। फ़ीजी के भारतवंशी आज भी अपने धर्म को लेकर जागरूक हैं। फ़ीजी वासी होने के बावजूद भी सभी भारतवंशी अपने-अपने धर्म को अपनाये हुए हैं और ऐसी ख़बरों को वहाँ का अख़बार 'शांतिदूत' बहुत ही तवज्जो के साथ प्रकाशित करता है। भारतीय घरों में आरती और हनुमान चालीसा के पाठ आमतौर पर सुने जा सकते हैं। दीपावली यहाँ पूरी आस्था और निष्ठा से मनाई जाती है।

इन इंडो-फ़ीजीयन लोगों की धार्मिक गतिविधियाँ एवं उनके साथ संलग्नता उन्हें समुद्रपारीय देशों में धार्मिक पहचान देते हुए अपने मूलदेश से जोड़ने का कार्य करती हैं। फ़ीजी में चलने वाले अनेक स्कूलों में भारतीय तौर-तरीकों से पढ़ाई की व्यवस्था है। भारत की कई आध्यात्मिक-सामाजिक संस्थाओं की वहाँ सक्रिय शाखाएँ हैं। आर्य समाज का यहाँ के भारतीय जनजीवन में अभूतपूर्व योगदान है। फ़ीजी की कुल आबादी का 38 प्रतिशत भारतीय समुदाय है। फ़ीजी में आप भारत का साक्षात दर्शन कर सकते हैं। (पारेख, 1993, कोहेन, 1997:189, वर्टोवेक, एस, 1990, 2000: 10-15)

सनातन प्रतिनिधि सभा, फ़ीजी में हिंदुओं का सबसे बड़ा संगठन है। यह 29 नवंबर 1958 ई. में आधिकारिक रूप से स्थापित किया गया था। हालांकि, सनातन धर्म लगभग 80 साल पहले फ़ीजी में स्थापित हो चुका था। वास्तव में सनातन धर्म ने हमारे पूर्वजों के साथ फ़ीजी में प्रवेश किया था, जो पहले यहाँ 1879 ई. में अनुबंध श्रमिक के रूप में लाए गए थे। अपने कठिन और दुःख के समय में हनुमान चालीसा और रामायण जैसे हिंदू धर्म ग्रंथ ने उनके सनातन मूल्यों को बनाए रखने और जीवन को मजबूत बनाने बनाने के लिए एक प्रेरणा प्रदान की। इसलिएए सनातन धर्म मौखिक परंपरा और धार्मिक ग्रंथों के माध्यम से भारतीय प्राचीन सनातन धर्म फ़ीजी में विकसित हुआ। फ़ीजी में स्कूलों सहित सनातन धर्म और इसके संस्थानों के उद्भव मुख्य रूप से 1920 ई. की शुरुआत में व्यक्तिगत पहल का परिणाम था। इनमें से कुछ महान व्यक्तियों में तोताराम सनाढ्य, पंडित वंशित मुनि, पंडित रामचंद्र शर्मा और पंडित मुरारी शास्त्री थे।

कबीर सत धर्म प्रचारक महासंघ, फ़ीजी को 1883 ई. में एक धार्मिक निकाय के रूप में पंजीकृत किया गया था। जब भारतीय अनुबंध के तहत फ़ीजी में जीवनयापन कर रहे थे उस समय सबसे पहले महंत 108 शिरी ओरी दास जी साहब जो मूल रूप से भारत के थे उन्होंने 1883 ई. में कबीर पंथ आश्रम के नाम से मंदिर का निर्माण किया। उन्होंने कबीर की शिक्षाओं का प्रचार किया। इनके द्वारा ही फ़ीजी में

कबीर पंथ महासभा की स्थापना की गयी। (सनाढ्य, तोताराम. 1972, लाल, ब्रिज.वी. 2012: 247-248)

कबीर, एकै साधै सब सधै, सब सधै सब जाय।
माली सींचौ मूल को, फूलै-फलै अघाय।

साईं बाबा सेवा संगठन, का कार्य फ़ीजी में 18वीं शताब्दी से चली आ रही न्यूजीलैंड में साईं भक्तों द्वारा चिकित्सा शिविर के माध्यम से जरूरतमन्द की सहायता किया जाता है। 18 मार्च 2006 ई. को न्यूजीलैंड के सत साईं बाबा सेवा संगठन के सदस्यों ने एक प्रमुख सेवा प्रोजेक्ट शुरू किया, जो 24 भक्तों, डॉक्टरों और स्वयंसेवकों से बना है। चिकित्सा शिविर की योजना वनुआ लेवु में केंद्रित थी जिसका उद्देश्य मूल रूप से गरीब तथा ग्रामीण लोगों को चिकित्सा उपलब्ध कराना था।

फ़ीजी में आर्य समाज की स्थापना 1902 ई. में सुखराम उगो और बाबू मंगल सिंह ने सामाबूला में की। (गिलियन, के. एल. 1977) फ़ीजी में आर्य समाजियों का एक छोटा सा समूह था जिसमें मंगल सिंह, गाजी प्रताप, इन्द्र नारायण, ननकू सोनार, बिहारी लाल, शिव दत्त शर्मा, बसदेव राय, इनायत हुसैन और तिकाराम वर्मा शामिल थे। आर्य समाज का उत्थान काल 1913 ई. में स्वामी राम मनोहरनन्द सरस्वती के नेतृत्व में प्रारंभ हुआ। (बिलमोरिया, 1985, दत्त, पं. भुवन, 2008)

फ़ीजी की सामाजिक-सांस्कृतिक गतिशीलता (इंडो-फ़ीजीयन संदर्भ)

फ़ीजी की समृद्ध संस्कृति में स्वदेशी, भारतीय, चीनी और यूरोपीय परंपरा का मिश्रण है। संस्कृति अनेक पहलुओं से मिलकर बनी है, जिनमें सामाजिक व्यवस्था, परंपरा, भाषा, भोजन, वेशभूषा, विश्वास प्रणाली, वास्तुकला, कला, शिल्प, संगीत, नृत्य और खेल आदि शामिल हैं। आबादी का अधिकांश फ़ीजीयन मूल की संस्कृति से प्रेरित है और इसका दर्शन दिन प्रतिदिन के जीवन में होता है। फ़ीजीयन संस्कृति पर भारतीय और चीनी संस्कृति के, साथ ही यूरोपीय संस्कृति का भी काफी प्रभाव है। इस सभ्यताओं के मिश्रण ने फ़ीजी की संस्कृति को एक अद्वितीय और राष्ट्रीय पहचान दिलाई है।

भारतीय संस्कृति को बनाये रखने के लिए फ़ीजीवासियों के साथ मिलकर फ़ीजी में मनोरंजन का कार्यक्रम करते हैं जिससे वहाँ पर अपनी संस्कृति की पहचान बनी रहे। भारत और फ़ीजी गणराज्य ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संबंधों से जुड़े हुए हैं। बाद में भारत से अधिक जहाजों के आगमन के साथ उनकी संख्या में वृद्धि हुई। भारतीय अनुबंधित श्रमिकों की सन्तान जो अब पाँचवीं पीढ़ी है, जनसंख्या का लगभग 38% है और देश के आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक ताने-बाने का हिस्सा हैं। विदेशों में बसे भारतीयों की उपस्थिति से दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय संबंधों में बहुत योगदान मिला है।

भारतीय सांस्कृतिक केंद्र (आईसीसी), सुवा भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, भारत सरकार द्वारा विदेश में 1972 ई. में स्थापित पहला सांस्कृतिक केंद्र था। आई.सी.सी, सुवा द्वारा कर्नाटक स्वर संगीत, कथक और भरतनाट्यम नृत्य, भारतीय शास्त्रीय वाद्य यंत्र : तबला, हारमोनियम, योग और हिंदी में पाठ्यक्रम संचालित करता है। आई.सी.सी उपकेन्द्र, लटौका भरतनाट्यम नृत्य, भारतीय शास्त्रीय वाद्य यंत्र रू तबला, हारमोनियम और योग में पाठ्यक्रम संचालित करता है। आइ.सी..सी. नियमित कक्षाओं की गतिविधियों के साथ-साथ, सांस्कृतिक संध्या, प्रदर्शनी, फिल्म शो, नृत्य और संगीत का प्रदर्शन, सेमिनारों और कार्यशालाओं का आयोजन भी करता है। आई.सी.सी., सुवा भारतीय संस्कृति और विरासत के पहलुओं पर व्याख्यान एवं प्रदर्शन के साथ ही पुस्तकों एवं संगीत वाद्ययंत्रों का उपहार देने जैसी सेवा की गतिविधियाँ भी चलाता है।

फ़ीजी में भाषा, साहित्य एवं मनोरंजन (इंडो-फ़ीजीयन संदर्भ):

यहाँ भारतीयों द्वारा अंग्रेजी, फ़ीजी हिंदी आदि कई भाषाएँ बोली एवं प्रयोग की जाती हैं। फ़ीजी में बोली जाने वाली हिंदी अवधी भाषा का ही स्वरूप है। फ़ीजी में अवध क्षेत्र का बहुत प्रभाव है, वहाँ रामायण का बोली में भी बहुत प्रभाव है। अवध में प्रयुक्त शब्दावली आज भी ज्यों का त्यों यहाँ प्रचलित है, जैसे सब्जी पेठा/सीताफल को कोहड़ा, पूड़ी को सोहारी, पैर को गोड़ आदि कहा जाता है। इसका मूल कारण वहाँ भारतीय अनुबंधित/ गिरमिटिया लोग भारत के मुख्यतः अवध क्षेत्र के थे। राष्ट्रकवि पंडित कमला प्रसाद मिश्र, हिंदी सेवी व मंत्री स्व. श्री विवेकानंद शर्मा, प्रो॰ सत्येन्द्र नंदन आदि सभी की जड़े भारतीय अवध क्षेत्र में हैं। इनके पूर्वज फैज़ाबाद, सुल्तानपुर, जौनपुर आदि जनपदों से गए थे। इसी कारण यहाँ की भाषा अवधी के रूप में विकसित हुई है और आज स्थानीय प्रभाव के कारण इसे 'फ़ीजी हिंदी' कहते हैं। इसे फ़ीजीयन हिंदी या फ़ीजीयन हिन्दुस्तानी भी कहते हैं। इसमें फ़ीजी और अंग्रेजी से बड़ी संख्या में शब्द उधार लिए गए हैं। फ़ीजी हिंदी में बड़ी संख्या में ऐसे अनूठे शब्द भी हैं, जो फ़ीजी में रह रहे भारतीयों को नए माहौल में ढलने के लिए जरूरी थे। (मोग, आर. 1979, सिगल, 1985, मिस्री, आर. 1992) फ़ीजी भारतीयों की पहली पीढ़ी, जिसने फ़ीजी हिंदी भाषा को बोलचाल के रूप में अपनाया जिसे 'फ़ीजी बात' भी कहते हैं। भाषाविदों के हाल के अध्ययन में इस बात की पुष्टि हुई है कि फ़ीजी हिंदी भारत में बोली जाने वाली हिंदी भाषा पर आधारित एक विशिष्ट भाषा है, जिसमें फ़ीजी के अनुकूल विशेष व्याकरण और शब्दावली है। आज फ़ीजी में कई हिंदी लेखकों की फ़ीजी हिंदी में साहित्यिक रचनाएँ निरंतर प्रकाशित हो रही हैं। प्रो. सुब्रमनी (डउका पुरान-2001, फ़ीजी माँ-2018), प्रो. रेमण्ड पिल्लई (अधूरे सपने), प्रो. ब्रिज विलास लाल (चलो जहाज़ी-2003, फ़ीजी यात्रा -2005),

श्री महेन्द्र चन्द्र शर्मा, 'विनोद' तथा बाबूराम शर्मा ने फ़ीजी हिंदी को साहित्यिक गौरव प्रदान किया है। (शमीम, एन, 2017)

मनोरंजन के क्षेत्र में चटनी संगीत, भारतीय फिल्मों के अलावा इंडो-फ़ीजीयन विमल रेड्डी और सतीश राय द्वारा निर्मित फ़िल्में महत्त्वपूर्ण है। विमल रेड्डी ने अधूरे सपने-2007, घर परदेश -2009, हाईवे टू सुवा-2013 जैसी फ़िल्में फ़ीजी हिंदी भाषा में बनाई। फ़ीजी में भारतीय और वहाँ की मिश्रित चटनी संगीत पर मौलिक धुनें जनमानस के व्यवहार का सामान्य हिस्सा है। सतीश राय फ़िल्मकार, निर्देशक, टी.वी. निर्माता हैं। 'इन एक्साइल एट होम-ए फ़ीजी इंडियन स्टोरी', एक पल, रिया, स्वर्ग से उड़ान, ख्वायिशें हजार मंजिल कहाँ, मिलाप, सहारा, स्पाईस ऑफ लाइफ (टी.वी. कार्यक्रम) आदि प्रमुख उपलब्धियाँ सतीश राय (2001) की मनोरंजन के क्षेत्र में हैं।

सार रूप से हम कह सकते हैं कि गिरमिटिया बनकर फ़ीजी आए भारतीय लोगों ने बहुत ही कठिनतम जीवन जीते हुए फ़ीजी में स्थानीय परिस्थितियों के साथ सामंजस्य बनाते हुए अपनी मातृभूमि हिंदुस्तान की मिट्टी की महक, सांस्कृतिक विरासत, धर्म, लोक जीवन की परंपरा को सुरक्षित रखा है। उपनिवेशवादियों की मनसा के बावजूद फ़ीजी के मूल निवासियों के साथ सौहार्दपूर्ण रिश्तों के साथ फ़ीजी में भारतीय रह रहे हैं। फ़ीजी के गिरमिटिया अनुभवों वाले तोताराम सनाढ्य की आत्मकथात्मक वृत्तान्त 'फ़ीजी द्वीप में मेरे 21 वर्ष' ने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ साथ यूरोपीय साम्राज्यवाद के खिलाफ लोगों को लामबंद करने में एवं उनके अन्दर अलख जगाने में महत्ती भूमिका का निर्वहन किया। सनाढ्य के मौखिक वृतांत ने औपनिवेशिक मानसिकता से रचे गए इतिहास लेखन को राष्ट्रवादी दृष्टी से देखने की ओर प्रेरित किया। फ़ीजी के गिरमिटिया जीवन के अनुभवों को लिए हुए कुंती और नारायणी की कथा ने विश्व भर में महिलाओं को शोषण के खिलाफ लड़ने को प्रेरित किया। फ़ीजी के भारतवंशियों ने अपनी अमूर्त सांस्कृतिक विरासत को अपनी महतारी भाषा 'फ़ीजी हिंदी' में साहित्य को सृजित कर उन्हें लोक गीतों और लोक कथाओं में संरक्षित रखा है। भारतीय समाज के जड़ में समाया जातिवाद, सामंतवाद को फ़ीजी के भारतवंशियों से समाप्त कर दिया। फ़ीजी में भारतवंशियों द्वारा जातिवाद को समाप्त किये जानेवाली प्रक्रिया को अध्ययन किये जाने की जरूरत है। आज फ़ीजी की भारतवंशियों की चौथी, पाँचवीं पीढ़ी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में खूब मेहनत के द्वारा अपने मेजबान देश (होस्ट कंट्री) के विकास में योगदान दे रहे हैं। आज के वैश्विक परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार को फ़ीजी और वहाँ के भारतवंशी को ध्यान में रखते हुए नीति निर्माण एवं उसके कार्यान्वयन की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ

- अली, अहमद . (1976). ए सोसाइटी इन ट्रांजिसन : आस्पेक्टस ऑफ फ़ीजी इंडियन हिस्ट्री : 1879-1937. सूवा.
- एंड्रूज, सी. एफ. और डब्ल्यू पियर्सन . (1976). इंडियन इन्डेनचर्ड लेबर इन फ़ीजी, पर्थ
- बिलमोरिया, पुरुषोत्तम. (1985). आर्य समाज इन फ़ीजी : अ मोमेन्टम इन हिन्दू डायस्पोरा. आस्ट्रेलिया : डिकिंग यूनिवर्सिटी.
- चौहान, एस. (1991). इंडियन एंड पॉलिटिक्स इन फ़ीजी. इस्टर्न एन्थ्रोपोलोजिस्ट, वोल्यूम 04, न. 01. जनवरी-मार्च.
- दत्त, पं. भुवन. (2008). हिस्ट्री ऑफ आर्य समाज. आर्य प्रतिनिधि सभा. फ़ीजी.
- गीलियन,के. एल. (1958). अ हिस्ट्री ऑफ इंडियन इमिग्रेशन एंड सेटलमेंट इन फ़ीजी. आस्ट्रेलिया : आस्ट्रेलिया नेशनल यूनिवर्सिटी .
- . .. दि फ़ीजी इंडियंस : चौलेंज टू यूरोपियन डोमिनेंस 1920 -1946 . आस्ट्रेलिया : आस्ट्रेलिया नेशनल यूनिवर्सिटी.
- जयराम, एन. (संपा.) (2004). द इंडियन डायस्पोराः डायनॉमिक्स ऑफ माइग्रेशन. नई दिल्ली: सेज.
- लाल, बृज वि. (2003). चलो जहाजी : ऑन ए जर्नी थ्रू इन्डेंचर इन फ़ीजी. डिवीजन ऑफ पैसिफिक एंड एशियन हिस्ट्री कैनबरा : आस्ट्रेलियन नेशनल युनिवर्सिटी.
- लाल बी.वी., रीव्स पी., और राय आर. (संपा.). (2007). द एनसॉयक्लोपीडिया ऑफ द इंडियन डायस्पोरा. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
- (2012). चलो जहाजी, कैनबरा : आस्ट्रेलियन नॅशनल यूनिवर्सिटी.
- रिपोर्ट ऑफ दि हाई लेवल कमेटी ऑन दि इण्डियन डायस्पोरा. नई दिल्ली : (भारत सरकार) 8 जनवरी, 2002.
- सनाढ्य, तोताराम. (1914). फ़ीजीद्वीप में मेरे 21 वर्ष. ज्ञानपुर, वाराणसी : प्रकाशक बनारसीदास चतुर्वेदी.
- शालिनी (2014). फ़ीजी: अप्रवासी भारतीयों का नस्लीय रूपान्तरण. नई दिल्ली : प्रकाशन संस्थान.
- टिंकर, हग. (1974). अ न्यू सिस्टम ऑफ़ सेलेवरी : द एक्सपोर्ट ऑफ़ इंडियन लेबर ओवरसीज 1830-1920. न्यूयार्क: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

सहायक प्रोफेसर, प्रवासन एवं डायस्पोरा अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, पिन: 44 2001, मोबाईल : 09028226561, Email: mlgbharat@gmail.com

फ़ीजी का सिरताज हिंदी

डॉ. बलजीत कुमार श्रीवास्तव

फ़ीजी में हिंदी अपने लिखित रूप में विशेष महत्त्वपूर्ण है क्योंकि अधिकांश दस्तावेजों के अधिक से अधिक संस्करण अब हिंदी भाषा मे भी मिलते है। बोलचाल में अंग्रेजी की अपेक्षा लोगों को हिंदी बोलना अधिक पसंद है। वैश्विक स्तर पर जो भाषा को जमने के लिए जो सबसे महत्त्वपूर्ण एवं किसी भी भाषा की संप्रेषणीयता के लिए जरूरी माना जाता है। वह उस भाषा की निज अभिव्यक्ति कर पाने की क्षमता है। यदि कोई भाषा अपनी बात किसी अन्य गंतव्य तक पहुँचाने में असमर्थ है तो वह भाषा के उच्चतम स्तर का दर्जा प्राप्त नहीं कर सकती है। फ़ीजी में हिंदी सरल भाषा मानी जाती है।

फ़ीजी दक्षिण प्रशांत महासागर के **मेलोनेशिया द्वीप** में स्थित एक द्वीप है। यहाँ भारतीयों की लगभग 44 प्रतिशत आबादी निवास करती है। सन 1997 में हिंदी को **'फ़ीजी'** देश की **राजभाषा** होने का गौरव प्राप्त हुआ। **राजभाषा** यानी राज-काज की भाषा, शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग की भाषा, जनता और सरकार की भाषा, रियाया और राजदरबार की भाषा। राजभाषा शासन–प्रशासन में जनता-जनार्दन की पहुँच का प्रावधान भी करती है।

फ़ीजी के सृजनात्मक हिंदी साहित्य की मूल संवेदना प्रवास की पीड़ा है जो अद्यतन देखने को मिलती है। स्वाधीन-फ़ीजी की संविधान-सभा द्वारा फ़ीजी संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार किये जाने से लेकर अब तक आधी सदी से भी अधिक की लंबी यात्रा के बाद फ़ीजी देश में हिंदी कहाँ पहुँची है, यह जानने के पहले आवश्यक होगा कि हम यह ज्ञान लें कि वह चली कहाँ से थी और फ़ीजी देश के गणतन्त्र की राजभाषा के रूप में उसने कितने और कौन कौन से पड़ाव तय किए हैं। मुख्य रूप से हिंदी उत्तर-भारत में बोली जाने वाली भाषा है। हिंदी के विकास की बात करे तो हम देखते हैं कि जहाँ अपने देश के ही कई राज्यों में हिंदी को समझने और बोलने वाले का अभाव है, वहीं फ़ीजी देश में हिंदी को राजभाषा का दर्जा मिलना, हिंदी को सूर्य की भाँति आभा प्रदान करता है। वस्तुत: भाषा संप्रेषण का माध्यम और संपर्क का साधन होने के साथ-साथ संस्कृति व संस्कार के संरक्षक, संवर्धन व संवहन का संसाधन भी है। मातृभाषा वैयक्तिक और परिवारिक पृष्ठभूमि का बोध कराती है।[1]

फ़ीजी में हिंदी को **'फ़ीजियन हिंदी'** या **फ़ीजियन हिंदुस्तानी** के नाम से भी संबोधित किया जाता है। भारत से फ़ीजी तक हिंदी के पहुँचने के सफर की शुरुआत 19वीं शताब्दी के पहले से शुरू हो चुकी था। पहले यहाँ भारतीय गिरमिट (मजदूरी करने वाले) के रूप में आये थे। 5 मई सन 1971 में अंग्रेजो का जहाज 471 भारतीयों के साथ फ़ीजी पहुँचा था। इन्हीं गिरमिटिया भारतीयों के साथ हिंदी भाषा भी उनके साथ पहुँच गयी। गुलामों के द्वारा लायी गयी यह भाषा अब फ़ीजी देश की आधिकारिक राजभाषा का दर्जा प्राप्त कर चुकी है। यहाँ की हिंदी में अवधी, भोजपुरी, बिहारी, हिंदी और अन्य बोलियों का मिश्रित रूप दिखायी देता है। शायद यही कारण है कि **'फ़ीजी'** देश को **'दूसरा भारत'** के नाम से भी जाना जाता है। क्योंकि भारत के बाद फ़ीजी दूसरा ऐसा देश है जहाँ हिंदी बोलने वालो की संख्या अधिक है।

आजादी के बाद फ़ीजी देश में अनेकों बदलाव आये। फ़ीजी का आधिकारिक नाम 'रिपब्लिक ऑफ फ़ीजी' है। फ़ीजी देश की कुल आबादी 9 लाख के आस-पास है। कुल जनसंख्या में से 40 प्रतिशत लोग गाँव और 60 प्रतिशत आबादी शहर में निवास करती है। लगभग सभी को यहाँ हिंदी भाषा का ज्ञान है। फ़ीजी देश को जवारों का शहर भी कहा जाता है क्योंकि इस देश के विकास की औसतन उम्र ही मात्र 27 वर्षों का है। फ़ीजी की राजधानी 'सुवा' बंदरगाह है। फ़ीजी में हिंदी, फ़ीजी और अंग्रेजी तीन प्रकार की आफ़िशियल भाषा को मान्यता प्राप्त है। लेकिन फ़ीजी की राजभाषा हिंदी है। यह भाषा मुख्यत: अवधी और भोजपुरी से विकसित होने के कारण सरल और मिठास भरी है। इसमें अन्य भारतीय भाषा का समावेश है। कुछ फ़ीजी और अंग्रेजी भाषा से शब्द उधार लिए गए हैं। हिंदी में भी कुछ ऐसे अनूठे शब्द हैं जिसे अपने पीढ़ियों के भाषा से लिये जाने के कारण 'फ़ीजी बात' नाम से संबोधित की जाती है।

यहाँ की हिंदी भी देवनागरी लिपि में लिखी गई (जो विश्व की वर्तमान लेखन प्रणाली के बीच सबसे वैज्ञानिक लेखन प्रणाली) भारत गणराजय की राष्ट्रीय आधिकारिक भाषा है और इसे दुनियाँ के सबसे व्यापक रूप से बोली जाने वाली भाषा के रूप में स्थान दिया गया है। फ़ीजी में हिंदी भाषा का व्यापक रूप से उपयोग फ़ीजी के आभिजात वर्ग, नौकरशाही और कंपनियों में कार्यरत कर्मचारियों के बीच प्रयोग में लायी जाती है।

फ़ीजी में हिंदी अपने लिखित रूप में विशेष महत्त्वपूर्ण है क्योंकि अधिकांश दस्तावेजों के अधिक से अधिक संस्करण अब हिंदी भाषा मे भी मिलते है। बोलचाल में अंग्रेजी के अपेक्षा लोगो को हिंदी बोलना अधिक पसंद है। वैश्विक स्तर पर जो भाषा को जमने के लिए जो सबसे महत्त्वपूर्ण एवं किसी भी भाषा की संप्रेषणीयता के लिए जरूरी माना जाता है। वह उस भाषा की निज अभिव्यक्ति कर पाने की क्षमता है। यदि कोई भाषा अपनी बात किसी अन्य गंतव्य तक पहुँचाने में असमर्थ है तो वह भाषा के उच्चतम स्तर का दर्जा प्राप्त नहीं कर सकती है। फ़ीजी में हिंदी सरल भाषा मानी जाती है।

फ़ीजी में हिंदी अधिकारी नियुक्त होते हैं। हिंदी अधिकारी या अनुवादक भारत सरकार की ऐसी संस्थाओं में नियुक्त होते हैं, जिनकी शाखाएँ-कार्यालय देश के कई भिन्न-भिन्न प्रदेशों में स्थित है। वहाँ एकता के लिए सबके लिए समान आदेश-अनुदेश जारी होते हैं। अत: उन सब के साथ एकता स्थापित करने के लिए हिंदी पर विशेष बल दिया जाता है और आयोगों द्वारा निर्मित एवं सरकार द्वारा स्वीकृत शब्दावलियों को ही काम में लाया जाता है। इसलिए फ़ीजी देश में भाषिक अराजकता का अभाव है।

फ़ीजी देश में हिंदी भाषा में ज्ञान-विज्ञान से संबंधित विषयों पर उच्चस्तरीय सामग्री का प्रयोग हो रहा है। देश की स्कूलों और कालेजों में पढ़ायी का उच्च स्तरीय रूप हिंदी भाषा के माध्यम से शुरू हो चुकी है। यही कारण है जहाँ 1992 में फ़ीजी के शिक्षा का स्तर जहाँ 49 प्रतिशत था आज वहाँ की शिक्षा, साक्षरता 100 प्रतिशत पूर्णता प्राप्त कर चुकी है। हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने का प्रयास सरकार कर रही है।

विगत कुछ वर्षों से नये-नये वैज्ञानिक प्रयोग की सामग्री हिंदी भाषा में प्रस्तुत करने की दिशा में फ़ीजी देश अग्रसर है। विगत वर्षों में यह भी देखने को मिला है कि फ़ीजी में सबसे अधिक 3,13,798 संख्या में लोग हिंदी भाषा बोलने लगे हैं। भारत के बाद यह आकड़ा दूसरे किसी देश फ़ीजी को प्राप्त है। यहाँ हिंदी भाषा मुख्यत: विचार-विनिमय का प्रमुख साधन है। भाषा के रूप में हिंदी न सिर्फ फ़ीजी की पहचान है बल्कि यह जीवन के संस्कृति, मूल्यों एवं संस्कारों की सच्ची संप्रेषक भी है। अपनी सहजता और सरलता की विशेषता के साथ हिंदी विश्व की संभवत: सबसे वैचारिक भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त कर चुकी है। फ़ीजी से भारत का संपर्क 100 वर्षों से भी ज्यादा सालों का है। यहाँ पर लोग गिरमिटिया के शक्ल में आये थे और वर्तमान में कई पीढ़ियों के बाद वह फ़ीजी देश का अभिन्न हिस्सा बन गये हैं और अपनी लायी भाषा हिंदी को राजभाषा का दर्जा भी प्रदान करवाकर भाषा की गरीमा को नई पहचान दिलायी है।

शुरुआती दिनों (1879 -1916) में फ़ीजी और भारत में अंग्रेजों का शासन था। भारत से करीब 60,000 मजदूरों को फ़ीजी लाया गया। जिनमें अधिकतर उत्तर-प्रदेश, मध्यप्रदेश और बिहार के थे। लेकिन आज गुलाम के रूप में आये संयुक्त राष्ट्र (2020) के अनुसार –**"फ़ीजी की जनसंख्या करीब 8,96,000 और उसमें 44 प्रतिशत से अधिक भारतीय मूल के हैं।"**[2]

'फ़ीजी हिंदी' फ़ीजी में बसे भारतीयों द्वारा विकसित हिंदी की नई भाषिक शैली है जो अवधी, भोजपुरी, फ़ीजियन, अंग्रेजी आदि भाषाओं के मिश्रण से बनी है। इसी के द्वारा फ़ीजी के प्रवासी अपनी भाव – व्यंजनाओं को अच्छी तरह प्रदर्शित करते हैं, उनकी अभिव्यक्ति

करते हैं। हिंदी भाषा के लगाव के कारण ही वहाँ साहित्यिक कृतियों का सृजन होने लगा। फ़ीजी के भारतवंशी साहित्यकारों ने अंग्रेजी भाषा के मोह को छोडकर हिंदी में अनेकों साहित्यिक कृतियाँ लिखी। जिनमें रेमंड पिल्लई का 'अधूरा-सपना और प्रो. सुब्रमनी का 'डउका पुराण' प्रमुख हैं। प्रो. सुब्रमनी की बृहत औपन्यासिक कृति 'डउका पुराण' ने इस रूढ़ि-बद्ध धारणा को निरर्थक साबित कर दिया है कि फ़ीजी की हिंदी भाषा अपूर्ण और टूटी-फूटी, व्याकरण हीन-भाषा हैं। जिसका प्रयोग केवल बोल-चाल के लिए ही उपयुक्त हो सकता है। फ़ीजी हिंदी पर अनेकों अग्रेजी के साहित्यकारों ने लिखा है। फ़ीजी के सृजनात्मक हिंदी साहित्य का इतिहास काफी पुराना हैं। यह साहित्य भारतीयों के फ़ीजी आगमन, उनके संघर्ष और विकास का दस्तावेज कहा जा सकता है। प्रवासी पीड़ा उनके साहित्य में समान्यत: मिल ही जाती है।

साहित्य का स्वरूप विभिन्न तरह के सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के कारण बदलता हुआ दिखता है। फ़ीजी के सृजनात्मक हिंदी साहित्य को हम तीन कालखंडों में बाँटकर देखते हैं तो पाते हैं कि फ़ीजी में भारतीयों के संघर्ष का एक व्यापक इतिहास है। 1879 से 1920 का काल सबसे संवेदना से भरा था। इस समय (1879) प्रवासियों को भारत से लाया गया था। एक लंबे संघर्ष के बाद सन 1920 में जब गिरमिटिया प्रथा का अंत हुआ तब यहाँ के शोषित प्रवासियों के नरकीय जीवन में खुशियाँ आयी। वह स्वतंत्र जीवन जीने और स्थायी रूप से फ़ीजी में बसने के अधिकारी हुये। यह कालखंड सृजनात्मक अभिव्यक्ति व कई दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इन वर्षो में प्रवासी भारतीयों की सृजनात्मक अभिव्यक्ति लोकगीतों में हुई जो साहित्यिक दृष्टि से उत्तम अभिव्यक्ति के साथ प्रवासी भारतीयों के गिरमिट जीवन का मौखिक दस्तावेज है। जिनका ऐतिहासिक और सामाजिक दृष्टिकोण से अधिक महत्व है। जिसमें मुख्यत: गिरमिट जीवन का कष्ट, निराशा, क्षोभ और ग्लानि है। गिरमिटों की अपमानजनक स्थिति से उबरने की आशा न देखकर हताशा और पीड़ा होता है। मानव चाहे गरीब या पैसो से भरा-पूरा, पढ़ा-लिखा हो या सम्मानित महापुरुष या सामान्य नागरिक वह अपने सुख और दुख को बाँटना चाहता है। 1879 में जब भारतीयों ने फ़ीजी का प्रवास किया तब अपने कठिन श्रम और रामचरित मानस की पोथी को अपने जीवन में शामिल किया। वह अपने दारुण जीवन के दुखों को गीतों में पिरोते थे और समूह में गाते थे।[3] उनकी पीड़ा इस प्रकार गीतों में व्यक्त हुयी है....**काली कोठरियाँ माँ बीते नहीं रतियाँ हो/ किसके बतायी हम पीर रे विदेशियाँ / दिन रात बीती हमरी दुख में उमरियाँ हो / सूखा सब नैनुआ के नीर रे विदेसिया।**[4] एक भोली-भाली भारतीय स्त्री अपने फ़ीजी पहुँचने की कथा इस प्रकार व्यक्त करती है कि **भोली हमें देख आरकाटी भरमाया हो/ कलकत्ता पार जाओं पाँच साल रे विदेसिया/ डीपुआ माँ लाए पकरायो काग दुआ हो, अंगुठवा लगाए दीना हाय रे बिदेसिया।**[5] आदि तरह गीत उल्लेखनीय हैं।

फ़ीजी पहुँचकर एक नए सुखमय जीवन की जो आशा थी, किंतु उसके स्थान पर रहने के लिए जो अंधेरी कोठरी मिली उसका दुख; आरंभिक साहित्यिक सृजन में प्रत्यक्ष दिखायी देता है। ये अभिव्यक्तियाँ इतनी मार्मिक इसलिए बन पड़ी हैं कि क्योंकि ये रचनाकार के भोगे हुए कष्ट और दुख हैं, वे दुखी मन की सच्ची स्मृति हैं। इनकी भाषा मानक हिंदी न होकर इन भारतीयों की अपनी हिंदी है जो मूलत: अवधी है किंतु उसमें भोजपुरी का मिश्रण है जिसे वहाँ के भारतीय 'फ़ीजी हिंदी' कहते हैं।

1920 से 1980 तक का समय फ़ीजी में सृजनात्मक हिंदी साहित्य का दूसरा चरण माना जाता है। साहित्य इस समय तक लोकमानस और जन भावनाओं, क्षोभ, उल्लास आदि से हटकर उत्साह और उल्लास मय हो चुका था। भारतीयों के मन में नए सिरे से जीवन जीने की लालसा और उसके साथ जूड़ी चिंता उनके मन में उठने लगी। भारतीयों ने इस काल-खंड में फ़ीजी को अपना देश स्वीकार लिया था।

देश के विकास में उन्हें अपना विकास दिखने लगा था। आजाद फ़ीजी में यह 1920 से 1980 का काल राजनीतिक दृष्टि के साथ सृजनात्मक हिंदी साहित्य के क्षेत्र में भी विशेष महत्व रखता है। गिरमिट प्रथा से मुक्त होते ही भारतीयों ने संगठित होकर रहने और एक दूसरे से जूड़े रहने के लिए पत्रकारिता के महत्व को समझा और हिंदी पत्र-पत्रिकाएं निकालना प्रारंभ किया। जागृति, फ़ीजी समाचार, जय फ़ीजी, बृद्धि, बृद्धिवाणी आदि अनेक हिंदी समाचार पत्र इस काल-खंड में निकाले गये। यहाँ तक कि अंग्रेज कंपनी फ़ीजी टाइम्स ने फ़ीजी में भारतीयों की बड़ी संख्या देखकर फ़ीजी टाइम्स का हिंदी संस्करण सन 1935 में पं गुरुदयाल शर्मा के संपादन में निकालने का आदेश दिया।

सन 1954 में फ़ीजी ब्रॉडकास्टिंग कापरेशन की स्थापना हुई और इस प्रकार पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन तथा रेडियो प्रसारण की सुविधा ने लेखकों और कवियों को लेखन की ओर प्रोत्साहित किया। विशाल स्तर पर फ़ीजी के विभिन्न विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा और साहित्य का शिक्षण भी प्रारंभ हुआ और हिंदी को फ़ीजी की प्रधान भाषा के रूप में सरकारी मान्यता मिली। इस काल का साहित्यिक फ़लक

बहुत विशाल है। अनेक नए कवि साहित्य क्षितिज पर उभरे। बदलती परिस्थितियों ने भारतीयों के मन में जो आशा का नव-संचार किया उससे अनेक नई और अच्छी रचनाएँ सामने आयी हैं। हिंदी पत्रिकाओं में उनका प्रकशन हुआ और वे देश के कोने-कोने तक पहुँची।[6] गिरमिट जीवन अभी भी साहित्य की मूल संवेदना का विषय बना रहा, किंतु अनेक नए विषयों पर कवियों ने लिखा। इस काल के प्रमुख कवियों में पं0 कमला प्रसाद मिश्र ने गिरमिट जीवन की यातनाओं को एक बालक के रूप में बहुत निकट से देखा था। उसकी मुखर अभिव्यक्ति उनके साहित्य में दिखायी देती है। इस काल-खंड में पूर्वजों की स्मृतियाँ देखने को मिलेंगी। राघवनंद शर्मा की एक कविता **'अगर तुम इस धरती पर न आए'** होते में लिखते हैं कि-

वीरा पड़ा था फ़ीजी, सिसकती थी खेतियाँ,
मुश्किल से खींच रही थी, शासन की डोरियाँ।
रोती रही यह धरत, भर करके हिचकियाँ,
तुमको बुला रही थी देकर दुहाइयाँ।।[7]

फ़ीजी में बसे भारतीयों ने फ़ीजी को अपना देश समझा, उसके चातुर्दिक विकास का संकल्प लिया। काशीराम कुमुद फ़ीजी के प्रसिद्ध हिंदी कवि हैं वे कहते हैं कि हमारे माता-पिता फ़ीजी आये, इस धरती को अपनाया और पंचतत्व में विलीन हो गये। इसलिए वह इस धरती को वह 'स्वर्ग-भूमि' की संज्ञा देंगे। वह लिखते हैं कि...

हम फ़ीजी माँ के लाल
कर उन्नत सफल दिखा देंगे
इस स्वर्गभूमि को मिलजुल के
जग का सिरताज बना देंगे।[8]

कवि शिवप्रसाद अपनी रचना 'गिरमिट की याद' में कहते हैं कि भारतीय शर्तबंदी प्रथा के अधीन फ़ीजी आये थे किंतु अब फ़ीजी उनका अपना देश है यही उनकी मातृभूमि है और यह देश सुख शांति का देश बने, जाति द्वेष मिटे और विश्व में फ़ीजी की शान बढ़े। वह लिखते हैं कि-

हमने इस देश को सींचा है,
इसलिए इसे अपनाया है।
फ़ीजी के अब हम वासी हैं,
ये ही जननी है, माता है।
आओ मिलकर बढ़े चले,
इस देश की शान बढ़ायें।
जाति द्वेष मत-भेद न लाये
शांति और सुधा बरसाये।[9]

इस काल खंड के प्रमुख कवि रामनारायण, हाँ मैं मंथरा हूँ, जोगिंदर सिंह कंवल का हम भारतीयों को, हमें जमीन दो और कितना अंधेरा है अभी, ईश्वरी प्रसाद चौधरी, का नंगोना, कमला प्रसाद मिश्र का प्रजातंत्र, यही है दुनियाँ, क्या मैं परदेसी हूँ, हमारा देश, यहाँ पहले सबेरा होता है, अमरजीत कौर का आजादी, फ़ीजी होये सदा महान, नेतराम शर्मा का हिंदी भाषा, सुखराम : हिंदी हमारी मातृभाषा, काशी राम कुमुद : हिंदी बिरवा, कंवल भारती का प्रथम उपन्यास 'सवेरा', 'धरती माता' (1976) और 'करवट' (1978) आदि प्रमुख प्रकाशित है।

फ़ीजी के साहित्यिक इतिहास का तीसरा काल खंड 1980 से प्रारंभ होता है। अब फ़ीजी के अधिक समाजों में भारतीयों की स्थिति सम्मानजनक थी। संपन्न, सुनिश्चित तो थे ही, वे फ़ीजी में प्रतिष्ठित पदों पर कार्यरत भी थे। फ़ीजी में सन 1986 में भारतीयों ने राष्ट्रव्यापी स्तर पर हिंदी दिवस का आयोजन किया जिससे संपूर्ण देश को भारतीयों के संगठित स्वरूप का परिचय मिला। इस बीच भारतीयों के निजी प्रयत्नों से अनेक हिंदी लेखकों की कृतियाँ का प्रकशन भी हुआ। फ़ीजी अपने नव-निर्माण लेकिन 1987 में हुयी राजनीतिक अशांति (सैनिक शासन लागू) का दौर लगभग 20 वर्षों तक चलता रहा। ऐसे में स्वभाविक ही था कि इस बदली हुई देश की राजनीतिक स्थिति में देश की साहित्यिक गतिविधियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इतना ही नहीं 1987 में हुई राजनीतिक अशांति देश में बढ़ती गई और भारतीयों के विरुद्ध शासन का दमन तेजी से हुआ। जोगिंदर सिंह ने अपनी कविता दर्द अपने-अपने में लिखा है कि-

कभी गिरमिट की आयी गुलाबी
कभी बाढ़ों ने मार दिया
कभी रंबुका कू कर बैठा
कभी स्पेट ने वार किया
बार-बार कठिनाइयों में फँसे
पर किसी के आगे हाथ न फैलाये
ऊबड़-खाबड़ पगडंडियों को
बड़े गौरव से पार किया।[10]

इस काल की रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता यही कही जाएगी कि देश के प्रमुख साहित्यकार फ़ीजी के महत्व को समझ रहे हैं। इस

काल खंड में मानक हिंदी तक प्रचुरताम रचनाएँ लिखी जाने लगी। यही कारण हैं कि फ़ीजी में यहाँ का साहित्य को लोकप्रिय है और अन्य देशों में प्रसिद्ध है। हिंदी की लोकप्रियता केवल फ़ीजी में ही नहीं बल्कि उसके आस-पास के पड़ोसी देशों में भी है। मॉरीशस, वियतनाम, सूरीनाम, कनाडा, आदि देश इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। फ़ीजी देश में हिंदी भाषा न सिर्फ प्राइमरी, सेकेंडरी, स्कूलों, और यूनिवर्सिटी में पढ़ायी जा रही है। संविधान के काम-काज में इसका प्रयोग अधिक से अधिक किया जा रहा है।

निष्कर्षत: हम देख सकते हैं कि प्रगति का नैसर्गिक स्वरूप यही है कि जब व्यक्ति की जड़ जम जाती है या जब वह आरोपित माध्यमों में रुचि नहीं लेता तो वह सृजनात्मक लेखन में पनपता है। फ़ीजी के साहित्य का मध्यकाल वस्तुत: एक संक्रमण काल था इसलिए वहाँ भाषा का द्वैत दिखायी देता है। फ़ीजी के सृजनात्मक साहित्य का इतिहास लगभग सवा सौ वर्षों का है और उसकी मूल संवेदना गिरमिटो का शोषित जीवन है जो आरंभ के लोकगीतों से लेकर आजतक लिखे जाने वाले साहित्य में अविच्छिन्न रूप में दिखायी पड़ता है। विछोह की पीड़ा, क्षोभ, कष्ट, ग्लानि, जहाँ प्रारंभिक रचनाओं में प्राय: मिलता है।

हिंदी का यह सौभाग्य रहा है कि भारत से लेकर अनेक देशों में हिंदी के शब्द-भंडार को बढ़ावा मिलता है। हिंदी प्रेम की, भाई-चारे की भाषा बनती जा रही है। चाहे फ़ीजी का बैंकिंग क्षेत्र हो, उदद्योग, टेलीकॉम कंपनी, भूमंडलीयकरण, विनियमन और सूचना प्रद्योगिकी आदि के क्षेत्र में हिंदी भाषा प्रवाहमान है। इस तरह यह स्पष्ट है कि तकनीकी विकास में हिंदी भाषा फ़ीजी राष्ट्र को विकास और रोजगार में नया स्वरूप प्रदान कर रही है। फ़ीजी और हिंदी के विकास के लिए शासन और समाज को हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के प्रति मित्रवत होना होगा ताकि जल्द से जल्द फ़ीजी की आर्थिक और राजनीतिक सफलता के लिए किसी अन्य भाषा पर निर्भर नहीं होना पड़े। फ़ीजी देश में कई स्वैच्छिक एजेंसिया हिंदी के ज्ञान को फैलाने में व्यस्त हैं। फिल्मों, रेडियों और सोशल मीडिया के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से उनके कार्यों में सहायता मिलती है। देश में सार्वभौमिक 'लिंगुआ फ्राइंका' के रूप में हिंदी के उद्भव का सूर्य फ़ीजी देश में चमक रहा है। फ़ीजी में हिंदी भाषा आम-आदमी के एकता को मजबूत कर रहा है। यह भाषा लोगों के बीच व्यवहार की भाषा है। वैश्वीकरण के दौर में हिंदी विश्व स्तर पर एक प्रभावशाली भाषा बनकर उभर रही है। सोशल मीडिया पर हिंदी फ़ीजी देश में लोकप्रिय है। लगभग दर्जनों अख़बार और टेलीविजन समाचार हिंदी भाषा में आम–आदमियों के लिए उपलब्ध हैं। हिंदी की लोकप्रियता पर भारत के राष्ट्रपति कोविन्द ने कहा था कि **"हिंदी अनुवाद की नहीं बल्कि संवाद की भाषा है। किसी भी भाषा की तरह हिंदी भी मौलिक सोच की भाषा है।"**[11]

फ़ीजी में 12वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन 15-17 फरवरी 2023 में प्रस्तावित है। यह पहला ऐसा अवसर होगा है कि जब किसी पैसिफिक क्षेत्र में इस प्रकार के सम्मेलन का आयोजन किया जाएगा। फ़ीजी में यह आयोजन हिंदी के प्रचार-प्रसार को अधिक विस्तारित करेगा। इस सम्मेलन के लिए एक वेबसाइट का निर्माण भी किया गया है जहाँ इस आयोजन संबंधी सभी जानकारी संपादित है। इस प्रकार किसी पैसेफिक क्षेत्र में इस तरह का आयोजन करने वाला फ़ीजी पहला देश बन गया। जिससे वहाँ के लोगों में हिंदी भाषा के प्रगति-प्रसार के लिए उत्सुकता उत्पन्न होगी। केंद्र सरकार अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के प्रसार-प्रचार के लिए फ़ीजी को समय-समय पर सहायता करती रहती है। जो हिंदी के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान देगा।

संदर्भ-ग्रंथ

डॉ0 कपिल द्विवेदी, आधुनिक भाषा विज्ञान, प्रकाशन- नई दिल्ली, पृ.सं- 34

-फ़ीजी का इतिहास, हिंदी कुंज, पत्रिका, पृ.सं-05

विमलेश कांति वर्मा, फ़ीजी का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, पत्रिका-साहित्य कुंज, पृ.सं – 66

- विमलेश कांति वर्मा, फ़ीजी का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, पत्रिका-साहित्य कुंज, पृ.सं –67

सुभाषिणी लता, फ़ीजी हिंदी साहित्य एवं साहित्यकार, पत्रिका-भारती दर्शन, पृ.सं - 03

सुभाषिणी लता, फ़ीजी हिंदी साहित्य एवं साहित्यकार, पत्रिका-भारती दर्शन, पृ.सं -24

राघवनंद शर्मा, अगर तुम इस धरती पर न आए (कविता), पृ.सं- 45

काशीराम कुमुद, स्वर्ग-भूमि, पृ.सं-16

शिवप्रसाद, गिरमिट की याद' पृ.सं-12

जोगिंदर सिंह, दर्द अपने-अपने, पृ.सं- 06

सहायकआचार्य,हिंदीविभाग,बाबासाहेबभीमरावअम्बेडकरविश्वविद्यालय, रायबरेली रोड, लखनऊ 226025 ई-मेल: drbaljeetsrivastava@gmail.com, मो. 9451087259

तुलसी का देश है फ़ीजी

डॉ. राकेश पाण्डेय

फ़ीजी फिरदौस अर्थात स्वर्ग तो है ही और हम भारतीयों के लिए यूँ तो हर गिरमिटिया देश खास है, लेकिन कुछ मायनों में फ़ीजी सबसे अलग है, चाहे भाषा की बात हो, भारतीय खानपान की बात हो अथवा भारतीय संस्कृति की बात हो। फ़ीजी भारत से हजारों किलोमीटर दूर है, लेकिन गिरमिटिया के रूप में पहुँचे भारतीयों ने जिंदगी की तमाम कठिनाइयाँ सहते हुए न केवल अपनी पहचान को कायम रखा बल्कि भारतीय संस्कृति को भौगोलिक विस्तार भी दिया। मैं इन गिरमिटिया देशों में हिंदी भाषा और बोलियों को लेकर वर्तमान में बहुत संकट देखता हूँ लेकिन फ़ीजी को देख कर आश्वस्ति भी होती है। भारत के बाहर फ़ीजी ही एक मात्र देश है जहाँ हिदी एक आधिकारिक भाषा है। वहाँ का सरकारी गजट हिंदी में भी प्रकाशित होता है। सरकारी प्रकाशनों में हिंदी भी दिखाई पड़ेगी।

यदि फ़ीजी को तुलसी का देश कहा जाए तो गलत नहीं होगा। यहाँ नौ लाख की जनसंख्या में लगभग 2000 रामायण मंडलियाँ हैं। रामायण का गायन व मंचन होता है। पूर्व प्रधानमंत्री श्री महेंद्र चौधरी ने रामायण पर हाथ रख कर प्रधानमंत्री पद की शपथ ली थी। फ़ीजी में रामायण का बहुत महत्व है, जब अंग्रेजों ने अपने साम्राज्य में जब ब्रिटेन की महारानी का वैभवगान किया, तो जवाब में भारतीय समुदाय ने कहा कि हमारी महारानी तो रामायण महारानी है। तभी से आज तक फ़ीजी में रामायण को रामायण महारानी कहा जाता है। रामायण तो फ़ीजी की सांस्कृतिक पहचान है, यहाँ लम्बासा नगर को अयोध्या कहा जाता है। फ़ीजी में कुछ वर्ष पूर्व अंतरराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन का भी आयोजन हुआ, सौभाग्य से मैं भी सम्मिलित हुआ। देश के विश्वप्रसिद्ध लेखक प्रोफेसर सुब्रमनी बातचीत में कहते हैं कि उन्होंने लिखना तो तुलसी से सीखा है। उनके दो वृहद उपन्यास 'डउका पुरान' और 'फ़ीजी मां' की भाषा भी तुलसी की भाषा है, जिसे यहाँ फ़ीजीबात कहते हैं, भारत में अवधी कहते हैं।

डउका पुरान उपन्यास का अंश इस प्रकार है, भाषा का स्वरूप देखिए।

कामिनी तिरछा आंखिस देख कै बोलिस,

'चोट्टा!'

हमार दिल धक से होइ गय। कुछ बोलत ना बना।

'घूरा करत हौ?'

'हम ना घूरित। खाली निहारित।'

कामिनी सोचे होइ केतना ढीठ होइ गवा फ़ीजीलाल।

'घूरो फ़ीजीलाल! हम कुछ ना बोलिब।'

'काहे?'

'अच्छा लगे जब तू घूरत हौ।'

मार्क टिविन ने मॉरीशस को देख कर कहा था कि ईश्वर ने पहले मॉरीशस को बनाया फिर उसकी नकल करते हुए स्वर्ग की रचना की, लेकिन मैं यह कहना चाहूँगा की मार्क टिविन ने फ़ीजी को नहीं देखा था अन्यथा वह शायद केवल मॉरीशस के लिए कहने से है रुक जाते।

फ़ीजी फिरदौस अर्थात स्वर्ग तो है ही और हम भारतीयों के लिए यूँ तो हर गिरमिटिया देश खास है, लेकिन कुछ मायनों में फ़ीजी सबसे अलग है, चाहे भाषा की बात हो, भारतीय खानपान की बात हो अथवा भारतीय संस्कृति की बात हो। फ़ीजी भारत से हजारों किलोमीटर दूर है, लेकिन गिरमिटिया के रूप में पहुँचे भारतीयों ने जिंदगी की तमाम कठिनाइयाँ सहते हुए न केवल अपनी पहचान को कायम रखा बल्कि भारतीय संस्कृति को भौगोलिक विस्तार भी दिया। मैं इन गिरमिटिया देशों में हिंदी भाषा और बोलियों को लेकर वर्तमान में बहुत संकट देखता हूँ लेकिन फ़ीजी को देख कर आश्वस्ति भी होती है। भारत के बाहर फ़ीजी ही एक मात्र देश है जहाँ हिदी एक आधिकारिक भाषा है। वहाँ का सरकारी गजट हिंदी में भी प्रकाशित होता है। सरकारी प्रकाशनों में हिंदी भी दिखाई पड़ेगी। हमारे देश में मॉरीशस की बात अधिक की जाती है क्योंकि इन देशों की तुलना में मॉरीशस नजदीक है, और भारतीयों की आवाजाही भी अधिक है। सरकार ने अनेक संस्थान खोले हुए है। फिर भी अन्य गिरमिटिया देश फ़ीजी की तुलना में हिंदी

के प्रचार-प्रसार में बहुत पीछे हैं। फ़ीजी में गैर भारतीय मूल के लोग भी हिंदी सीखते है। शांतिदूत समाचार पत्र 1935 से लगातार प्रकाशित होता रहा है, वर्तमान में बंद हो गया है। उसको पुनः प्रकाशित करने के प्रयास किए जा रहे हैं।

फ़ीजी की भौगोलिक विशेषता ये भी है कि यहाँ पर सूर्य की पहली किरण पडती है। जब मैं पहली बार फ़ीजी गया तो एक समारोह में एक स्थानीय व्यक्ति ने परिचय के दौरान मुझसे प्रश्न किया कि क्या आप जानते हैं? पृथ्वी पर सूर्य सबसे पहले प्रकाश कहाँ करते हैं? मैंने अनभिज्ञता के कारण सर हिलाया तो उन्होंने बड़े ही गर्व के साथ कहा कि हमारे देश में। इसका वर्णन वहाँ के राष्ट्रीय कवि पंडित कमला प्रसाद मिश्र ने अपनी कविता में भी किया है-

यहाँ सूरज पहले निकलता है और दूर अँधेरा होता है,
फ़ीजी फिरदौस है पैसिफिक का यहाँ पहले सवेरा होता है।

जब मैंने फ़ीजी को देखा नहीं था तो कल्पना थी कि यह भी अन्य गिरमिटिया देशों की भाँति होगा चाहे वह मॉरीशस हो, त्रिनिदाद हो अथवा सूरीनाम। इन देशों की यात्राएं पहले मैं कर चुका था,लेकिन जब जहाज नादी अन्तर्राष्ट्रीय एयरपोर्ट में उतरने की तैयारी कर कर रहा था, उसी समय एक बच्चे ने अफ्रीकी मूल के जहाज कर्मी से पूछा कि नादी कब आएगा ? तो जहाज कर्मी ने फ़ीजी हिंदी में बच्चे को उत्तर दिया कि तनी नीचे देखो बत्ती देखात बाटय। यह सुन कर मुझे बहुत सुखद आश्चर्य हुआ कि गैर भारतीय मूल का व्यक्ति भी फ़ीजी हिंदी बोल रहा है, यह हमारे गांव में बोली जाने वाली रामचरितमानस की भाषा अवधी थी। फिर मैं भी बहाने से अपनी मातृभाषा अवधी में बात करने लगा तो आश्चर्य हुआ कि वह न केवल समझ रहा था बल्कि बखूबी बोल भी रहा था। उस समय मैं विश्व अवधी सम्मेलन के फ़ीजी में आयोजन के संदर्भ में अग्रिम तैयारी हेतु सरकार द्वारा फ़ीजी भेजा गया था, अंतिम समय में सब तैयारियों के बाद यह सम्मेलन अपरिहार्य कारणों से स्थगित हो गया था जिसकी टीस अब भी फ़ीजी के भारतीय समाज में है। उस समय डॉ– प्रभाकर झा फ़ीजी में भारतीय उच्चायुक्त थे और श्री शरद कुमार द्वितीय सचिव थे। शरद कुमार जी जब मुझे नादी एयरपोर्ट लेने आये थे वह शाम का समय था। मुझे भी भारत से चले हुए 24 घण्टे से अधिक हो चुके थे, इसलिए विमान का खाना कई बार खाकर मन उकता चुका था। शरद जी ने लटूका स्थित होटल वाटर फ्रंट में रुकने का इंतजाम किया था, वहाँ भारतीय शाकाहारी थाली मिलती है। थाली में ठेठ बैंगन की सब्जी और अन्य दाल, सब्जी, रोटी इत्यादि खाना पाकर किसी विदेशी भूमि पर होने का अहसास समाप्त हो गया। जब मैं सुवा में बाजार घूमने निकला तो सब कुछ अपने सा ही, सड़क के बीच में 'फ़ीजी रेडियो देश की धड़कन' के रंगारंग प्रोग्राम हो रहे थे। जोर–जोर से हिंदी फिल्मों के गाने बज रहे थे, कुछ कलाकार गानों की धुन पर नाच रहे थे और जनता से कुछ प्रश्न पूछे जा रहे थे। जीतने वाले को छाता दे रहे थे, मैंने भी दो छाते जीते। मैंने यह जीवन्तता अन्य गिरमिट देशों में नहीं देखी है। यहाँ के दोनों विश्वविद्यालय जाने का अवसर मिला, हिंदी की कक्षाओं में जाने का मौका मिला। मैंने पाया हिंदी को खतरा तो है अंग्रेजी से, लेकिन अगर ये फ़ीजी हिंदी सशक्त रहेगी तो हिंदी का भविष्य भी सुरक्षित रहेगा अन्यथा भाषाई अंग्रेजीराज स्वत: कायम हो जायेगा। फ़ीजी में हिंदी के सन्दर्भ में एक अनुभव अवश्य साँझा करना चाहूँगा। मेरे स्वागत में शरद जी ने अपने निवास पर एक छोटी सी पार्टी का आयोजन किया। उसमें फ़ीजी के अनेक समाज के लोग थे, मैं नाम भूल रहा हूँ, एक तत्कालीन शिक्षा विभाग के उप सचिव फ़ीजी हिंदी में मुझसे बतिया रहे थे, फिर अचानक अंग्रेजी बोलने लगे तो मैंने टोका कि आप तो हिंदी में बोल रहे थे अब अंग्रेजी में क्यों बोलने लगे ? उनके उत्तर ने इन देशों में हिंदी को कमजोर होने का एक कारण बता दिया। उनका कहना था कि जो भारत से अधिकारी आते हैं वह बताते हैं कि हमारी हिंदी ठीक नहीं है। हम गंवारू हिंदी बोलते है। मैंने उन्हें आश्वस्त किया कि आपकी हिंदी तो बहुत अच्छी हैं, ये रामचरितमानस की हिंदी है। हमारे भारत के अनेक भाषा–भाषी इन देशों के दूतावासों में कार्यरत होते हैं, उनके ज्ञान की अपनी सीमा होती है, वह अपनी जगह ठीक है कि भारत की राजभाषा खड़ी बोली हिंदी है लेकिन अनजाने में वह इन देशो में हिंदी की आधार संरचना को कमजोर कर जाते हैं। हमें इन तथ्यों का ध्यान रखना चाहिए। फ़ीजी मुझे बहुत आकृष्ट करता है, क्योंकि गाँव की पृष्ठभूमि में हम जन्मे और संस्कारित हुए। वही निष्कपट हृदय लिए फ़ीजीवासी आपसे मिलते हैं।

फ़ीजी का एक और महत्त्वपूर्ण योगदान गिरमिट प्रथा की समाप्ति को लेकर भी है. गिरमिट प्रथा के उन्मूलन में तोताराम सनाढ्य का उल्लेख आवश्यक है, जो कि फ़ीजी में गिरमिटिया मजदूर के रूप में आये थे और उन्होंने 'फ़ीजी में मेरे 21 वर्ष पुस्तक' लिखी। जिसमें भारतीयों पर हो रहे अत्याचारों का वर्णन था. वह बनारसी दास चतुर्वेदी के माध्यम से गाँधी जी के सम्पर्क में आये और उन्होंने गाँधी जी को इतना प्रभावित किया कि सी. ऍफ़. एंड्रूज को गाँधी जी ने फ़ीजी भेजा. सी. एफ. एंड्रूज ने फ़ीजी से लौट कर एक रिपोर्ट तैयार की, जिसके आधार पर गाँधी जी ने अंग्रेजी हकूमत से बात कर गिरमिट प्रथा को समाप्त करने के लिए दबाव बनाया। फ़ीजी से तोताराम सनाढ्य लौटने के बाद जीवन भर गाँधी जी के पास रहे और उन्हीं के साबरमती आश्रम में ही उनकी मृत्यु भी हुई।

इस प्रकार गिरमिटिया देशों में एक खास स्थान रखता है। अंत में पंडित प्रताप चन्द की कविता देखिये, फ़ीजी प्रेम और अपनों से विछोह की पीड़ा, दोनों है-

नगोना हमसे छूटे न प्यारी,
देस छूटा जात छूटी,
छूटे बाप महतारी,
नगोना हमसे छूटे न प्यारी।

नगोना एक प्रकार का थोडा सा भांग की भाँति मादक पेय है, लेकिन फ़ीजी में इसका अतिथि के सत्कार में बड़ा ही महत्व है। किसी भी महत्त्वपूर्ण आयोजन में सत्कार नगोना द्वारा ही किया जाता है। इसका महत्व इसी से समझ सकते हैं कि जब भारतीय प्रधानमंत्री स्व. श्रीमती इंदिरा गाँधी एवं श्री नरेंद्र मोदी फ़ीजी गए तो उन्हें नगोना बहुत ही उत्सवपूर्ण तरीके से परोसा गया। मैंने भी नगोना चखा जिसका नशा आज तक कायम है कि फ़ीजी बिसरता ही नहीं। फ़ीजी भारतीय संस्कृति का भी फिरदौस है। यह देश राममय है, क्योंकि यह तुलसी का देश है।

5/23, गीता कॉलोनी, दिल्ली 110031

साहित्य की मुख्य धारा और प्रवासी साहित्य का अंतर्द्वंद्व

डॉ. अनुपम श्रीवास्तव

किसी भी कारण – परिस्थिति, प्रयोजन या प्रेरणावश, विदेशों में बसे भारतीयों को सामान्यतः प्रवासी भारतीय की संज्ञा दी जाती है। फिर वे चाहे भारतवंशी गिरमिटिया मजदूर हों, व्यापारी हों, बेहतर रोज़ी रोटी के अवसरों की तलाश में या अन्य कारणों से विदेश में जा बसे लोग हों, ये सब मिलकर प्रवासी भारतीय संसार की रचना करते हैं। विश्व के 48 देशों में रह रहे लगभग 2 करोड़ प्रवासी भारतीय, भारत की नागरिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अस्मिता का अभिन्न हिस्सा हैं। दूसरी तरफ अपने वर्तमान देशों के आर्थिक और राजनीतिक जीवन में ये अपनी उल्लेखनीय उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं। इनकी शैक्षणिक और व्यावसायिक दक्षता की दुनिया कायल है जो विश्व मंच पर भारत की निरंतर मजबूत होती उपस्थिति का महत्त्वपूर्ण कारक है।

साहित्य रचना की आलंबन-उद्दीपन परिस्थितियाँ और प्रेरणाएँ अक्सर बहुस्रोतीय होती है। माना जाता है कि किसी देश-काल में मौजूद साहित्यिक खाँचों, खेमों और घरानों के बावजूद उस देश-काल खंड का एक (या कुछ एक) मुख्य साहित्यिक स्वर अपने समय की आवाज़ बनते हैं जिसे मोटे तौर पर उस समय विशेष की 'मुख्य धारा' कहा जाता है। हालाँकि एक अवधारणा के तौर पर पर्याप्त प्रचलित होने के बाद भी मुख्य धारा शब्द के औचित्य को लेकर विद्वज्जगत में आम सहमति नहीं है क्योंकि इस रूप में यह उन अमुख्य या गौण धाराओं की ओर भी संकेत करता है जो परिस्थितिवश या फिर षडयंत्रवश विस्थापन, वंचना और उपेक्षा की शिकार हैं। कुल मिलाकर ग़ैर बराबरी के लेबलों में बँटा हुआ साहित्य। यहीं से साहित्य की मुख्येतर धाराओं के विमर्श और मुख्य धारा के साथ उनके संघर्ष की पटकथा का सूत्रपात होता है। फ़िलहाल इस आलेख के दायरे में हिंदी की तथाकथित साहित्यिक मुख्य धारा और इसके प्रवासी साहित्य का अंतर्द्वंद्व चर्चा का विषय है। इस चर्चा से पहले पारिभाषिक अवधारणा के रूप में मुख्य धारा शब्द के इतिहास पर दृष्टिपात् करना उपयुक्त होगा।

'मुख्य धारा' / 'मुख्यधारा' मूलतः अंग्रेज़ी शब्द 'mainstream' से जुड़ा है। मरियम वेबस्टर शब्दकोश के अनुसार इसका प्राचीनतम प्रयोग वर्ष 1599 में संज्ञा शब्द के रूप में मिलता है जहाँ इसका अर्थ a prevailing current or direction of activity or influence दिया गया है।[1] अंग्रेज़ी शब्दकोशों में यह शब्द विशेषण, क्रिया, संज्ञा तीनों रूप में दिखाई देता है। आधुनिक अवधारणा के तौर पर mainstream/ 'मुख्य धारा' शब्द लगभग सात दशक पुराना है। अनुमान है कि इस शब्द का सर्वप्रथम उपयोग वर्ष 1940 में संयुक्त राज्य अमेरिका के यथार्थवादी उपन्यासकार, नाटककार, आलोचक और अनुवादक विलियम डीन हॉवेल्स (1837-1920) ने किया।[2] कतिपय संदर्भ-सूत्रों के अनुसार वर्ष 1831 में इसकी शब्द छाया के इस्तेमाल का श्रेय स्कॉट् चिंतक थॉमस कार्लाइल (1795-1881) के उपन्यास Sartor Resartus में मिलता है।[3] कुछ अन्य शोध चिंतकों के अनुसार वर्ष 1911-1962 के दौरान अमेरिका में प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'जनता और मुख्यधारा' के माध्यम से अस्तित्व में आया। शुरुआती तौर पर यह शब्द विशेष रूप से कला और साहित्य के संदर्भ में प्रयुक्त होता था। बाद में इसका विस्तार समाजशास्त्र, कला-समीक्षा, संगीत, नृत्य, साहित्य, सांस्कृतिक भूमंडलीकरण, नागरिक जीवन, मनोरंजन उद्योग, जनसंचार, सूचना तकनीकी (वेब 2.0) आदि विषय क्षेत्रों में भी हुआ।[4]

मुख्य धारा वस्तुतः मानव जीवन से जुड़े किसी भी प्रासंगिक क्षेत्र की वह सामान्य कार्य प्रवृत्ति या प्रवृत्तियों या समुच्चय है जो व्यापक

रूप में स्वीकृत और प्रचलित है चाहे वह सामाजिक, सांस्कृतिक क्षेत्र हों या वैज्ञानिक, तकनीकी आदि। विशेष रूप से इस शब्द का प्रयोग साहित्य, कला और संस्कृति क्षेत्र में विद्यमान एक ऐसी गतिशील प्रवृत्ति के रूप में किया जाता है जो शेष धाराओं (प्रवृत्ति समूहों) की तुलना में बड़ी, सशक्त और लोकप्रिय है। दूसरे शब्दों में, यह किसी भी कार्य क्षेत्र की मुख्य प्रवृत्ति है और किसी देश-काल विशेष में प्रभावी एक फ़ैशन प्रवृत्ति है जिसकी वजह से अधिसंख्य लोग इसकी ओर उन्मुख होते हैं। उदाहरण के लिए, सोवियत समाजवादी गणराज्य काल में साहित्य सहित कला के लगभग सभी रूपों के संदर्भ में मुख्य धारा का मतलब समाजवादी यथार्थवाद था। पश्चिमी देशों के लिए 70 के दशक में हिप्पी आंदोलन सांस्कृतिक चेतना की मुख्य धारा बना जिसने जीवन शैली से लेकर कला, संगीत और सिनेमा तक विभिन्न क्षेत्रों में अपनी गहरी छाप छोड़ी। वर्तमान समय में सूचना क्रांति-प्रणीत ज्ञान, मनोरंजन और संवाद के पटल मुख्य धारा का निर्माण करते हैं।

मुख्यधारा के साथ सहज आकर्षण, प्रभाव, वर्चस्व और विस्तार के संदर्भ जुड़ते हैं। इसके साथ व्यापक स्वीकृति होती है या फिर सामान्य बहुमत होता है लेकिन बहुमत के आस-पास ही कुछ अल्पमत, समांतर मत या वैकल्पिक मतों की मौजूदगी भी होती है जो प्रकृति अथवा परिस्थितिवश मुख्यधारा का प्रतिरोध करते हैं और आगामी समय में इन्हीं में से कोई मत या तो स्वयं मुख्यधारा का लेबल पा लेता है या फिर मुख्यधारा में अपनी पहचान हासिल कर लेता है। भाषा-साहित्य के मामले में मुख्य धारा अक्सर शिष्ट धारा भी होती है। शिष्टाचार के साथ सुनिश्चित अनुशासन और परि-सीमन जुड़ा होता है इसलिए जो मुख्य धारा में है उसका वास्तव में लोकप्रिय, लोक व्यापक और लोक समर्थित भी होना ज़रूरी नहीं। इसीलिए मुख्य धारा सुविधाप्रद होने के बावजूद धीरे-धीरे एकरसता और नीरसता की मंथर धारा में तब्दील होती जाती है। इसके अलावा छोटे-बड़े समांतर साहित्यिक विमर्श भी मुख्य धारा के लिए चुनौती प्रस्तुत करते हैं। यह तस्वीर का एक फलक है जहाँ साहित्यिक सं-घटनाएँ विभाजन में दिखाई देती हैं लेकिन इसका प्रतिफलक भी है जहाँ विविधता के बावजूद संघटनाओं में परस्परता, सातत्य और सह अस्तित्व खोजा जाता है। इस नज़रिये से सवाल यह उठता है कि क्या वास्तव में ऐसी मुख्य-गौण-समांतर धाराओं का सचमुच अस्तित्व होता है या ये साहित्यिक राजनीति के खेमे मात्र हैं? हिंदी साहित्य की मुख्यधारा और प्रवासी हिंदी साहित्य का संबंध ऐसी ही कुछ जटिल गुत्थियों के सुलझाए जाने की अपेक्षा रखता है।

सामान्य धारणा के अनुसार हिंदी के संदर्भ में मुख्य धारा का साहित्य वह है जो भारत में भारतीय लेखकों द्वारा लिखा जा रहा है। उसके पाठक कौन, कहाँ, कितने हैं? वे साहित्य से क्या चाहते हैं, उसे कैसे उलटते-पुलटते हैं? और साहित्य के धारों में उनकी मौजूदगी का नोटिस कितना है? यह फ़िलहाल मायने नहीं रखता क्योंकि रो-ज़ी-रोटी, रसूख़ और राजनीति आदि तमाम दुविधाओं के कारण हिंदी की सिकुड़न को बार-बार महसूस किया जाता है। दूसरी ओर पॉपुलर, डिज़ायनर और हाइब्रिड साहित्य का बाज़ार पूरी गहमा-गहमी के साथ सजा-धजा है। अधिसंख्य लेखकों के लिए मुख्य धारा स्वीकृति, स्थान-प्राप्ति और सुरक्षा का आश्वासन है लेकिन इस धारा के विपरीत और समांतर तैरने वाला साहित्य लेखन भी है। हिंदी साहित्य का वैश्विक विस्तार उसके प्रवासी साहित्य के साथ संभव होता है लेकिन लंबे समय तक प्रवासी साहित्य को साहित्य मानने-न मानने के ही मोर्चे खुले रहे। प्रवासी साहित्य, हिंदी साहित्य की मुख्य धारा का अंश है या मुख्य धारा से इतर धारा है? - यह सवाल आज तक मौज़ूं बनाये रखा गया है तो हिंदी के हक़ में इससे क्या उपलब्धि हासिल हुई? यह बात भी विचार-योग्य है।

किसी भी कारण – परिस्थिति, प्रयोजन या प्रेरणावश, विदेशों में बसे भारतीयों को सामान्यतः प्रवासी भारतीय की संज्ञा दी जाती है। फिर वे चाहे भारतवंशी गिरमिटिया मजदूर हों, व्यापारी हों, बेहतर रोज़ी रोटी के अवसरों की तलाश में या अन्य कारणों से विदेश में जा बसे लोग हों, ये सब मिलकर प्रवासी भारतीय संसार की रचना करते हैं। विश्व के 48 देशों में रह रहे लगभग 2 करोड़ प्रवासी भारतीय, भारत की नागरिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अस्मिता का अभिन्न हिस्सा हैं। दूसरी तरफ अपने वर्तमान देशों के आर्थिक और राजनीतिक जीवन में ये अपनी उल्लेखनीय उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं। इनकी शैक्षणिक और व्यावसायिक दक्षता की दुनिया कायल है जो विश्व मंच पर भारत की निरंतर मजबूत होती उपस्थिति का महत्त्वपूर्ण कारक है।[5]

प्रवासी भारतीयों का अब विदेश में कई पीढ़ियों पुराना इतिहास है। व्यावहारिक तौर पर विदेश ही अब इनका अपना घर है। प्रवासी भारतीयों ने विदेश में अपनी भाषा-संस्कृति और परंपराओं को ज़िंदा रखने के लिए जी-तोड़ प्रयत्न किए हैं। आज भी कर रहे हैं। स्थानीय भाषा-समाज और संस्कृतियों के साथ जुड़कर ये बहुत हद तक बदले हैं लेकिन अनदेखे भारत का चाव और उसके प्रति जुड़ाव का भाव इनमें बरकरार है। घर की सीमा के बाहर-भीतर के तमाम द्वंद्व सहकर भी अपने अंदर अपने भारत को बचाकर रखा है। विदेश में जाने वाले

किसी भी व्यक्ति के लिए अस्मिता और अभिव्यक्ति का मुद्दा एक बड़ा सवाल होता है। यह सवाल तब और भी बड़ा हो जाता है जब उसके पास वापस लौटने का विकल्प न हो। इस स्थिति में परंपरा से अर्जित आस्था और अकेलेपन से रचा गया साहित्य ही उसको जीने और आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। यह बात प्रवासी साहित्य की रचना के संदर्भ में बहुत गहरी अनुगूँज के साथ महसूस की जा सकती है।

अमेरिका में बसी वरिष्ठ साहित्यकार सुषम बेदी अपने साहित्यिक अनुभव को कुछ इस प्रकार कहती हैं –

> "मुझे लगता है कि जिस तरह से आज तक हम किसी भी साहित्य के स्वरूप या अवधारणा की बात करते रहे हैं। प्रवासी साहित्य को लेकर उस तरह बात नहीं की जा सकती या कहूँ कि वह एक सही कसौटी नहीं है या एक सही तरीका नहीं है प्रवासी साहित्य के बारे में बात करने का। मेरे लिये प्रवासी साहित्य एक विकास यात्रा है। यानि कि ज्यों-ज्यों भारतीय विदेश जाते गये और वहीं बसने लगे और अंतत: जो भारत की भाषा वे साथ ले गये थे, उनमें वे अपनी अभिव्यक्तियाँ भारतवासियों तक पहुँचाने लगे तो वहीं से प्रवासी साहित्य का जन्म हुआ।
>
> हमारा अभिप्राय यहां हिंदी में लिखने वालों से ही है। सबसे पहले भारत से बाहर जाने वाले वे गिरमिटिया मजदूर थे जो गयाना, सूरीनाम, फ़ीजी, ट्रिनिदाद तथा दक्षिण अफ्रीका 19वीं सदी के मध्य से गये और फिर वही बस गये। डॉ. कमल किशोर गोयनका ने विस्तार से अपनी पुस्तक हिंदी का प्रवासी साहित्य (स्वराज प्रकाशन 2017) में इस साहित्य की चर्चा की है। अब इन देशों में इन गिरमिटियों की चौथी-पांचवी पीढ़ी चल रही है। हिंदी से वे अभी भी जुड़े हैं और उसमें साहित्य रचना भी जारी है। जबकि सच्चाई यह भी है कि ज्यों-ज्यों नयी-नयी पीढ़ियां आती जा रही हैं वे हिंदी से दूर ही होती जा रही हैं इसलिये साहित्य रचना में नयी पीढ़ियां कितनी संलग्न होंगी यह भविष्य की गोद में छिपा है।"[6]

सुषम बेदी के इस बयान में एक ओर प्रवासी साहित्य की लंबी रचना यात्रा के सूत्र-संदर्भ हैं तो दूसरी ओर इसके वर्तमान और भविष्य की चिंता के संकेत भी। प्रवासन को विस्थापन का लगभग पर्याय मानकर वे प्रवासी साहित्य के संघर्ष और चुनौतियों को व्यापक संदर्भ में विश्लेषित करती हैं। उनकी निगाह गिरमिटिया साहित्य से लेकर स्वातंत्र्योत्तर एवं समकालीन प्रवासी साहित्य पर समान रूप से पड़ती है। भारत में हिंदी साहित्य की स्वघोषित मुख्य धारा में प्रवासी लेखकों को लेकर बरती जाने वाली उदासीनता पर उनका कहना है –

> "... तब मैं सोचती थी कि हिंदी के लेखक कहलाने लायक लोग वही हैं जो भारत में छपने वाली मुख्य साहित्यिक पत्रिकाओं में छपते हैं, वही असली कसौटी है और जो नहीं छपते वे खुद को चाहे कितना भी लेखक कहते रहें, उनका लेखन यूँ ही है।"

वास्तव में हिंदी का प्रवासी साहित्य दुधारे का साहित्य है। इसके साहित्यिक अंतर्द्वंद्व की जड़ें इसे रचने वाले साहित्यकारों के मनोबौद्धिक अंतर्द्वंद्व में निहित हैं। मुख्य धारा के कुछ आलोचकों की नज़र में प्रवासी साहित्य नॉस्टेल्जिया का साहित्य है। लेकिन इसे कोरे अतीत के व्यामोह के तौर पर प्रस्तुत करना आलोचना का सुविधाजनक सरलीकरण है जिसमें न तो साहित्यिक निरीक्षण की वस्तुनिष्ठता है और न साहित्यिक भाव-संवेदना की परख। प्रवासी साहित्य को उसकी समग्रता में पढ़ने के लिए निरंतर प्रयासरत कमल किशोर गोयनका की टिप्पणी इस संदर्भ में अधिक संतुलित जान पड़ती है –

> "प्रवासी साहित्य हिन्दी का साहित्य है जिसका रंग-रूप, उसकी चेतना और संवेदना भारत के हिन्दी पाठकों के लिये नई वस्तु है, एक नये भाव-बोध का साहित्य है, एक नई व्याकुलता और बेचैनी का साहित्य है जो हिन्दी साहित्य को अपनी मौलिकता एवं नये साहित्य संसार से समृध्द करता है। इस प्रवासी साहित्य की बुनियाद भारत-प्रेम तथा स्वदेश-परदेश के द्वन्द्व पर टिकी है।"

प्रवासी लेखन में पहचान का प्रश्न इसकी साहित्यिक बुनावट का मूल तंतु है। प्रवासी अपनी स्थानिकता, भाषा, संस्कृति, परंपरा और समाज की एक ज़मीन छोड़कर दूसरी नई ज़मीन से जुड़ने का उद्यम करता है। इस उद्यम में नई ज़मीन पर जीविका और अस्तित्व का श्रम-संघर्ष अनेकानेक चुनौतियाँ पेश करता है। उसी तरह संवाद और अभिव्यक्ति के प्रश्न भी कम चुनौतीपूर्ण नहीं होते। सुषम बेदी इसे जीवन शैली, सोच-विचार और भाषागत भिन्नता से जन्मे 'कल्चरल शॉक' के रूप में देखती हैं। सांस्कृतिक मूल्यों की टकराहट प्रवासी साहित्य के कथ्य की मुख्य भावभूमि बनती है। 'काबा मेरे पीछे है कलीसा मेरे आगे' की तर्ज पर प्रवासी लेखक अपने रचनाकर्म में दो खिंचाव बिंदुओं का तनाव झेलता है। यही तनाव उसके लेखन को वृहत्तर मानवीय मूल्यों, अंतर-सामाजिक/सांस्कृतिक सरोकारों और अंदर-बाहर के संघर्षों का

सहगामी बनाता है, जो किसी भी श्रेष्ठ साहित्य की पहचान है। इंग्लैंड में सृजनरत साहित्यकार तेजेंद्र शर्मा केवल विदेशों में स्थायी रूप से रहने वाले लेखकों के साहित्य को प्रवासी साहित्यकार बताने की धारणा का विरोध करते हैं। स.वा. अज्ञेय, निर्मल वर्मा, उषा प्रियंवदा जैसे अनेक प्रतिष्ठित साहित्यकार अपने सीमित विदेश प्रवास अनुभव के वावजूद प्रवासी भावभूमि वाली उल्लेखनीय कृतियाँ रचते दिखाई देते हैं। अमेरिकावासी पत्रकार-कथाकार सुधा ओम ढींगरा प्रवासी साहित्य के वर्गीकरण के विचारणीय बिंदुओं को समझाते हुए कहती हैं –

> "प्रवासी साहित्य दो तरह का होता है एक गिरिमिटिया मजदूरों का दूसरा 60 के दशक के बाद यूरोप और अमेरिका के प्रवासी साहित्यकारों का। प्रवासी साहित्य को परिभाषित करते हुए हमें यह भी तय करना होगा कि प्रवासी साहित्य वह है जो प्रवास में रहकर लिखा गया है या वह जो वहां के मूल तत्वों के केंद्र में रखकर लिखा गया है? ... आलोचकों द्वारा साहित्यकारों को प्रवासी कहकर खारिज कर दिया जाता हैं जो चिंता का विषय है जबकि आवश्यकता इन साहित्यकारों के कथ्य और शिल्पगत नवीनता पर ध्यान देने की है।"[7]

तो क्या किसी साहित्य के 'प्रवासी साहित्य' होने का आधार रचनाकार के पासपोर्ट के बजाय भाव संवेदना को बनाया जाए? यह चिंतन-योग्य प्रश्न है। यही प्रश्न गाहे-बगाहे हिंदी के दलित, स्त्री, आदिवासी आदि विमर्शमूलक साहित्यों को लेकर किया जा रहा है कि क्या किसी विमर्श-धारा विशेष का लेखक होने का दर्जा पाने के लिए उसके लक्षित वर्ग का सदस्य होना ज़रूरी है या फिर लेखक में उस विमर्श की भाव संवेदना और रचनादृष्टि होना ज़रूरी है? निस्संदेह प्रवासी साहित्यकारों ने हिंदी के कलेवर में कथ्य और अनुभूति के नये रचनादर्शी आयामों को जोड़ा है। फिर भी तमाम कृतियाँ और रचनाएँ ऐसी भी हैं जो विषयस्तु में एकरसता और भाव-संवेदना के लिहाज से अस्थिरता की शिकार हुईं। आलोचक सुधीश पचौरी प्रवासी साहित्य में एक ऐसा विभक्त भाव देखते हैं जो 'एक ही वक्त में दो दुनियाओं को पुकारता है।' इसमें एक तरफ़ डॉलर कमाने की आकांक्षा है दूसरी ओर अपने गाँव की मिट्टी का मोह भी। दुर्गा प्रसाद गुप्त प्रवासी साहित्य की गहराई में ऐसा भारतीय मन देखते हैं जो अपने भारत के प्रति विरक्त भाव से अनुराग-विराग को पालता है। श्यामा चरण दुबे प्रवासी जीवन की अन्यमनस्कता को कुछ अधिक 'लाउड' होकर प्रस्तुत करते हैं –

> *''ये वे लोग हैं जो विदेशों में भारतीय और भारत में विदेशी जीवन शैली और मूल्यों के साथ जीते हैं। उनकी जड़ें भारतीय परम्परा में नहीं होती, पर साथ ही उनका पश्चिमीकरण भी बहुत सतही स्तर वाला होता हे। वे पश्चिमी संस्कृति के बाह्य लक्षणों का अनुकरण करते हैं, पर गहराई में जाकर उसकी आत्मा से साक्षात्कार करने से कतराते हैं। साथ ही वे पश्चिमी संस्कृति के सुख-सुविधा और स्वच्छंदता तो चाहते हैं पर उससे होने वाला सांस्कृतिक अवमूल्यन उन्हें चिन्तित करता है।''*[8]

उपर्युक्त कथन की तीव्रता की पुनः आलोचना की जा सकती है, पूर्णतः असहमत भी हुआ जा सकता है लेकिन प्रवासी साहित्य के अतर्द्वंद्व को परखने के लिहाज से इसे नज़रअंदाज़ करना उचित नहीं होगा। प्रवासी हिंदी साहित्य का संसार बहुत बड़ा और विविधतापूर्ण है। इसलिए इसके अंतर्द्वंद्व के संदर्भ भी किसी एक चश्मे से नहीं देखे जाने चाहिए। गिरमिटिया भारतीय मजदूरों के वंशजों और यूरोप-अमेरिका में रह रहे 'हिंदी पट्टी' वाले एनआरआई भारतीयों के अलावा भी प्रवासी साहित्य अनेक अनदेखे, अनचीन्हे इलाक़े हैं जिनकी बेचैनी और संघर्ष के दस्तावेजों को रोशनी में लाया जाना बाक़ी है। प्रवासी साहित्य में दो भिन्न संस्कृतियों के संवाद-संघर्ष/सम्मिलन की परिणति में या तो एक धारा का दूसरी में अंतर्भाव हो जाता है या फिर दोनों के समावेश से एक नयी अनुभव धारा आकार लेती है। यह भारतीय संस्कृति का विशिष्ट गुण है जिसने अन्य संस्कृतियों को निरंतर आकर्षित और प्रभावित किया है। कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी शेर में इक़बाल जिस 'बात' की ओर इशारा करते हैं वह भारतीय संस्कृति की अनन्य समन्वय और समावेशन शक्ति है जिसके कारण भाषा और साहित्य थोड़े-बहुत परिवर्तन के बावजूद अपना मौलिक अस्तित्व जिलाए रखते हैं। प्रवासी साहित्य के दायरे में मॉरीशस, सूरीनाम, ट्रिनिडाड-टुबेगो, अमेरिका, कनाडा, इंग्लैंड, जर्मनी में लिखे जा रहे हिंदी साहित्य और उसके लेखकों की चर्चा के साथ ही अब निकटवर्ती नेपाल, श्रीलंका से लेकर मध्य-पूर्व खाड़ी देशों और रूस, चीन, जापान, द. कोरिया, शेष यूरोप, अफ़्रीका, आस्ट्रेलिया, द. अमेरिका आदि में जहाँ-तहाँ मौजूद प्रवासी साहित्य के नये अध्यायों पढ़े-लिखे और परखे जाने की आवश्यकता है।

प्रवासी हिंदी साहित्य, हिंदी के अंतरराष्ट्रीय क्षितिज की पहचान है। अपने संपूर्ण स्थानिक संघर्ष और अस्तित्व की बेचैनी और मान्यता के संप्रश्नों के बावजूद इस साहित्य ने रचनात्मक अनुभूति और अभि-

व्यक्ति के उल्लेखनीय उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। इंग्लैंड में सक्रिय हिंदी लेखिका ऊषा राजे सक्सेना मुख्य धारा के सापेक्ष प्रवासी हिंदी साहित्य की विशिष्टता को इस प्रकार रेखांकित करती हैं –

> "प्रवासी भारतीय रचनाकारों की लेखन-शैली, शब्द-संस्कृति, संवेदना, सरोकार और स्तर मुख्यधारा के लेखन से भिन्न रही है। इसी भिन्नता के कारण प्रवासी हिंदी लेखन ने हिंदी साहित्य के मुख्यधारा के पाठकों को एक नई दृष्टि, एक नई चेतना, एक नई संवेदना और एक नई उत्तेजना भी दी है।" [9]

ऊषा जी प्रवासी रचनाकारों से अपने साहित्य की पहचान और प्रासंगिकता बनाए रखने के लिए इसके रचनात्मक कैनवास को और व्यापक बनाने की अपेक्षा करती हैं। वस्तुतः प्रवासी साहित्य के सामने साहित्यिक पहचान और मान्यता का संकट अब नहीं है। वह कार्य प्रवासी साहित्यकारों के श्रेष्ठ लेखन और सचेष्ट उद्यमों द्वारा अब पूरा हो चुका है। रामदरश मिश्र, कमल किशोर गोयनका और मृदुला गर्ग आदि वरिष्ठ साहित्यकारों ने इस साहित्य की मुक्त कंठ प्रशंसा की है। आवश्यकता इस बात की है कि इसकी विशिष्ट साहित्यिक पहचान के साथ हिंदी की मुख्य धारा के साथ इसका समावेश या अंतर्भाव कैसे किया जाए? निश्चित तौर पर इसके लिए कोई पब्लिक गज़ट प्रकाशित नहीं होता, न होगा। बल्कि भारत और विदेशों में इसके लिए गंभीर काम कर रहे कृती रचनाकारों, विद्वान आलोचकों और उद्यमी प्रकाशकों/ कार्यक्रम-आयोजकों को परस्पर संवाद का और बेहतर वातावरण तैयार करना होगा। जिससे न केवल प्रवासी भाव-भूमि पर काम करने वाले वर्तमान लोगों के लिए बेहतर माहौल तैयार हो बल्कि नयी पीढ़ी का भी अपने साहित्यिक दाय के साथ सकारात्मक जुड़ाव संभव हो सके। यह भी ग़ौरतलब है कि विदेशों में बसे भारतीय-मूल के लोगों की नई पीढ़ियों का हिंदी और भारत से आत्मिक जुड़ाव अब धीरे-धीरे कम हो रहा है इस स्थिति में एक साहित्यिक धारा के रूप में प्रवासी लेखन का रचनात्मक भविष्य क्या होगा? मुख्य धारा के संदर्भ में उसकी उपस्थिति और अस्तित्व का स्वरूप कैसा होगा? आशंका यह भी जताई जाती है कहीं विदेशों में लिखा जाने वाला हिंदी साहित्य या प्रवासी हिंदी साहित्य ख़त्म न हो जाए। इसलिए प्रवासी साहित्य के आत्मीय अतीत और आज के चाकचक्य के बावजूद ज़रूरत इस बात की भी महसूस की जानी चाहिए कि विदेशों में पल रही नयी पीढ़ी को भारत और हिंदी की संवेदना के कैसे जोड़े रखा जाए और कैसे उसे भविष्यगामी संदर्भों के साथ आगे बढ़ाया जाए? साथ ही ज़रूरत प्रवासी साहित्य के रचनात्मक एवं आलोचनात्मक पठन-पाठन को बढ़ाने की भी है ताकि यह अपनी पूरी सामर्थ्य और संभावनाओं के साथ निरंतर विकसित होता रहे और अपनी प्रासंगिकता बनाए रख सके।

साहित्य-समाज के प्रवाह में मुख्य धारा का अस्तित्व चाहे वास्तविक हो या जानबूझकर गढ़ा हुआ, लेकिन अगर मुख्य धारा जैसी कोई धारा किसी देश-काल में मौजूद मानी जाती है तो उसके साथ सहवर्ती/ गौण धारा(ओं) के परस्पर संबंध की आदर्श स्थिति क्या होगी, जिसमें वे अपना अस्तित्व, अपनी गरिमा और पहचान को बरकरार रखते हुए कैसे बनाए रख सकती है? मुख्यधारा और प्रवासी साहित्य के अंतर्द्वंद्व और अंतस्संबंध को लक्षित करते हुए पत्रकार राजेंद्र राजन द्वारा उनके आलेख 'साहित्य का भूगोल' में दिल्ली (हिंदी की मुख्य धारा) के हवाले से उल्लिखित यह बात मुझे बहुत प्रासंगिक लगती है कि "दिल्ली को साहित्यमय होना चाहिए लेकिन साहित्य को दिल्लीमय नहीं होना चाहिए।" [10]

संदर्भ :

1 <https://www.merriam-webster.com/dictionary/mainstream#h1>

2 <https://ik-ptz.ru/hi/obschestvoznanie/meinstrim-opredelenie-meinstrim-v-literature---chto-eto-takoe.html>

3 <https://www.etymonline.com/word/mainstream>

4 <https://fluxdeconnaissances.com/information/page/read/33000-what-is-the-meaning-of-main-stream>

5 <https://navbharattimes.indiatimes.com/world/america/indian-origin-people-are-in-leadership-positions-in-15-countries-said-indiaspora-report/articleshow/80938952.cms>

6 <https://www.garbhanal.com/pravasi-literature-a-development-journey>

7 <https://www.naidunia.com/madhya-pradesh/sehore-sehore-news-993385>

8 <https://www.rachanakar.org/2018/03/blog-post_6.html>

9 <https://hindimedia.in/diaspora-hindi-literature-various-context-of-senses-context/>

10 < https://samtamarg.in/2021/03/23/geography-of-literature/>

सहायक प्रोफ़ेसर, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा
anupam.khsagra@gmail.com | अनुपमश्रीवास्तव@डाटामेल.भारत

प्रवासी हिंदी साहित्य के बदलते प्रतिमान

डॉ. प्रियदर्शिनी दुबे

फ़ीजी में हिंदी का आगमन गिरमिटिया मजदूरों के प्रथम दल के साथ 15 मई, 1879 ई. से माना जाना उचित रहेगा। तब से 1916 ई. तक लगातार भारतीय शर्तबंद स्त्री-पुरुष मज़दूर वहाँ ले जाए जाते रहे और उनके आगमन के साथ ही हिंदी बोलने वालों की संख्या फ़ीजी में निरंतर बढ़ती रही। आज हिंदी यहाँ के बहुसंख्यक समाज की भाषा है। मॉरीशस में जिस तरह भोजपुरी खड़ी हिंदी के विकास में सहायक हुई, उसी प्रकार फ़ीजी में पर्वी हिंदी का अवधी और ब्रज सम्मिश्रित रूप अधिक प्रखरता के साथ कई पत्र-पत्रिकाएँ भी फ़ीजी से निकलीं, जिनमें 'हिंदीमिलाप, 'मनोरमा वार्षिकी' आदि प्रमुख हैं। फ़ीजी को ब्रिटिश शासन से मुक्ति 10 अक्टूबर, 1970 ई. में मिली। यह देश बहुलतावादी संस्कृति को अपनाए हुए हैं। आज फ़ीजी की प्रशासन व्यवस्था भारतीय मूल की जनता के हाथों में है।

सूचना क्रांति व सोशल मीडिया की वजह से वैश्विक समाज आज बहुत छोटा प्रतीत होने लगा है। व्यक्ति आज अपना विचार प्रकट करने के लिए स्वतंत्र है। किसी भी नव्य रचना या घटना पर त्वरित प्रतिक्रियाओं से आलोचना के संदर्भ भी लगतार बदलते जा रहे हैं। जहाँ तक प्रवासी साहित्य के प्रतिमानों की वस्तु स्थिति का प्रश्न है वह भी निरंतर बदलाव के साथ हमारे सामने दिखाई पड़ रही है। आज सर्वाधिक आवश्यकता समकालीन रचनाशीलता की प्रवृत्तियों की पहचान कर आलोचना के प्रतिमान निर्मित किए जाने की है, जिससे रचनाकर्म एवं आलोचना की भावी दिशा सही गंतव्य की ओर बढ़ सके। प्रवासी साहित्यकारों की समस्याएँ अपने-अपने देश के हिसाब से अलग-अलग हैं। हम मॉरीशस के साहित्कार के सरोकारों की ब्रिटेन के सरोकारों से तुलना नहीं कर सकते। यूरोप और खाड़ी देशों के लेखक एक अलग ही दुनिया में जीते हैं। अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, सिंगापुर इन सभी की मूलतभूत समस्याएँ सर्वथा भिन्न-भिन्न है। प्रवासी हिंदी साहित्यकारों के सामने सबसे विकट समस्या तो उनकी स्वीकृति की ही रही है। क्या बड़े क्या छोटे सभी नामचीन आलोचकों ने प्रवासी हिंदी साहित्य को सदैव दोयम दर्जे का साहित्य ही माना है लंदन के प्रवासी साहित्यकार श्री तेजेन्द्र शर्मा के शब्दों में "हमें बहुत मेहनत करनी पड़ी ताकि हमारे साहित्य को गुणवत्ता के आधार पर परखा जाए। बिना पढ़े नकारे जाने के दर्द से मुक्ति के लिए हमें खासा संघर्ष करना पड़ा"

प्रवासी हिंदी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में फ़ीजी, मॉरीशस, सूरीनाम देशों को देखें। इन देशों में हिंदी का प्रारंभ 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से ही माना जाना चाहिए क्योंकि गिरमिटिया मजदूरों के साथ उनकी भाषा, संस्कृति तथा धार्मिक आस्थाएँ भी उन देशों की भूमि पर पहुँची। ये लोग जब भारत से चले तो रामचरितमानस, महाभारत, हनुमान चालीसा, ग्रामीण किस्से-कहानियाँ आदि भी इनके साथ इन अनजान देशों में आ पहुँची। दिन-भर कठिन परिश्रम करने तथा अपमान सहने के पश्चात रात में ये मजदूर अपनी थकान मिटाने के लिए एक साथ बैठकर रामचरितमानस, हनुमान चालीसा आदि का पाठ करते थे। दिन-भर की आप बीती एक दूसरे को बताते थे। तीन सामूहिक सभा से 'बैठका' की उत्पत्ति हुई, जहाँ ये मजदूर अपने बच्चों को भारतीय संस्कृति व धार्मिक, नैतिक शिक्षा तथा हिंदी का ज्ञान देते थे, क्योंकि इन मजदूरों के बच्चों को शिक्षा का अधिकार प्राप्त नहीं था। यही नहीं इन्हें स्वामित्व तथा छह समय पूर्व तक इन्हें विवाह करने का अधिकार तक प्राप्त नहीं था। 19वीं सदी में इतने भी भारतीय विदेश शर्तबंद प्रथा के अंतर्गत गए, वे चाहे किसी भी देश में गए हों, अधिकांशतः हिंदी भाषी क्षेत्र से ही गए थे। वे भोजपुरी, अवधी, मारवाड़ी, मगही आदि भाषाएँ बोलते थे। विदेशों में हिंदी साहित्य के परिदृश्य में एक बात स्पष्ट है कि प्रथम कोटि के देशों जिनमें मॉरीशस, सूरीनाम, फ़ीजी और दक्षिण अफ्रीका आदि की गणना की जाती है, वहाँ के प्रवासी भारतीयों की हिंदी, भारत की परिनिष्ठित खड़ी बोली हिंदी नहीं है। वहाँ की हिंदी भोजपुरी मिश्रित अवधी है जिनमें स्थानीय भाषाओं के शब्द मिले हुए हैं। इसका नामकरण भी

उन्होंने अलग-अलग रूपों में किया है। फ़ीजी में फ़ीजीबात, सूरीनाम में वह सरनामी, मॉरीशस में मॉरीशस क्रियोल तथा दक्षिण अफ्रीका में नैताली के नाम से मानी जाती है। यही हिंदी उनकी अपनी हिंदी है।

मॉरीशस

प्रवासी हिंदी साहित्य के परिदृश्य में, मॉरीशस, फ़ीजी, सूरीनाम, देशों के हिंदी साहित्यकारों का एक बड़ा वर्ग नज़र आता है। मॉरीशस अफ्रीका महाद्वीप में स्थितछोटा-सा द्वीपीय देश है। मॉरीशस पर फ्रेंच तथा अंग्रेजी उपनिवेशवादी सरकारों का शासन रहा था। मॉरीशस को 12 मार्च, 1968 ई. में स्वतंत्रता मिली और मॉरीशस का प्रशासन, भारतीय मूल की प्रवासी जनता यानी गिरमिटिया मजदूरों के हाथों में आ पहुँचा। इन्हीं की संतानें आज इस देश की सरकार चलाती है। इन प्रवासियों ने आज विकास के प्रत्येक क्षेत्र में नई उपलब्धियाँ प्राप्त की है। हिंदी भाषा लेखन क्षेत्र में इनका योगदान विशिष्ट रहा है। मॉरीशस में कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, बंध-संग्रह और जीवनी आदि की रचना हुई। भारत को छोड़कर मॉरीशस का साहित्य अन्य देशों की तुलना में कहीं अधिक समृद्ध है, इस बात का प्रमाण मोका में स्थित महात्मा गांधी संस्थान तथा विश्व हिंदी सचिवालय जैसे केंद्र हैं, जहाँ से हिंदी भाषा को मॉरीशस में नवीन आयाम मिला है। मॉरीशस में हिंदी लेखन के क्षेत्र में प्रोफेसर विष्णु दयाल, सोमदत्त बखोरी, बृजेंद्र 'मधुकर', अभिमन्युअनत मनीश्वरलाल चिंतामणि, भानुमति नागदान, रामदेव धुरंधर, प्रह्लाद रामशरण, ईश्वरजागा सिंह,जनार्दन कालीचरण आदि लेखकों का सराहनीय योगदान रहा है।

फ़ीजी

फ़ीजी देश में भी भारतीयों का आगमन ब्रिटिशों द्वारा शर्तबंध मजदूर प्रथा से हुआ। 1879 ई. तक लगातार कई फेरों में मजदूरो को भारत से फ़ीजी लाया जाता रहा। "फ़ीजी में भारतीय सबसे पहले 15 मई, 1879 व्यक्ति थे जो गन्ने के खेतों में काम 37 इसके पश्चात 1916 ई. तक लगभग 'लेवनी दास' जहाज से पहुंचे। इस जहाज में 10 करने के लिए बहला-फुसलाकर लाए गए थे।"

फ़ीजी में हिंदी का आगमन गिरमिटिया मजदूरों के प्रथम दल के साथ 15 मई, 1879 ई. से माना जाना उचित रहेगा। तब से 1916 ई. तक लगातार भारतीय शर्तबंद स्त्री-पुरुष मज़दूर वहाँ ले जाए जाते रहे और उनके आगमन के साथ ही हिंदी बोलने वालों की संख्या फ़ीजी में निरंतर बढ़ती रही। आज हिंदी यहाँ के बहुसंख्यक समाज की भाषा है। मॉरीशस में जिस तरह भोजपुरी खड़ी हिंदी के विकास में सहायक हुई, उसी प्रकार फ़ीजी में पूर्वी हिंदी का अवधी और ब्रज सम्मिश्रित रूप अधिक प्रखरता के साथ कई पत्र-पत्रिकाएँ भी फ़ीजी से निकलीं, जिनमें 'हिंदीमिलाप, 'मनोरमा वार्षिकी' आदि प्रमख हैं। फ़ीजी को ब्रिटिश शासन से मुक्ति 10 अक्टूबर, 1970 ई. में मिली। यह देश बहुलतावादी संस्कृति को अपनाए हुए हैं। आज फ़ीजी की प्रशासन व्यवस्था भारतीय मूल की जनता के हाथों में है। फ़ीजी के प्रमुख हिंदी लेखको में कमला प्रसाद मिश्र, काशीराम कुमुद, शर्मा, हरनामसिंह 'हरनाम' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

सूरीनाम -

उपनिवेशवादी युग में गयाना तीन टुकडों में बँटा था, उसके एक क्षेत्र पर ब्रिटेन, दूसरे पर फ्रेंच तथा तीसरे पर डच साम्राज्यवादी शक्तियों का शासन था। इसी डच गयाना को वर्तमान में 'सूरीनाम' के नाम से जाना जाता है। गयाना को औपनिवेशिक चंगुल से मुक्ति 26 नवंबर, सन् 1975 ई. में मिली। यहाँ भारतीयों का आगमन गिरमिटिया मजदूरों के रूप में हुआ। 1873 ई. मेंलाला रुख' नामक जहाज से भारतीयों के आगमन शुरू हुआ जिसका सिलसिला 1916 चला। "सन 1873 से लेकर 1916 तक कुल चौंसठ जहाजों में चौंतीस हजार चार सौ से कुछ अधिक भारतीय स्त्री-पुरुष और बच्चे सूरीनाम में लाए गए थे। 'देवा' नामक अंतिम जहाज तीन सौ तीस मजदूर लेकर आया था।" ये सभी मजदूर अनपढ़ थे, अशिक्षित थे। इस कारण उनकी भाषा ही उनकी एक मात्र शक्ति थी, जो उनकी पहचान को बनाए रखने में सक्षम थी।

वर्तमान में हिंदी सूरीनाम की मान्यता प्राप्त भाषा है। मॉरीशस, फ़ीजी के समान ही सूरीनाम में भारतीय मूल की जनता के लिए हिंदी आम-बोलचाल की भाषा है। सूरीनाम में बोले जाने के कारण इसे 'सरनामी हिंदी' कहा जाता है। यहाँ गए प्रवासी भारतीय अपने साथ रामचरितमानस, महाभारत, आल्हा-उदल, सत्यनारायण तथा सती-सावित्री की कथा जैसी पुस्तकें साथ ले गए। इस कारण इन मज़दूरों ने अपनी भाषा-संस्कृति को इस अजनबी देश में आलोकित किया और इसी कारण भारतीय संस्कृति एवं हिंदी भाषा का बीजारोपण, पल्लवन सूरीनाम में हो पाया। आज सूरीनाम में कई हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ निकलती हैं, जिनमें सूरीनाम दर्पण, भाषा पत्रिका शक्ति, हिदीनामा, आदि प्रमुख हैं। सूरीनाम के हिंदी जगत में अमर सिंह रम राजकुमार (चाँदनी), कारमेन जगलाल, चंद्रमोहन रंजीत सिंह, जीत नाराइन प्रसिद्ध नाम हैं। प्रवासी मजदूरों को जिन उपनिवेशों में प्रवासित किया गया था, वे 'गयाना' (1838) 'मार्टिनक' (1850), 'ग्वालुप' (1852), 'सेंट लूसिया' (1856), 'सेंट फीसेंट' (1860), 'मॉरीशस' (1834), 'दक्षिण अफ्रीका' (1860), 'ग्रोस' (1861), 'नैटाल' (1863), 'सूरीनाम' (1873), 'फ़ीजी' (1879) प्रमुख देश थे। वर्तमान में यह सभी राष्ट्र स्वतंत्र हैं तथा अधिकतर देशों की शासन व्यवस्था भारतीय मूल की जनता के हाथों में है।

प्रवासी हिंदी साहित्य अत्यंत प्राचीन नहीं है पर इसे नवीन कहना भी अनुचित होगा। भारतीय मूल के लोग विदेशों में फैले हुए है उन्होंने साहित्य को अपनी कर्मभूमि भी बनाया। प्रवासी साहित्य जो पहले उपलब्ध था उससे आज का प्रवासी साहित्य एकदम अलग है। प्रौद्योगिकी चरम सीमा लाँघती गयी तो साहित्य भी अधिकाधिक जनप्रिय होता गया जन-जन तक पहुँचता गया। प्रवासी भारतीय भारत से

दूर होते हुए भी माध्यमों से सन्निकट होते गये। भारतीय मूल के विदेशों में रहने वालों के सृजनात्मक लेखन को प्रवासी साहित्य कहा गया। जिन्होंने हिंदी को केंद्र में रखकर या माध्यम बनाकर लिखा वे प्रवासी साहित्यकार हैं।

प्रवासी महिला कथाओं में अनेक रचनाकारों के नाम उभरकर सामने आते हैं। अमेरिका से सुषमा बेदी, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, अनिल प्रभा, सुधा ओम ढींगरा, रेनू राजवंशी गुप्ता, केनेडा से शैलजा सक्सेना, बिट्रेन, नीदरलैंड, चीन, डेनमार्क, फ्रांस, कुवैत आदि विभिन्न देशों की कथाकारों ने लेखन कार्य पुष्ट किया।

प्रवासी कथाकारा नारी अस्मिता के प्रति अत्यंत जागरूक हैं प्रवासी कथाकारों के द्वारा नारी के तीन रूप उभर कर सामने आते हैं पहला पाश्चात्य परिवेश में इस प्रकार ढल जाना कि नारी का विकृत रूप सामने आए अथवा पाश्चात्य परिवेश की विकृति पाठकों के सामने आ जाए जैसे 'टारनेडो' की जेनेफर या 'काला लिबास' में अनन्या की माँ, जो अपने मूल्यहीन स्वच्छंद जीवन को इतना मूल्यवान मानती है कि अपने बच्चों को संस्कार नहीं दे पाती और बच्चे पथभ्रष्ट हो जाते हैं।

दूसरा प्रवासी नारी भारतीय एवं पाश्चात्य परिवेश में सांमजस्य बनाकर आगे बढ़ने का निरंतर प्रयास करती है जैसे 'हवन' की गुड्डो 'सड़क की लय' की नेहा 'धूप' की रेखा, 'टारनेडो' की वंदना, आग में गर्मी क्यों है' की साक्षी और 'मेरे हिस्से की धूप' की शम्मो आदि।

तीसरा, स्त्री या तो निराशा जन्य स्थिति में अवसाद ग्रस्त हो गयी है अथवा विद्रोहिणी बन गई हैं। 'न भेज्यो विदेश' की गुरमीत, और 'सांकल' की सीमा अवसाद ग्रस्त हो गयी है अथवा विद्रोह पर उतर आयी है तो 'काला लिबास' की अनन्या, 'टारनेडो' की क्रिस्टी, 'घर' की नादिरा, 'क्षितिज से परे' की सारंगी, 'हवन' की तनीशा, आदि नायिकाएँ विद्रोही बन जाती हैं।

सुदर्शन प्रियदर्शिनी जो अमेरिका की कथाकारा है अथवा जाकिया जुबैरी की नायिकाएँ कहानियों के अंत तक परिस्थितियों के साथ तालमेल बैठा लेती हैं। इला प्रसाद की नायिकाएँ अंत में रोजमरा के जीवन में लिप्त हो जाती है। सुषमा बेदी की नायिकाएँ अलग-अलग स्वभाव की हैं वे जुझारू, भावुक विद्रोही है तथा सुधा ओम ढींगरा की नायिकाएँ कहानी के अंत तक आते-आते सशक्त रूप धारण कर लेती हैं वे परिस्थितियों से हार नहीं मानती बल्कि उनमें समस्याओं से लड़ने की क्षमता एवं जिजीविषा जागृत हो उठती है। ये सभी नायिकाएँ अपनी-अपनी अस्मिता के प्रति जागरूक हैं। डॉ. प्रीत अरोड़ा अपने लेख 'प्रवासी साहित्य की कहानियों में यथार्थ और लगाव के द्वंद्व' में लिखती हैं "आज भारत में लिखी जा रही अधिकांश हिंदी हानियाँ स्त्री-विमर्श के विषय के स्थान पर दैहिक विमर्श करती नजर आती हैं बकि प्रवासी कहानियाँ मानवीय व भावनात्मक यथार्थ के भीतर मूल्यों की तलाश ती नजर आती है।"

भारत में महिला लेखन अभी चौखट पार कर रहा है किंतु प्रवास में महिला लेखन भूमंडल में टहल रहा है वह देख रहा है सच्चाइयों को मूल्यों को, यथार्थ को, व संवेदना के अंतर्गत को भी। प्रवासी साहित्य की खास विशेषता है कि प्रत्येक सुख सुविधाओं के साथ-साथ विदेशी भूमि पर भी देशी चूल्हा जलने से घर की रोटी की सुगंध आती है। पराये देश को कर्म क्षेत्र बना लेने से घर की रोटी की सुगंध भूली जा सकती है और पराये समाज और संस्कृति को अपना लेने से मातृभमि के प्रति प्रेम समाप्त हो सकता है।

भारत उन चुनिंदा देशों में है जहाँ से प्रवास सबसे अधिक होता आ रहा है। वर्तमान में जब बात ग्लोबलाइजेशन की हो तो लगभग सभी प्रमुख देशों में भारतीय प्रवासी के रूप में स्थित है परंतु वैश्वीकरण की अवधारणा से पूर्व भी अनन्य कारणों से भारत से प्रवास होता आ रहा है। आज जो प्रवासी साहित्य लिखा जा रहा है उस प्रवासी साहित्य के सूजन करने वालों की भी दो श्रेणियाँ हैं।

वह प्रवास जो 18वीं शती के पूर्वार्ध और उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में हुआ है जिसमें गिरमिटिया के रूप में भारतीयों को लाया गया और फिर उन्हें कभी अपने देश वापस नहीं जाने दिया गया वे वहीं बस गए वे उस देश उस स्थान को बनाने में अपना सर्वस्व देते गए। अंततः अपने कठिन परिश्रम से उस देश की सत्ता पर भी अधिकार जमाया पर वह अपने पूर्वजों की दी हुई शिक्षा, संस्कार, भाषा को न भुला सके। वह अपने पूर्वजों की जमीन पर कभी आए तक नहीं पर उससे इनका लगाव बराबर बना रहा। "इस संबंध में विमलेश कान्ति वर्मा का वक्तव्य उल्लेखनीय है- "दुनिया में दो देश ऐसे हैं जहाँ के रहने वाले विदेश में पर्याप्त समय रहन के बाद भी नए देश की संस्कृति में घुल-मिल नहीं पाते या यों कहें कि वे विदेशी संस्कृति में अपने को ढाल नहीं पाते। वे अपने संस्कारों और जीवन मूल्यों को सुरक्षित रखते हुए अपने खान-पान, वेश-भूषा, रीति-रिवाज को श्रेष्ठ मानते हुए उसका पालनकरते हैं। ऐसे देशों में भारत, चीन प्रमुख हैं। इन देशों में जो भी विदेशमा देशवासियों के साथ ही एक समुदाय के रूप में रहे। ये विदेश में भी एक स्वदेश बनाकर रहते हैं। यह स्वदेश की संकल्पना ने ही उन्हें अपनी डोर नहीं दिया और पूर्वजों के जन्म स्थल से लगाव बरकरार रहा।"

मॉरीशस के वरिष्ठ साहित्यकार (हिंदी) राज हीरामन ने कहा "हिंदी और भारतीयों को मिली है, वैसे हम मॉरीशसवासियों को नहीं मिली। वह संघर्ष के बाटो हिंदी प्राप्त हुई है, जैसे आपकी मातृभाषा हिंदी है। हमारे लिए हिंदी है। संस्कार की भाषा है। मॉरीशस ने अपनी हिंदी में सृजन करना सीख लिया है। वह प्रवासी हिंदी की हमारी हिंदी है। वह दर्द की भाषा है। सम्मान की भाषा है। इज्जत की भाषा है। यह वह प्रवासी साहित्यकार हैं जिनकी चार-पाँच पीढ़ी वहाँ खप चुकी हैं जहाँ वह आज सृजन कर रहे हैं। अपने पुरखों की भाषा में सृजन करना इनके लिए भावना का विषय है" - दूसरी श्रेणी के वह प्रवासी हैं, जिन्होंने 80-90 के दशक या उससे 20-25 वर्ष पूर्व या आज वर्तमान में बेहतर

भौतिक जीवन के लिए प्रवास किया हुआ है। वे वहाँ अभियांत्रिकी, चिकित्सा, सूचना आदि विविध विषयों के ज्ञान के लिए गए और वहीं बस गए। उनका आना-जाना भारत से लगा रहा। इन्होंने जिस देश की नागरिकता अपनाई उस देश के सामाजिक बुनावट इनकी भूमिका नगण्य रही जिसके कारण सत्ता में भागीदारी न के बराबर रही। व्यक्तिगत स्तर पर इन्होंने संपन्नता प्राप्त की और प्रसिद्धि पाई परंतु सामाजिक शून्यता बरकरार रही। वह वहाँ धन की लालसा में आने वाले भारतीय ही रहे। गिरमिटियों की तरह उनमें सामाजिक एक्य न हो सका। जहाँ गिरमिटियों के प्रवास में जाने का मूल उद्देश्य एक था-मजदूरी-महज मजदूरी। वहीं ये प्रवासी भी मजदूरी के लिए ही गए परंतु उनकी मजदूरी अलग-अलग क्षेत्रों में थीं। कोई ड्राइवर, कोई डॉक्टर, कोई इंजीनियर ये सब एक न हो सके।

दोनों श्रेणी के रचनाकारों को प्रवासी साहित्य के नाम से अभिहितन किया जाता है। इन रचनाकारों के रचना के विषय भी मुख्य धारा के साहित्य के इतर होते हैं। साहित्य अपने विषय के रचना संदर्भ अपने समाज से ग्रहण करता है। इसीलिए गैर मुल्क में गैर होने की अनुभूति और उस अपरिचित परिवेश में अपने को ढ़ालना. नॉस्टेल्जिया, सफलताएँ-असफलताएँ, वहाँ के सुख-दुःख की अनुभूति इत्यादि ही प्रवासी साहित्य के आधार हैं। राजेन्द्र यादव ने प्रवासी साहित्य को इसलिए "संस्कृतियों के संगम की खूबसूरत कथाएँ" कहा है। हालाँकि यह केवल संगम ही नहीं है। अनेक अर्थों में यह मुठभेड़ भी है।

प्रवासी साहित्य के संदर्भ में यदि इनमें से किसी एक विषय का चुनाव करना हो जो ऊपर उल्लेखित सभी विषयों के समुच्चय रूप में हों तो नास्टेल्जिया प्रमुख होगा। नास्टेल्जिया को हमेशा नकारात्मक अर्थ में ही प्रयुक्त किया जाता है। परंतु यह उचित नहीं है। नास्टेल्जिया का अर्थ है अतीत के परिवेश में विचरना। क्या अतीत की याद गुनाह है? मुख्यधारा के साहित्यकार तो अतीत को याद कर गौरवान्वित होते हैं, क्या उन्हें भी नास्टेल्जिया से ग्रसित मानेंगे? यदि प्रवासी साहित्यकार अतीत को याद कर सुख-दुःख बयान कर रहे तो गलत क्या? जब वह इसी अतीत को याद करते हुए कहते हैं-

"वही दिनवा जब याद आवेला अँखिया में भरेला पानी रे। हिंदुस्तान से भागकर आइली यही है अपनी कहानी रे भाई छूटा, बाप छूटा और छूटी महतारी रे। अरकटिया खूब भरमवलीस कहै पैसा कगैबू भर भर थाली रे वही चक्कड़ मा पड़ गइली, बचवा याद आय गइल नानी रे।" । इस संबंध में उन्होंने अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक एकता बनाए रखी औरके माध्यम से अभिव्यक्ति देते रहे। इस कविता में उनकी पीड़ा, उनका दर्द प्रदर्शित हैगोरन के हंटर लात खाय दुःख सहे नया देश बनाय के। धर्म न छोड़ी भाषा न छोड़ी संस्कृत रही बचाय के।

"प्रवासी साहित्य में नास्टेल्जिया या पराएपन की अनुभूति, रचनात्मक का पहला चरण है। दूसरे चरण में इस मनःस्थिति से संघर्ष शुरू होता है और तीस चरण में अपनी नई पहचान को स्थापित करने की जद्दोजहद दिखाई पड़ती है।

उपुर्यक्त सभी तथ्यात्मक विवेचनों, उद्धरणों और कथनों के आलोक में एक बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि पश्चिमी देशों के प्रवासी हिंदी साहित्य का भविष्य अनिश्चितता की ओर बढ रहा है। उल्लेखनीय है कि इसके अस्तित्व पर संकट का सबसे बडा कारण भी भारत ही दिखाई पड़ रहा है क्योंकि प्रवास के लिए जैसा माल भारत से प्रवास करेगा वैसा ही प्रवासी हिंदी साहित्य का भविष्य मूर्त रूप धारण करेगा। भारत से प्रवास करके जो नई पीढ़ी के युवा विदेशों की ओर रुख कर रही है उनमें से अधिकांश आई.टी., फार्मेसी, डॉक्टरी और अकॉउंट्स से हैं। ये लोग जब भारत में ही हिंदी नहीं पढ़ते, तो लिखने का प्रश्न ही नहीं उठता।

हिंदी भाषा का सम्मान और गौरव में ही हमारा सर्वांविधि अभ्युदय निहित है क्योंकि हिंदी भाषा नहीं भाष्य है। हिंदी विश्व का तात्पर्य है हिंदी भाषा तथा साहित्य का संपूर्ण विश्वव्यापी परिवृत्त, उसका वैश्विक प्रसार और उनका वैश्विक स्वरूप। हिंदी भाषा विश्व के उस महापरिवार का सदस्य है जिस परिवार की ज्यादातर भाषाएँ अति विकसित और सभ्य जातियों तथा देशों के राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्रिया-कलापों में प्रयुक्त होती है। सशक्त राजनीतिक नेतृत्व के साथ हिंदी का एक सशक्त वैश्विक समर्थन बढ़ रहा है और इसे और भी गरिमामय रूप प्रदान करने में प्रवासी साहित्य का महत्त्वपूर्ण योगदान हो सकता है।

संदर्भ :-

विश्व में हिंदी, डॉ. प्रेमचंद, पृष्ठ सं. 76, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2015

विश्व में हिंदी, डॉ. प्रेमचंद, पृष्ठ सं. 76, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2015

प्रवासी भारतीय समाज: भाषा साहित्य और संस्कृति, विमेलशकान्ति वर्मा, आजकल, जनवरी,2016 पृष्ठ सं. 06

प्रवासी भारतीय समाज: भाषा साहित्य और संस्कृति, विमेलशकान्ति वर्मा, आजकल, जनवरी,2016 पृष्ठ सं. 06

हमारे लिए हिंदी संस्कार की भाषा है, राज हीरामन से बातचीत, पृष्ठ सं. 24

प्रवासी भारतीय समाज: भाषा साहित्य और संस्कृति, विमेलशकान्ति वर्मा, आजकल, जनवरी,2016 पृष्ठ सं. 06

साभार, विश्व के अंचल से – निर्मल रानी

अप्रवासी यादगार, अजय सिंह राणा, सभार आजकल, जनवरी 2014 पृष्ठ सं. 37

अतिथि प्रवक्ता, नवीकरण एवं भाषा प्रसार विभाग, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, दूरभाष :7086331628, Email-priyadarshinidubey24@gmail.com

साहित्य कुंभ

गगनांचल
साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

वर्ष 46 अंक 1-2 जनवरी - अप्रैल 2023
12वां विश्व हिंदी सम्मेलन विशेषांक

हिंदी : हमारी मातृभाषा

हिंदी हमारी मातृभाषा, हिंदी हमारा धर्म है।
हिंदी हमारी संस्कृति, हिंदी हमारा कर्म है।
भारत की प्राचीन भाषा, हिंदी को प्रणाम है।
अन्य भाषा की तरह, हिंदी का बड़ा नाम है।।

करते अपमान हिंदी का, आज कुछ भाई मेरे।
भूल रह धर्म अपना, आज कुछ भाई मेरे।
अन्य अखबार पढ़ रहे, आज कुछ भाई मेरे।।

वक्त अभी है होश में आओ भाइयो।
घर-घर में हिंदी का प्रचार करो भाइयो।
मातृभाषा हिंदी कभी मिटने नहीं पाये।
अनमोल निधि पूर्वजों की रखें हृदय में सजाये।

फूले-फले हिंदी भाषा यही मेरा अरमान है।
हिंदी को न भूलें हम जब तक तन में प्राणा हैं।
कोई उँगली न उठाये हम भारतीयों पर कभी।
प्राचीन भाषा हिंदी मिटने नहीं पाये कभी।।

उठो जागो अभी, हे मेरे वतन के लाल।
अनपढ़ को पढ़ाओ हिंदी, कर दो तुम कमाल।
घर-घर और गाँव-गाँव में हो हिंदी का प्रचार।
अमर रहे हिंदी भाषा 'सुखराम' कहे पुकार।।

-सुखराम (फीजी)

सीता के जाने के बाद की राम कथा

प्रो. खेमसिंह डहेरिया

"राम उसे देखने का प्रयास करने लगे, पर वह दिखाई नहीं दिया। राम को लगा जैसे उनका मन भी कभी-कभी सीता के लिए ऐसे ही चीखता हुआ सा उड़ता है और फिर शांत हो जाता है। बरसात अभी भी उसी गति से हो रही थी। वे उठे और धीरे-धीरे चलते हुए खुले आसमान के नीचे खड़े होकर भीगने लगे। मन, कक्ष में जाने का नहीं कर रहा था। राम को ध्यान आया, सीता किस प्रकार अपने सतीत्व पर उठे प्रश्न से आहत होकर, उनसे अपने नेत्रों से कुछ कहती हुई सी, तीव्रता से यज्ञ-स्थल से किसी अज्ञात स्थान के लिए चली गयी थी। क्या था उन आँखों में? क्या-क्या कह डाला होगा सीता ने?"

21वीं सदी में डॉ. अशोक शर्मा कृत 'सीता के जाने के बाद राम' उपन्यास में रामकथा का वर्णन किया गया है। इस उपन्यास के माध्यम से राम की मानव के रूप में मन:स्थिति का चित्रण अपने मन की अनुभूति के आधार पर किया गया है। डॉ. अशोक शर्मा ने बताया है कि सीता के प्रयाण के बाद राम किन मन:स्थितियों से होकर गुजरे होंगे।[1] जैसे सामान्य मानव गुजरता है।

भावनाओं के मध्य

"राम के विचारों का प्रवाह टूटा। वे उठे और कक्ष के बाहर बने छज्जे पर खड़े होकर आसमान की ओर देखने लगे। शाम हो रही थी। कुछ काले बादल तैरते हुए आ-आकर जमा हो रहे थे। लगता था वे शीघ्र ही आसमान को ढक लेना चाहते हैं। उन्हें अच्छा लगा। मन थोड़ा शांत हुआ और फिर सीता की ओर चला गया। 'सीते तुम इस आकाश में ही कहीं छिपी हो क्या?' उन्होंने मन ही मन कहा, फिर अपनी इस बात पर वे स्वयं ही हँस पड़े।"

''जीवन कितना अधूरा सा हो गया है' सोचते हुए उन्होंने आँखे बंद करते हुए, पलकें कुछ भींची, होंठ थोड़े तिरछे किए, फिर बाएँ हाथ की हथेली कुछ ऊपर उठाकर आसमान की ओर कर ली और एक बार फिर एक पीड़ा-भरी हँसी, और फिर आँखें खोल दीं।"[2]

बादल लगभग पूरा आसमान ढक चुके थे। रोशनी बहुत कम रह गयी थी। शाम ढलने को थी। पेड़ छायाओं से लग रहे थे। हवा तेज और ठण्डी थी। अचानक बहुत तेज बारिश शुरू हो गयी। वे हवा के साथ आती बौछारों से भीगने लगे, और तभी एक अकेला पक्षी शोर मचाता, उड़ता हुआ निकल गया। वे फिर हँस पड़े। बारिश, ओलों की तीखी हवाओं के बीच वे भी अकेले ही तो थे। पक्षी आया और निकल गया था। अब उसकी आवाजें नहीं थीं। राम को लगा, सीता, ऐसी ही तेज और प्रतिकूल हवाओं का सामना करते हुए जा चुकी थी और अब उन्हें वैसी ही तीखी हवाओं का सामना करना था। सीता, अचानक उन्हें कितना अकेला और आहत छोड़ गयी थीं। उन्होंने जीवन में बहुत से आघात सहे थे, किन्तु सीता के इस तरह जाने का आघात उन्हें असहनीय लग रहा था।

जब कभी अयोध्या की यह कथा लिखी जाएगी, सीता उसका एक नि:शब्द स्तम्भ होंगी। उन्होंने कभी कहीं, कोई प्रश्न नहीं किया। 'सीते, तुम खामोश हो क्या?' राम ने मन ही मन कहा।[3] उन्हें याद आया कि उनका और सीता का परिचय पति-पत्नी के रूप में ही हुआ था, किन्तु शीघ्र ही उन्हें लगा था कि उनके बीच शरीरों का नहीं, आत्माओं का बंधन है। यह प्रेम और विश्वास की पराकाष्ठा थी।

'सीते, तुम केवल प्रेम और विश्वास हो बस। अश्वमेध यज्ञ के समय जो कुछ हुआ, वह तुम्हारे लिए कितना पीड़ादायक रहा होगा।' यह तुम्हारे सतीत्व पर लगने वाला दूसरा प्रश्न-चिह्न था, और तुम, जिसने जीवन भर पता नहीं कितनी पीड़ाएँ सही थीं, इस पीड़ा को नहीं सह सकीं, चली गई। तभी बहुत जोर से बिजली चमकी। राम ने आसमान

की ओर देखा। बादल कम हो गए थे और आसमान का नीलापन दिखने लगा था। 'सीते, कहाँ हो तुम।' कहते हुए राम ने आँखे बंद कर लीं और थोड़ी देर बाद जब आँखें खोलीं तो ऐसा लगा जैसे पेड़ों की छायाओं के मध्य से दिखाई देते आसमान में खड़ी सीता उन्हें देख रही है। वे चौंक गए। अपनी आँखें मलीं और फिर देखा सचमुच सीता ही थी। चमकता हुआ मुख और सादे पीले वस्त्र। जैसे वस्त्रों में वे वाल्मीकि के आश्रम से अश्वमेध-यज्ञ में आई थी।

'सीते तुम!' वे व्यग्रता से बोले। 'हाँ, मैं।' कह कर वे मुस्कराईं[4] 'कहाँ हो तुम?' 'वहाँ।' सीता ने उँगली उठाकर उन्हीं की ओर इशारा किया। राम कुछ समझ नहीं सके। उन्होंने अपने आस-पास देखा और फिर पूछा, 'कहाँ?' 'वहाँ।' सीता ने फिर उन्हीं की ओर इशारा किया। 'मैं समझ नहीं पा रहा हूँ, सीते, कहाँ हो तुम?' 'रघुकुलनन्दन, अपने सीने पर हाथ रख कर क्यों नहीं देखते?'[5] 'ओह,' वे हँसे और उन्होंने देखा, सीता भी हँस पड़ी हैं। राम कुछ देर तक उस हँसी में खोए से खड़े रहे, फिर बोले, 'सीते, यूँ ही हँसती रहना, जाना मत'। 'मैं कहाँ जाना चाहती हूँ।' सीता ने कहा।[6] तभी एक बादलों का टुकड़ा आया। जहाँ सीता दिखाई दे रही थीं, वहाँ जाकर उन्हें पूरी तरह ढक लिया और फिर उड़ता हुआ आगे निकल गया। उसके जाने के बाद राम ने देखा, सीता वहाँ नहीं थी, केवल आसमान था।

राम बहुत देर से खड़े थे। वे वहीं बैठने के लिए कोई स्थान देखने लगे। छज्जे के किनारे ही उन्हें बैठने के लिए कुछ दिख गया। वे उसी पर बैठ गए। पानी कभी तेज और कभी धीमा होते हुए अभी भी बरस रहा था और हवा की तेजी के कारण बूँदें बराबर ही उन्हें भिगो रही थीं। उन्होंने बाल-सुलभ मन से एक हाथ की हथेली आसमान की ओर कर दी और उस पर पड़ती पानी की बूँदों का स्पर्श महसूस करने लगे। यह सुखद लग रहा था। सीता की हँसी राम के मन से जा नहीं रही थी। यह हँसी उनके मन को सदा ही गुदगुदा जाती थीं। आज भी कुछ पलों के लिए ऐसा ही हुआ था, पर सीता के जाते ही मन उदास हो गया। सीता को उन्होंने जब पहली बार देखा था, तब भी वे हँस रही थी। यह दृश्य उन्हें आज तक भूला नहीं था। उन्हें याद आया, जब जनकपुरी में लक्ष्मण के साथ वे भूल से उस वाटिका में प्रवेश कर गए थे, जिसमें सीता रोज आती थीं। उस शाम भी वे अपनी सखियों के साथ आई हुई थीं और किसी परिहास में निमग्न थीं। हँसी के कारण उनके अधखुले से नेत्र, मुख पर उल्लास की चमक, कुछ लाल और फूल की पंखुड़ियों जैसे अधर और चमकती हुई दाँतों की पंक्ति। सब कुछ राम की आँखों में जीवन्त हो उठा।

सीता पर दृष्टि पड़ते ही वे चौंक पड़े थे और फिर ठगे से खड़े रह गए थे। उस हँसते हुए सौन्दर्य से उनके नेत्र तब हटे, जब अचानक सीता की दृष्टि भी उन पर पड़ गई। राम बहुत सकुचा गए थे। वे वहाँ से लौटे अवश्य, किन्तु मन, सीता की हँसी से बँधा वहीं रह गया। बरसात धीमी हो चुकी थी, पर हो रही थी। अचानक फिर बिजली चमकी और बहुत सा प्रकाश बिखर गया। सीता की हँसी ऐसे ही प्रकाश बिखेर दिया करती थी। राम की पीड़ा गहरा गई। सीता अपने साथ वह प्रकाश समेट ले गयी थीं। कुछ देर पहले आसमान में जिस स्थान पर सीता दिखी थीं, राम की दृष्टि उन्हें खोजते हुए फिर उसी स्थान पर जाकर टिक गई। वहाँ वृक्षों की पंक्ति के पीछे सिर्फ आसमान था और कुछ नहीं, पर न जाने क्यों राम को लगा कि वहाँ कुछ रोशनी सी है। वे उसे देखते हुए कुछ ध्यान की सी अवस्था में हो गए और तभी वही पक्षी एक बार फिर शोर करता, चीखता हुआ सा गुजर गया।

राम उसे देखने का प्रयास करने लगे, पर वह दिखाई नहीं दिया। राम को लगा जैसे उनका मन भी कभी-कभी सीता के लिए ऐसे ही चीखता हुआ सा उड़ता है और फिर शांत हो जाता है। बरसात अभी भी उसी गति से हो रही थी। वे उठे और धीरे-धीरे चलते हुए खुले आसमान के नीचे खड़े होकर भीगने लगे। मन, कक्ष में जाने का नहीं कर रहा था। राम को ध्यान आया, सीता किस प्रकार अपने सतीत्व पर उठे प्रश्न से आहत होकर, उनसे अपने नेत्रों से कुछ कहती हुई सी, तीव्रता से यज्ञ-स्थल से किसी अज्ञात स्थान के लिए चली गयी थी। क्या था उन आँखों में? क्या-क्या कह डाला होगा सीता ने? राम को याद आया, उन आँखों में प्रेम, उलाहने, विदा का संकेत और बहुत सा शून्य था। हमेशा हँसने वाली आँखों में इतना बड़ा शून्य। वे उस समय कितना विचलित हो उठे थे, और वह सब कुछ याद कर आज फिर से वैसा ही लग रहा था।

'तुम मेरे पास नहीं आ सकतीं तो क्या, मैं तुम्हारे पास आ ही सकता हूँ।' उन्होंने मन ही मन कहा।

फिर तुम्हारा घना साया
खो गया है,
और मैं,
लगती हुई,
इस धूप में
फिर से अकेला ही खड़ा हूँ।[7]

राम को यहाँ खड़े हुए बहुत देर हो चुकी थी। लक्ष्मण, राम को महल के लगभग सभी कक्षों में ढूँढ़ने के बाद महल की छत पर आए। अंधेरे में, खुले आसमान के नीचे, बरसात में भीगते राम को देखकर वे अचम्भित रह गए। सीता के जाने के बाद से, राम के व्यवहार में कभी-कभी जो विरक्ति झलक जाती थी, वह उन्हें चिन्तित तो करती थी, पर यह स्वाभाविक है और समय के साथ मन के घाव भर ही जाएँगे, यह विचार उन्हें आश्वस्त करता था, किन्तु आज राम को इस तरह देखकर वे इतने विचलित हो गए कि कुछ भी कहना भूलकर उन्हें देखते हुए स्तब्ध खड़े रह गए। बार-बार गरजते बादल और चमकती बिजली से राम की मुद्रा में कोई अंतर नहीं पड़ा रहा था। लक्ष्मण कुछ देर तक यूँ ही उन्हें देखते रहे, फिर पास जाकर उन्हें छू कर बोले - 'भइया।' इस अचानक स्पर्श से राम चौंक गए। लक्ष्मण को देखा और फिर बोले - 'ओह लक्ष्मण।' 'भइया, आप बहुत भीग गए हैं, आइए नीचे चलें।' लक्ष्मण के मन में बहुत कुछ चल रहा था, किन्तु वह सब कहने के लिए

उन्हें यह अवसर उचित नहीं लगा। दोनों नीचे आए। लक्ष्मण ने एक परिचारिका से मंगवाकर उन्हें वस्त्र दिए। राम, बदन सुखाकर और वस्त्र बदल कर आए। स्वयं लक्ष्मण भी भीग गए थे। वे भी वस्त्र बदल कर आए। तब तक एक स्थान पर आग जला दी गई थी। राम और लक्ष्मण दोनों वहीं बैठ गए। रात्रि की निस्तब्धता गहरी थी। कोई कुछ बोल नहीं रहा था, पर किसी का भी मन उसके पास नहीं था। कुछ देर बाद लक्ष्मण ने कहा- 'भइया, आपको क्या हो गया है, यूँ रात में अकेले खड़े होकर बरसात में भीगना।' राम ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया, बस एक फीकी सी हँसी उनके होठों पर आकर रह गई। लक्ष्मण कुछ देर तक उन्हें देखते रहे फिर बोले- 'भइया, भाभी अब नहीं है।'[8] 'जानता हूँ लक्ष्मण।' 'यदि वे होतीं तो क्या आपको इस तरह करने देती?' राम ने इसका भी कोई उत्तर नहीं दिया। कुछ देर बाद लक्ष्मण ने फिर कहा, 'पर भइया, भाभी हैं।' इस पर राम हँस पड़े, बोले- 'हाँ, लक्ष्मण वे हैं।' बैठे हुए कुछ देर हो गई थी।[9] "भइया, भाभी के इस तरह जाने की मन में बहुत अधिक पीड़ा है न!" लक्ष्मण ने राम की ओर देखते हुए कहा।

राम ने फिर कोई उत्तर नहीं दिया, बस अपने नेत्र घुमाकर दूसरी ओर कर लिए। लक्ष्मण ने यह देखा, राम के मन को महसूस किया, आगे बढ़कर राम का हाथ पकड़ कर अपनी हथेलियों में लिया और बोले - 'वह अकेले आपके मन की पीड़ा नहीं है, भइया।' अब राम ने लक्ष्मण की ओर देखा, और फिर बोले- 'मैं जानता हूँ लक्ष्मण' कहते हुए पलकें गिरा लीं, आँसू की एक बूँद उनकी पलकों के बीच फँस गई। लक्ष्मण यह देखकर अंदर तक हिल गए और राम के और निकट आ गए।[10]

'भइया क्षमा करियेगा, मैंने अनचाहे ही आपका मन दुखा दिया,' उन्होंने कहा। 'नहीं लक्ष्मण, ऐसा कुछ भी नहीं है।' कहते हुए राम ने मुस्कराने का निष्फल प्रयास किया। 'शब्द जिसके पुरुषार्थ का वर्णन करने में असमर्थ हों, उसके नेत्रों में आँसू, मेरा भ्रम तो नहीं है।' 'सुख या दु:ख किसे नहीं व्यापते लक्ष्मण, और आँसू पी लेने की अपेक्षा कभी-कभी आँसू गिरा लेना शायद व्यक्ति के लिए अच्छा होता है, किन्तु किसी-किसी को तो आँख में आँसू लाने की भी अनुमति नहीं होती। यह कितना त्रासद है।'[11] 'भइया, कोई-कोई व्यक्तित्व ही इतना विराट होता है कि सबको उसकी आँखों में बस मार्गदर्शन की ही अपेक्षा होती है, आँसुओं की नहीं।' 'तुम इसे कैसे भी कह सकते हो।' कहकर राम ने हँसने का प्रयास किया फिर, बोले - 'रात बहुत हो चुकी है, जाओ सो जाओ जाकर,' यह कहकर राम उठे और अपने शयनकक्ष की ओर चल दिए। लक्ष्मण भी उठ पड़े। लक्ष्मण अपने शयन कक्ष में पहुँचे तो उर्मिला उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। 'मौसम कितना खराब हो रहा है।' उर्मिला ने कहा। 'हाँ' 'आपने बहुत देर कर दी।' 'भइया बहुत दुखी थे।' लक्ष्मण ने उन्हें राम के बारे में बताया।' 'उनका दुख स्वाभाविक है, किन्तु इस प्रकार पानी में खड़े रहना' उर्मिला ने कहा।'[12]

राम अपने शयन-कक्ष में पहुँचे, और कुछ देर तक सीता की स्मृतियों में खोए से बैठे रहे, फिर धीरे से बिस्तर पर लेट गए। थके हुए मन और शरीर को नींद ने धीरे से आकर अपनी आगोश में ले लिया और कुछ देर में ही फिर एक स्वप्न उनकी आँखों में तैरने लगा।

स्वप्न टूट गया और राम चौंक उठे 'क्या यह किसी भविष्य का संकेत है?' उनके मन में आया। पहले अधर तिरछे कर, वे थोड़ा सा मुस्कराए फिर पता नहीं क्या सोचकर हँस पड़े। अतएव 'सीता के जाने के बाद राम' में राम एक सामान्य मानव की तरह है, "जिनके मन पर हर परिस्थिति का प्रभाव पड़ता है, जिनको मानसिक पीड़ा भी होती है। राजनीति में वो सशक्त राजा है, जो बलशाली हैं, पर जन सामान्य में, मानव के रूप में, पति-पिता के रूप में है, जैसे सांसारिक दुनियादारी के सामान्य जन होते हैं। कभी टूटते हैं, कभी बिखरते हैं। कभी सँभलते हैं, फिर हौसले से आगे बढ़कर धैर्यवान, शक्तिवान, सुंदरशील रूप में आ जाते हैं। महाकवि वाल्मीकि जी ने भी राम को सामान्य मानव की तरह दिखाया है।

तुलसीदास द्वारा मानस में प्रतिपादित राम का चरित्र सर्वथा मानव जीवन के आदर्श एवं उदात्त जीवन मूल्यों का अनुकरणीय सार्थक एवं शाश्वत दीप स्तम्भ है, जो युगों-युगों से भारतीय समाज का दिशादर्शन करता रहा एवं आगे युग-युगान्तर तक करने के साथ ही भारत की अस्मिता का अक्षुण्ण संवाहक रहेगा। 'बाल्मीकि रामायण' और 'रामचरितमानस' डॉ. अशोक शर्मा के उपन्यास की आधारशिला रहे हैं। 'सीता के जाने के बाद राम' उपन्यास में लेखक ने अपने मन की भावनाओं का समावेश किया है, जब उनको राम के पात्र में रसानुभूति हुई, जिसको उन्होंने अपनी लेखनी के द्वारा अभिव्यक्ति दी।

अतएव 'सीता के जाने के बाद राम' उपन्यास में राम को ना दिखाकर साधारण मानवी राम को दिखाया गया है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. अशोक शर्मा, सीता के जाने के बाद राम, पृष्ठ संख्या 7
2. वही
3. वही, पृष्ठ संख्या 68
4. वही
5. वही, पृष्ठ 39
6. वही
7. वही, पृष्ठ 41
8. वही, पृष्ठ 42
9. वही, पृष्ठ 43
10. वही पृष्ठ 44
11. वही पृष्ठ 41
12. वही पृष्ठ 46

कुलपति, अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय, ग्राम मुगालिया कोट, सूखी सेवनिया, विदिशा रोड, भोपाल-462038 (म.प्र.)

भारतीय ज्ञान-परंपरा, विश्वकल्याण और हिंदी कविता

प्रो. वशिष्ठ अनूप

समन्वयवाद भारतीय संस्कृति की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। समय-समय पर इस देश में कितनी ही संस्कृतियों का आगमन और आविर्भाव हुआ, परन्तु वे घुल-मिल कर एक हो गयीं। कितनी ही दार्शनिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, साहित्यिक और सौन्दर्यमूलक विचारधाराओं का विकास हुआ, किन्तु उनकी परिणति संगम के रूप में हुई। समन्वय के देश में महान् लोकनायक वही हो सकता है जिसमें विशाल समन्वय - बुद्धि हो और जो उस बुद्धि का सदुपयोग कर सके। धर्म-दर्शन और समाज-सुधार के क्षेत्र में गौतम बुद्ध इसी प्रकार के लोकनायक थे। उनकी महिमा की आधारभूमि 'मध्यमा प्रतिपदा' समन्वय का ही मार्ग है। लोकदर्शी तुलसी ने जनता के हृदय की धड़कन को पहचाना और 'रामचरितमानस' के रूप में समन्वय का वह अद्भुत आदर्श प्रस्तुत किया जो अपने कवित्वमय भक्तिदर्शन, भक्तिदर्शनमय कवित्व और आमूढ़पण्डित-व्यापिनी लोकप्रियता के कारण अद्वितीय है।

परख इंसान की होती है अक्सर दो ही मौकों पर,
कहाँ छोड़ी न ख़ुद्दारी, कहाँ झुकना नहीं छोड़ा।

भारत की पावन भूमि और भारतीय संस्कृति अनादि काल से उदारता, धैर्य, धार्मिक आस्था, सत्यनिष्ठा, प्रेम, करुणा, दया, परोपकार, ममत्व, परदु:ख कातरता, दान, सहनशीलता, दृढ़ता, पराक्रम और विश्व बंधुत्व जैसे उदार मानवमूल्यों की जन्मदात्री, पोषिका और वाहिका रही है। यह देवताओं की अवतार भूमि होने के कारण देवभूमि कही जाती है। अनेक अवतारी पुरुषों ने यहाँ जन्म लेकर यहाँ साधना करके अपनी शक्ति बढ़ाई है और इस भूमि को समृद्धि प्रदान की है, इसे स्वर्ग बनाने की कोशिश की है। तभी तो राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त के राम कहते हैं कि -

संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।

भारत ज्ञान-विज्ञान का केंद्र रहा है। यह हर प्रकार के ज्ञानोदय की भूमि रहा है। यह अनेकानेक ऋषियों, महाऋषियों, मुनियों, तपस्वियों, सिद्धों, योगियों और साधु-संतों की साधना और आराधना की धरती है। रामायण, महाभारत, वेद, उपनिषद पुराण, स्मृति-ग्रंथ, ब्राह्मण-ग्रंथ, आरण्यक और अन्यान्य शास्त्रों-महाकाव्यों में धर्म, कला, संस्कृति, आचार-विचार-व्यवहार के साथ ही विज्ञान, गणित, चिकित्सा और आदर्श जीवन के सूत्र भरे हुए हैं। हमारे पूर्वजों ने सबके कल्याण की बातें करते हुए वसुधैव कुटुंबकम का संदेश दिया -

अयं निज: परो वेति गणना लघु चेतसाम्।
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुंबकम्।

(यह अपना है और यह पराया, ऐसी मानसिकता संकुचित हृदय वालों की होती है, जबकि उदार चरित वाले लोगों के लिए तो संपूर्ण धरती ही परिवार जैसी होती है।) इसी प्रकार अपने उदार और विशाल हृदय का परिचय देते हुए सबके सुख और आरोग्य की कामना की गई है-

सर्वे भवंतु सुखिन: सर्वे संतु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यंतु मां कश्चित् दु:ख भाग भवेत्।।

(सभी सुखी हों, सभी रोगमुक्त हों, सभी मंगल और कल्याण के साक्षी बनें और किसी को भी दु:ख का भागी न बनना पड़े।) हमारे मनीषियों ने अपने धर्म का सम्मान और तदनुरूप आचरण करते हुए अन्य धर्मों का भी सम्मान करने और उनसे सीख लेने की बात की -

श्रूयतां धर्म सर्वस्वं,श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मन: प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत्।।

(अर्थात सभी धर्मों के सार तत्व को सुनना चाहिए और उन्हें सुनकर उन्हें हृदय में धारण करना व आचरण में उतारना चाहिए और जो बात या आचरण स्वयं के प्रतिकूल या कष्टकर लगे, वैसा आचरण दूसरों के साथ भी नहीं करना चाहिए।) हमारे ऋषि-महात्मा इतने उदार

और मुक्त हृदय के थे कि उन्होंने सारे संसार के अच्छे और कल्याणकारी विचारों को सहर्ष आमंत्रित किया। हमारा ऋग्वेद कहता है कि-

आ नो भद्रा: क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदस्धासो अपरितास उद्भिद:।

(अर्थात हमारे लिए कल्याणकारी, न दबने वाले, पराभूत न होने वाले, उच्चता को पहुँचाने वाले शुभकार्य चारों ओर से हमारे पास आयें।) हिंदी इसी धार्मिक और सांस्कृतिक परंपरा व विचारधारा की संवाहिका तथा देववाणी संस्कृत की तनया है जो हिंदी जाति की अनेक बोलियों का प्रतिनिधित्व करती है। संस्कृत में निहित सारे जीवनमूल्य हिंदी को विरासत में मिले हैं जिन्हें हिंदी के महान कवियों ने अपनी स्तरीय रचनाओं से और उन्नत व समृद्धि किया है। वैष्णव भक्ति परंपरा से जुड़े कवियों के साथ ही शैव, शाक्त व बौद्ध, सिद्ध, नाथ, जैन आदि धर्मावलम्बी साधकों व रचनाकारों की कविताओं में प्रेम, करुणा, त्याग, परोपकार, अहिंसा और समन्वय आदि मूल्यों को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

मध्यकाल के ऐसे कवियों में तुलसीदास कई दृष्टियों से अप्रतिम हैं। उन्हें लोक और शास्त्र दोनों का ज्ञान था। उनका 'नाना पुराण निगमागम सम्मतंयद् रामायणे निगदितं क्वाचिदन्यतोऽपि' का उद्घोष यही कहता है। लोक ज्ञान तो उन्हें 'मात-पिता जग जाइ तज्यो' के बाद बचपन में ही ठोकरें खाते हुए हो गया था, शास्त्र ज्ञान गुरुओं के सान्निध्य, सत्संग और अध्ययन से प्राप्त हुआ। उनका समाज धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक समस्याओं से घिरा हुआ था। बिके हुए इतिहासकार तत्कालीन शासन-प्रशासन को भले ही स्वर्णकाल कहकर महिमामंडित करें, उस समय का साहित्य इसका समर्थन नहीं करता और कुछ और ही तस्वीर दिखाता है। तुलसीदास कवितावली में कह रहे थे- 'काल कराल नृपालु कृपालु न, राज समाज बड़ोई छली है।' यह समय बहुत भयावह है, राजा दयावान नहीं है, सारा राज समाज छल-प्रपंच से भरा है। पूरा परिवेश अभिशप्त था और हत्या-लूट और मार-काट से भरा हुआ था। समाज बिखर रहा था और लोग आपस में लड़ रहे थे। ऐसे में तुलसीदास ने प्रेम, सामंजस्य और समन्वय का मार्ग दिखाया जो मानव कल्याण के लिए आवश्यक था। उनका समन्वयवाद और रामराज्य की प्रस्तावना आज भी अनुकरणीय और प्रासंगिक है।

समन्वयवाद भारतीय संस्कृति की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। समय-समय पर इस देश में कितनी ही संस्कृतियों का आगमन और आविर्भाव हुआ, परन्तु वे घुल-मिल कर एक हो गयीं। कितनी ही दार्शनिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, साहित्यिक और सौन्दर्यमूलक विचारधाराओं का विकास हुआ, किन्तु उनकी परिणति संगम के रूप में हुई। समन्वय के देश में महान् लोकनायक वही हो सकता है जिसमें विशाल समन्वय - बुद्धि हो और जो उस बुद्धि का सदुपयोग कर सके। धर्म-दर्शन और समाज-सुधार के क्षेत्र में गौतम बुद्ध इसी प्रकार के लोकनायक थे। उनकी महिमा की आधारभूमि 'मध्यमा प्रतिपदा' समन्वय का ही मार्ग है। लोकदर्शी तुलसी ने जनता के हृदय की धड़कन को पहचाना और 'रामचरितमानस' के रूप में समन्वय का वह अद्भुत आदर्श प्रस्तुत किया जो अपने कवित्वमय भक्तिदर्शन, भक्तिदर्शनमय कवित्व और आमूढ़पण्डित-व्यापिनी लोकप्रियता के कारण अद्वितीय है। उनमें कवि की कारयित्री प्रतिभा, भक्त के निष्काम हृदय और समाजसुधारक की लोकमंगल-भावना का अपूर्व समन्वय था। भाग्य और पुरुषार्थ के सम्बन्ध में प्राचीनकाल से ही विभिन्न मत प्रचलित रहे हैं। कुछ विद्वान् दैव को, कुछ स्वभाव को, कुछ काल को, कुछ पुरुषकार को और कुछ इनके संयोग को फलप्राप्ति का कारण मानते हैं। ये मत तीन वर्गों के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं - दैववाद या भाग्यवाद, पुरुषकारवाद या - पुरुषार्थवाद, और संयोगवाद या समन्वयवाद। तुलसी-साहित्य में तीनों प्रकार की उक्तियाँ मिलती हैं - कहीं पुरुषार्थवाद की प्रतिष्ठा है, कहीं भाग्यवाद का उपस्थापन है और कहीं समन्वयवाद की स्थापना है।' प्रश्न उठता है : तुलसी का सिद्धान्त क्या है ? उत्तर है : समन्वयवाद। वस्तुतः पौरुष ही प्रधान है', प्राक्तन (पूर्वदेहार्जित) पौरुष का नाम ही दैव या भाग्य है। जिस पौरुष के साथ फल के कार्य-कारण सम्बन्ध को हम मिला नहीं पाते उसी को भाग्य कह दिया करते हैं। इस जन्म की सफलता में भी पूर्वजन्म का पौरुष सहायक होता है, सिद्धि का रथ पौरुष और भाग्य के दोनों पहियों पर चलता है। याज्ञवल्क्य आदि की भाँति तुलसी भी समन्वयवादी हैं -

पुरुषारथ पूरब करम परमेस्वर परधान।
तुलसी पैरत सरित ज्यों सबहि काज अनुमान॥

ईश्वर पौरुष एवं भाग्य का संचालक तथा नियामक है। इस सिद्धांत का मनोवैज्ञानिक कारण है। ईश्वर-बुद्धि से कर्म करने वाले जीव को पुरुषार्थ की सफलता पर अहंकार नहीं होता, उसकी असफलता पर कुंठा नहीं होती। तुलसी वर्णाश्रमधर्म के प्रबल समर्थक हैं। विभिन्न कृतियों में कलियुग का वर्णन करते समय उन्होंने उसके ह्रास पर खेद प्रकट किया है। धर्म-निरूपण के प्रसंगों में उसके पालन पर बल दिया है। परन्तु उनकी दृष्टि संकुचित नहीं है। उसका लक्ष्य लोक-कल्याण है। अतः उन्होंने साधारण-धर्मों को विशेष महत्त्व दिया है। राम-रावण युद्ध के समय धर्ममय रथ के वर्णन में दोनों का सामंजस्य किया है। मानवतावादी दृष्टि से सत्य, परोपकार और अहिंसा को परम धर्म बतलाया है - 'सत्य मूल सब सुकृत सुहाए, धरमु न दूसरसत्य समाना, श्रुति कह परम धरम उपकारा, परहित सरिस धर्म नहिं भाई, परम धरम श्रुतिबिदित अहिंसा।'

मानस में वसिष्ठ ने निम्नवर्ण निषाद तथा केवट को आत्म-विस्मृत होकर प्रेमपूर्वक गले लगाया है -

भेंटत भरतु ताहि अति प्रीती। लोग सिहाहिं प्रेम कैं रीती।
तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता। मिलत पुलक परिपूरित गाता॥

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि तें दण्ड प्रनामू।
रामसखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुटत सनेह समेटा॥

दशरथ, कौशल्या, सुमित्रा, राम, भरत, लक्ष्मण, सीता आदि के माध्यम से तुलसी ने पारिवारिक जीवन का जो महान् आदर्श प्रस्तुत

किया है वह सभी के लिए अनुकरणीय है। विभिन्न पात्रों का पारस्परिक सम्बन्ध स्नेह और शील की उदात्त भूमि पर प्रतिष्ठित है। लक्ष्मण और भरत की 'भायप भगति' तो अप्रतिम है। भरत से मिलकर सुग्रीव और विभीषण आत्मग्लानि से गड़ गये थे-

सधन चोर मग मुदित मन धनी गही ज्यों फेंट।
त्यों सुग्रीव बिभीषनहि भई भरत की भेंट ॥
राम सराहे भरत उठि मिले राम सम जानि।
तदपि बिभीषन कीसपति तुलसी गरत गलानि ॥

त्यागपूर्वक भोग धर्मशील का आदर्श है। इसके दो तात्पर्य हो सकते हैं। एक यह कि अनासक्त भाव से कर्म के सुफल का भोग किया जाए। दूसरा यह कि सुख-भोग को अपने तक ही सीमित न रख कर दूसरों को भी उसका भागी बनाया जाए। राम-राज्य में दोनों का उत्तम निदर्शन मिलता है। स्वयं राम ने भोग और त्याग के समन्वय का आदर्श प्रस्तुत किया है। उन्होंने सीता का परित्याग करके पिता की आयु का भोग किया, अश्वमेध के पश्चात् सम्पत्ति द्विजों को बाँट दी। प्रतिनायक रावण ने तो मानो साम्यवाद के सिद्धान्त को फलितार्थ किया है। हमारे यहाँ दो प्रकार के मार्ग बतलाये गये है- प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्तिमार्ग। पहला गृहस्थ जीवन का द्योतक है और दूसरा संन्यास का। अनेक आचार्य संन्यास को मुक्ति या भक्ति के लिए आवश्यक मानते हैं। तुलसी समन्वयवादी हैं। उनके मतानुसार घर में रहते हुए भी अनासक्त भाव से व्यवहार करने पर भगवद्भक्ति की उपलब्धि हो सकती है -

घर कीन्हें घर जात है घर छाँड़े घर जाइ।
तुलसी घर बन बीच ही रामप्रेम पुर छाइ ॥

किसी भी देश और समाज की सुख-समृद्धि के लिए राजा तथा प्रजा का समन्वित प्रयास अपेक्षित है। तुलसी के युग में पशु-बल के भरोसे शासन करने वाले राजा और बादशाह कर्त्तव्य - च्युत हो गये थे, 'यथा राजा तथा प्रजा' के अनुसार प्रजा भी पाषंड - रत और पतित हो गयी थी समाज की यह दुर्दशा खेदजनक थी। आदर्श राम राज्य में तुलसी ने राजा और प्रजा के अभीष्ट समन्वय का विधान किया। रामभक्त प्रजा धर्म-निरत थी, और प्रजापालन-परायण राम ने नागरिकों को उचित गौरव दिया-

सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहौं न कछु ममता उर आनी ॥
नहि अनीति नहि कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सुहाई ॥
जो अनीति कुछ भाखौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई॥

राजतन्त्र और जनतन्त्र का यह निर्देश युग की परिसीमित पृष्ठभूमि में किया गया है।

काव्य रचना की सफलता भाव-पक्ष और कलापक्ष के समुचित समन्वय में है। भाव-पक्ष के निर्बल होने पर ग्रन्थ मनोरंजक तमाशा बन जाता है, और कला-पक्ष निर्बल होने पर वस्तु भण्डार मात्र रह जाता है। तुलसी साधन-सम्पन्न कवि थे। उनकी प्रतिभा सारग्राहिणी थी। उन्होंने अपने युग में प्रचलित प्रमुख छन्द - पद्धतियों (दोहा, दोहा-चौपाई, कवित्त, बरवै, गीत, सोहर) और विभिन्न काव्यरूपों (प्रबन्ध, मुक्तक) का सफल प्रयोग किया। 'रामचरितमानस' में महाकाव्य और पुराण का समन्वय अपने ढंग का एक ही है। लोकभाषा और संस्कृत का समन्वय भी अवेक्षणीय है। पण्डित लोग लोक-भाषा के विरुद्ध थे, जन-कल्याण जन-भाषा के माध्यम से ही सम्भव था। तुलसी ने प्रतिष्ठित जन- भाषाओं - ब्रजी और अवधी में काव्य-रचना की, किन्तु संस्कृत - पदावली का प्रचुर व्यवहार किया। उन्होंने प्रतिपाद्यविषय और प्रतिपादन-शैली के सामंजस्य का निरन्तर ध्यान रखा है। उनके काव्य में शब्द और अर्थ, भाव और भाषा, भाव और छन्द, अलंकार और अलंकार्य का अपेक्षित समन्वय है। उन्होंने अपने काव्य में सर्वतोमुख समन्वय-विधान किया। उनकी असाधारण सफलता, महत्ता और लोकप्रियता का बहुत कुछ श्रेय उनकी समन्वय साधना को है।

संत कबीर लोक ज्ञान-परंपरा के महान कवि हैं। जनोन्मुखी और विद्रोही चेतना का सर्वाधिक सशक्त रूप हमें कबीरदास की रचनाओं में देखने को मिलता है। संत काव्य के कवियों में उनका स्थान सर्वोपरि है। यद्यपि कबीर से पहले जयदेव और महाराष्ट्र के संत नामदेव इस तरह की काव्य रचना कर चुके थे किंतु हिंदी में उनकी रचनाएँ कम होने के कारण उत्तर भारत की संत परंपरा पर उनका अधिक प्रभाव नहीं पड़ा। भक्ति काल के आरंभ में कबीर एक प्रभावशाली रचनाकार के रूप में हमारे सामने आते हैं। अनंतदास कृत 'कबीर परिचई' के अनुसार वे जन्म से जुलाहे थे, उनका निवास स्थान काशी था, उनके गुरु रामानंद थे और सिकंदर लोदी ने उन्हें अनेक प्रकार से यातना दी थी। कबीर को लंबी उम्र मिली थी। वे लगभग 120 वर्षों तक जीवित रहे। वे 1398 से 1518 ई तक विद्यमान थे। कबीर एवं अन्य संतों की रचनाओं के दार्शनिक -सांस्कृतिक आधारों में उपनिषद, शंकराचार्य का अद्वैत दर्शन, नाथ पंथ, इस्लाम धर्म तथा सूफी दर्शन है। निर्गुण भक्ति का मूल तत्व है- निर्गुण- सगुन से परे अनादि, अनंत, अनाम, अज्ञात ब्रह्म का नामजप, मानसिक भक्ति, कर्मकांडों और आडंबरों का विरोध तथा मानव मात्र के प्रति प्रेम। उनका चिंतन जाति, वर्ण और वर्ग से ऊपर था। उन्होंने हृदय की पवित्रता पर बल दिया।

संत कवियों में कबीरदास के अतिरिक्त रैदास, धर्मदास, गुरु नानक, दादू दयाल, सुंदर दास, मलूक दास, अक्षर अनन्य, जंभदास, सींगा, रज्जब, बाबरी साहिबा, सदना, बेनी, पीपा, लाल दास, सेना, अंगद, शेख फरीद, भीषन, वीरभान, निपटनिरंजन, गरीबदास, दूलनदास, मानी साहब, बुल्ला साहब, सहजोबाई, तुलसीदास तथा निश्छलदास के नाम उल्लेखनीय हैं। कबीर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने किसी भी परिस्थिति में पुरानी पतनशील मान्यताओं के सम्मुख घुटने नहीं टेके और किसी तरह का समझौता नहीं किया। समझौते का रास्ता छोड़कर विद्रोह का रास्ता अपनाते हुए निर्गुण भक्ति की जो धारा भक्ति आंदोलन की स्रोतस्विनी से फूटी कबीर उसकी सबसे ऊँची लहर के साथ सामने आए। समझौता उनकी प्रकृति में नहीं था। विद्रोह और क्रांति की ज्वाला उनकी रग-रग में व्याप्त थी। सिर पर कफन बाँधकर, अपना घर फूँककर

वे अलख जगाने निकले थे। उन्हें समझौतापरस्तों की नहीं अपना घर फूँककर साथ चलने वालों की जरूरत थी। वे लुकाठी लिए सरे बाजार गुहार लगा रहे थे-

कबीरा खड़ा बाज़ार में, लिए लुकाठी हाथ।
जो घर जारे आपना, चले हमारे साथ।।

कबीर अपने समय के कड़वे यथार्थ से लगातार साक्षात्कार कर रहे थे। उन्हें यह अच्छी तरह मालूम था कि ग़रीब आदमी को कोई नहीं पूछता, कोई सम्मान नहीं देता, उसके प्रति किसी में कोई संवेदना नहीं होती-

निर्धन आदर कोई न देई,
लाख जतन करै औहु चित न धरेई।

महात्मा कबीर ने यह अनुभव किया था कि तमाम पोथी ज्ञान के धनी लोग व्यवहार-ज्ञान शून्य और भीतर से कठोर व हृदयहीन हैं। 'प्रेम' सिर्फ एक शब्द बन कर रह गया है जो जीवन में नहीं दिख रहा।ऐसे विद्वानों को लक्ष करके उन्होंने 'पोथी पढ़ि-पढ़ि...' तो कहा ही था, यह भी कहा था कि-

पढ़ि-पढ़ि के पाथर भये, लिखि-लिखि भये जो ईंट।
कहै कबीरा प्रेम को एको छुवो न छींट।।

उन्होंने पुस्तक ज्ञान के बरक्स लोक ज्ञान को महत्व दिया। अपने समय की सारी समस्याओं का समाधान उन्होंने 'प्रेम' में तलाशा। उन्होंने एक प्रेममय संसार की कल्पना की और उसका प्रस्ताव रखा। उन्होंने नफ़रत के वातावरण में प्रेम का पाठ पढ़ाया -

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।

कबीर का मानना था कि इस संसार में जन्म लेकर जिन मनुष्यों ने परस्पर प्रेम-भाव नहीं रखा, प्रेम नहीं किया, प्रेम का आस्वादन नहीं किया, उसका आनंद नहीं लिया उनका इस दुनिया में आना उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार सूने घर में किसी पाहुन (अतिथि) का जाना व्यर्थ हो जाता है -

कबीर प्रेम न चाखीया, चाखि न लीया साव।
सूने घर का पाहुना, ज्यूँ आया त्यूँ जाव।।

प्रेम का अनुभव, आस्वादन (लौकिक और अलौकिक) होने से, प्रेम के प्रकाशित होने से भीतर-बाहर हर तरफ दिव्यता का, ज्ञान का, आनंद का अनुभव होने लगता है। प्रेम भरे व्यक्ति के मुख की वाणी से कस्तूरी की सुगंध आने लगती है -

पिंजर प्रेम प्रकाशिया, अंतरि भया उजास।
मुख कस्तूरी महमही, बानी फूटी बास।।

आज का मनुष्य बहुत जल्दी, बहुत हड़बड़ी में है। वह थोड़ा-सा कार्य करके बहुत ज्यादा प्राप्त करना चाहता है और तुरंत प्राप्त करना चाहता है। कबीर इस तरह के बहुत सुखों की ओर भागते हुए इंसान को थोड़ा धैर्य रखने की सलाह देते हैं कि माली की तरह पौधों को सींचते रहो, कर्म करते रहो, फल थोड़े विलंब से ही सही लेकिन मिलेगा -

धीरे-धीरे रे मना,धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, रितु आये फल होय।।

आधुनिक काल की हिंदी कविता हिंदी नवजागरण और स्वाधीनता आंदोलन की चेतना के साथ आगे बढ़ी। विविध क्षेत्रों में मशीनों के आगमन और संचार के साधनों ने इसे गति प्रदान किया। आत्मबोध, स्वदेशी, स्वाभिमान, सांस्कृतिक परंपरा और स्वभाषा के प्रति प्रेमभाव इस युग की कविता में प्रवाहित होता रहा। भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रताप नारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन, अंबिकादत्त व्यास, राधाकृष्ण दास, राधाचरण गोस्वामी आदि कवियों ने तत्कालीन समस्याओं को उठाते हुए अतीत की समृद्ध परंपराओं को याद किया -

हाय! वहै भारत भुव भारी।
सब विधि सो भई दुखारी।।
हाय पंचनद, हा पानीपत।
अजहु रहे तुम धरनि विराजता।।
हाय चित्तौर! निलज्ज तू भारी।
अजहुँ खरो भारतहि मँझारी।।

- भारतेंदु

द्विवेदी युगीन कविता मूलतः जागरण, सुधार और राष्ट्रीय आंदोलन से संबंधित है। उस युग के कवियों में मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, महावीर प्रसाद द्विवेदी, माखनलाल चतुर्वेदी, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', रत्नाकर, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', लाला भगवानदीन, श्रीधर पाठक आदि का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन कवियों ने अतीत के प्रेरक प्रसंगों और वीर योद्धाओं का गौरवगान करते हुए देश के नौजवानों को उनके जैसा बनने के लिए प्रेरित किया। इस दृष्टि से यह पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं -

यह पुण्य भूमि प्रसिद्ध है, इसके निवासी आर्य हैं,
विद्या कला कौशल्य सबके, जो प्रथम आचार्य हैं।
संतान उनकी आज यद्यपि, हम अधोगति में पड़े,
पर चिह्न उनकी उच्चता के, आज भी कुछ हैं खड़े।

- मैथिलीशरण गुप्त (भारत भारती)

लगभग इसी तरह के भाव श्रीधर पाठक की इन पंक्तियों में भी व्यक्त हुए हैं -

वंदनीय वह देश जहाँ के देशी निज अभिमानी हों,
बांधवता में बँधे परस्पर, परता के अज्ञानी हों।
निंदनीय वह देश, जहाँ के देशी निज-अज्ञानी हों,
सब प्रकार परतंत्र, पराई प्रभुता के अभिमानी हों।

- श्रीधर पाठक (भारत गीत)

गुप्त जी ने अपने प्रबंध काव्यों और कविताओं में पुराणों और इतिहास के महापुरुषों और योद्धाओं का आदर्श प्रस्तुत करते हुए उनकी वीरता का बार-बार स्मरण कराया -

चर्चा हमारी भी कभी संसार में सर्वत्र थी,
वह सद्गुणों की कीर्ति मानो एक और कलत्र थी।
इस दुर्दशा का स्वप्न में भी क्या हमें कुछ ध्यान था ?
क्या इस पतन ही को हमारा वह अतुल उत्थान था ?
हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी,
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।

छायावाद स्वाधीन चेतना का काव्य है। उसके चिंतन के केंद्र में देश-भक्ति और स्वाधीनता की संकल्पना है। देश भर में चल रहे तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलनों, राजनेताओं के विचारों और क्रांतिकारियों के संघर्षों व बलिदानों से उसे ऊर्जा मिल रही थी। उस युग के काव्य का एक बड़ा हिस्सा शक्ति की आराधना का काव्य है। राम की शक्ति पूजा, तुलसीदास, कामायनी तथा चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त नाटकों के गीतों-कविताओं में यह राष्ट्रीय चेतना अत्यंत उन्नत रूप में दिखाई पड़ती है। प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी की तमाम आह्वानपरक कविताओं देशभक्ति और जागरण का अत्यंत प्रबल स्वरूप प्रकट हुआ है -

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान छितिज को मिलता एक सहारा।

– जयशंकर प्रसाद

हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो
प्रशस्त पुण्य पंथ है- बढ़े चलो, बढ़े चलो।

- जयशंकर प्रसाद

जागो फिर एक बार
शेरों की माँद में आया है आज स्यार
जागो फिर एक बार।

-निराला

जागो-जागो आया प्रभात
बीती वह बीती अंध रात।

-निराला

चिर सजग ऑखें उनींदी
आज कैसा व्यस्त बाना
जाग तुझको दूर जाना।

-महादेवी

प्रसाद की 'पेशोला की प्रतिध्वनि', 'छत्रपति शिवाजी का पत्र', 'शेर सिंह का शस्त्र समर्पण' आदि कविताओं में स्वाधीनता का भाव बहुत प्रबल है। छायावादी कवियों में निराला शक्ति से प्रभावित हैं, पंत अरविंद दर्शन से और प्रसाद शैव दर्शन से। उनपर प्रत्यभिज्ञा दर्शन का गहरा प्रभाव है। कश्मीर शैव दर्शन में चार अद्वैत दर्शन उपलब्ध होते हैं- क्रमदर्शन, कुलदर्शन, मतदर्शन और त्रिकदर्शन। ये सभी शिवादृयवादी दर्शन हैं। त्रिकदर्शन को ही प्रत्यभिज्ञा दर्शन कहते हैं। प्रत्यभिज्ञा, स्मृति और अनुभव सामानाधिकरण्य में प्रतिफलित होती हैं। पुराणों एवं शास्त्रों के अनुसार एक सर्वशक्तिमान ईश्वर है। जब स्वात्म का परिचय और उसकी प्रधानता होती है तब अनुभव होता है कि 'मैं ही वह ईश्वर हूँ।' इस 'मैं' के प्रतीप 'अहम ईश्वर' का अनुसंधान या पहचान ही प्रत्यभिज्ञा है। इसमें स्मरण, अनुभव और संस्कार शामिल होते हैं। परमेश्वर शिव के स्वात्म दर्पण में भेद, अभेद, भेदाभेद, पर, अपर, परापर सब कुछ अपने त्रिक रूप में प्रतिबिंबित है। अहम परामर्श, अहमिदम् और इदमहम् की त्रिकानुभूति में जीव मुक्ति निहित है। प्रसाद जी ऐसा ही मानते थे। इसलिए उन्होंने मानवता की विजय का संदेश दिया- 'अमर्त्य वीर पुत्र हो।' उनकी दृष्टि में सारा विश्व एक परिवार है जिसका सार समरसता है। वह इसी समरसता और समन्वय का प्रतिपादन करते हैं-

समरस थे जड़ या चेतन, सुंदर साकार बना था,
चेतनता एक विलसती, आनन्द अखण्ड घना था।

-कामायनी

शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त, विकल बिखरे हैं हो निरुपाय,
समन्वय उनका करे समस्त, विजयनी मानवता हो जाय।

-कामायनी

सबका निचोड़ लेकर तुम सुख से सूखे जीवन में,
बरसों प्रभात हिमकण सा, आँसू इस विश्वसदन में।

-आँसू

छायावादोत्तर और स्वातंत्र्योत्तर काव्य का विकास कई धाराओं, उपधाराओं में हुआ जिनके ज्ञान, विचार और प्रेरणा के स्रोत अलग-अलग थे। इनमें भारतीय सांस्कृतिक मूल्य भी थे और पाश्चात्य विचारों की प्रेरणा भी थी। राम, कृष्ण, बुद्ध, स्वामी दयानंद, गांधी, विवेकानंद, अरविंद, अंबेडकर आदि के साथ ही मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन, फ्रायड, कामू, काफ्का, सार्त्र, एडलर, युंग, किर्केगार्ड, हैडिगर, शोपेन हावर, कार्ल यास्पर्स आदि चिंतकों और मनीषियों की चिंतनधारा ने हिंदी कविता में जगह बनाई। परवर्ती कवियों में दिनकर, अज्ञेय, नागार्जुन, मुक्तिबोध, केदारनाथ अग्रवाल, धूमिल, दुष्यंत कुमार, त्रिलोचन, बच्चन, भवानी प्रसाद मिश्र, शिवमंगल सिंह सुमन, सर्वेश्वर, रामदरश मिश्र, अदम गोंडवी सहित तमाम ग़ज़लकारों और नवगीतकारों का अवदान भी महत्त्वपूर्ण है। इन कवियों ने हिंदी कविता को भारतीय परिवेश से जोड़ने के साथ ही वैश्विक चिंतन का सहभागी बनाया।

प्रोफेसर, हिंदी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, ईमेल – vanoopbhu09@gmail.com, मो. – 9415895812

हिंदी साहित्य का सिनेमा में रूपान्तरण

प्रो. कुमुद शर्मा

हिंदी सिनेमा की सौ वर्षों से अधिक की यात्रा में हिंदी की साहित्यिक कृतियों के फिल्मों में रूपान्तरित होने का इतिहास इस बात का प्रमाण है कि साहित्यकारों और फ़िल्मकारों के संबंधों में प्रगाढ़ता कम ही देखने को मिली। एक दूसरे से शिकवे - शिकायतें और दर्द की दास्ताँ ज्यादा सुनने को मिली। हिंदी की साहित्यिक कृतियों पर अनेक फ़िल्में बनीं लेकिन कुछ अपवादों को छोड़कर अधिकांश फिल्मों को असफलता ही हाथ लगी। कथा सम्राट प्रेमचंद सन् 1933 में बड़े सम्मान के साथ वार्षिक अनुबंध पर फिल्म नगरी में एक कम्पनी के द्वारा बॉम्बे बुलाये गए। उनकी कहानी पर मोहन भावनानी के निर्देशन में 'मिल मज़दूर' फिल्म बनी। साहित्यिक कृति के रुपान्तरण में निर्देशक ने परिवर्तन किए। जो प्रेमचंद को रास नहीं आए। अंग्रेज़ साम्राज्यशाही के कारण सेंसर की कैंची भी चली परिणामस्वरूप अन्ततः जिस रूप में फिल्म सामने आयी उसकी कल्पना प्रेमचंद ने नहीं की थी।

जब हम साहित्य के सिनेमा में रूपान्तरण विषय पर चिंतन-मनन और अन्वेषण की दिशा में प्रवृत्त होते हैं तो कुछ बड़े महत्त्वपूर्ण प्रश्न हमारे समाने उपस्थित हो जाते हैं, मसलन साहित्य और सिनेमा का अन्तर्संबंध क्या है? क्या फिल्म को भी साहित्यिक विधा का दर्जा दिया जा सकता है? क्या हर साहित्यिक कृति में फिल्म के रूपान्तरण की संभावनाएँ होती हैं? कहानी या उपन्यास के ढाँचे और फिल्म के ढाँचे में क्या अन्तर है? दोनों की कलात्मक युक्तियों में क्या फ़र्क़ है? क्या फिल्म लेखन साहित्य से पृथक एक स्वतंत्र विधा है ? क्या साहित्यिक कृति की तुलना उसके फिल्मान्तरण से की जा सकती है? अगर किसी साहित्यिक कृति पर फिल्म बनती है तो उस फिल्म को देखने जानेवाला दर्शक क्या यह सोचकर आश्वस्त हो सकता है कि मुझे फिल्म में वही कहानी देखने को मिलेगी? यदि साहित्य जीवन की रचना है, जीवन की आलोचना है, जीवन की व्याख्या है, जीवन का ब्यौरा है तो फिर फिल्म क्या है? साहित्यकार द्वारा सृजित जीवन का पुन: सृजन या फिर कुछ और। 'लारजर दैन लाइफ़' मानी जानेवाली फिल्म विधा ने साहित्यिक कृतियों पर फिल्म निर्माण में अपनी कितनी रुचि दिखायी है? फ़िल्मी दुनिया में हिंदी की साहित्यिक कृतियों पर फिल्म निर्माण का इतिहास कैसा है? साहित्यकार और फिल्मकार के रिश्ते कैसे रहे? आज साहित्य के सिनेमा में रूपान्तरण की कठिनाइयाँ क्या है? चुनौतियाँ क्या हैं?

अनेक साहित्यकार फिल्म को भी साहित्य की श्रेणी में रखते हैं। फणीश्वरनाथ रेणु का कहना था कि "हर अच्छी साहित्यिक कृति अपने आप में फिल्म होती है।" कुछ इससे मिलती-जुलती राय राही मासूम रजा ने भी व्यक्त की है - "फिल्म कला है या केवल व्यापार? मैं फिल्म को साहित्य का अंग मानता हूँ। ... आप कह सकते हैं कि फिल्म दृष्टि की कला है इसलिए वह साहित्य नहीं हो सकती। साहित्य अब दृष्टि ही की कला है। हमने जिस दिन लिखना सीखा था, साहित्य ने तो उसी दिन बोलना बंद कर दिया था। फिल्म भी एक किताब है जिसे डायरेक्टर हमारे सामने खोलता भी जाता है और पढ़े-लिखे हैं तो उसके सुनाए बिना भी हम इस किताब को पढ़ सकते हैं।"

राही मासूम रजा साहित्य और फिल्म के बीच प्रगाढ़ रिश्ता स्थापित करते हुए उसे साहित्य की एक विधा विशेष मानकर पाठयक्रम में शामिल करने की अपील तक कर डालते हैं-क्योंकि उनकी दृष्टि में सिनेमा भी उन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति करता है जो अन्य साहित्यिक विधाएँ करती हैं। दोनों की ताकत या शक्ति एक ही है। - "सिनेमा साहित्य की एक विधा है। इस समय विचार का विषय यह है कि सिनेमा की पहुँच छपे हुए शब्द से अधिक है, उसके लिए हमारे बुद्धिजीवी कितना ही नाक-भौंह चढ़ाएँ, साहित्य एवं समाजशास्त्र जैसे विभाग फिल्म जैसी ताक़तवर साहित्यिक विधा को अनदेखा नहीं कर सकते, सिनेमा की इस बेपनाह ताकत के अतिरिक्त साहित्य की शिक्षा और समझ के

लिए सिनेमा को साहित्य स्वीकार कर उसे साहित्य के पाठ्यक्रम में शामिल करना आवश्यक है।" राही मासूम रजा की इस अपील पर आज अमल भी हो रहा है, भाषा और साहित्य के पाठ्यक्रमों में फिल्मों को सम्मिलित कर लिया गया है। इसमें भी कोई दो राय नहीं कि आज साहित्य की तरह फिल्म भी एक पाठ है एक टेक्स्ट है।

जो साहित्य और फिल्म का गहरा संबंध स्थापित करने की कोशिश करते हैं उनके लिए यह सुखद संयोग था कि दादा साहब फाल्के के द्वारा हिंदी साहित्य के पुरोधा भारतेंदु हरिश्चंद्र की कृति ' 'सत्य हरिश्चंद्र' से भारत में पहली फ़ीचर फिल्म बनी। सिनेमा ने फ़ीचर फिल्म की कथा में दर्शकों को बाँधने के लिए साहित्य से ही खुराक ग्रहण की।

हिंदी सिनेमा की सौ वर्षों से अधिक की यात्रा में हिंदी की साहित्यिक कृतियों के फिल्मों में रूपान्तरित होने का इतिहास इस बात का प्रमाण है कि साहित्यकारों और फ़िल्मकारों के संबंधों में प्रगाढ़ता कम ही देखने को मिली। एक दूसरे से शिकवे - शिकायतें और दर्द की दास्ताँ ज्यादा सुनने को मिली। हिंदी की साहित्यिक कृतियों पर अनेक फ़िल्में बनीं लेकिन कुछ अपवादों को छोड़कर अधिकांश फिल्मों को असफलता ही हाथ लगी। कथा सम्राट प्रेमचंद सन् 1933 में बड़े सम्मान के साथ वार्षिक अनुबंध पर फिल्म नगरी में एक कम्पनी के द्वारा बॉम्बे बुलाये गए। उनकी कहानी पर मोहन भावनानी के निर्देशन में 'मिल मज़दूर' फिल्म बनी। साहित्यिक कृति के रुपान्तरण में निर्देशक ने परिवर्तन किए। जो प्रेमचंद को रास नहीं आए। अंग्रेज़ साम्राज्यशाही के कारण सेंसर की कैंची भी चली परिणामस्वरूप अन्ततः जिस रूप में फिल्म सामने आयी उसकी कल्पना प्रेमचंद ने नहीं की थी। प्रेमचंद ने कहा कि यह प्रेमचंद की हत्या है। बॉम्बे में यह प्रतिबंधित हो गयी। लाहौर में 'गरीब मज़दूर' के नाम से प्रदर्शित हुई।

फ़िल्मी दुनिया से प्रेमचंद का जल्दी ही मोहभंग हो गया। 1935 में 'हंस' के एक लेख में अपनी पीड़ा को अभिव्यक्त किया। इस लेख में उन्होंने फिल्म और साहित्य के संबंधों पर अपने अनुभवों से निकले हुए सूत्रों को पिरोते हुए कुछ मार्मिक बातें कहीं। व्यंग्यात्मक ढंग से कहा कि -"अक्सर लोगों का ख़्याल है कि जब से सिनेमा 'सवाक्' हो गया है, वह साहित्य का अंग हो गया है। साहित्य भावों को जगाता है, सिनेमा भी भावों को जगाता है, इसलिए वह भी साहित्य है। लेकिन प्रश्न यह होता है - कैसे भावों को? साहित्य वह है जो ऊँचे और पवित्र भावों को जगाये, जो सुन्दरम् को सामने लाये,,.... हमारा ख़्याल है हमारे चित्रपटों में यह बात नहीं मिलती। उसका उद्देश्य पैसा कमाना है। सुरुचि और सुन्दरता से उसे कोई प्रयोजन नहीं। वह तो जनता को वही चीज देंगे जो वह माँगती है। व्यापार व्यापार है। ...व्यापार में भावुकता आयी और व्यापार नष्ट हुआ।....हिंदी के कई साहित्यकारों ने सिनेमा पर निशाने लगाये, लेकिन शायद ही किसी ने मछली बेध पाई हो। फिर गले में जयमाल कैसे पड़ती? .....साहित्य हमारी सुन्दर भावना को स्पर्श करके हमें मतवाला बनाता है और उसकी दवा प्रोड्यूसर के पास नहीं है।.... जिसे साहित्य की सनक हो वह कभी कुरुचिपूर्ण की ओर जाना स्वीकार नहीं करेगा।"

प्रेमचंद्र की रचनाओं पर 'नवजीवन' और 'सेवासदन' बनी दोनों फ़िल्में सफल नहीं रही। उनकी कहानी 'त्रिया चरित्र' पर 'स्वामी' फिल्म बनी वह भी कोई करिश्मा नहीं कर सकी। उपन्यास रंगभूमि और गबन पर पर निर्मित फिल्म भी प्रेमचंद को फिल्मी दुनिया में प्रतिष्ठापित नहीं कर पायी। इस दौरान साहित्यकारों की यह समझ भी बनी कि फिल्मों के बाजार की दृष्टि से अगर कोई रचनाकार कलम को गति देता है तो वह सृजनात्मक विधान के प्रतिकूल व्यवहार कर रहा होता है।

चतुरसेन शास्त्री, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा, फणीश्वरनाथ नाथ रेणु, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, उपेनद्रनाथ अश्क़, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी की साहित्यिक कृतियों पर फ़िल्में बनीं, जिनके अपने क़िस्से और कहानियाँ भी हैं। पांडेय बेचन शर्मा उग्र अपनी कृति 'चाकलेट' पर घासलेटी साहित्य के विरुद्ध छिड़े आंदोलन से विक्षुब्ध होकर 'तुम नहीं और सही ' की मुद्रा में फिल्म नगरी पहुँचे थे। नौ वर्ष फिल्म नगरी में गुज़ारने के बाद निराश लौटे। चतुरसेन शास्त्री के उपन्यास पर 'धर्मपुत्र' नाम से बी. आर. चोपड़ा जैसे फ़िल्मकार ने फिल्म बनायी जो नहीं चली। रेणु की कहानी 'मारे गये गुलफाम' पर तीसरी कसम' फिल्म बनी। ये फ़िल्में फ़्लॉप फिल्मों की श्रेणी में गिनी गयीं। 'तीसरी कसम' को श्रेष्ठता के पैमानों पर खरी उतरने के कारण राष्ट्रीय पुरस्कार अवश्य मिला लेकिन वह दर्शकों को रास नहीं आयी। एक अच्छी कृति पर बनी अच्छी फिल्म के इस हश्र से इस फिल्म के निर्माता शैलेंद्र इतने आहत हुए कि दुनिया ही छोड़ गये। 1941 में भगवती चरण वर्मा की कृति चित्रलेखा पर केदार शर्मा द्वारा निर्मित फिल्म को सफलता का मुँह देखना नसीब हुआ।

1969 में समानांतर सिनेमा की शुरुआत के बाद साहित्यिक कृतियों में रुचि दिखायी लेकिन उसे दर्शक और वितरक दोनों के अभाव में संकटों को झेलना पड़ा। जिन तीन फिल्मों से समानान्तर सिनेमा का प्रारम्भ माना गया वे थीं- वनफूल उपन्यास पर आधारित मृणाल सेन की भुवनशोम, बासु चटर्जी की 'सारा आकाश' राजेन्द्र यादव के उपन्यास पर आधारित है।, मणिकौल की 'उसकी रोटी' मोहन राकेश की कहानी पर बनी। यानी तीन फिल्मों में दो हिंदी की रचनाएँ रहीं। इसके बाद शिवमूर्ति की कहानी 'तिरिया चरित्तर' पर फिल्म बनी।। लेकिन 'मास' से इनका रिश्ता नहीं बन पाया। साहित्य और फिल्म दोनों से जुड़ने वाले गुलज़ार कहते हैं कि-"साहित्य और सिनेमा का संबंध एक अच्छे

अथवा बुरे पड़ोसी, मित्र या संबंधी की तरह एक दूसरे पर निर्भर है। यह कहना जायज़ होगा कि दोनों में प्रेम संबंध है। इनके संबंध की जॉच-पड़ताल कर यह जानना उपयोगी होगा कि इनकी नज़रें चार होने से अब तक की प्रेम यात्रा में इनके संबंध प्रगाढ़ हुए अथवा विकृत"।

साहित्य और सिनेमा का अनुशासन बिल्कुल भिन्न है। आप फिल्म को साहित्य की विधा मानें या न मानें लेकिन दोनों में अन्तर्संबंध जरुर है। उसके बावजूद वे भिन्न हैं।। उनके प्रयोजन प्राय: अलग रहे हैं। उसके मूल्य अलग हैं। जैनेन्द्र को लिखे एक पत्र में प्रेमचंद ने लिखा - 'वल्गारिटी को ये लोग एंटरटेनमेंट वैल्यू कहते हैं।"

साहित्य के लिए कच्चा माल है - संवेदना, स्मृति, पात्र, भाषा और विचार। जब कोई रचनाकार साहित्य लेखन की दिशा में प्रवृत्त होता है संवेदना के तंतुओं को तानकर खोलता है, स्मृतियों में जाकर पात्र को तलाशता है। स्मृतियों में डुबकी लगाता है क्योंकि संवेदना की सघन समाहित स्मृति ही साहित्य में रूपान्तरित होती है। पात्रों को तलाशता है। तथ्य के अनुरूप भाषा और शिल्प का ढाँचा ढूँढ़ता है। फिर उस ढ़ाँचें में विचार को कैसे अनुस्यूत करता है। तब कृति को जन्म देता है लेकिन फिल्मकार अपनी फिल्म के लिए साहित्यिक कृति को कच्चे माल की तरह ही इस्तेमाल करता है। इस कच्चे माल से वह अपना उत्पाद बनाता है। यानी कृति को कच्चे माल की तरह प्रयोग करके फिल्म का प्रोडक्शन करता है।

इसमें संदेह नहीं कि संवेदना की सघन समाहित स्मृति वाले साहित्य के पास सिनेमा को समृद्धि के लिये कथा संसार का विराटऔर भव्य संसार है। जहाँ से फ़िल्मांकन के लिए ढेरों कथा संरचनाएँ मौजूद हैं। किसी ने सही कहा है कि -"साहित्य के पास सिनेमा की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए विपुल भंडार है। एक ओर भाव-दशा, पात्रों, वास्तुकला, परिवेश तथा संवेगात्मक स्थितियों के दृश्यात्मक विवरण तो दूसरी ओर कलाकारों की भाव भंगिमा तक के विस्तृत चित्रण। इतना ही नहीं ध्वनियों, शब्दों और भाषाओं के परिवेशगत प्रभाव तथा संगीत के सूक्ष्म श्रव्य ब्यौरे। ऐसे नाटकीय और कथात्मक दृश्य जिनमें संगीतमय कविताएँ भीं।' हिंदी के ऐसे तमाम रचनाकारों की रचनाओं के उदाहरण दिए जा सकते है जहाँ शब्द और दृश्यों का अद्भुत संयोजन है।। लेकिन मात्र कथा संरचना से ही फिल्म निर्माण संभव नहीं हो सकता। एक अच्छी साहित्यिक कृति पर बहुत अच्छी फिल्म बन सकती है और कभी अपेक्षाकृत कम अच्छी साहित्यिक कृति पर दर्शकों को बहुत उम्दा फिल्म देखेंगे को मिल सकती है।

किसी साहित्यिक कृति का फिल्म में रूपान्तरण एक कठिन और चुनौतीपूर्ण प्रक्रिया है। एक विशिष्ट अनुभव और प्रशिक्षण की माँग करती हुई। साहित्य की किसी कृति के फिल्म में रूपान्तरित होने की प्रक्रिया में केवल मूल कलाकृति की घटनाओं को फिल्म में उतारना भर नहीं है। फ़िल्मकार को कलाकृति की भाषा को भेदकर छिपे हुए अर्थ को एक मूर्त और जीवन्त अभिव्यक्ति देनी होती है।

साहित्य रूपान्तरण की अपनी कठिनाइयाँ भी हैं। साहित्य वस्तुत: एक व्यक्तिगत प्रकिया है। कृति का सृजनकर्ता लेखक स्वयं होता है - उसकी थीम, उसकी फ़्लाइट ऑफ फैंटेसी, उसकी भाषा, उसकी शैली। साहित्य का संसार शब्दों तक सीमित होता है। जहाँ शब्दों की ही महत्ता होती है, शब्दों की ही सत्ता होती है। और सत्ता होती है पाठक की। कृष्णा सोबती के शब्दों को उधार लेकर कहा जा सकता है कि पाठक ही 'लिखत को निगाह देता है शब्दों को अर्थ।' अर्थ देता है शब्दों के भीतर के दृश्यात्मक और घटनात्मकता संकेतों में छिपे रिक्त स्थानों को वह स्वयं भरता है। उसमें ढूँढ़ना पड़ेगा रचनाकार कहना क्या चाहता है। उदाहरण के लिए अज्ञेय की कहानी है रोज़। जो कभी गैंग्रीन नाम से भी प्रकाशित हुई थी। अज्ञेय की बेहद सशक्त कहानी है। जो पति-पत्नी के बीच के मृत संबंधों पर है, इनके संबंधों में जो एकरसता, ऊब और उदासीनता समा गयी है उसकी कहानी है। कहानी में घड़ी और ग्रैंगीन ये दो शब्दों में पाठक गहरे अन्त: प्रवेश किए बिना कृति की मूल संवेदना और उसके निहितार्थ को समझ ही नहीं सकता। कहानी के समापन में एक वाक्य आता है-अस्पताल में एक मरीज़ था उसे ग्रैंगीन था पैर काटना पड़ा। संकेतार्थ यह था कि पति-पत्नी के संबंधों में ग्रैंगीन हो गया। आगे पाठक जो अर्थ ग्रहण करना चाहे। हर पाठक अपनी तरह से पाठ का अर्थ ग्रहण कर अपनी राय बना सकता है। परदे पर दर्शक फ़िल्मकार द्वारा निर्मित छवि को ग्रहण करने के लिए मजबूर है। इसीलिए गेब्रियल गार्सिया मारखेज ने अपने उपन्यास 'अकेलेपन के सौ वर्ष' पर फिल्म बनाने का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया था। जबकि उन्हें इसके लिए आकर्षक धनराशि मिल रही थी। अगर कोई फ़िल्मकार इस पर फिल्म बनाना चाहेगा तो उसे निहितार्थों को खोलने के लिये शब्दों को दृश्यों में, शॉटस् में ढालना होगा। एक फ़िल्मकार शब्दों से कम 'कैमरे की भाषा' से अधिक काम लेता है। सत्यजीत रे ने इसे इस तरह बयान किया है कि फिल्म निर्माता 'कहानी को चलचित्र के ढ़ाँचें में सहेजता है।'

वाल्टर बेन्यामिन इस तथ्य को रेखांकित करते हैं-"आसपास की चीज़ों का क्लोज़अप देकर, जानी पहचानी चीज़ों के अनपहचाने पक्षों को सामने खोलकर, जीवन को कैमरे द्वारा नए ढंग से उद्घाटित कर फिल्म हमारे सामने उन अनिवार्यताओं को प्रकट करती है, जो हमारे जीवन का संचालन करती हैं। साथ ही साथ यह उम्मीद भी देती है कि अभी इस जगत में काफी कुछ छुपा हुआ है- ख़ाक में अभी भी सूरतें

होंगी" - (साहित्य और फिल्म के अन्तर्संबंध, विनोद दास, आलोचना, अक्टूबर, -दिसम्बर, 2001)।

साहित्य की कृति में पाठक स्वयं अर्थ निकालता है। लेखक सब कुछ खोलकर नहीं कहता। छिपाकर कहता है। क्योंकि उसका पाठक अभिप्रेत पाठक है, ऐसा पाठक है जो साहित्यक अभिरुचि वाला पाठक है जानकार पाठक है। इस तरह साहित्य के पाठकों का दायरा बहुत बडा नहीं है लेकिन फ़िल्मी दर्शकों का दायरा बहुत बडा है। प्रसिद्ध पटकथा लेखक नवेदु घोष का कहना है कि साहित्य 'क्लास के लिए होता है, वहीं सिनेमा 'मास' के लिए। फिल्म सभी के लिए है। साहित्य, साहित्य में रुचि रखनेवाले विशेष पाठक तक ही अपनी पहुँच बनाता है जबकि फिल्म एक बड़े व्यापक जन समुदाय की रुचि का हिस्सा बन जाता है।फिल्म के दर्शकों की कोटियाँ अलग-अलग हो सकती हैं। दर्शक निरक्षर भी हो सकते हैं, साक्षर भी हो सकते हैं। उच्च मध्य वर्ग के भी हो सकते हैं, निम्न मध्यवर्ग के भी हो सकते हैं और निम्न वर्ग के भी हो सकते हैं। किसी भी क्षेत्र, किसी भी शहर और किसी भी देश के हो सकते है।

फिल्म निर्माण की प्रक्रिया शब्दों के संसार का अतिक्रमण करती है। अपने दायरे का विस्तार करती हुई एक साझे प्रयास की परिणति से ही संभव हो पाती है। निर्देशक, फिल्म निर्माण की प्रकिया कई चरणों से होकर गुज़रती है। पटकथा लेखन, शूटिंग, डायरेक्शन, एडीटिंग और फिल्म का वितरण और प्रदर्शन भी शामिल है। प्रोड्यूसर, निर्देशक, सहायक निर्देशक, कास्टिंग निर्देशक, लोकेशन प्रबंधक, निर्माण प्रबंधक, छायांकन निर्देशक, नृत्य निर्देशक, ऑडियोग्राफर, पटकथा लेखक, कैमरा मैन, सिनेमेटोग्राफ़र, कोरियोग्राफ़र, संगीतकार, ध्वनि संयोजक, प्रकाश संयोजक और एडीटर। यहाँ तक कि कॉस्ट्यूम् डिज़ाइनर की अपनी-अपनी भूमिका होती है। मानवीय कल्पना और श्रम के साथ-साथ हाई टैक्नोलॉजी और टैक्नीक की सहायता भी शामिल है। सेट पर 'पिक्चर इज अप', 'क्वायट एवरी वन', 'रोल राउण्ड', 'साउण्ड स्पीड', 'रोल कैमरा','मार्कर','एक्शन' और 'कट' 'मूविंग ऑन' जैसे शब्दावली के साथ किसी फिल्म के सेट पर शूटिंग भर से फिल्म पूरी नहीं हो जाती। पोस्ट प्रोडक्शन में महीनों क्या सालों लग जाते हैं।

इस तरह जहाँ साहित्यिक कृति शब्द सम्पदा से अपनी यात्रा पूरी करती है वहीं किसी फिल्म की यात्रा शॉट्स की कड़ियों के सहारे आगे बढ़ती है। शॉटस् सिनेमा का महत्त्वपूर्ण अंग बन जाता है। सिनेमा पर विचार करते हुए ग्रिफिथ ने सबसे पहले यह स्पष्ट किया कि सिनेमा का महत्त्वपूर्ण अंग शॉट्स हैं- "ग्रिफ़िथ की समझ में यह बात पहले ही आ गयी थी कि एक साँस में जैसे मुँह से कहानी नहीं कही जाती या कथा- साहित्य में जिस प्रकार वाक्य सजाए जाते हैं, सिनेमा की कहानी को भी खंड-खंड दृश्यों और शॉटों में विभाजित कर कहना पड़ता है। प्रत्येक शॉट, एक वाक्य या एक शब्द हुआ करता है। शब्दों की तरह शॉटों की भाषा हुआ करती हैं और वह भाषा फिल्म की ऐकान्तिक भाषा है, दृश्य-वस्तु की भाषा है। कथा-साहित्य में कहानी को जिस प्रकार अनुच्छेदों -परिच्छेदों में विभाजित करने की आवश्यकता पड़ती है, सिनेमा की कहानी को उसी प्रकार 'मिक्स' या 'फेड' जातीय विशेष यान्त्रिक एवं रासायनिक उपायों के सहारे खंड-खंड में विभाजित किया जा सकता है।"(चलचित्र: कल और और कल, पृ-16)

फिल्म निर्माण में जो पात्र होते हैं वो लेखक के पात्रों के इमिटेशन (अनुकृति) होते हैं। (अरस्तू का अनुकरण सिद्धांत) होते हैं। निर्देश के ऊपर निर्भर करता है। साहित्य कृति पर फिल्म निर्माण मूल कृति से बेहतर भी हो सकता है और उससे ख़राब भी हो सकता है। अगर डायरेक्टर की कुछ खास विचारधारा हुई तो साहित्यिक कृति को वह उस विचारधारा से प्रभावित करता है। जैसे 'अंकुर' जिसका अन्त पत्थर मारने से होता है। पत्थर हिंसक क्रांति का प्रतीक था, श्याम बेनेगल उसके निर्देशक थे जो सशस्त्र क्रांति में विश्वास करते थे।

सिनेमा कथा के साथ तकनीकी तत्वों के रचनात्मक प्रयोग से तैयार होता है। शॉटस् फ़िल्मकला के महत्त्वपूर्ण तत्व हैं जो फिल्मकार की अन्तर्दृष्टि के रूपायन का आधार बनते हैं। कई लोग यह सवाल उठा सकते हैं कि साहित्यिक कृति की अन्तर्धारा में दृश्य विधान दृश्यबिम्बों में स्वयं ही समाहित होते हैं। फिर उन दृश्य बिम्बों को हू ब हू दिखाया जा सकता है। इसे फ़िल्मकार तारकोव्स्की के यहाँ ढूँढ़ा जा सकता है-"अगर दृश्य विधान स्वयं ही साहित्य का उज्ज्वल सृजन हो तो उसका साहित्यिक गद्य बने रहना ही बेहतर है। अगर उस पर फिल्म बनाना ही हो तो सर्वप्रथम उसे पटकथा में रूपान्तरित करना होगा। ताकि वह निर्देशक के काम के लिये तर्कसंगत आधार बन सके। इस बिंदु पर वह नयी रचना होगी जिसमें साहित्यिक बिम्ब फ़िल्मी 'पर्यायों' में तब्दील हो जायेंगे।" (समकालीन सृजन, विशेषांक: हिंदी सिनेमा का सच, अंक - 17, 1997, पृ-31)

साहित्यिक कृति में शब्द जिस अर्थ और परिवेश की व्यंजना करते हैं, फिल्म में उस अर्थ और परिवेश की व्यंजना चित्रों के ज़रिए बहुत सफल हो जाती है। फिल्म के संदर्भ में कमलेश्वर ने इसे इस तरह कहा है कि -" शब्दहीन दृश्य से भरा हुआ सन्नाटा कभी-कभी जो बात कह देता है वो शब्दों से नहीं कही जा सकती।" (उसके बाद, कमलेश्वर, पृ-5)

साहित्यिक कृति के फ़िल्मी रूपान्तरण की प्रक्रिया उस समय और जटिल हो जाती है जब साहित्यकार अधिकार भाव से फ़िल्म निर्माण में हस्तक्षेप करने लगता है। प्राय: रचनाकारों को मूल कृति में परिवर्तन स्वीकार नहीं होता।साहित्यकार जब साहित्य रचता है तो वह भीतर की विवशता से साहित्य रचता है, साहित्य में रमता है लेकिन फिल्म निर्माता व्यापार के गणित से फिल्म को बनाता है। साहित्य में लेखक की अपनी सत्ता होती है लेकिन फिल्म में लेखक की सत्ता पर निर्देशक की सत्ता हावी हो जाती है। अधिकांश साहित्यकारों के लिए उसकी उनकी अपनी संतान की तरह होता है जब उनकी कृति फिल्म निर्देशक के हाथ में पहुँचती है, फिल्म पर्दे पर आती है तो वह ज़रा भी परिवर्तन देखने को तैयार नहीं है, उनका भाव यह रहता है कि उसे लगता मेरी ख़ूबसूरत संतान का मुँह बदल दिया, इसके बाल तो ऐसे नहीं थे उनकी सुन्दर कृति के साथ छेड़छाड़ करके उसे बदसूरत कर दिया। यहीं से साहित्यकार और फिल्म निर्माता के बीच युद्ध की शुरुआत हो जाती है। इनके संबंधों में खटास पैदा हो जाती है।

.कुछ रचनाकार पत्र -पत्रिकाओं में संपादक की सत्ता को भी चुनौती देने के लिए चर्चित रहें हैं। कृष्णा सोबती की एक कहानी किसी पत्रिका में छपने के लिये पहुँची थी, शब्द बदलने वाले संपादक महोदय की अच्छी खबर ली थी। सारिका के कार्यालय में यह क़िस्सा चर्चा का विषय बना था। कोई फ़िल्मकार उनकी कृति पर फिल्म बनाने की हिम्मत नहीं कर सका। जबकि उनकी कृति 'ऐ लड़की ' पर बहुत अच्छी फिल्म बन सकती थी।

प्रेमचंद की कृतियों -गोदान, ग़बन पर फ़िल्में बनी। दो बैलों की कथा पर कृष्ण चोपड़ा द्वारा 'हीरा मोती' फिल्म बनी। लेकिन अगर प्रेमचंद के संदर्भ में बात करनी हो तो उनकी कहानी 'कफ़न ' पर तेलुगु में 'ओकाओरी कथा' बनती है तो सफल हो जाती है। उनकी कहानी शतरंज के खिलाड़ी पर सत्यजीत रे ने जो फिल्म बनायी वह पसंद की गयी।

'शतरंज के खिलाड़ी का अंत बिल्कुल बदल देते हैं। कहानी में दोनों जागीरदार लड़कर मर जाते हैं लेकिन फिल्म में फिर शतरंज खेलने बैठ जाते हैं। अपना सब कुछ खो देते हैं। ब्रिटिश आर्मी आ जाती है। अपना राज्य, अपना प्रशासन, अपनी स्वतंत्रता, अपनी आजादी, अपने निर्णय लेने के अधिकार सब गँवा देते हैं। ब्रिटिश आर्मी जाने के बाद पुन: शतरंज की खेल जमाने लग जाते हैं। कहानी के अंत में वीराने में शतरंज के खेल के ज़रिए फ़िल्मकार ने अंग्रेज साम्राज्यशाही की राजनैतिक दॉवपेंचों के साथ-साथ जागीरदारों की अकर्मण्यता और पलायनवादिता की प्रवृत्ति पर गहरा व्यंग्य किया है। इस कहानी की व्यंजना आज के परिप्रेक्ष्य में भी रखते हैं कि उनके मरने से व्यवस्था में परिवर्तन संभव नहीं है।

एक मँजा हुआ फ़िल्मकार भी कथावस्तु में परिवर्तन का अधिकार चाहता है -"मैं किसी कहानी या उपन्यास को उसके कुछ तत्वों की वजह से चुनता हूँ जो मुझे अपील करते हैं। पटकथा लिखने की प्रक्रिया में उसकी कथावस्तु सम्भवत: परिवर्तित की जाए लेकिन अधिकांश मूलतत्व सुरक्षित रखे जायेंगे।" (वर्तमान साहित्य विशेषांक: सदी का सिनेमा, वर्ष -19, अगस्त-दिसम्बर, 2002, पृ. 350)

राजेन्द्र यादव के सारा आकाश पर फिल्म बनी, नहीं चली। जब मन्नू भंडारी की कहानी 'यही सच है पर 'रजनीगंधा' बनायी तो वह सफल फिल्मों की क़तार में रखी गयी। मन्नू भंडारी के उपन्यास 'आपका बंटी पर 'समय की धारा' फिल्म बनती है। उपन्यास का फिल्म के रूपान्तरण को लेकर मन्नू जी की जो आपत्तियाँ रहीं उसने उन्हें फ़िल्मकार को कोर्ट में घसीट लिया। विवाद इस बात पर रहा लेखिका कृति की मूल संवेदना को अक्षुण्ण बनाये रखना लेखकीय अधिकार समझ रही थीं जबकि निर्माता ने मूल कृति से अलग एक स्वतंत्र कृति के रूप में फिल्म बनायी। तलाक़ के बाद शकुन के संवाद और मन: स्थिति के सूक्ष्म ब्यौरे फिल्म में कहीं नज़र नहीं आते। केवल बच्चे का नाम 'बंटी' है इससे और कहानी की स्थूल ढ़ाँचे से आप अंदाज़ा भर लगा सकते हैं कि यह मन्नू जी की कृति 'आपका बंटी' से प्रभावित है। यह दावे के साथ नहीं कह सकते कि उनकी इसी कृति पर बनी है। इस विवाद में समझौता उस बात पर हुआ कि मन्नू जी ने अपना भी और कृति का भी नाम हटवाया। साहित्यिक कृति को फिल्म में ढालने को लेकर साहित्यकार की अपनी शर्तें रही हैं। उन्हें हमेशा इस बात की आश्वस्ति की आकांक्षा थी कि मूल कृति को साथ खिलवाड़ न होने पाये। जबकि फ़िल्मकार को केवल एक कथा चाहिए जिसे वह अपनी कुशल निर्देशन के बल पर लाखों करोड़ों दर्शकों के दिल में उतार सके। द्वंद्व यहीं पैदा होता है, जिनकी कृतियों पर रजनीगंधा जैसी फिल्म बनी लेकिन 'आपका बंटी' के संदर्भ में, जो उस अनुभव ने फ़िल्मकार और लेखक के रिश्तों की पड़ताल का आग्रह भी पैदा किया -"मेरे हिसाब से ऐसे आग्रही फ़िल्मकारों को फिर अपनी एक स्वतंत्र कहानी की रचना कर डालनी चाहिये। फिल्म के टाइटिल में जब कहानी और कहानीकार का नाम जाता है तो उस पर लेखक का अधिकार तो बन ही जाता है और दर्शक भी यही अपेक्षा करता है कि उसे पर्दे पर कहानी ही देखने को मिलेगी।" (कथा- पटकथा, मन्नू भंडारी, पृ-14)

रचनाकार यह समझने के लिए जल्दी तैयार नहीं है कि कहानी विधा अलग है और फिल्म की विधा अलग है। दोनों का अपना स्वतंत्र अस्तित्व भी है। लेकिन साहित्यकार अपनी कृति को हुबहू परदे पर उतरते हुए देखना चाहता है। सत्यजीत रे ने शतरंज के खिलाड़ी में कहानी को आधार बनाकर नयी पटकथा को रचा। कहानी का फिल्म में हुबहू रूपान्तरण नहीं किया। माध्यम की दृष्टि से प्राय: फिल्मों में यह बदलाव अपेक्षित रहता है। कलात्मक फिल्मों या समांतर सिनेमा के बावजूद फिल्मों का कला संस्कार नहीं हो पाया। कमलेश्वर की टिप्पणी है कि- "फिल्म का उदय एक व्यावसायिक माध्यम के रूप में हुआ। इसे यदि शुरु से साहित्यिक सहयोग मिल जाता तो इस माध्यम का कला संस्कार संपन्न हो जाता।" (कथादेश, मार्च, 2005, पृ-82)

साहित्यकारों ने फिल्मों को दोयम दर्जे की कला माना और परहेज़ किया। फिल्म की आवश्यकताओं को बहुत कम लेखक समझ पाये। जिन्होंने फिल्म की आवश्यकताओं को समझकर फिल्म लेखन किया वे सफल भी रहे। फिल्म की माँग के अनुसार फिल्म निर्माता को स्पेस भी दिया। इसलिए कमलेश्वर के उपन्यास 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ और डाक बंगला पर 'बदनाम बस्ती' तथा डाक बंगला' नाम से बनी फिल्मों की असफलता के बाद इनकी कहानी पर गुलज़ार के द्वारा निर्मित 'आँधी' और 'मौसम' फिल्मों सफल हुई। इस दृष्टि से कमलेश्वर और अमृतलाल नागर का नाम लिया जा सकता है। जो निर्देशक की मॉग के अनुसार पटकथा और संवाद लेखन करते रहे। कमलेश्वर कहते भी हैं- "फिल्म लेखन थोड़ा जटिल, तकनीकी एवं सांकेतिक लेखन है। इसमें कभी-कभी छोटा सा तकनीक संकेत पूरे वातावरण या मानसिक उद्गारों को व्यक्त करने के लिए पर्याप्त होता है।" (उसके बाद, पृ-11)

सोचनेवाली बात यह है कि जब बांग्ला में बंकिम चंद्र चटर्जी की कृतियों पर 'आनंद मठ' और दुर्गेश नंदिनी' बनती है। शरत चंद्र की कृति पर देवदास बनती है 1925, 1955 में दोनों सफल होती है, फिर 2002 में संजय लीला भंसाली बनाते हैं तो वह भी सफल हो जाती है। विमल मित्र के उपन्यासों पर 'साहब बीबी और ग़ुलाम' बनती है तो वह भी लोकप्रिय हो जाती है। सत्यजीत रे ने जब विभूतिभूषण बंधोपाध्याय की 'पाथेर पाँचाली' बनाकर साहित्य और सिनेमा के रिश्ते की प्रगाढ़ता की मिसाल क़ायम कर दी। देखा जाय तो फ़िल्मी दुनिया में मराठी और बांग्ला के फ़िल्मकारों का वर्चस्व रहा है। बीसवीं सदी के चौथे दशक के फ़िल्मी सफ़र में फिल्म निर्मातों में बाबूराव पेंटर, भालजी पेंढारकर, वी-शांताराम मराठी थे। बासु चटर्जी, हृषिकेश मुखर्जी, सत्यजीत राय, मृणाल सेन, तरुण मजूमदार बांग्ला से हैं। गोविंद निहलानी, हिंदी के नहीं हैं। फ़िल्मकारों में हिंदी क्षेत्र हाशिए पर रहा। केदार शर्मा अपवाद हैं वे भी हिंदी की साहितयिक कृति पर एक ही फिल्म दे सके। वो भी शायद इसलिए कि उनकी रुचि दर्शन शास्त्र में थी और उन्होंने भगवती चरण वर्मा के ऐसे उपन्यास को चुना जो पाप और पुण्य की दार्शनिक अवधारणाओं से टकराता है। उसकी मूल संवेदना को वो गहरायी तक महसूस कर सके।

फिल्म नगरी में लेखक यह कहने की हिम्मत नहीं कर सकता कि हम बादशाह हैं। इस तथ्य को बड़ी मार्मिकता के साथ अपने एक पत्र में प्रेमचंद ने लिखा - "लेखक कलम का बादशाह क्यों न हो, यहाँ डायरेक्टर की अमलदारी है और उसके राज्य में उसकी हुकूमत नहीं चल सकती। हुकूमत माने तभी वह रह सकता है। " (कलम का सिपाही, पृ- 580)

फ़िल्मकार अगर बादशाह है तो इस बादशाह की निगाहों में फिल्म का बाजार सर्वोपरि है। उस पर बाजार का दबाव है, जो निरन्तर बढ़ता जा रहा है। हम कह सकते हैं कि फिल्मों की दुनिया में फ़िल्मकार की आँखों में बाजार आज तानाशाह की मुद्रा में हैं। आज फिल्म नगरी में साहित्यिक कृतियों पर फ़िल्में जब बनती हैं क्वार की बारिश की तरह लगती हैं। क्योंकि साहित्य में दिलचस्पी लगभग ख़त्म हो गयी है। हाल ही में काशीनाथ सिंह के उपन्यास 'काशी का अस्सी' पर चंद्र प्रकाश द्विवेदी ने 'अस्सी मोहल्ला' नाम से फिल्म बनायी लेकिन मौजूदा फिल्म बाजार में अपनी जगह बनाने में सफल नहीं हो सकी। तकनीकी समृद्धि के साथ साहित्यिक कृति के सिनेमाई रूपान्तरण के असफल होने की संभावना बनी रहती है। इसलिए आज के बहुत कम फिल्मकार साहित्यिक कृति पर फ़िल्म बनाने का जोखिम उठाते हैं।

बाजार के साथ सेंसर की कैंची भी चलती है। सेंसर बोर्ड में कई सदस्य होते हैं, उनकी न केवल अपनी विचारधारा होती है, गाइड लाइन के हिसाब से उसे प्रदर्शित करना पड़ता है। साहित्य में ऐसा प्रतिबंध नहीं है। इसका उदाहरण है राही मासूम रजा की कृति 'आधा गाँव' बहुत ही शक्तिशाली कृति है और यशपाल ने इस बात को एक जगह स्वीकार भी किया था कि 'आधा गाँव' में उनके 'झूठा सच' से ज्यादा गहरायी है, अगर इस 'आधा गाँव' पर फिल्म बनती जिस पर फिल्म बनाने की चर्चा भी हुई थी, लेकिन अगर फिल्म बनती तो एक साधारण फिल्म भी नहीं होती। क्योंकि उसके पात्रों की गालियों पर सेंसर की कैंची इस क़दर चलती कि राही मासूम रजा यह समझ ही नहीं पाते कि यह उनकी कृति है या किसी और की। इन्हीं गालियों के कारण उस कृति पर साहित्य अकादमी एवार्ड नहीं मिला। जिस पृष्ठभूमि पर 'आधा गाँव' लिखा गया थी उस पृष्ठभूमि और पात्रों को फिल्मों में नहीं उतारा जा सकता। इस तरह हर साहित्यिक कृति फिल्म रूपान्तरण के उपयुक्त नहीं हो सकती।

188 नेशनल मीडिया सेंटर, एन एच-8, गुड़गाँव-122002, हरियाणा

सूरीनामी हिंदुस्तानी साहित्य में भारतीय संस्कृति का प्रभुत्व

प्रो. पुष्पिता अवस्थी

हिंदुस्तानियों के हिंदी प्रेम का ही परिणाम था कि 2003 में सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन का सफल संयोजन संभव हो सका। उसी दौरान सूरीनाम भारतवंशियों की कविताओं और नाटकों को शोध पूर्वक मैंने तैयार किया जिसका प्रथम प्रकाशन और लोकार्पण 5 जून 2003 को सूरीनाम के सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन में कविता सूरीनाम, कथा सूरीनाम, सूरीनाम पुस्तक के रूप में वहाँ के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के हाथों लोकार्पण हुआ। वह सूरीनाम हिंदुस्तानियों के लिए परम हर्ष का दिवस था। वे अपनी रचनाओं को वैश्विक स्तर पर प्रकाशित और प्रसारित देखकर चमत्कृत थे।

भाषा सजल हार्दिकता और सचल चेतना की सजग संवाहिका है। धारणाओं के सृजन और विध्वंस में इसकी सक्रिय भूमिका रहती है, जो व्यक्ति के ज्ञान और विवेक की सचेतन शक्तियों को अनवरत सम्मोहित करती है। इसलिए भाषा सम्मोहन शक्ति का पर्याय भी है। भाषा जाने और अनजाने, मन तथा मस्तिष्क में अपना तरल और आर्द्र प्रभाव छोड़ती रहती है। इसकी सघन अनुभूति प्रायः विदेश प्रवास के दौरान होती है।

मातृभाषा में मातृ संस्कृति के साथ-साथ मातृभूमि की सोंधी संकल्पमयी सुगंध भी रहती है। उसी तरह राष्ट्रभाषा में राज्य की छवि प्रतिबिंब होती है। वैश्विक हिंदी भाषा के परिदृश्य में यह सत्य मार्मिकता के साथ उद्घाटित होता है। विदेश की परायी धरती में अपनी राष्ट्रभाषा की गूंज संवाद के अवसरों पर अनुभव होती है। उस भाषा में अपनी धरती का सोंधापन और संस्कृति की आत्मीयता मानस में तरंगित होती हुई अनुभव होती है। इसलिए विदेश में अपने देश का अजनबी भी हिंदी बोलते हुए अपना और अपने वतन का अनुभव होने लगता है। अपनी भाषा में पराए व्यक्ति से भी नाभिनाल संबंध कायम करने की विलक्षण शक्ति होती है। इसलिए विदेशों में अपनी संस्कृति और भाषा के अनेकानेक मंचीय और उत्सवी संगठन बन जाते हैं जो विदेश प्रवास के सूनेपन और सन्नाटे को तिरोहित करते रहते हैं।

वस्तुतः भाषा जनमानस की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है, तो बोलियां जन-मन के संपर्क और संबंधों की शक्ति का अद्भुत स्रोत है। जन समाज की सांस्कृतिक एकता से ही विशिष्ट और वैश्विक पूर्ण समाज बनता है। किसी भी राष्ट्र की भाषा व्यक्तित्व के दो प्रमुख आधार हैं - प्रथम भाषा जो राष्ट्रभाषा के रूप में विकसित होते हुए देश की अस्मिता का मूल होती है और दूसरी वहाँ के जनपदों की लोक भाषाएँ, जिनमें आम जनजीवन की वाणी होती है, जिनमें उनकी लोक संस्कृति की धड़कनें सुनाई देती हैं।

हिंदी की वैश्विकता का मूलाधार भारतीय संस्कृति है। मातृभूमि से बिछड़ने के बाद मातृभाषा के रूप में मातृभूमि व्यक्ति के साथ रहती है। सन 2001 से 2005 के अपने सूरीनाम प्रवास में और इसके उपरांत नीदरलैंड्स में रहते हुए सूरीनामी हिंदुस्तानियों की जीवन संस्कृति में इसका बहुत निकटता से साक्षात्कार हुआ है जिसकी अनुभूति 2001 में ही सूरीनाम में होने लगी थी। इस निमित्त आर्य समाजी पंडित सरनामी भाषाविद हरदेव सहतु जी के साथ मिलकर साहित्य मित्र संस्था का गठन किया और सूरीनाम हिंदी परिषद के अध्यक्ष जानकी प्रसाद सिंह जी के सहयोग से विद्यानिवास सूरीनाम साहित्य संस्था निर्मित की जहाँ सप्ताहांत में सृजनात्मक लेखन की कक्षाएं लेती रही। उसी दौरान जो रचनात्मक साहित्य तैयार होता था उसको इन दोनों पत्रिकाओं में प्रकाशन

का अवसर प्राप्त होता था। इसके परिणामस्वरूप नए कवि, लेखक तैयार हुए जिनकी परंपरा जारी है। हिंदुस्तानियों के हिंदी प्रेम का ही परिणाम था कि 2003 में सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन का सफल संयोजन संभव हो सका। उसी दौरान सूरीनाम भारतवंशियों की कविताओं और नाटकों को शोध पूर्वक मैंने तैयार किया जिसका प्रथम प्रकाशन और लोकार्पण 5 जून 2003 को सूरीनाम के सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन में कविता सूरीनाम, कथा सूरीनाम, सूरीनाम पुस्तक के रूप में वहाँ के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के हाथों लोकार्पण हुआ। वह सूरीनाम हिंदुस्तानियों के लिए परम हर्ष का दिवस था। वे अपनी रचनाओं को वैश्विक स्तर पर प्रकाशित और प्रसारित देखकर चमत्कृत थे।

इस ऐतिहासिक दस्तावेजी शोध पूर्ण कार्य की पुस्तकों से साहित्य अकादमी दिल्ली के अध्यक्ष प्रोफेसर विश्वनाथ प्रसाद तिवारी जी ने इसे साहित्य अकादमी में प्रकाशन में पहल की और फिर मेरे संपादन में 'सूरीनाम का सृजनात्मक साहित्य' शीर्षक से 2012 में पहली बार हिंदी साहित्य प्रकाशित हुआ। सूरीनाम के हिंदुस्तानियों की अपनी बोली भाषा 'सरनामी' है जो हिंदी भाषा परिवार की बोलियों का समूह है, लेकिन इसकी लिपि रोमन है। मेरे द्वारा रोमन लिपि में लिखी रचनाओं को देवनागरी में तैयार किया गया था, जिसका राधाकृष्ण द्वारा सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन के दौरान प्रकाशन हुआ था।

राष्ट्रभाषा समस्त राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती है। विश्व स्तर पर हिंदी भाषा अपना यह दायित्व बखूबी निभा रही है। भारतवंशियों और प्रवासी भारतीयों के लिए हिंदी भाषा उनकी अपनी सांस्कृतिक भाषा है। उनके घर, मंदिर, मस्जिद, दुकानों और रेस्तरां आदि भारतीय संस्कृति से सुसज्जित है तो उनके मन प्राण भारतीयता की शक्ति से समृद्ध है। हिंदी भाषा विदेशों में बसे प्रवासी भारतवंशियों और भारतीयों के हृदय की हथेली है। इस पर धर्म, दर्शन और भारतीय संस्कृति की रेखाएं जीवन का सत्य बनकर उभरती हैं।

भारतीय संस्कृति हिंद महासागर है जिसमें विश्व की अनेकानेक संस्कृतियों समाहित हो गई है। अनेकानेक धर्मों, सभ्यताओं और संस्कृतियों को अपने में समेटे हुए ही भारतीय संस्कृति हिंदी भाषा में अपनी निजता के साथ हिंदी भाषा में समाविष्ट है। इस तरह से वैश्विक स्तर पर हिंदी की सामासिर संस्कृति का प्रभावशाली वर्तमान होता हुआ दिख रहा है। समन्वय की प्रक्रिया हजारों वर्षों से सक्रिय है। वस्तुतः हिंदी भाषा और उसके परिवार की बोलियों ही विश्व स्तर पर भारतीय संस्कृति की संवाहिका है।

विश्व में भारतीयता की जो भागीरथी प्रभावित हुई है, उसके भागीरथ मुख्य रूप से प्रवासी भारतवंशी रहे हैं। जो शताब्दियों से रोजी-रोटी की खोज में विश्व के अन्य देशों में बस गए। भारत सहित विश्व भर में दासताओं की चादरें बदलती रहीं। शोषण की लगामों के हाथ परिवर्तित होते रहे। शासकों के झंडे बदलते रहे। लेकिन विश्व के भारतवंशियों के जनजीवन और मानस से हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति की ध्वजा कभी नहीं उतरी। सामान्य जनजीवन में व्रत-त्योहार, रीति रिवाज शादी-ब्याह की रस्मो का सिलसिला वैसे ही चलता रहा है जैसे गंगा की धारा प्रभावित है। हिंदी और भारतीय संस्कारों से रचे बसे हिंदुस्तानी मजदूर किसान जब ब्रिटिश, फ्रेंच और डच सत्ताधारियों द्वारा फ़ीजी, मॉरीशस, गयाना, अफ्रीका, सूरीनाम, त्रिनिदाद व टोबैगो एवं कैरेबियाई देशों में ले जाए गए। जहाँ उन्होंने स्वयं को जगाये रखने के लिए भारतीय संस्कृति और हिंदी भाषा को अपना अस्त्र और आधार बनाया।

वस्तुतः विश्व में हिंदी भाषा प्रेम, अपनेपन और भारतीय संस्कृति की भाषा बनी हुई है। इसलिए विदेशों में हिंदी संस्कृति पसर रही है। विदेशों में हिंदी के प्रति प्रेम और लगाव, भारतीय संस्कृति के प्रति गहरे जुड़ाव के कारण ही संभव हो पा रहा है। दरअसल गत शताब्दी से विश्व के संवेदनशील बुद्धिजीवी ये अनुभव करने लगे हैं कि जीवन की जीवनदायी जीवंत कला को जानने-अपनाने के लिए भारतीय संस्कृति से गुजरना आवश्यक हो गया है जो हिंदी और संस्कृत भाषा से ही संभव है। योग और ध्यान की पुस्तकें तथा पत्रिकाएं विश्व की तकरीबन सभी भाषाओं में छप रही है जिसमें भारत की प्राकृतिक चिकित्सा और आयुर्वेद का ही ज्ञान समाया रहता है। साहित्य और संस्कृति की हिंदी पुस्तकों का मर्म और महत्व भी उनका विदेशी समुदाय समझने लगा है।

दरअसल इसके पीछे भारतवंशियों और प्रवासी भारतीयों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। भारतवंशियों की प्रत्येक देश में उनकी हिंदुस्तानी भाषा की अपनी पहचान है, उनकी अपनी निजी बोली और भाषा है, जो हिंदी भाषा परिवार का एक हिस्सा है। जिसमें भारतीय संस्कृति और उसके पुरखों के भाषाई प्रेम की अनुगूंज है। विश्व में भारतवंशी बहुल देशों की अपनी भाषायी और सांस्कृतिक पहचान है जो भारत से भिन्न है और इसकी हिंदी को वैश्विक बनाने में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

अध्यक्ष - हिंदी यूनिवर्स फाउंडेशन, नीदरलैंड, info@pushpitaawasthi.com

हिंदी पत्रकारिता की बदलती भाषा और विश्व

डॉ. रमेश कुमार बर्णवाल

क्या पत्रकारिता की हिंदी कोई अलग हिंदी है, आगे बढ़ने से पहले इस प्रश्न पर विचार कर लेना उचित होगा। इस प्रश्न का उत्तर 'हां' में है। पत्रकारिता की हिंदी संचार के अन्य रूपों में प्रयुक्त होने वाली हिंदी से अलग होती है। कार्यालयी कामकाज वाली हिंदी, अंतर्वैयक्तिक संचार की हिंदी, गोष्ठियों या संगोष्ठियों की हिंदी और साहित्य की हिंदी से अंतर करके इसे बड़ी आसानी से समझा जा सकता है। हिंदी के इन सब प्रयोगों से पत्रकारिता की हिंदी का संबंध है और इनमें प्रयुक्त हिंदी में परिवर्तन और विकास का प्रभाव पत्रकारिता की हिंदी पर भी पड़ता है। लेकिन इनके बीच व्यापक अंतर भी हैं।

सूचना-संचार क्रांति के परिणामस्वरूप आज हिंदी पत्रकारिता की पहुंच पूरे विश्व में हो चुकी है। हिंदी पत्रकारिता का देश की सीमाओं को लांघकर विश्वव्यापी हो जाना हिंदी के विश्वव्यापी प्रसार की दृष्टि से भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण परिघटना है। हिंदी को विश्वव्यापी बनाने में विदेशों में भारतीयों के प्रवास के अतिरिक्त विभिन्न संचार व जनसंचार माध्यमों, विशेषतः साहित्य, सिनेमा और विभिन्न समाचार माध्यमों की बड़ी भूमिका है। सबकी अपनी उपयोगिता और प्रासंगिकता अनुभवसिद्ध है। लेकिन हम यहां हिंदी में होने वाले परिवर्तनों और हिंदी के विश्वव्यापी प्रसार के संदर्भ में केवल पत्रकारिता तक ही अपनी बात को सीमित रखेंगे और उसमें भी केवल विभिन्न समाचार माध्यमों पर ही ध्यान केंद्रित करेंगे क्योंकि मूलतः विभिन्न समाचार माध्यम मिलकर ही पत्रकारिता के मुख्य परिदृश्य का निर्माण करते हैं।

व्यापक रूप से देखें तो पत्रकारिता निश्चित रूप से केवल समाचार माध्यमों तक ही सीमित नहीं है, उसके कई अन्य आयाम भी हैं। जैसे साहित्यिक पत्रकारिता, धर्म-अध्यात्म संबंधी पत्रकारिता, कला, संस्कृति आदि से संबंधित पत्रकारिता। इनसे संबंधित पत्रिकाएं भी पत्रकारिता के परिदृश्य का निर्माण करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। लेकिन समाचार माध्यमों की तुलना में इनके विषय सीमित होते हैं, इनकी पाठक-श्रोता-दर्शक संख्या अपेक्षाकृत सीमित होती है। इसके अतिरिक्त सूचना और विचार देने की इनकी गति समाचार माध्यमों की तरह तेज नहीं होती। समाचार माध्यम दैनिक और साप्ताहिक पत्रकारिता से आरंभ होकर वर्तमान में चौबीस घंटे नयी सामग्री देने की क्षमता के साथ मानव जीवन का अभिन्न हिस्सा बन चुके हैं। इंटरनेट के माध्यम से पत्रकारिता के जो नए मंच निर्मित हुए हैं, उन्होंने तो पत्रकारिता की पूरी परिभाषा ही बदल कर रख दी है। इतनी तेज गति से सूचनाएं देने की मनुष्य ने पहले कल्पना भी नहीं की थी। दिसंबर में संपन्न हुए फुटबॉल विश्व कप के फाइनल मैच में ज्यों-ज्यों खेल का रोमांच बढ़ता जा रहा था और अर्जेंटीना और फ्रांस की टीमें बारी-बारी से एक-दूसरे के विरुद्ध गोल दाग रही थीं, इंटरनेट पर चलने वाली पत्रकारिता इनसे जुड़ी सारी सूचनाएं तेजी से अद्यतन करती जा रही थी। यह पत्रकारिता का एक नया परिदृश्य है, जिसने भाषा की शक्तियों को भी एक नया संसार दिया है।

समाचार माध्यमों के बारे में ऊपर जो बातें कही गई हैं, यानी दैनिकता, गतिमानता, विषयों की व्यापकता आदि, सबका भाषा से गहरा संबंध है। दैनिक समाचार पत्र, साप्ताहिक या पाक्षिक पत्रिकाएं, चौबीस घंटे चलने वाले समाचार चैनल और वेब पत्रकारिता सब हिंदी भाषा में होने वाले परिवर्तनों और उसके प्रसार का एक ऐसा परिदृश्य प्रस्तुत करते हैं, जिस पर अकादमिक जगत में बहुत कम काम हुआ है।

हिंदी पत्रकारिता का आरंभ नवजागरणकाल में हुआ था। वह खड़ी बोली हिंदी का निर्माण काल भी था। हिंदी के भीतर कई बोलियों के संस्कार और मानकीकरण की प्रक्रिया साथ-साथ चल रही थी। उदंत मार्तंड की पत्रकारिता, भारतेंदु हरिश्चंद्र की पत्रकारिता, महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित सरस्वती की पत्रकारिता, आरंभिक हिंदी समाचार पत्रों की पत्रकारिता, ब्रिटिशराज से मुक्ति और स्वाधीनता की भावना के

साथ-साथ समाज सुधार और त्याग व बलिदान की भावना को समर्पित पत्रकारिता, सबकी हिंदी को देख लें तो उनके अलग-अलग आदर्शों और उनकी भाषिक विविधताओं के प्रमाण आसानी से लक्षित किए जा सकते हैं। यह पत्रकारिता समाचार पत्रों और पत्रिकाओं के माध्यम से चलने वाली पत्रकारिता थी। इस पत्रकारिता ने खड़ी बोली हिंदी को न केवल संस्कारित किया, बल्कि कई मायनों में खड़ी बोली हिंदी का निर्माण भी किया। उसके मानक बनाए, उसके नए शब्द गढ़े और पत्रकारिता की हिंदी का ऐसा पथ तैयार किया, जिसका अनुगमन आगे भी हिंदी पत्रकारिता करती रही।

क्या पत्रकारिता की हिंदी कोई अलग हिंदी है, आगे बढ़ने से पहले इस प्रश्न पर विचार कर लेना उचित होगा। इस प्रश्न का उत्तर 'हां' में है। पत्रकारिता की हिंदी संचार के अन्य रूपों में प्रयुक्त होने वाली हिंदी से अलग होती है। कार्यालयी कामकाज वाली हिंदी, अंतर्वैयक्तिक संचार की हिंदी, गोष्ठियों या संगोष्ठियों की हिंदी और साहित्य की हिंदी से अंतर करके इसे बड़ी आसानी से समझा जा सकता है। हिंदी के इन सब प्रयोगों से पत्रकारिता की हिंदी का संबंध है और इनमें प्रयुक्त हिंदी में परिवर्तन और विकास का प्रभाव पत्रकारिता की हिंदी पर भी पड़ता है। लेकिन इनके बीच व्यापक अंतर भी हैं। पत्रकारिता की हिंदी कार्यालयी कामकाज वाली हिंदी नहीं हो सकती। कार्यालयी कामकाज में भाषा के औपचारिक रूप का व्यवहार होता है जबकि पत्रकारिता के व्यापक 'जन' को, पाठक-श्रोता-दर्शक को औपचारिक भाषा में रोज-रोज संबोधित करके अपने नजदीक नहीं लाया जा सकता। औपचारिक भाषा के प्रयोग में संप्रेषक और संप्रेषित के आपसी संबंध में एक निश्चित दूरी बनी रहती है जबकि जनसंचार माध्यम के रूप में पत्रकारिता इस दूरी को पाटने का प्रयास करती है। औपचारिकता की जगह वह अनौपचारिकता का संबंध बनाती है। वह अभिभावक नहीं बल्कि दोस्त और आत्मीय मार्गदर्शक की भूमिका निभाने का प्रयास करती है। लेकिन इस अनौपचारिकता की अपनी सीमा होती है। वह अंतर्वैयक्तिक संचार की तरह स्वच्छंद नहीं हो सकती।

अंतर्वैयक्तिक संचार में दो या दो से अधिक व्यक्तियों की भाषा किसी भी सीमा तक अनौपचारिक हो सकती है। वाक्य उलटे-पुलटे हो सकते हैं, अर्धस्फुटित हो सकते हैं, दो अलग भाषाओं के वाक्य मिश्रित हो सकते हैं, भद्दे मजाक भी हो सकते है, गालियां भी हो सकती हैं। अंतर्वैयक्तिक संचार की यह अनौपचारिकता पत्रकारिता के अंदर संभव नहीं है। वहां भाषा और सामाजिक, संवैधानिक मर्यादा को लेकर स्पष्ट दिशा-निर्देश होते हैं, जिनका अधिक उल्लंघन करने पर उचित दंड का प्रावधान है।

इसके अलावा उच्चस्तरीय विद्वतजनों की संगोष्ठियों वाली भाषा से भी पत्रकारिता की भाषा अलग होती है। इन संगोष्ठियों में वक्ता आम जन नहीं बल्कि विशेष जन होते हैं। इन विद्वतजनों की भाषा का 'डोज़' आमजन ज्यादा नहीं पचा सकता। सरल, चुटीली, चटपटी, चटकीली भाषा उसे ज्यादा आकर्षित करती है। यही कारण है कि विद्वतजनों की गोष्ठियों वाली हिंदी को पत्रकारिता में जगह तो मिलती है लेकिन उसे सरल, चुटीली, चटपटी, चटकीली, अनौपचारिक भाषा वाली सामग्री के द्वारा संतुलित किया जाता है।

उच्चस्तरीय साहित्य की हिंदी से तुलना करते हुए भी कमोवेश यही बात कही जा सकती है। समाचार माध्यमों की पत्रकारिता की सामान्य हिंदी साहित्यिक ढर्रे पर नहीं हो सकती। साहित्यिक मुहावरों और भाषिक युक्तियों का इसमें एक सीमा तक ही व्यवहार किया जा सकता है। साहित्यकार प्रायः अपनी शर्तों पर, अपनी पसंद की भाषा-शैली में साहित्य रचता है। वह चाहे तो दुरूह भाषा-शैली में भी लिख सकता है और नवीन प्रयोगात्मक तथा आंचलिकता से अत्यधिक प्रभावित भाषा-शैली में भी। वह आम जन की उपेक्षा करके मात्र विशेष जन के लिए भी साहित्य रच सकता है। वह कई बार संप्रेषणीयता की भी अवहेलना करने का जोखिम ले सकता है और सामान्य पाठकों के लिए चुनौती भी बन सकता है।

पत्रकारिता की हिंदी की अपनी विशेषताएं हैं। इसमें विषयों की विविधता होती है और जीवन के तमाम क्षेत्रों से जुड़े समाचारों और विचारों का समावेश होता है। इसी से इसकी हिंदी का स्वरूप निर्धारित होता है। इसके अतिरिक्त हर समाचार पत्र, समाचार चैनल और समाचार पोर्टल की अपनी भाषा-नीति होती है। साथ ही उनमें काम करने वाले पत्रकारों की भाषिक कुशलता और दक्षता तथा व्यक्तिगत रुझान का भी प्रभाव पड़ता है।

जीवन के अलग-अलग क्षेत्रों का समावेश होने के कारण पत्रकारिता की हिंदी में उन क्षेत्रों की शब्दावली का आ जाना स्वाभाविक है। यही नहीं, सभी तरह के समाचारों की भाषा-शैली भी एक नहीं होती। इसका संबंध केवल हिंदी के शब्द-प्रयोग से नहीं है, बल्कि हिंदी की शैली से भी है। खेल समाचारों की शैली और राजनीतिक समाचारों की शैली एक नहीं हो सकती। इसी तरह प्रशासन से संबंधित समाचारों की शैली और सिनेमा से संबंधित समाचारों की शैली एक नहीं हो सकती। एक ही समाचार पत्र, एक ही समाचार चैनल या एक ही समाचार पोर्टल के भीतर शैली की इतनी विभिन्नताएं होती हैं। सभी क्षेत्रों की विशिष्ट शब्दावलियों और शैलियों का प्रयोग करने वाली पत्रकारिता की हिंदी इसीलिए विशिष्ट होती है।

क्या पत्रकारिता की हिंदी का स्वरूप पिछले कई दशकों से यथावत है? इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर है-'नहीं'। पत्रकारिता की हिंदी में विशेष रूप से पिछले दो दशकों में व्यापक परिवर्तन हुए हैं। ये वही दशक हैं, जिनमें चौबीस घंटे चलने वाले समाचार चैनलों का आर्विभाव हुआ। इनकी हिंदी दूरदर्शन के पारंपरिक समाचार बुलेटिन की हिंदी से अलग थी। समाचार पत्रों या कहें प्रिंट मीडिया की हिंदी से भी इनमें स्पष्ट अंतर था। पत्रकारिता के परिदृश्य पर आज तक, ज़ी न्यूज़, स्टार न्यूज़ से शुरू होकर डीडी न्यूज़, इंडिया टीवी, एनडीटीवीर्, आबीएन-7 आदि अनगिनत समाचार चैनलों के छा जाने का एक दशक पूरा होते-होते इंटरनेट की

आंधी पूरी दुनिया में आ गई। इसने पारंपरिक पत्रकारिता के स्वरूप में व्यापक परिवर्तन तो किए ही, जिनका संबंध उनके रूप-रंग और प्रस्तुति के साथ-साथ सूचना देने की गति में वृद्धि से है, इसने वेब पत्रकारिता का एक नया अभूतपूर्व संसार ही खड़ा कर दिया। इस वेब पत्रकारिता में सांस्थानिक मीडिया, व्यक्तिगत मीडिया और सोशल मीडिया सभी शामिल हैं। मल्टीमीडिया की क्षमता से लैस वेब पत्रकारिता पत्रकारिता का एक नया स्वरूप लेकर उपस्थित हुई। इसने सामान्य नागरिकों को भी न के बराबर या बहुत कम संसाधनों के साथ भी, बिना किसी संस्थान से जुड़े ही पत्रकार बनने का अवसर प्रदान किया। निजी ब्लॉग, कम्युनिटी ब्लॉग, यू-ट्यूब, फेसबुक, इंस्टाग्राम, ट्विटर जैसे माध्यमों ने पत्रकारिता के ऐसे स्वरूप को संभव किया जो सांस्थानिक पत्रकारिता में संभव ही नहीं था। निश्चित रूप से इसके नकारात्मक और अराजक परिणाम भी आए हैं। पहले समाचार पत्रों के बढ़ते संस्करण, फिर चौबीस घंटे चलने वाले टीवी समाचार चैनल और फिर वेब पर चलने वाली पत्रकारिता, सबने हिंदी के स्वरूप में परिवर्तन किया है। परिवर्तन कई प्रकार के हैं।

टीवी पत्रकारिता की बदलती हिंदी

टीवी पर समाचार देने की परंपरा 1959 में दूरदर्शन से आरंभ हुई थी। पूरे दिन में सुबह, और रात के 5-5 मिनट के समाचार बुलेटिन निर्धारित थे। चौबीस घंटे समाचार देने की कल्पना भी तब असंभव थी। सरकारी संस्थान से प्रसारित होने के कारण दूरदर्शन के समाचार बुलेटिनों की भाषा अत्यंत अनुशासित और मर्यादित हुआ करती थी। 1995 तक यह कमोवेश ऐसे ही चलता रहा। 1995 में डीडी मैट्रो में एक नई शुरुआत हुई। पहली बार सरकारी प्रसारण तंत्र के भीतर एक निजी कंपनी को समाचार प्रस्तुत करने का अवसर दिया गया। हिंदी में 'आज तक' का 20 मिनट का समाचार बुलेटिन आरंभ हुआ। इसे भविष्य में चौबीस घंटे चलने वाली टीवी पत्रकारिता की पूर्वपीठिका कहा जा सकता है। निजी टीवी चैनल किस तरह से पत्रकारिता कर सकते हैं, इसकी एक झलक इससे मिलती थी। इसकी भाषा और प्रस्तुति दूरदर्शन के समाचार बुलेटिनों से अलग थी। इसकी प्रस्तुति ने युवाओं को विशेष रूप से आकर्षित किया। यही वह विशेष नब्ज थी जिसने समाचार चैनलों के लिए प्राणवायु का काम किया। दिसंबर 2000 में 'आज तक' के रूप में चौबीस घंटे चलने वाले पहले समाचार चैनल का आरंभ हुआ और देखते-देखते चौबीस घंटे चलने वाले अनेक समाचार चैनल परिदृश्य पर छा गए। यह पत्रकारिता की दुनिया की एक क्रांतिकारी घटना थी। इसने पत्रकारिता की एक नई भाषा का निर्माण किया। पत्रकारिता की एक नई भाषा गढ़ने की दृष्टि से आज तक अग्रगामी सिद्ध हुआ। सुरेंद्र प्रताप सिंह के नेतृत्व में टीवी समाचारों की एक नई हिंदी पर काम किया गया। सुरेंद्र प्रताप सिंह के बाद कमर वहीद नकवी ने भी इस काम को आगे बढ़ाया और एक तरह से अंजाम तक पहुंचाया, जो लगभग हर टीवी चैनल के लिए आदर्श बन गया। इसके मुहावरे, इसकी शब्दावली युवाओं और आम लोगों को आकर्षित करने वाली थी। सबसे बड़ी बात थी कि इस चीज की पहली बार पहचान की गई कि टीवी पत्रकारिता की हिंदी बोली जाने वाली हिंदी है। इसका चरित्र लिखित हिंदी से अलग होना चाहिए।

आज समाचार चैनलों की हिंदी बोली जाने वाली हिंदी के विविध रूपों का प्रतिनिधित्व करती है। यह लिखित भाषा का सहारा लेती है और विजुअल्स पर निर्भर रहते हुए और उनसे संयोजन करते हुए मौखिक संप्रेषण का स्वरूप प्रस्तुत करती है। टीवी समाचारों में एंकर बाइट, रिपोर्टर की रिपोर्टिंग, घटना से संबंधित व्यक्ति या व्यक्तियों की बाइट, विजुअल्स, विजुअल्स के साथ चलने वाला वॉयस ओवर और पैनल परिचर्चा मुख्य घटक होते हैं। इन्हीं में समाचार चैनलों की भाषिक विशेषताएं प्रकट होती हैं। यह सही है कि हर व्यक्ति की अपनी भाषा-शैली होती है। लेकिन समाचार चैनलों की भाषा निर्धारित करने में उनकी भाषा नीति का निर्णायक महत्त्व होता है। कुछ चैनलों में मुहावरेदार, चुटीली और भावोत्तेजक भाषा के प्रयोग पर जोर होता है। इससे समाचारों को सनसनीखेज बनाने में सहायता मिलती है जबकि कुछेक चैनल हर समाचार को सनसनीखेज बनाने की प्रवृत्ति से परहेज करते हैं और संतुलन का निर्वाह करते हैं। समाचारों में, लिखित भाषा का प्रयोग एंकट बाइट में ही होता है। वह भी ऐसी हिंदी होती है कि दर्शकों को उसके लिखित होने का आभास नहीं हो सके। यानी उसका चरित्र बहुत हद तक बोली जाने वाली भाषा का होता है।

रिपोर्टर की भाषा में रिपोर्टर की अपनी भाषिक कुशलता और रचनात्मकता तो प्रकट होती ही है, लेकिन उसे भी अपने चैनल की भाषिक नीति के अनुसार चलना होता है। विषय की बहुत मांग न हो तो अधिकतर तत्सम शब्दावली से परहेज किया जाता है ताकि आम लोग आसानी से समझ सकें।

समाचार चैनलों के आगमन से हिंदी पत्रकारिता में हिंदी का क्षेत्रीय लहजा आना भी भाषा की दृष्टि से एक बड़ी घटना है, जो समाचार पत्रों की पत्रकारिता में सामान्य नहीं था। हिंदी के अलग-अलग अंचलों से आए अनेक पत्रकारों के उच्चारण में भोजपुरी, मैथिली, हरियाणवी आदि का प्रभाव आसानी से देखने को मिल जाता है। यह हिंदी की आंतरिक विविधता को दर्शाने की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यही नहीं, बोली जाने वाली भाषा पर निर्भर होने के कारण समाचार चैनलों क माध्यम से हिंदीतर क्षेत्रों के उच्चारण भी सामने आते हैं। कश्मीर, बंगाल, असम, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश आदि के स्थानीय रिपोर्टर जब हिंदी में रिपोर्टिंग करते हैं तो हिंदी में उन क्षेत्रों की भाषा का विशिष्ट उच्चारण भी प्रकट होता है।

वॉयस ओवर की भाषा पूरी तरह लिखित होती है। इसमें सर्जनात्मक भाषिक युक्तियों का प्रयोग अधिक होता है। वॉयस ओवर वीडियो के साथ-साथ चलता है, इसलिए इसमें विजुअल्स के साथ भाषा के संयोजन की आवश्यकता पड़ती है।

समाचार चैनलों में बनती-बदलती हिंदी के अतिरिक्त समाचार चैनलों में भाषा की दृष्टि से एक अन्य महत्त्वपूर्ण चीज भी ध्यान देने योग्य

है, जो समाचार पत्रों के लिए संभव नहीं है। इसका हिंदी पर हिंदी की बोलियों और हिंदीतर भाषाओं के प्रभाव से भी संबंध है और सीधे हिंदी के साथ-साथ अन्य भाषाओं के संयोजन से भी। समाचार पत्र भाषा के लिखित रूप पर निर्भर होने के कारण इस भाषिक विविधिता को प्रस्तुत नहीं कर सकते थे।

भाषिक विविधता की दृष्टि से समाचार चैनलों की एक अन्य देन यह भी है कि हिंदी समाचार चैनलों में कश्मीर की उर्दू, ओडिशा की उड़िया और इसी तरह बांग्ला, असमिया, तमिल, तेलगू, कन्नड़, गुजराती, पंजाबी सब सुनने को मिल जाती है। समाचार में जब हिंदीतर प्रांतों में घटित किसी घटना के प्रभावितों की बाइट दिखाई जाती है, तो वे अपनी भाषा में सारा वर्णन करते हैं। उनका अनुवाद स्क्रीन पर लिखित रूप में या केवल वॉयस ओवर के रूप में सुनाई देता है, लेकिन वॉयस ओवर के पहले और बाद में उन्हें अपनी भाषा में बोलते भी दिखाया-सुनाया जाता है। इससे हिंदीभाषी दर्शकों में देश की अन्य भाषाओं के प्रति संवेदना और स्वीकार्यता बढ़ती है और उन्हें राष्ट्रीयता की वास्तविक भावना से जोड़ने में आसानी होती है।

यही बात विदेश के समाचारों के संबंध में कही जा सकती है। रूस, यूक्रेन, जर्मनी, फ्रांस, चीन, श्रीलंका, अफगानिस्तान आदि देशों से संबंधित समाचारों में प्रायः उन देशों के शासनाध्यक्षों, मंत्रियों, अधिकारियों और वहां के नागरिकों को उनकी भाषा में बोलते दिखाया जाता है और कुछ अंशों का हिंदी अनुवाद भी प्रस्तुत किया जाता है। समाचार पत्रों में केवल अनुवाद देना ही संभव है, जिसमें संसार की भाषिक विविधता का पता नहीं चल पाता। लेकिन टीवी समाचार चैनलों में भाषिक विविधता और मौलिकता को प्रस्तुत करते हुए उसके साथ हिंदी का संयोजन किया जाता है।

समाचार पत्रों की बदलती हिंदी

पिछले बीस वर्षों की हिंदी पत्रकारिता के अंतर्गत देखें, तो आज सर्वाधिक पारंपरिक कही जाने वाली पत्रकारिता को प्रस्तुत करने वाले समाचार पत्रों की भाषा में भी परिवर्तन हुए हैं। डिजिटल क्रांति के साथ सबसे पहले परिवर्तन समाचार पत्रों के रूप-रंग अर्थात् प्रस्तुति में हुए। हर पृष्ठ पर कॉलम की संख्या और आकार में विविधता, शीर्षकों के रंग और आकार में विविधता, उच्च गुणवत्ता वाले चित्र, ग्राफिक्स, और रंगारंग पृष्ठ, फीचर सामग्री में वृद्धि और विभिन्न विषयों पर केंद्रित फीचर के अतिरिक्त पृष्ठ ये वो परिवर्तन हैं जिन्होंने पिछले बीस वर्षों के चुनौतीपूण समय में समाचार पत्रों को प्रासंगिक बनाए रखने में सहायता की है। और निश्चित रूप से इसमें भाषा संबंधी परिवर्तनों का भी बड़ा योगदान है। समाचार पत्रों के लिए सबसे बड़ी चुनौती थी एक दिन पुरानी हो चुकी ख़बरों को रोचक शैली में प्रस्तुत करना ताकि उसमें नयापन बना रहे। समाचार पत्रों में हमेशा से ही एक दिन पुरानी घटनाओं को ही ख़बर बनाया जाता है। यह चुनौती थी। इस चुनौती का सामना समाचार पत्रों ने अपनी सामग्री में व्यापक परिवर्तन लाकर किया और इसमें एक नई हिंदी भी उनकी सहायक बनी।

इस नई हिंदी को मुख्यतः तीन तरह के परिवर्तनों से समझा जा सकता है। एक, समाचार पत्रों के लिए यह सिद्धांत वाक्य बन गया कि ख़बरें केवल बताओ नहीं, दिखाओ। भाषा ऐसी हो कि घटना पाठक की आंखों के सामने साकार हो जाए। भाषा को चित्रात्मक और बिम्बात्मक बनाने पर जोर दिया गया। उदाहरण के लिए आप यह वाक्य देखें- 'ताराचंद के पास अब घर के नाम पर जली हुई दीवारें और सामान के नाम पर राख बची है।' यह हिंदुस्तान में छपी एक ख़बर का वाक्य है। ऐसे अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। भाषा को चित्रात्मक और बिम्बात्मक बनाने के लिए भाषा की सर्जनात्मक क्षमताओं पर बहुत काम किया जाने लगा। ऐसे पत्रकारों की विशेष रूप से पहचान की गई जो ऐसी भाषा लिख सकते हैं और उन्हें प्रोत्साहित किया जाने लगा। ऐसा नहीं कि पहले समाचार पत्रों में ठस भाषा लिखी जाती थी या अच्छी भाषा लिखने वालों को प्रोत्साहन नहीं मिलता था। लेकिन अब भाषा का सवाल समाचार पत्रों के लिए अस्तित्व बचाने के सवाल से जुड़ गया।

दूसरा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन शीर्षकों को लेकर किया गया। डिजिटल तकनीक से पेज डिजाइनिंग और प्रिंटिंग ने डिजाइनिंग को लेकर अनेक तरह की विविधताओं के अवसर उत्पन्न किए। शीर्षकों को लेकर भी विविधता और परिवर्तनीयता के अनेक विकल्प दिए। इससे शीर्षक लिखने वाले उप-संपादकों को भाषा से खेलने के अधिक अवसर मिलने लगे। शीर्षकों की भाषा में अनेक तरह के बदलाव देखे जाने लगे। इस विषय पर विस्तार से जानने के लिए मेरी पुस्तक 'समाचार का भाषाविज्ञान' देखना उचित होगा। यहां संक्षेप में इतना कहा जा सकता है कि भाषा की लक्षणा और व्यंजना शब्द-शक्तियों का शीर्षकों में भरपूर प्रयोग किया जाने लगा। यह एक ऐसी प्रवृत्ति बन गई है जो आपको प्रभावित तो करती ही है, लेकिन कई बार अतिरेक की सीमाओं को भी छूती है और कई बार सीमाएं पार भी कर जाती है। यहां कुछ अच्छे शीर्षकों के उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। अच्छे से अभिप्राय है, ऐसे शीर्षक जो भाषा की शक्तियों का सर्वश्रेष्ठ उपयोग करते दिखते हैं। जैसे क्रिकेट से संबंधित एक समाचार का शीर्षक दिया गया- इंगलैंड से लगान वसूलेगा भारत। क्रिकेट के एक अन्य समाचार में शीर्षक दिया गया- कंगारुओं को फूंक में उड़ाया। अभी दिल्ली के नगर निगम चुनाव के परिणाम से जुड़े समाचार का एक शीर्षक राष्ट्रीय सहारा में दिया गया- दिल्ली का 'कचरा' साफ करेगी 'झाड़ू'। यहां शीर्षक में प्रयुक्त कचरा और झाड़ू शब्दों का प्रयोग न केवल सर्जनात्मक भाषा का उदाहरण है, बल्कि अपने अभिप्रायों को ये सर्वश्रेष्ठ रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। कुछ अन्य उदाहरण देखिए- काशी की नई कहानी घाट पर डोम रानी, गले में है टाई पर बैठने को नहीं चटाई, गदर काट रहा शेयर बाजार नए शिखर पर, रुपया और बाजार दोनों ने लगाया गोता, मध्यवर्ग बम बम आयकर अब कम, हवाई पट्टी पर ड्रैगन की कुदृष्टि, मौसम ने बदला रंग, झमाझम बारिश हुई ओलों के संग इत्यादि।

तीसरा परिवर्तन हिंदी समाचार पत्रों में अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग का बढ़ता प्रचलन है। यह एक ऐसी प्रवृत्ति है, जिसने भाषा के प्रति संवेदनशील लोगों में लंबी बहस छेड़ी, लेकिन इस बहस से अब सभी थक चुके हैं और समाधान का रास्ता कुछ-कुछ अपने-आप निकल चला है। इस प्रवृत्ति की शुरुआत नवभारत टाइम्स में एक नीतिगत परिवर्तन और पूरी योजना के साथ की गई थी और आज भी इस मामले में वही अगुवा बना हुआ है।

वेब पत्रकारिता में बदलती हिंदी

वेब पत्रकारिता के आज कई चेहरे हैं। आरंभ में वेब पत्रकारिता को पहचान दिलाने में और वेब पत्रकारिता को पत्रकारिता की दृष्टि से क्रांतिकारी स्वरूप देने में मुख्य भूमिका गैर व्यावसायिक, गैर सांस्थानिक वेब माध्यमों ने निभाई। इनमें मुख्यतः निजी ब्लॉग, कम्युनिटी ब्लॉग, विभिन्न विषयों पर केंद्रित गैरसांस्थानिक वेबसाइट, सोशल मीडिया जिसमें फेसबुक, टिवट्र और एक बड़े पैमाने पर यूट्यब को शामिल माना जा सकता है। यूट्यूब भी मुख्यतः गैरसांस्थानिक, एक व्यक्ति या कुछेक व्यक्तियों के चैनल के रूप में ही। इन सबको ही मिलाकर न्यू मीडिया या 'नया मीडिया भी कहा गया। इसने पत्रकारिता में संपादक के नियंत्रण से मुक्त रहकर स्वतंत्रता का ऐसा परचम फहराया कि इसे पारंपरिक मीडिया या समाचार माध्यमों के समानांतर एक गंभीर चुनौती के रूप में देखा गया। पत्रकारिता में गेटकीपर मानी जाने वाली संपादक जैसी संस्था द्वारा अस्वीकृत होने, काट-छांट करने या प्रकाशित होने के लिए लंबी प्रतीक्षा करने का दबाव न होने के कारण एक त्वरित और स्वच्छंद पत्रकारिता का तेजी से प्रचार-प्रसार हुआ। स्वच्छंदता और निरंकुश स्वतंत्रता दोनों ही प्रवृत्तियों की बाढ़ आ गई। निश्चित रूप से भाषा के मामले में भी इसने पारंपरिक मीडिया से हटकर प्रयोग किए। 'बिंदास' और 'कड़क' इसके दो सर्वाधिक प्रिय शब्द बन गए। ये दो शब्द इनकी शैली के परिचायक थे। किसी संगठन की नीति से निर्देशित न होना और किसी तरह का अंकुश न होना इनके लिए वरदान हो गया। इस नए मीडिया की कर्ता-धर्ता मुख्यतः युवा पीढ़ी थी। तो मुख्यतः युवा पीढ़ी की अनौपचाकिता और बेलौसपन से लबरेज भाषा हर तरफ देखी, सुनी, पढ़ी जाने लगी। इसका एक तरफ स्वागत किया गया तो इसे लेकर भाषा के प्रति संवेदनशील लोगों ने चिंताएं भी जताईं। इस भाषा पर सबसे बड़ा आरोप संस्कारहीनता का लगा क्योंकि उनके अनुसार बिना साहित्य और विचार की पुस्तकों का अध्ययन किए, उनसे भाषा का संस्कार अर्जित किए लोग जो भाषा लिखेंगे या बोलेंगे उसमें कितनी गंभीरता होगी और भाषा का यह कौन सा मानक होगा? युवा वर्ग एक संस्कारभ्रष्ट भाषा की आदी हो जाएगी और उनके पास भाषा का कोई मानक नहीं रह जाएगा। यह चिंता अपनी जगह सही थी, लेकिन यह नया मीडिया ज्यों-ज्यों पैर पसारता चला गया, ऐसी चिंताएं करने और आरोप लगाने का उत्साह भी कम पड़ता गया।

एक दूसरी चीज यह भी हुई कि वेब पत्रकारिता की विश्वव्यापी पहुंच और नए बाजार की संभावनाओं को तेजी से समझते हुए अब पारंपरिक मीडिया कहे जा रहे समाचार पत्रों और टीवी समाचार चैनलों ने भी अपना पूरा जाल फैला लिया। उनके पास हर तरह के संसाधन उपलब्ध थे। आज सभी समाचार पत्रों और सभी समाचार चैनलों के अपने पोर्टल और अपने यूट्यूब चैनल हैं। सबके सोशल मीडिया अकाउंट हैं। एक तरह से पारंपरिक कहे जा रहे मीडिया ने नए मीडिया पर भी अपना साम्राज्य खड़ा कर लिया है। 'दी लल्लन टॉप' की कहानी देखें, जो बेलौस भाषा में चलने वाला सांस्थानिक मीडिया ही है, तो यह आज तक की मातृ कंपनी टीवी टुडे के ही घराने से निकला है। इसके कुछ पत्रकार भी उससे जुड़े रहे हैं।

आज से दस-पंद्रह साल पहले वेब पत्रकारिता से किसी भी रूप में जुड़ी जो युवा पीढ़ी थी, अब वह प्रौढ़ हो चुकी है। इन वर्षों में वेब पत्रकारिता में कुछ हद तक संतुलन भी आया है। आज गंभीर माने जाने वाले लेखकों-पत्रकारों ने भी इस नए मीडिया की शक्ति को पहचानकर उसे अपना लिया है। इसके उपभोक्ता वर्ग में भी अब सभी पीढ़ी के लोग शामिल हो चुके हैं। इस तरह पारंपरिक कहे जाने वाले मीडिया के पत्रकार और पाठक-श्रोता-दर्शक सब वेब पत्रकारिता के भी सहभागी-सहयात्री हो चुके हैं। दूसरा प्रमुख योगदान यह माना जाएगा कि इसने हिंदी को प्रभावशाली संप्रेषण की चुस्त शैली से संपन्न किया है। ट्विटर और फेसबुक पर अत्यंत कम शब्दों में बड़ी बात कहने की जैसे एक नई विधा ने ही जन्म ले लिया है। ट्विटर पर तो बहुत कम शब्दों में लिखने की सीमा है ही, लेकिन फेसबुक के प्रयोक्ताओं में भी, जिनमें आम लोग, खास लोग और पत्रकार सभी शामिल हैं, सोशल मीडिया पर ज्यादा शब्द नहीं पढ़े जाते, यह समझ विकसित हुई और दो-दो पंक्तियों में चुटीली बात लिखने की शैली लोकप्रिय हुई है। भाषा की दृष्टि से इस परिवर्तन को एक उपलब्धि कहा जा सकता है।

परिवर्तन की दृष्टि से एक सर्वाधिक विशेष बात यह है कि इंटरनेट के माध्यम से हर तरह का मीडिया आज विश्वव्यापी पहुंच रखता है। दैनिक जागरण, हिंदुस्तान आदि समाचार पत्र हों, आज तक, ज़ी न्यूज़ आदि टीवी समाचार चैनल हों, सब अपने पोर्टल और यूट्यूब चैनलों के माध्यम से पूरे विश्व में हिंदी जानने वाले पाठकों-दर्शकों के लिए उपलब्ध हैं। इनके अलावा केवल इंटरनेट पर ही अपनी उपस्थिति रखने वाले समाचार पोर्टल और यूट्यूब चैनल भी पूरे विश्व में कहीं भी देखे जा सकते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि पूरे विश्व में हिंदी जानने वालों की संख्या कितनी बड़ी है। भारत में बनने-बदलने वाली पत्रकारिता के पाठक-श्रोता-दर्शक भारत के अतिरिक्त विश्व के अनेक देशों में हैं। यही बात पत्रकारिता की बदलती हिंदी को लेकर भी कही जा सकती है।

असिस्टेंट प्रोफेसर, श्यामलाल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, शाहदरा, दिल्ली-32, संपर्क-9990689254, ई-मेलः burnwalramesh77@gmail.com

विज्ञान साहित्य के हिंदी अनुवाद से रोजगार का सुनहरा भविष्य

डॉ. शुभ्रता मिश्रा

देश में विज्ञान साहित्य के हिंदी अनुवादकों की अर्हताओं में उम्मीदवार के पास विज्ञान में स्नातक या स्नातकोत्तर डिग्री होनी चाहिए। प्रायः उम्मीदवार को कनिष्ठ हिंदी अनुवादक या वरिष्ठ हिंदी अनुवादक के रूप में नियुक्त किया जाता है। भारत में वैज्ञानिक हिंदी अनुवादक बनने के लिए उम्मीदवार की आयु 18 से 28 वर्ष के बीच रखी गई है। शासकीय क्षेत्र में वैज्ञानिक हिंदी अनुवादकों के लिए रोजगार के विभिन्न अवसर खुलते जा रहे हैं। लगभग सभी वैज्ञानिक संस्थानों, बौद्धिक संपदा अपीलीय बोर्ड, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, विद्युत नियामक आयोग, लक्ष्मीबाई राष्ट्रीय शारीरिक शिक्षा विश्वविद्यालय, राष्ट्रीय पादप स्वास्थ्य प्रबंधन संस्थान, अखिल भारतीय चिकित्सा संस्थान, अंतरिक्ष अनुप्रयोग केंद्र, भारतीय विज्ञान शिक्षा और अनुसंधान संस्थान, आदि में समय-समय पर पद निकलते रहते हैं।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का मानव जीवन से अत्यंत घनिष्ठ संबंध रहा है। मानव कल्याण के लिए जहाँ विज्ञान प्रौद्योगिकी का पथप्रदर्शक बनता है, वहीं प्रौद्योगिकी में विज्ञान की प्रगति सन्निहित होती है। विज्ञान की विभिन्न तकनीकों और प्रौद्योगिकियों का उपयोग मानव की सोच पर निर्भर करता है कि वह उनका उपयोग कितने उचित ढंग से कर सकता है। हालाँकि विज्ञान के सिद्धांतों को समुचित रूप से जीवन में उतार कर ही मनुष्य विकसित सभ्यता की ओर निरंतर बढ़ पाया है। वर्तमान विज्ञान युग में पूरा विश्व विज्ञान की उपलब्धियों, क्षमताओं, संभावनाओं और आवश्यकताओं से चमत्कृत है। औद्योगीकरण एवं जनसंचार के माध्यमों में हुए अत्याधुनिक विकास ने विश्व की दिशा ही बदल दी है। इसके पीछे समस्त वैज्ञानिकों द्वारा लगातार विभिन्न विषयों में चल रहे शोधकार्य हैं। विश्व स्तर पर लगभग 30,000 विज्ञान जर्नल हैं जिनमें प्रतिवर्ष 20 लाख से अधिक शोधपत्र प्रकाशित होते हैं।

परंतु यह भी सच है कि इन सभी वैज्ञानिक खोजों और शोधपत्रों की महत्ता तभी है, जब वह जनोपयोगी सिद्ध हो सकें। इसके लिए ही पिछले कुछ दशकों में संचार के विभिन्न स्वरूपों के माध्यम से विज्ञान को सरलीकृत करके आम जनता तक पहुँचाने के सार्थक प्रयास किए जा रहे हैं। इसके लिए विज्ञान साहित्य का अनुवाद सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। जीवन में वैज्ञानिक एवं तकनीकी का महत्व और आवश्यकताएँ जैसे-जैसे बढ़ती जा रही हैं, वैसे ही इस क्षेत्र में अनुवाद की आवश्यकता भी बढ़ती जा रही है। भारत भी इसमें कहीं पीछे नहीं रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात् से भारत ने विश्व के अन्य देशों की तरह विज्ञान और उसके लोकप्रियकरण की उपादेयता को समझा है।

यह सर्वमान्य है कि यदि भारत में विज्ञान को गाँवों तक पहुँचाकर लोकप्रिय बनाना है और लोगों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करना है, तो उसके लिए निःसंदेह एकमात्र माध्यम हिंदी भाषा ही हो सकती है। यूँ भी संचार माध्यमों के कारण हिंदी भाषा बड़ी तेज़ी से तत्समता से सरलीकरण की ओर जा रही है। इससे हिंदी को भारत में ही नहीं, वरन् वैश्विक स्वीकृति भी प्राप्त हो रही है। आँकड़ों की मानें, तो आजादी के समय तक हिंदी दुनिया में तीसरी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा थी परंतु आज स्थिति यह है कि वह इसके लिए दूसरे स्थान पर पहुँच गई है। भारत में स्वयं हिंदी बोलने और समझने वालों का प्रतिशत अन्य भाषाओं की अपेक्षा सर्वाधिक है। अतः देश में संचार माध्यमों में गतिशीलता बढ़ाने का कार्य हिंदी अनुवाद द्वारा ही अधिक सम्भव हो सका है। गाँवों से लेकर महानगरों तक जो भी अद्यतन सूचनाएँ पहुँचाई जा रही हैं, वे हिंदी अनुवाद के माध्यम से एक साथ सभी तक पहुँच रही हैं। सभी क्षेत्रों में प्रयुक्त वैज्ञानिक शब्दावली का हिंदीकरण कर इन्हें लोकोन्मुख करने में अनुवाद का महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदर्शित हो रहा है।

भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में भी देखा जाए तो विज्ञान की समस्त शाखाओं-प्रशाखाओं का अध्ययन करने के लिए जो पाठ्य सामग्री तैयार होती हैं, वे भी सभी मूलतः हिंदी अनुवाद पर ही निर्भर हैं। विज्ञान साहित्य के अनुवाद में चिकित्सा, औषध विज्ञान, रसायन विज्ञान, भौतिकी, जीव विज्ञान, खगोल विज्ञान, भूगोल, गणित, शिक्षा और दर्शन आदि शामिल हैं। इन सभी विषयों पर विश्व की विभिन्न भाषाओं

में लिखे गए विज्ञान साहित्य का जब स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में अनुवाद किया जाता है, तब उसे वैज्ञानिक अनुवाद कहा जाता है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में सूचना के प्रसार और प्रचार की दृष्टि से वैज्ञानिक अनुवाद को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाता है- तदर्थ, सम्पूर्ण और मशीनी अनुवाद। तकनीकी अनुवाद आमतौर पर कार्यकारी और व्यावहारिक मामलों पर केंद्रित होता है, जबकि वैज्ञानिक अनुवाद सैद्धांतिक और सूचनात्मक ग्रंथों से संबंधित होता है।

इस तरह के वैज्ञानिक अनुवाद की आवश्यकता भारत में भी बढ़ रही है। इसमें वैज्ञानिक कागजात, वैज्ञानिक दस्तावेज, प्रायोगिक सारांश, अनुसंधान रिपोर्ट, पोस्टर, थीसिस, परियोजना रिपोर्ट, तकनीकी निर्देश, डेटा शीट, ब्रोशर, पेटेंट, शोधपत्र, लोकप्रिय विज्ञान लेख, वैज्ञानिक शोध लेख, वैज्ञानिक निबंध, ग्रंथ सूची, प्रेस विज्ञप्ति, समाचार रिपोर्ट, विज्ञान समीक्षा, विज्ञान व्याख्यान, विज्ञान सम्मेलन प्रस्तुतियाँ, विज्ञान गल्प, विज्ञान कविताएँ और विज्ञान कथाएँ शामिल हैं। देश के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय, पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय, अंतरिक्ष विभाग, जैवप्रौद्योगिकी विभाग, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद सीएसआईआर, परमाणु ऊर्जा विभाग आदि से संबद्ध संस्थान और प्रयोगशालाएं वैज्ञानिक शोध एवं अनुसंधानों के लिए विशेष रूप से उत्तरदायित्व सँभालती हैं। इन सभी शासकीय संस्थानों में विज्ञान साहित्य का राजभाषा हिंदी में अनुवाद अनिवार्य रुप से होता है।

विज्ञान विषयों के अनुवाद के लिए विश्व स्तर पर जिस तरह से आईएसओ 17100 प्रमाणन वाली मानक अंतरराष्ट्रीय अनुवाद सेवाएँ कार्य कर रही हैं, उसी तरह भारत में भी विज्ञान साहित्य के अनुवाद में कई संस्थाएँ जुटी हुई हैं। वैज्ञानिक अनुवाद से संबद्ध भारतीय राष्ट्रीय अनुवाद सेवाओं में केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, सीएसआईआर – राष्ट्रीय विज्ञान संचार एवं नीति अनुसंधान संस्थान यानी सीएसआईआर-निस्पर, नीति आयोग, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई और राज्य विज्ञान अकादमियाँ शामिल हैं। अनुवाद सेवा ऐसी विशेषीकृत और प्रत्युत्रात्मक सेवा होती है जिसे प्रदान करने के लिए भाषा और विषय विशेषज्ञों का समूह लगातार संबंधित संस्थानों के माध्यम से अनुवाद कार्य करता रहता है। इनमें पेशेवर अनुवाद प्रक्रिया के लिए बड़ी संख्या में अनुवादकों, संपादकों और प्रूफरीडरों की आवश्यकता होती है।

वर्तमान में दूसरी वैश्विक भाषाओं की तरह हिंदी में विज्ञान साहित्य के अनुवाद के क्षेत्र में रोजगार के विविध आयाम सामने आने लगे हैं। भारत में नई शिक्षा नीति के तहत इंजीनियरिंग और चिकित्साविज्ञान में उच्चशिक्षा का माध्यम हिंदी भी होने के बाद से इनसे जुड़े सभी विज्ञान विषयों की प्रमुख रूप से अंग्रेजी में लिखीं पुस्तकों के हिंदी अनुवाद की दिशा में रोजगार के अवसर बहुत बढ़ गए हैं। विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में निर्धारित विभिन्न विज्ञान विषयों की ज्यादातर पाठ्य पुस्तकों का अनुवाद हिंदी में किया जा रहा है। अतः इस समय भारत में वैज्ञानिक हिंदी अनुवादकों की रोजगार संबंधी महत्ता काफी बढ़ गई है।

देश में विज्ञान हिंदी अनुवादकों की अर्हताओं में उम्मीदवार के पास विज्ञान में स्नातक या स्नातकोत्तर डिग्री होनी चाहिए। प्रायः उम्मीदवार को कनिष्ठ हिंदी अनुवादक या वरिष्ठ हिंदी अनुवादक के रूप में नियुक्त किया जाता है। भारत में वैज्ञानिक हिंदी अनुवादक बनने के लिए उम्मीदवार की आयु 18 से 28 वर्ष के बीच रखी गई है। शासकीय क्षेत्र में वैज्ञानिक हिंदी अनुवादकों के लिए रोजगार के विभिन्न अवसर खुलते जा रहे हैं। लगभग सभी वैज्ञानिक संस्थानों, बौद्धिक संपदा अपीलीय बोर्ड, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, विद्युत नियामक आयोग, लक्ष्मीबाई राष्ट्रीय शारीरिक शिक्षा विश्वविद्यालय, राष्ट्रीय पादप स्वास्थ्य प्रबंधन संस्थान, अखिल भारतीय चिकित्सा संस्थान, अंतरिक्ष अनुप्रयोग केंद्र, भारतीय विज्ञान शिक्षा और अनुसंधान संस्थान, आदि में समय-समय पर पद निकलते रहते हैं। मोटे तौर पर भारतीय विज्ञान हिंदी अनुवादकों को वार्षिक रुप से 60 हजार से लेकर 8.4 लाख रुपए तक का रोजगार मिल सकता है।

विज्ञान साहित्य के हिंदी अनुवादक को स्रोत भाषा जैसे अंग्रेजी और लक्ष्य भाषा अर्थात् हिंदी दोनों भाषाओं में कुशल होना बहुत आवश्यक है। अनुसंधान, सूचना संग्रह और प्रसंस्करण तथा सांस्कृतिक, तकनीकी और प्रासंगिक वैज्ञानिक क्षेत्रों में पारंगत होना भी बेहद जरूरी है। इन गुणों के साथ-साथ अनुवादक को संबंधित विज्ञान क्षेत्र के लिए विशिष्ट शब्दों और संक्षिप्त रूपों के उपयोग में कुशल होना चाहिए। उनमें वैज्ञानिक और विशिष्ट ज्ञान के साथ अनुवाद के लिए शब्दावली हेतु एक व्यवस्थित दृष्टिकोण का उपयोग कर क्षेत्र विशेष की गहन समझ होना भी जरूरी है। निश्चित पारिभाषिक शब्दावली, सुनिश्चित अर्थबोध, व्यापक संकेत पद्धति आदि के कारण विज्ञान साहित्य का अनुवाद करते समय अनुवादक को सूचना और ज्ञान के साथ सटीक शब्दावली में कुशल होना चाहिए।

वर्तमान में भारत के अंतरिक्ष विज्ञान, मैकेनिकल, सिविल, सूचना तकनीक, कंप्यूटर विज्ञान के अनुसंधानकर्ताओं की माँग विश्व में तेजी से बढ़ रही है। विश्व की बड़ी-बड़ी संस्थाओं और बहुदेशी कंपनियों जैसे नासा, माइक्रोसॉफ्ट, गूगल, अमेजन, अलीबाबा, एप्पल आदि में भारतीय वैज्ञानिक कार्यरत हैं। भारत विज्ञान और प्रौद्योगिकी अनुसंधान के क्षेत्र में अग्रणी देशों में सातवें, नैनो तकनीक शोध में तीसरे, सुपरकंप्यूटर में चौथे और वैश्विक नवाचार सूचकांक में 46वें स्थान पर है। विश्व की तीसरी सबसे बड़ी वैज्ञानिक और तकनीकी जनशक्ति भी भारत में ही है। इस तरह भारत की निरंतर वर्धमान विज्ञान मेधा, बहुभाषी विज्ञान साहित्य संसाधनों में हो रही वृद्धि, सॉफ्टवेयरों और एपों द्वारा हिंदी में आसानी से टंकण से वैज्ञानिक अनुवाद में मिल रही सुविधा और सोशल मीडिया के माध्यम से वैज्ञानिक अनुवाद के प्रयुक्ति क्षेत्र के विस्तार भी हिंदी में विज्ञान साहित्य के अनुवाद को सुनहरे भविष्य की ओर ले जा रहे हैं।

204, सनसेट लगून, बिजी बी स्कूल के पास, डेस्टेरो बायना, वास्को द गामा
गोवा, पिनकोड-403802 संपर्क-8975245042

महाकवि जयशंकर प्रसाद की वैश्विक चेतना

डॉ. अशोक कुमार ज्योति

"हिंदी-साहित्य में नाटक-लेखन के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनकी महत्ता को रेखांकित करते हुए हिंदी-साहित्येतिहासकारों ने नाटक-लेखन के काल-विभाजन के केंद्र में 'प्रसाद' का नाम रखा। जयशंकर प्रसाद ने तेरह नाटकों की रचना की। प्रसाद की नाट्य-लेखन-कला का प्रौढ़ स्वरूप 'अजातशत्रु', 'स्कंदगुप्त' और 'चंद्रगुप्त' में देखने को मिलता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि प्रसाद के नाटकों में 'स्कंदगुप्त' और 'चंद्रगुप्त' दोनों में स्वदेश-प्रेम, विश्व-प्रेम और आध्यात्मिकता का आधुनिक रूपरंग बराबर झलकता है।[5] 'चंद्रगुप्त' नाटक में यवनकन्या कार्नेलिया और भारत के सम्राट् चंद्रगुप्त के विवाह की कथा को प्रस्तुत कर प्रसाद वैश्विक मैत्री का संदेश देते हैं। इतना ही नहीं, कार्नेलिया का चंद्रगुप्त के शक्ति, शील, सौंदर्य और प्रेमभाव से आकृष्ट होने का चित्रण इस बात का भी द्योतक है कि ईसा से लगभग सवा तीन सौ वर्ष पूर्व भारत के लोगों के प्रति किसी विदेशी नारी का सहज आकर्षण हो सकता है।"

प्रस्तावना

जयशंकर प्रसाद! ऐसी विलक्षण मनस्विता बाबा विश्वनाथ की नगरी काशी में ही संभव है, जहाँ बारह वर्ष का एक किशोर अपनी विद्यालयीय पढ़ाई छोड़ दे और स्वाध्याय के द्वारा ऐसी ज्ञानराशि अर्जित कर ले कि वह अपनी मेधा, बुद्धि, कौशल और लेखन से विश्व-साहित्य को चकित-चमत्कृत कर दे! यह भी नहीं कि 'खैनी' बेचने के पैतृक व्यवसाय का यह अतिरिक्त प्रभाव हो! खैनी खाई तो जाती, किंतु वह संबंध-निर्वाह के लिए होता, लेखन की उन्मत्तता तो स्वाध्याय, साधना, परंपरा-सामंजस्य, सहमिलन, समभाव और स्वभाव का सुखद परिणाम थी। "उनका सांस्कृतिक व्यक्तित्व काशी की मर्यादा और उसके अल्हड़पन को पूर्ण गरिमा के साथ अपने में सँजोये है। काशी शंकर के त्रिशूल पर स्थित है, यह सनातन मान्यता है। उसकी गरिमा का वास बाबा विश्वनाथ में, संकटमोचन में, दुर्गास्थान में तथा सैकड़ों देवी-देवताओं के छोटे-बड़े मंदिरों में है। हँसुली के समान या फिर बाँकी तिरछी भौंहों के समान गंगा-तटों की अर्धचंद्राकार शोभा-आभा के साथ-साथ जहाँ पवित्रता बिखेरती है, वहीं काशी की ऋद्धि और सिद्धि का वास उसकी जीवन-शैली में है, जिसकी गाथा कबीर से प्रारंभ होकर तुलसी तक पहुँचती हुई भारतेंदु, प्रेमचंद और प्रसाद के पास जाकर रुकती है।"[1]

जीवन-परिचय

जयशंकर प्रसाद सर्वतोमुखी प्रतिभा से ओत-प्रोत लेखक थे। उन्होंने कविता, कहानी, नाटक, निबंध, उपन्यास इत्यादि साहित्यिक विधाओं में अपनी लेखनी से हिंदी-मंदिर को अलंकृत किया। वे काव्यकला, संगीतकला, मूर्तिकला और चित्रकला से समान रूप से अनुराग रखते थे। माँ भारती के इस वरदपुत्र को काशी विश्वनाथ का भी आशीर्वाद प्राप्त था। काशी के एक संपन्न वैश्य परिवार में प्रसाद जी का जन्म 30 जनवरी, 1889 में हुआ। उनके पूर्वज पूर्व में कन्नौज में रहते थे। कई पीढ़ी पहले उनके पूर्वज गाजीपुर जनपद के सैदपुर कस्बे में आ गए थे, जहाँ उनका चीनी का व्यापार था। इस व्यापार में जब हानि होने लगी, तब कुछ लोग काशी के गोवर्धनसराय मुहल्ले में आकर बसे। वे लोग जर्दा, सुर्ती, इत्र, तंबाकू और सुंघनी आदि के व्यवसाय से जुड़ गए। प्रसाद जी के पितामह का नाम श्री शिवरत्न साहु था और वे अपने माता-पिता की इकलौती संतान थे। उनके पिता जी का नाम श्री गणपति साहु था। वे एक विशेष प्रकार की सुर्ती बनाते थे, जो 'सुँघनी' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसकी इतनी प्रसिद्धि हुई कि वह परिवार 'सुँघनी साहु' के नाम से जाना जाने लगा। व्यापार में लाभ होता था तो वे लोगों पर खर्च भी करते थे। दादा श्री शिवरत्न साहु बड़े ही दयालु स्वभाव के थे। प्रातःकाल जब वे गंगास्नान कर लौटते थे तो अपना वस्त्र और लोटा

आदि राह में बैठे भिखारियों को दे दिया करते थे। काशिराज के दरबार में जो विद्वान्, कलाकार, संगीतज्ञ, गुणीजन आया करते थे, वे साहु जी के यहाँ भी आते और यथोचित मान-सम्मान प्राप्त करते। उनके यहाँ से कोई खाली हाथ नहीं जाता। लोक ने भी उनका भरपूर मान किया। उनसे जब कोई मिलता तो उनके प्रति आदर-भाव प्रकट करने के लिए 'जय जयशंकर' अथवा 'हर-हर महादेव' का जयघोष कर उनकी प्रतिष्ठा करते।

पितामह श्री शिवरत्न साहु के छह पुत्र थे। उन्हीं में से एक थे श्री देवीप्रसाद साहु, जिनके सुपुत्र थे महाकवि जयशंकर प्रसाद। उनकी माता का नाम था श्रीमती मुन्नी देवी। प्रसाद जी का जन्म अनेक मन्नतों के बाद हुआ था। उनसे पूर्व अनेक भाई-बहनों की मृत्यु हो चुकी थी। सिर्फ बड़े भाई शंभुरत्न ही बचे थे। उनके माता-पिता ने भगवान् भोलेनाथ से एक और संतान के लिए प्रार्थना की और उज्जयिनी एवं वैद्यनाथधाम की तीर्थयात्राएँ कीं। प्रसाद जी के जन्म के बाद उनका नामकरण-संस्कार वैद्यनाथधाम में ही हुआ। इसीलिए बाल्यकाल में उन्हें 'झारखंडी' कहकर पुकारा जाता था। प्रसाद जी की प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई। वे मुहल्ले की पाठशाला में पढ़ने जाया करते थे। उनके प्रारंभिक गुरु श्री मोहिनीलाल गुप्ता थे। उनसे ही प्रसाद जी ने ब्रजभाषा में कविता लिखने की प्रेरणा प्राप्त की। उन्हें घर पर ही उर्दू, फारसी, संस्कृत और हिंदी सिखाई जाती। उनके संस्कृत के गुरु थे श्री दीनबंधु ब्रह्मचारी और साथ में एक और गुरु थे श्री रसमयसिद्ध। उन्होंने नौ वर्ष की अवस्था में 'लघु कौमुदी' और 'अमरकोश' को कंठस्थ कर लिया था। इसी आयु में उन्होंने 'कलाधर' उपनाम से ब्रजभाषा में सवैया लिखकर अपने गुरु श्री रसमयसिद्ध को दिखाया था। उनका प्रवेश क्वीन्स कॉलेज में कराया गया, परंतु वहाँ वे आठवीं तक ही पढ़ाई कर सके। उन्हीं दिनों उनके पिता का देहांत हो गया। तब प्रसाद जी की आयु मात्र बारह वर्ष की थी। पिता की मृत्यु के तीसरे वर्ष परिवार में बँटवारा हो गया। उन्हीं दिनों उनकी माता जी का भी देहांत हो गया। बँटवारे के पश्चात् शंभुरत्न ने व्यापार सँभाला, पर उन्हें सफलता नहीं मिली। तब प्रसाद जी भी दूकान का काम सँभालने लगे थे। वे साथ-साथ कविताएँ भी लिखने लगे थे। शंभुरत्न को उनका कविता लिखना बहुत पसंद नहीं था, किंतु प्रसाद जी ने चोरी-छिपे ही सही, अपना लेखन जारी रखा। साथ ही, वे स्वाध्याय से ज्ञानार्जन भी करते रहे। प्रसाद जी को बड़े भाई का साथ भी बहुत दिनों तक नहीं मिला और उनका भी देहावसान हो गया। फिर उन्होंने अकेले सारा कारोबार सँभाला और कर्ज से भी मुक्ति पाई। बीस वर्ष की आयु में उनका विवाह गोरखपुर में हुआ। किन्तु दस वर्ष के बाद ही पत्नी का निधन हो गया। उसके एक वर्ष बाद उनका दूसरा विवाह हुआ। ईश्वर को उनका साथ भी मंजूर नहीं था। प्रसूतिकाल में पुत्र के साथ ही माता का भी निधन हो गया। उसके बाद घर के कुछ सदस्यों और भाभी के बार-बार के अनुरोध पर उनका तीसरा विवाह हुआ। इन्हीं पत्नी से उनके सुपुत्र श्री रत्नशंकर का जन्म हुआ।

प्रसाद जी का जीवन बहुत ही संघर्षमय रहा। उन्होंने स्वयं लिखा है, "जवानी कब बीत गई, यह जाना ही नहीं!"[2] उनके संघर्षपूर्ण जीवन के बारे में पंडित विनोदशंकर व्यास ने लिखा है, "मुझसे जब कभी वह अपनी जीवन-कहानी सुनाते, तो उनका चेहरा तमतमा उठता, आँखें भर आतीं और ललाट पर संसार की कठोरता की एक रेखा स्पष्ट खिंच जाती थीं।"[3] सन् 1932 ईसवी में जब प्रेमचंद जी ने 'हंस' के आत्मकथांक के लिए प्रसाद जी से लेख लिखने का आग्रह किया तो उन्होंने मात्र एक कविता भेजी। उस कविता में उनके निजी जीवन का अपार दर्द है, जिसकी आरंभिक पंक्तियाँ हैं:

कहाँ मिला वह सुख जिसका मैं स्वप्न देखकर जाग गया?
आलिंगन में आते-आते मुस्क्या कर जो भाग गया।

कृतित्व

जयशंकर प्रसाद का साहित्य कालजयी है। उन्होंने स्वाध्याय से जो ज्ञान अर्जित किया, उसका भरपूर उपयोग अपने लेखन में किया। उन्होंने साहित्य की विविध विधाओं में विपुल लेखन किया। वे कवि, कहानीकार, निबंधकार, नाटककार, उपन्यासकार इत्यादि के रूप में प्रसिद्ध हुए। 'कामायनी' से वे महाकवि बने और उन्हें विश्वकवि की भी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। देश की स्वतंत्रता में भी अपना योगदान दिया। वे राष्ट्रीय आंदोलन के भी हिस्सा रहे। उन्होंने सबसे पहले ब्रजभाषा में कविताएँ लिखीं। उनका पहला काव्य-संग्रह 'चित्राधार' सन् 1918 ईसवी में ब्रजभाषा में प्रकाशित हुआ। इसमें कविता, कहानी, नाटक, निबंध इत्यादि सभी कुछ संकलित थे। यहाँ विधाशः उनकी कृतियों का उल्लेख किया जा रहा है। **काव्य**: 'उर्वशी' (1909, चंपू काव्य), 'प्रेम-राज्य' (1909), 'चित्राधार' (1918, इसमें तीन कथाकाव्य 'अयोध्या का उद्धार', 'वनमिलन' और 'प्रेम-राज्य' भी संगृहीत हैं), 'प्रेमपथिक' (1919), 'करुणालय' (गीतिनाट्य, 1913 में 'इंदु' में, 'चित्राधार' संग्रह में और पुनः पुस्तक-रूप में स्वतंत्र प्रकाशन सन् 1928), 'महाराणा का महत्त्व' (1914 में 'इंदु' में, 'चित्राधार' संग्रह में और पुनः पुस्तक-रूप में स्वतंत्र प्रकाशन सन् 1928), 'झरना' (1918), 'आँसू' (1925), 'कानन कुसुम' (1929, तीसरा संस्करण, पूर्णतः खड़ी बोली, प्रारंभ में यह ब्रजभाषा में लिखी गई थी।), 'लहर' (1933), 'कामायनी' (1936); **उपन्यास**: 'कंकाल' (1929), तितली (1934), 'इरावती' (अपूर्ण, 1940, मृत्यु के पश्चात्); **कहानी**: 'छाया' (1912), 'प्रतिध्वनि' (1926), 'आकाशदीप' (1929)

'आँधी' (1931), 'इंद्रजाल' (1936); **नाटक:** 'सज्जन' ('इंदु' में 1910-11), 'कल्याणी-परिणय' (नागरी प्रचारिणी पत्रिका, 1912, बाद में कुछ संशोधनों के साथ 'चंद्रगुप्त' नाटक में समायोजित), 'प्रायश्चित्त' ('इंदु' में 1914), 'राज्यश्री' (1915), 'विशाख' (1921), 'अजातशत्रु' (1922), 'जनमेजय का नागयज्ञ' (1926), 'कामना' (1927), 'स्कंदगुप्त' (1928), 'एक घूँट (1930), 'चंद्रगुप्त' (1931) और 'ध्रुवस्वामिनी' (1933)। उनका एक नाटक 'अग्निमित्र' अधूरा है। सन् 1939 में उनका निबंध-संग्रह प्रकाशित हुआ 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध'।

प्रसाद जी में अप्रतिम लेखकीय गुण एक विशिष्ट अवधारणा के साथ विद्यमान् था कि अपनी किसी रचना को प्रकाशित करा देने के बाद वे स्वयं उस रचना-विशेष के गुणावगुण का मूल्यांकन नहीं करते थे। उसका निर्णय वे पाठकों पर छोड़ देते थे। यही कारण भी था कि उनकी रचना-यात्रा सदैव विकसित होती रही। इस संबंध में उन्होंने पटना के समकालीन साहित्यकार पंडित प्रफुल्लचंद्र ओझा 'मुक्त' को संबोधित एक पत्र में लिखा था, "अपनी किसी रचना से मेरा संबंध तभी तक रहता है, जब तक मैं उसे पूरा नहीं कर लेता। उसके बाद वह पाठक की संपत्ति हो जाती है। पाठक जिस तरह, जैसा चाहे, उसे समझे या उसकी व्याख्या करे। यदि कहीं अर्थ स्पष्ट नहीं होता तो समझना चाहिए, मैं लिखने में सफल नहीं हुआ। लेकिन मेरी अपनी सीमाएँ हैं। मैं वैसा ही लिख सकता था।"[4]

प्रसाद की वैश्विक चेतना

हिंदी-साहित्य में नाटक-लेखन के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनकी महत्ता को रेखांकित करते हुए हिंदी-साहित्येतिहासकारों ने नाटक-लेखन के काल-विभाजन के केंद्र में 'प्रसाद' का नाम रखा। जयशंकर प्रसाद ने उपरिलिखित तेरह नाटकों की रचना की। प्रसाद की नाट्य-लेखन-कला का प्रौढ़ स्वरूप 'अजातशत्रु', 'स्कंदगुप्त' और 'चंद्रगुप्त' में देखने को मिलता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि प्रसाद के नाटकों में 'स्कंदगुप्त' और 'चंद्रगुप्त' दोनों में स्वदेश-प्रेम, विश्व-प्रेम और आध्यात्मिकता का आधुनिक रूपरंग बराबर झलकता है।[5] 'चंद्रगुप्त' नाटक में यवनकन्या कार्नेलिया और भारत के सम्राट् चंद्रगुप्त के विवाह की कथा को पुनः प्रस्तुत कर प्रसाद वैश्विक मैत्री का संदेश देते हैं। इतना ही नहीं, कार्नेलिया का चंद्रगुप्त के शक्ति, शील, सौंदर्य और प्रेमभाव से आकृष्ट होने का चित्रण इस बात का भी द्योतक है कि ईसा से लगभग सवा तीन सौ वर्ष पूर्व भारत के लोगों के प्रति किसी विदेशी नारी का सहज आकर्षण हो सकता है। कार्नेलिया भारतीय संस्कृति से इतना प्रभावित होती है कि 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' गीत गाती है। उसके इस उल्लास के केंद्र में यह माना गया कि मानो उस यवनकन्या ने भारत देश के सांस्कृतिक वैभव और मनुष्यता के उच्चारण के सम्मुख अपने देश को पराजित मान लिया हो। चंद्रगुप्त और कार्नेलिया का विवाह राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण माना जाता है। सिल्यूकस की पराजय के बाद चंद्रगुप्त अपनी उदारता दिखाता है और उससे संधि कर अपने देश लौट जाने का मार्ग देता है। जब संधि-पत्र को अंतिम रूप दिया जाना था, तब आचार्य चाणक्य ने महती भूमिका निभाई। सिल्यूकस जब चाणक्य से कहता है कि आपको देखने के पश्चात् और संधि-पत्र तैयार कर स्वदेश लौटना चाहता हूँ, तब आचार्य कहते हैं, "किंतु संधि-पत्र स्वार्थों से प्रबल नहीं होते, हस्ताक्षर तलवारों को रोकने में असमर्थ प्रमाणित होंगे। तुम दोनों ही सम्राट् हो, शस्त्र-व्यवसायी हो, फिर भी संघर्ष हो जाना कोई आश्चर्य की बात न होगी। अतएव दो बालूकापूर्ण कगारों के बीच में एक निर्मल स्रोतस्विनी का रहना आवश्यक है।...ग्रीस की गौरव-लक्ष्मी कार्नेलिया को मैं भारत की कल्याणी बनाना चाहता हूँ। यही ब्राह्मण की प्रार्थना है।"[6] इस प्रस्ताव को सिल्यूकस अहोभावित होकर स्वीकार करता है और कार्नेलिया का विवाह चंद्रगुप्त से कर अपनी पुत्री को भारत का सम्राज्ञी बना देता है। यह वैश्विक मैत्री का उत्कृष्ट उदाहरण है। इससे पूर्व जब सिल्यूकस पहली बार आचार्य चाणक्य के दर्शन करता है और अभिवादन करता है, तब वे कहते हैं, "सुखी रहो, सिल्यूकस, हम भारतीय ब्राह्मणों के पास सबकी कल्याण-कामना के अतिरिक्त और क्या है-जिससे अभ्यर्थना करूँ?..."[7] यह कथन भारतीय मनीषा के उस उदात्त मानस का प्रतिनिधित्व करता है, जो संपूर्ण वसुधा को अपना कुटुंब मानकर उसके कल्याण की भावना रखता है। यह भूमि पर अधिकार का भाव नहीं, हृदय को विजित करने का सद्भाव है। नाटक के मध्य में फिलिप्स से वार्तालाप करते हुए कार्नेलिया ने कहा था, "ग्रीक लोग केवल देशों का विजय करके समझ लेते हैं कि लोगों के हृदय पर भी अधिकार कर लिया।"[8] स्पष्टतः भारत के लोगों का यह वैशिष्ट्य सदियों से रहा है कि वह मनुष्यमात्र से हार्दिक संबंध रखना पसंद करता रहा है। "राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से चंद्रगुप्त और कार्नेलिया का परिणय परम श्रेयस्कर सिद्ध होता है। इससे भारत और यूनान, इन दो सबल प्राचीन राष्ट्रों की राजनीतिक एकता स्थायी होकर और भी सुदृढ़ बन जाती है तथा दोनों देशों में सांस्कृतिक आदान-प्रदान के नए क्षितिज खुलते हैं।"[9]

प्रसाद जी 'अजातशत्रु' में न केवल राजा का प्रजा के लिए दायित्व का निर्देश करते हैं, अपितु संपूर्ण वसुधा के लोकमंगल की कामना के लिए हर प्राणी के प्रति स्नेह और करुणा को आवश्यक मानते हैं। प्रसेनजित् से गौतम कहते हैं, "तुम लोक कर्तव्य के लिए सत्ता

के अधिकारी बनाए गए हो, उसका दुरुपयोग न करो। भूमंडल पर स्नेह का, करुणा का, क्षमा का शासन फैलाओ। प्राणिमात्र में सहानुभूति को विस्तृत करो। इन क्षुद्र विप्लवों से चौंक कर अपने कर्म-पथ से च्युत न हो जाओ।"[10] 'अजातशत्रु' का प्रकाशन 1922 ईसवी में हुआ था, जब देश अँगरेजी शासन की अनेक क्रूरताओं का सामना कर रहा था। एक ओर स्वातंत्र्यवीर क्रांतिकारी और दूसरी ओर महात्मा गांधी जैसे नेता देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे थे। ऐसे में प्रसाद जहाँ अतीत की गौरवगाथा से देश के लोगों की चेतना को जाग्रत कर रहे थे, वहीं वे शासक को उचित मार्गनिर्देश भी दे रहे थे। वे मात्र रक्त-संबंध में ही प्रेम का सोता नहीं देखना चाहते थे, अपितु विश्व के प्रत्येक प्राणी में ऐक्य का भाव चाहते थे। वे भारत के उस सनातन मूलमंत्र की उज्ज्वलता को भी रेखांकित कर रहे थे, जिसमें कहा गया है: **'अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्। उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्!'** नाटक 'अजातशत्रु' में अनेक कलह, संघर्ष और घात-प्रतिघात के पश्चात् गौतम की मध्यस्थता से जब प्रसेनजित्, अजातशत्रु, विरुद्धक और बाजिरा आपस में प्रेमभाव से मिल जाते हैं, तब उस सुखद क्षण का चित्र खींचते हुए कहा गया है कि जो हृदय विकसित होने के लिए है, जो मुख हँसकर बातें करने के लिए है, उसे लोग बिगाड़ लेते हैं। वासवी के माध्यम से विश्व-बंधुत्व का संदेश देते हुए प्रसाद जी आगे कहते हैं, "कुटुंब के प्राणियों में स्नेह का प्रचार करके मानव इतना सुखी होता है, यह आज ही मालूम हुआ होगा। भगवन्! क्या कभी वह दिन भी आवेगा, जब विश्व-भर में एक कुटुंब स्थापित हो जाएगा, और मानवमात्र स्नेह से अपनी गृहस्थी सम्हालेंगे?"[11]

प्रसाद जी ने विश्व-मानव को 1930 के दशक में नारी के सम्मान और प्राकृतिक उपादानों के दोहन से भविष्य में होनेवाले नुकसान के प्रति सावधान किया था। आज संपूर्ण विश्व नारी के सम्मान और प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा के लिए बेचैन है। उनकी ऐतिहासिक पात्र ध्रुवस्वामिनी कहती है, "मैं उपहार में देने की वस्तु, शीतल-मणि नहीं हूँ। मुझमें रक्त की तरल लालिमा है। मेरा हृदय उष्ण है और उसमें आत्म-सम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा मैं ही करूँगी।"[12]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि वर्गहीन समाज की साम्यवादी पुकार की भी दबी-सी गूँज दो-तीन जगह प्रसाद की कुछ कविताओं में है। 'विद्युत् कण (इलेक्ट्रांस) मिल झलकते से' में विज्ञान की भी झलक है। आज हमने वैज्ञानिक प्रगति तो कर ली है, किंतु उसके लिए प्राकृतिक दोहन किया है। वास्तव में प्रकृति का दोहन संपूर्ण विश्व अपनी सुविधा के लिए करता आया है, जिस ओर प्रसाद जी ने हमें सावधान किया था:

प्रकृत-शक्ति तुमने यंत्रों से सबकी छीनी।
शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर झीनी।[13]

भारत ने संपूर्ण विश्व को तीर्थंकर महावीर और महात्मा बुद्ध के माध्यम से सत्य, अहिंसा और करुणा का संदेश दिया है। इस देश ने कभी अपने साम्राज्य-विस्तार की आकांक्षा से परराष्ट्र पर आक्रमण नहीं किया है। हमने कभी किसी को पीड़ित-प्रताड़ित नहीं किया है। हमने वह जाग्रति दी है, जिससे संपूर्ण विश्व में जागरण का भाव आया, ज्योति फैली और संसार के तम का नाश हुआ। हमने दुनिया को शोक-रहित किया है। प्रसाद जी लिखते हैं:

जगे हम, लगे जगाने विश्व, लोक में फैला फिर आलोक।
व्योम-तम पुँज हुआ तब नाश, अखिल संसृति हो उठी अशोक।[14]

प्रेम मानवमात्र के लिए एक सुखद मनोभाव है। प्रेम से मनुष्य एक-दूसरे से इस प्रकार जुड़ता है कि वह ऐक्य की उदात्त भावना के साथ जीवन जीता है और संपूर्ण वसुधा को प्रेममय बना देता है। इस प्रेम में एक चुंबकीय आकर्षण है, जो जगत् का चालक बन जाता है। इस प्रेम के आनंद का संपूर्ण विश्व में अमित प्रभाव व्याप्त हो जाता है:

प्रेम, जगत् का चालक है, इसके आकर्षण में खिंच के
मिट्टी वा जलपिंड सभी दिन-रात किया करते फेरा
इसकी गर्मी मरु, धरणी, गिरि, सिंधु, सभी निज अंतर में
रखते हैं आनंद-सहित, है इसका अमित प्रभाव महा।।[15]

प्रसाद एक विवेकवान् रचनाकार थे, जिसमें उनकी संवेदना का आयाम बृहत्तर था। उनके काव्य के मूल स्वर में व्यक्ति सत्य, युग सत्य और शाश्वत सत्य का समाहार है। उनकी चेतना में विश्व के प्रत्येक मानव के भावनात्मक समन्वय का उदार भाव था। वे चाहते थे कि जो ईश्वरीय ज्योति है, विश्वभर के मानव उसे अनुभूत करें और उसका समन्वय इस प्रकार करें कि विजय व्यक्तिमात्र या सत्तामात्र की न हो, मानवता की हो:

शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय,
समन्वय उसका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाय।[16]

'कामायनी' विश्व-स्तरीय समस्याओं को रेखांकित करती है। विश्व लगभग दो दशक पूर्व एक विश्वयुद्ध से बाहर निकलकर कुछ सँभला था और उसने फिर से जीवन को जीने का प्रयास किया था। किंतु उसकी लपटों से अभी पूरी तरह बाहर नहीं निकल पाया था। इन्हीं लपटों का परिणाम था द्वितीय विश्वयुद्ध। प्रसाद इसीलिए संपूर्ण जगत् के हर प्राणी को यह संदेश देते हैं कि दूसरों के जीवन को सँवारने में, दूसरों को सुख देने में आनंद का अनुभव करे। एक मानव के लिए दूसरे मानव का यही दाय विश्व में शांति की स्थापना करेगा:

औरों को हँसता देखो मनु-हँसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत कर लो सब को सुखी बनाओ।[17]

प्रसाद कहते हैं कि हर सुखी प्राणी का कर्तव्य है कि वह अपने सुख को व्यक्ति-केंद्रित न करे, अपितु समाज-केंद्रित करे। ऐसा नहीं करने पर हम दूसरों के हिस्से पीड़ा छोड़ देंगे। हमें दूसरों के दुःख को देखकर अपना मुँह नहीं मोड़ लेना चाहिए। हर समर्थ व्यक्ति के भीतर सदाचरण का भाव रहे, तभी विश्व में समता का स्वरूप निर्मित होगा:

सुख को सीमित कर अपने में केवल दुःख छोड़ोगे,
इतर प्राणियों की पीड़ा लख अपना मुँह मोड़ोगे।[18]

प्रसाद ऐसे प्राणियों को सौभाग्यशाली मानते हैं, जिनके जीवन में सुख की प्राणवायु संचरित हो रही है। इसके साथ ही वे यह भी कहते हैं कि सुख अपने तक सीमित कर लेनेवाली वस्तु नहीं है। संसार का संपूर्ण विकास तो तभी संभव है, जब हम निरंतर इस सुख का आदान-प्रदान करते रहेंगे। उनका कहना है कि जब हम अपने सुखों का उपभोग अन्य व्यक्तियों के साथ परस्पर बाँट कर करेंगे, तब मानवता के साथ-साथ हमारी कीर्ति भी बढ़ती जाएगी:

सुख-समीर पाकर, चाहे हो वह एकांत तुम्हारा,
बढ़ती है सीमा संसृति की बन मानवता-धारा।[19]

वरिष्ठ आलोचक डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय ने कहा है कि प्रसाद विश्व-मंगल की कामना की दृष्टि के लेखक हैं। जिस तरह वेद में दर्शन, छंद और विज्ञान अंतर्भूत हैं, उसी तरह प्रसाद के काव्य में भी ये तीनों तत्त्व अंतर्भूत हैं।

जीवन के अंतिम समय में प्रसाद जी मलेरिया ज्वर से पीड़ित हो गए, जो बाद में तपेदिक रोग बन गया। इस रोग ने उनकी जीवनलीला समाप्त कर दी। प्रसाद जी ने 15 नवंबर, 1937 को अपनी अंतिम साँस ली। उनके महाप्रयाण पर राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने उन्हें कवितांजलि देते हुए लिखा:

'जयशंकर' कहते-कहते हम अब भी काशी आवेंगे।
किंतु 'प्रसाद' न विश्वनाथ का मूर्तिमान हम पावेंगे।।

तात भस्म भी तेरे तनु की हिंदी की विभूति होगी।
पर हम जो हँसते आते थे, रोते-रोते जावेंगे।।

महाकवि का यह उद्घोष संपूर्ण विश्व की मानवता को समर्पित है: **'सुखी रहें सब सुखी रहें, बस...'**। देश जब दासता की अनेक श्रृंखला से दुर्बद्ध था, संपूर्ण विश्व जब अनेक ऊहापोहों से जकड़ा था, तब एक ओर महाकवि जयशंकर प्रसाद ने राष्ट्र-जागरण का गीत गाया तो दूसरी ओर देश, काल और सीमा को अतिक्रांत करते हुए विश्व-चेतना के काव्य का प्रणयन किया।

संदर्भ

1. सिंह, डॉ. शंकर दयाल, 'हिंदी में प्रसाद जी का वही महत्त्व है, जो पूजा में प्रसाद का होता है', परिषद्-पत्रिका, वर्ष-29, अंक-1-2, अप्रैल से जुलाई, 1989 ईसवी, पृष्ठ-37
2. पाठक, वाचस्पति, प्रसाद का जीवन-दर्शन, कला और कृतित्व, पृष्ठ-17
3. व्यास, पंडित विनोदशंकर, प्रसाद और उनका साहित्य, पृष्ठ-4
4. 'मुक्त', पंडित प्रफुल्लचंद्र ओझा, 'कवि प्रसाद, मैं और उनकी काव्यभाषा', परिषद्-पत्रिका, वर्ष-29, अंक-1-2, अप्रैल से जुलाई, 1989 ईसवी, पृष्ठ-16
5. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, संस्करण-सन् 2019, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ-445
6. प्रसाद, जयशंकर, चंद्रगुप्त, कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-सन् 2001, पृष्ठ-184
7. उपरिवत्
8. उपरिवत्, पृष्ठ-82
9. हिंदी साहित्य कोश, भाग-2, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, द्वितीय संस्करण-सन् 1986, पृष्ठ-175
10. प्रसाद, जयशंकर, अजातशत्रु, भारतीय ज्ञानपीठ, दूसरा संस्करण-2014, नई दिल्ली, पृष्ठ-90
11. उपरिवत्
12. प्रसाद, जयशंकर, ध्रुवस्वामिनी, संस्कृति साहित्य, संस्करण-2012, दिल्ली, पृष्ठ-29
13. प्रसाद, जयशंकर, कामायनी, संघर्ष सर्ग
14. प्रसाद, जयशंकर, भारत-महिमा
15. प्रसाद, जयशंकर, प्रेमपथिक, पृष्ठ-23
16. प्रसाद, जयशंकर, कामायनी, पृष्ठ-59
17. प्रसाद, जयशंकर, कामायनी, कर्म सर्ग, भाग-1
18. उपरिवत्
19. उपरिवत्

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005, मोबाइल: 9911382072, ईमेल:drashokjyotibhu@gmail.com

वैश्विक संस्कृति की भाषा : हिंदी

डॉ. कृष्ण बिहारी पाठक

भाषा अपने पास उपलब्ध शब्दों में से ही सर्वोत्तम शब्द उठा सकती है ऐसे में वही भाषा सर्वसमर्थ हो सकती है जिसके पास सार्थक शब्दों की अधिकतम उपलब्धता हो।

जिस भाषा के पास अपनी बात कहने को गिने-चुने शब्द ही हों वह सर्वोत्तम की चयनात्मकता के आत्मविश्वास को नहीं पा सकती। उपलब्ध सीमित विकल्पों में से किसी एक को चुन लेने की विवशता ही उसकी नियति है।

इस दृष्टि से हिंदी आशान्वित करती है। उसके पास शब्दों की ऐसी विशाल राशि है जिसमें एक ही बात को व्यंजित करने वाले अनेक शब्द हैं जो अपने पृथक अस्तित्व का औचित्य रखते हैं। क्योंकि कोई भी भाषा अनावश्यक शब्दों का वहन भार नहीं करती।

वे शब्द एक दूसरे के क्लोन नहीं है, एक ही बात से संबंध रखते हुए भी अपने होने की स्वायत्तता वे रखते हैं, यह बात आगे स्पष्ट होगी।

'विश्व की अनेक-अनेक भाषाओं के बीच हिंदी की स्थिति विशिष्ट है, उसका वितान व्यापक है और भूमि विस्तृत। हिंदीतर विश्व - भाषाएँ जहाँ संपर्क - संवाद और संप्रेषण के दायित्व के साथ चुक जाती हैं वहीं इस दायित्व बोध के साथ-साथ हिंदी, संस्कृति की संवाहिका और जीवन मूल्यों की पोषक भाषा के रूप में वर्धमान है।

हिंदी अपनी सहधर्मी - सहवर्ती भाषाओं के साथ-साथ इसके विरोध में आने वाली भाषाओं के प्रति भी उदार दृष्टि अपनाते हुए उनके शब्द भंडार को अपनाकर अपने विशाल हृदय का परिचय देने वाली अद्वितीय भाषा है।

जब हम विश्व मानव, विश्वग्राम और विश्व संस्कृति की बात करते हैं तो हमें ऐसी भाषा की भी बात करनी चाहिए जिसे विश्व - भाषा या विश्व संस्कृति की भाषा कहा जा सके।

विश्वसंस्कृति की भाषा के मायने हैं सबको अपनाने वाली, सबका हितसाधन करने वाली, सबको साथ लेकर चलने वाली भाषा।आकाशधर्मी। विविध भाषाओं और भाषा - भाषियों को जोडने वाली भाषा। ऐसी भाषा जो समन्वय का अपार धैर्य लेकर आती है। सुकुमार भावनाओं और सुरुचिपूर्ण संवेदनाओं को बचाने, बनाने और बढ़ाने वाली भाषा। मशीनों की ही नहीं मानवों की भी भाषा, पेट की ही नहीं हृदय की, भूख की नहीं भाव की भी भाषा। निस्संदेह वह भाषा हिंदी है।

विश्व संस्कृति की भाषा के पद पर वही भाषा अभिषिक्त हो सकती है जो मानव मन पर भौतिकतावादी आँधी से छायी गर्द को अपने कोमल स्पर्श हटाकर उसकी प्रकृत संवेदनाओं को सहलाकर जगा सके।

हिंदी ही क्यों? यह प्रश्न अवश्य पूछा जाएगा, पूछना भी चाहिए।

हिंदी को विश्व संस्कृति की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए उसकी सर्वसमावेशी प्रकृति के बाद जो दूसरी बड़ी चीज है, वह है लोकमंगल विधायक भावों प्रेम तथा करुणा के संवहन संप्रेषण और भाव प्रसार की उसकी अद्भुत सामर्थ्य।

निश्चय ही विश्व की सभी भाषाओं में इन दोनों लोकमंगलकारी भावों का अभिनिवेश हुआ है, किंतु जैसी गंभीरता, मौलिकता और भाव विस्तार इन भावों का हिंदी के माध्यम से हुआ है वह दुर्लभ है।

प्रेम और करुणा हिंदी की मूल प्रवृत्तियाँ हैं आरोपित या बनावटी भावरूपक नहीं। यहाँ तक कि दूसरी भाषाओं के हिंसक मुहावरे भी हिंदी की प्रकृति में ढलकर अपनी हिंसा छोड़कर प्रेम और करुणा की दुहाई देते फिरते हैं। बाबू गुलाबराय के विशद निबंध 'भारतीय संस्कृति' में

कैसे अंग्रेजी का हिंसक मुहावरा हिंदी में आकर अपनी हिंसा त्याग देता है यह देखने योग्य है -

"अंग्रेजी का प्रयोग killing two birds with one stone वहाँ की हिंसात्मक प्रवृत्ति का परिचायक है। हमारे यहाँ इसका अनुवाद हुआ है 'एक ढ़ेले में दो पंछी' किंतु उसमें वह मधुरता नहीं जो 'एक पंथ दो काज' में है। उसके कहते ही हमको 'गोरस बेचन हरि मिलन, एक पंथ दो काज' की बात याद आ जाती है।"[1]

पत्थर फेंककर उड़ते पंछी मार देने के मुहावरे से हिंदी में उन निरीह, निर्दोष पंछियों के प्रति करुणा उमड़ती है तो इसी प्रकार अंग्रेजी के मुहावरे का विस्तार 'एक पंथ दो काज' करने से हरि मिलन की प्रेम भावना भी स्वतः ही सिद्ध हो रही है।

हम ऊपर कह आए हैं कि प्रेम और करुणा हिंदी के स्वभावसिद्ध भाव हैं। करुणा एक ऐसा भाव है जिसमें एक प्राणी दूसरे प्राणी के दुख से दुखी होता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि जब हम वसुधैव कुटुम्ब या विश्व परिवार की बात करतें हैं तो उसके पीछे प्रत्येक प्राणी के दुख को अपना दुख मानकर उसके निवारण का संकल्प भी ध्वनित होता है। इस अर्थ में संपूर्ण विश्व को अपना मानकर उसके प्राणियों के सुख-दुख को अपना मानने वाली संस्कृति ही विश्व संस्कृति कही जा सकती है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने करुणा ऐसे भाव की लोकमंगलकारी प्रवृत्ति को उद्घाटित करते हुए लिखा है -

"मनुष्य की प्रकृति में शील और सात्विकता का आदि संस्थापक यही भाव है।.. मनुष्य के अंतःकरण में सात्विकता की ज्योति जगाने वाली यही करुणा है। इसी से जैन और बौद्धधर्म में इसको बड़ी प्रधानता दी गई है और गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कहा है -

पर उपकार सरिस न भलाई।

पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।

... सामाजिक जीवन की स्थिति और पुष्टि के लिए करुणा का प्रसार आवश्यक है।.. करुणा का विषय दूसरे का दुख है, अपना दुख नहीं।"[2]

शील, सात्विकता, परोपकार, सामाजिकता आदि करुणा के ऐसे विशेषक हैं जिनके बिना विश्व संस्कृति की कल्पना भी दूभर है और मानवता के इन गुणों से संपन्न 'करुणा' हिंदी की सहज प्रकृति का अंग है इसलिए निस्संदेह 'हिंदी को विश्व संस्कृति की भाषा कहा जा सकता है।

जो भाषा व्यक्ति को केवल अपने सुख, अपनी सुविधाओं की चाह में दूसरे प्राणी पर हिंसा का संदेश देती है, वह विश्व संस्कृति भाषा कैसे कही जा सकती है। वह विश्व कल्याण या विश्वग्राम जैसी उच्चता को नहीं छू सकती।

हिंदी के स्वभाव निहित करुणा और प्रेम दो ऐसी प्रवृत्तियाँ है जो मनुष्य को आत्मकेंद्रित प्रवृत्ति से मुक्त करते हुए उसके हृदय का विस्तार अन्य प्राणियों एवं शेष जगत के प्रति करती हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने करुणा और प्रेम को दूसरों की ओर द्रवित करने वाली हृदय की दो कोमल वृत्तियों के रूप में परिभाषित करते हुए, लोकमंगल से संलग्नता के कारण इन्हें 'धर्म' स्वरूप माना है-

"वह व्यवस्था या वृत्ति, जिससे लोक में मंगल का विधान होता है, अभ्युदय की सिद्धि होती है, धर्म है।.. भावों की छानबीन करने पर मंगल का विधान करने वाले दो भाव ठहरतें हैं - करुणा और प्रेम।.. क्रोध, युद्धोत्साह आदि प्रचंड और उग्र वृत्तियों की तह में यदि इन दोनों में से कोई भाव बीज रूप में स्थित होगा तभी सच्चा साधारणीकरण और पूर्ण सौंदर्य का प्रकाश होगा।"[3]

शुक्ल जी की इस उद्धरणी से यह भी बहुत स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी भाषा, हिंदी सभी भावों और मनोविकारों को भूमि प्रदान करने वाली भाषा है किन्तु उसकी प्राथमिकता यह है कि अन्य भावों के बीज रूप में करुणा तथा प्रेम का ही संस्कार अंतर्निहित होना आवश्यक है, क्योंकि साधारणीकरण और सौंदर्यबोध इन्हीं से ही पूर्णता पाता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि साधारणीकरण प्रकारांतर से सार्वजनिकता या वैश्विकता का ही पर्याय है।

जीव और जगत के हित में तथा आवश्यक होने पर हिंदी भाषा उग्र तथा प्रचंड भावों को भी आत्मसात करती है, परंतु उसकी शर्त यही है कि अन्य भावों के पीछे करुणा और प्रेम का विवेकपूर्ण नियंत्रण अवश्य हो।

अधर्म, अन्याय में तत्पर अत्याचारियों और आततायियों के प्रति उठने वाला क्रोध इसीलिए सुंदर और श्रेयस्कर लगता है कि उस क्रोध के पीछे उन दुष्टों के अत्याचारों से प्राणियों को मुक्त करने की लोकमंगलाकारी भावना का विवेक और नियंत्रण है।

करुणा और प्रेम के माध्यम से हिंदी भाषा में निहित शील और संवेदना की चर्चा हम ऊपर कर आए हैं। शील और संवेदना के साथ किसी भी भाषा को वैश्विक संस्कृति की भाषा बनने के लिए उसमें शब्द और अर्थ का अद्भुत सामर्थ्य होना भी जरूरी है।

किसी भी भाषा के सामर्थ्य का पता इस बात से चलता है कि उसके पास प्रकृति के विविध रूपों, प्राणियों के विविध भावों - संवेदनाओं और मानव के विविध क्रिया-व्यापारों को स्पष्टतः परिभाषित, अभिव्यक्त और संप्रेषित करने के लिए शब्द भंडार कितना है।

हिंदी के पास सूक्ष्म से सूक्ष्म क्रिया व्यापारों तथा अत्यंत निकटवर्ती भावों को स्पष्टतः अभिव्यक्ति देने वाला अद्भुत शब्द भंडार है। कालरिज

की काव्य परिभाषा में कविता सर्वोत्तम शब्दों का सर्वोत्तम क्रम है। यहाँ ध्यान देने की बात है कि सर्वोत्तम शब्दों की सीमा या परास भाषा के शब्द भंडार पर ही आश्रित है।

भाषा अपने पास उपलब्ध शब्दों में से ही सर्वोत्तम शब्द उठा सकती है ऐसे में वही भाषा सर्वसमर्थ हो सकती है जिसके पास सार्थक शब्दों की अधिकतम उपलब्धता हो।

जिस भाषा के पास अपनी बात कहने को गिने-चुने शब्द ही हों वह सर्वोत्तम की चयनात्मकता के आत्मविश्वास को नहीं पा सकती। उपलब्ध सीमित विकल्पों में से किसी एक को चुन लेने की विवशता ही उसकी नियति है।

इस दृष्टि से हिंदी आशान्वित करती है। उसके पास शब्दों की ऐसी विशाल राशि है जिसमें एक ही बात को व्यंजित करने वाले अनेक शब्द हैं जो अपने पृथक अस्तित्व का औचित्य रखते हैं। क्योंकि कोई भी भाषा अनावश्यक शब्दों का वहन भार नहीं करती।

वे शब्द एक दूसरे के क्लोन नहीं है, एक ही बात से संबंध रखते हुए भी अपने होने की स्वायत्तता वे रखते हैं, यह बात आगे स्पष्ट होगी।

हिंदी में जिस शब्द सामर्थ्य की पैरवी हम कर रहें हैं उसे सिद्ध करने के लिए यूं तो हिंदी के किसी भी साहित्यकार का संदर्भ लिया जा सकता है, पर इस प्रसंग में मुझे संयोगवश आचार्य रामचंद्र शुक्ल की वह सम्मति याद आती है जहाँ वे गोस्वामी तुलसीदास के लिए निस्संकोच होकर कहते हैं कि यह एक कवि ही हिंदी को प्रौढ़ साहित्यिक भाषा सिद्ध करने के लिए काफी है।

शुक्ल जी ने यहाँ प्रौढ़ शब्द का प्रयोग किया है। यह बात ध्यान देने योग्य है। भाषा में निहित साहित्यिक गांभीर्य उसकी प्रौढ़ता को संकेतित करता है, भाषा का केवल पुरातन होना ही पर्याप्त नहीं है। इस दृष्टि से बेखटके यह कहा जा सकता है कि हिंदी ने अपने बाल धूप में सफेद नहीं किये हैं।

तुलसी के मानस में, एक छंद में काया के लिए तीन शब्द आए हैं तन, शरीर और देह। छंद में इस प्रयोग को लेकर डॉ. भोलानाथ तिवारी की सम्मति हिंदी की शब्द समृद्धि के साथ प्रत्येक शब्द के स्वतंत्र अस्तित्व और औचित्य का भी प्रमाण देती है -

"यह ध्यान देने की बात है कि इस चौपाई में 'शरीर' के तीन पर्यायों का प्रयोग किया गया है : तनु, शरीर, देह ; और तीनों ही अपने-अपने स्थान पर बड़े सार्थक और सुचिंतित प्रयोग हैं। 'तनु' का धात्वर्थ है पतला- दुबला, महीन... रूई भी पतली- दुबली और महीन होती है।

शरीर का धात्वर्थ है 'प्रतिक्षण क्षय या नष्ट होने वाला', इसीलिए जहाँ 'क्षण' में जल जाने का प्रसंग है, तुलसी उसे 'शरीर' कह रहे हैं ; और 'देह' का धात्वर्थ है 'जो स्थूल और पुष्ट हो', इसलिए जहाँ जलने न पाने का संदर्भ है शरीर को तुलसी 'देह' कह रहे हैं, क्योंकि जो स्थूल और पुष्ट होगा बहुत जल्द नहीं जल सकता।"[4]

बहरहाल वह चौपाई यह है -

"बिरह अगिनि तनु तूल समीरा।

स्वास जरइ छन माहि सरीरा।।

नयन स्रवहिं जल निज हित लागी।

जरे न पाव देह बिरहागी।। " (रामचरित मानस)

राम बिरह में सीता की काया दुबली' तनु' हो गई है, श्वास-प्रश्वास में विरह की अग्नि से शरीर क्षण-क्षण नष्ट हो रहा है पर नेत्रों के अश्रु का जल विरह अग्नि को विफल कर रहा है इसलिए पुष्ट देह अभी जीवित है।

यहाँ समझा जा सकता है कि हिंदी के पास शब्द भंडार भी है और भंडार के प्रत्येक शब्द का अपना वैशिष्ट्य और महत्व भी है।

इसी तरह सेतुबंध प्रसंग में, उस युग में समुद्र पर सेतु बाँधने की अकल्पनीय बात के साकार होने की सूचना मिलने पर रावण की चकपकाहट को व्यक्त करने के लिए तुलसी ने अपने मानस में एक दोहे में ही सागर के दस पर्याय रावण के मुँह से धाराप्रवाह कहलवाए हैं -

"बाँध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस।

सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस।।"

(रामचरित मानस)

अकल्पनीय, अद्भुत घटित होने पर मुँह से एक साथ शब्दों की लड़ी छूट पड़ती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है -

"यह ऐसा ही है जैसे सहसा किसी का मरना सुनकर चकपकाकर पूछना - अरे कौन? रामप्रसाद के बाप? माताप्रसाद के लड़के? शिवप्रसाद के भाई? अमुक स्टेट के मैनेजर?"[5]

समुद्र के एकाधिक नामों से रावण की चकपकाहट के साथ भाषा का यह कौशल भी लक्ष्य किया जा सकता है कि दशानन के दस मुख हैं और प्रत्येक मुख से समुद्र का एक-एक नाम बोला गया है। सेतुबंध के साथ - साथ यहाँ तुलसीदास द्वारा 'दोहा बांधने 'की कला भी चमत्कृत करती है। कुल जमा बारह शब्दों के दोहे में सागर के दस नामों को मात्र दो शब्दों 'बांध्यो' और 'सत्य' से बाँध दिया गया है।

शब्द भंडार, और शब्द सामर्थ्य के मामले में कौन-सी ऐसी हिंदीतर भाषा है जिसके पास अभिव्यंजना का ऐसा वैभव और शब्दकारी का ऐसा आत्मविश्वास वर्तमान है।

जटिल से जटिल मानवीय क्रिया व्यापारों और विविधतापूर्ण भावों की अभिव्यंजना के लिए उपयुक्त शब्दों की तलाश या निर्माण में भौचक्के होकर खड़े रहने की मजबूरी हिंदी भाषा को नहीं है।

हिंदी मजबूरी की नहीं मजबूती की भाषा है। किसी बात को जितनी तरह से कहा जा सकता है और उस कहन के लिए जितने और जैसे शब्दों की आवश्यकता है वे सब हिंदी में हैं। शब्दों में शक्तिसंधान और क्षमता निर्माण का एक और उदाहरण यहाँ उल्लेखनीय है।

तुलसी के ही विराट मानस में क्षणिक सत्संगति के सुख को स्वर्ग और अपवर्ग से श्रेयस्कर बताया है -

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।

तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

(रामचरित मानस)

यहाँ मुक्ति या मोक्ष के लिए प्रयुक्त 'अपवर्ग' शब्द का गढ़न देखें। अपवर्ग अर्थात 'अ' तथा प-वर्ग। 'अ' उपसर्ग नहीं के अर्थ में प्रयुक्त होता है इस तरह मुक्ति या मोक्ष वह अवस्था है जहाँ प-वर्ग नहीं हो। 'प' से पाप-पुण्य की भावना, 'फ' से फल की कामना, 'ब' से बंधन, 'भ' से भय तथा 'म' से मृत्यु जहाँ नहीं हो वही मोक्ष है। मुक्ति है।

विश्व संस्कृति की भाषा का एक और अन्य विशेषक यह भी हो सकता है कि वह शुभ्रता, सद्भावना और सकारात्मकता का संचार करती हो, जैसे कि हिंदी करती आ रही है।

हिंदी भाषा, अशुभ, अमंगल सूचक, घृणास्पद, नकारात्मक क्रियाओं और संज्ञाओं को व्यक्त करने के लिए भी अपेक्षाकृत कम दुखांतक शब्दों का प्रयोग करती है। 'अमंगल के स्थान पर मंगल शब्द' शीर्षक निबंध में पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने हिंदी की इसी जीवनधर्मिता और शुभता का संस्कार सामने रखा है।

बकौल गुलेरी जी, बंद करने में रोजगार खत्म होने का अर्थ भासित होता है इसी से 'दुकान बढ़ाना', फूटने के स्थान पर 'घड़ा उतरना', पानी देने के स्थान पर पानी पिलाना, चूडी टूटना के स्थान पर मौलना, मुरकना या बढ़ जाना व्यवहृत किया जाता है। मृत्यु सूचना के लिए रूढ़ 'चिट्ठी' के स्थान पर 'कागद', न्हान या स्नान मृत्यु से जुड़ा होने के कारण प्रसूति के शुद्धि स्नान को 'जलवा पूजन' कहने का प्रचलन है।

इसी तरह जलना शब्द शवदाह के अर्थ में नकारात्मक संदर्भ और ऊर्जा रखता है इसलिए होली जलने के स्थान पर ' मंगरना' (मगल गई), चूल्हा जलने /जलाने या बालने की बजाय 'चिताना' और फिर चिताने शब्द में भी 'चिता' आने से 'चूल्हा जगाना ' प्रचलन में आया।

जो भाषा बुरा या अमंगल कहने से इतना बचती है वह किसी का बुरा या अमंगल करने की बात तो सोच भी कैसे सकती है। उसके लिए तो संपूर्ण विश्व ही उसका परिवार है जिसका हितसाधन उसे सोचना है और करना है। अमंगल और अश्लीलता के गोपन का आग्रह भाषा के सांस्कृतिक शिष्टाचार को परिभाषित करता है।

विश्व के कोने-कोने से शांतिकामी, शुभाकांक्षी और विकासोन्मुख मानव विश्वमानव के चित्र चरित्र को संस्कार देने वाली भाषा की ओर आशा भरी दृष्टि से ताक रहे हैं। ऐसी भाषा जो विश्व संस्कृति की भाषा हो। जो मनुष्य और मानवता के सर्वांगीण उत्कर्ष की पोषक हो, जो शांति समन्वय और प्रेम की भाषा हो। जो ज्ञान और विज्ञान की भाषा हो। जो अर्थ और परमार्थ की भाषा हो।जो तृप्ति और तोष की, जिजीविषा और जोश की भाषा हो। जो कर्म और मर्म की भाषा हो। कहने की आवश्यकता नहीं कि उस भाषा का नाम 'हिंदी' है।

हिंदी भाषा की शक्ति शील सामर्थ्य और सौंदर्य के उद्घाटन के लिए, उसके विविध संदर्भ - सरोकारों पर मंथन के लिए, उसकी चुनौतियों के निवारण के लिए, और संभावनाओं को उत्कर्ष प्रदान करने के लिए संपूर्ण विश्व से हिंदी अनुरागियों का सम्मिलन एक महत्त्वपूर्ण घटना है। विश्व हिंदी सम्मेलन के रूप में यह उत्सव पिछले चार दशकों से आयोजित किया जाता है।

बारहवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन 15से 17 फरवरी 2023 तक फ़ीजी में आयोज्य है। हिंदी का यह भव्य उत्सव हिंदी को भारत ही नहीं, विश्व संस्कृति की भाषा के रूप में स्थापित करने की ओर गतिमान हो, इसी मंगलाशा के साथ।

संदर्भ -

1. राय, बाबू गुलाब, 1974-75 ई., भारतीय संस्कृति, रवींद्र प्रकाशन, ग्वालियर, पृष्ठ 6

2. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, 2009 ई., चिंतामणि, मलिक एंड कंपनी जयपुर, पृष्ठ 36 से 41

3. पूर्वोक्त, पृष्ठ 132 से 139

4. तिवारी, डॉ भोलानाथ, 1983 ई., शैली विज्ञान, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 87

5. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, 1935ई., गोस्वामी तुलसीदास, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग

व्याख्याता हिंदी, तिरूपति नगर, हिंडौन सिटी, जिला करौली राजस्थान, पिन 322230, मोबाइल 9887202097, मेल- kpathakhnd6@gmail.com

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता

.....

.....

.....

.....

पत्रिका भिजवाने का पता

.....

.....

.....

.....

विवरण	शुल्क			प्रतियों की सं.	रुपये/US$
गगनांचल वर्ष	एक वर्ष	₹	500 (भारत)		
		US$	100 (विदेश)		
	तीन वर्षीय	₹	1200 (भारत)		
		US$	250 (विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय		10%		
	पुस्तक विक्रेता		25%		

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं. ..... दिनांक .....

रु./US$ ..... बैंक .....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूँ।

कृपया इस फॉर्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएँ :
कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली–110002, भारत
फोन नं. 011–23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप .....

नाम .....

पद .....

दिनांक .....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा गत 45 वर्षों से हिंदी पत्रिका गगनांचल का प्रकाशन किया जा रहा है, जिसका मुख्य उद्देश्य देश के साथ–साथ विदेशों में भी भारतीय साहित्य, कला, दर्शन तथा हिंदी का प्रचार–प्रसार करना है तथा इसका वितरण देश–विदेश में व्यापक स्तर पर किया जाता है।

इसके अतिरिक्त परिषद ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य, विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों और दार्शनिकों जैसे महात्मा गाँधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएँ परिषद की प्रकाशन योजना में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन–योजना विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केंद्रित है, जो भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य और नाट्यकला से संबद्ध हैं।

परिषद द्वारा भारत में आयोजित अंतरराष्ट्रीय महोत्सवों के अंतर्गत सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा विदेशी सांस्कृतिक दलों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रमों की वीडियो रिकॉर्डिंग तैयार की जाती है। इसके अतिरिक्त परिषद ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिलकर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक शृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र की दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद के लिए गौरव का विषय है। परिषद का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

अध्यक्ष	:	23378616, 23370698
महानिदेशक	:	23378103, 23370471
उप-महानिदेशक (प्रशासन)	:	23370784, 23379315
उप-महानिदेशक (संस्कृति)	:	23379249, 23370794
हिंदी अनुभाग	:	23370237, 23379309-10 एक्स. 2256/2272

पंजीयन संख्या, आर.एन/32381/78
ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के प्रकाशन

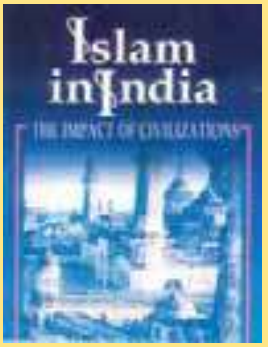

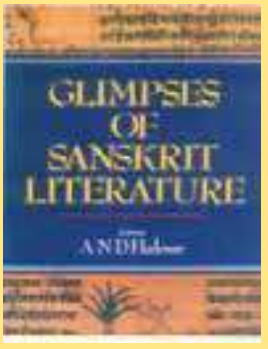

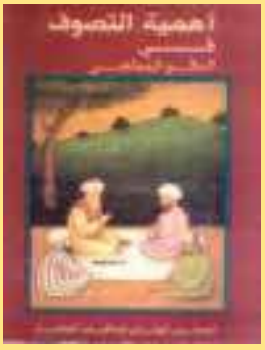

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
फोन : 91-11-23379309, 23379310
ई-मेल : pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट : www.iccr.gov.in

आवरण परिकल्पना : ममता गोयनका

गगनांचल